ध्यान देने की बात।

ऐसा उपहार कभी किसीने नहीं दिया, कहीं मूलमात्र मनुस्मृति भी ८ आने को नहीं मिलती, फिर मूल भाषा टीका और सन्देहस्थलोंपर टिप्पणियों सहित पूर्ण मनुस्मृति और साथमें भाषाटीका सहित भगवद्गीता सुन्दर सफेद कागजपर बंबई के नये अक्षरोंसे छापकर देनेका साहस केवल इसी कार्यालयको है, पुस्तकें थोड़ी ही छापीजाती हैं, इसलिये हमारे पुराने ग्राहक समाचार पाते ही अपने इष्टमित्रोंको खबर देकर पताकाका ग्राहक बनावें, पताकाके ग्राहकों की वृद्धि होनेके लिये ही यह साहस कियागया है, आशा है सनातनधर्मके प्रेमी इस अवसरको हाथसे न खोवेंगे, मनुस्मृतिका टीका और छपाई कैसी उत्तम है यह बात, पुस्तकोंके दर्शन होनेपर ही विदित होगी। जो महाशय—

नये ग्राहक

होना चाहें वह पताकाका वार्षिक मूल्य १) रुपया उपहारकी तयारीकी सहायतार्थ ≈ आना और डाक महसूल का ४ आना कुल १।।।) भेजें।

निवेदक—

ऋ० कु० रामस्वरूप शर्मा

सम्पादक सनातनधर्मपताका

मुरादाबाद U. P.



ता करने के लिये उस पवित्र वाक्यराशिके चार भाग किये ऋक्, यजु, साम और अथर्व। पद्यमय वाक्यावलि ऋक्, गीतिमय वाक्यावलि साम, और शेषगद्यपद्यमय वाक्योंका नाम यजु हुआ, इस विभागसे पहिले यह समस्त वाक्यावलि त्रयी नामसे प्रसिद्ध थी, त्रयीका ही एक अंश स्वतंत्र भावसे अथर्व नामसे प्रसिद्ध है, यही विभाग व्यासजी ने किया है, त्रयी के कर्मों की अपेक्षा अथर्व के कर्म स्वतन्त्र हैं, इसीकारण त्रयीविषयक कर्मोंमें अथर्वका नामोल्लेख और अथर्वविषयक कर्मोंमें त्रयीका नामोल्लेख नहीं है।

ऋक्, यजु और साममें कर्म, उपासना और ज्ञानका वर्णन कहीं स्वतन्त्ररूपसे और कहीं मिश्रितरूप से है, अन्तःकरणशुद्धिके द्वारा प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्तिमें लानेके निमित्त यजुर्वेद यज्ञीयप्रयोगोंकीभित्ति है, ऋग्वेद के मंत्र उस भित्तिको सुशोभित करनेवाले चित्ररूप हैं और उन चित्रोंमें सामगीतिरूप मणिमुक्ता सनेहुए हैं, परन्तु वैदिक कर्मकी भूमिरूप यजुर्वेद ही है, इसकारण सबसे पहिले यजुर्वेदसंहितासे ही धार्मिकोंका गृह सुशोभित होना चाहिये।

वेद किसी का रचाहुआ नहीं है, प्रतिकल्पकी आदिमें परमात्मा उस का स्मरण करके प्रजापतिके हृदयमें उसकी प्रेरणा करते हैं इसीकारण लिखा है कि—

न कश्चिद्वेदकर्त्तास्ति वेदस्मर्त्ता महेश्वरः।

'वेदका बनानेवाला कोई नहीं है' महेश्वर उसका स्मरण किया करते हैं, तदनन्तर ऋषिपरम्परासे श्रवण ही होकर उसका प्रचार होता रहता है, इसी कारण वेदका दूसरा नाम श्रुति भी है। वेदकी आनुपूर्वी सदासे एकरूप और अनादि है इसीकारण वेदके अक्षरोंका यथाविधि उच्चारण होनेपर ही शास्त्रोक्त फल प्राप्त होताहै, इसीकारण मंत्रोंका यथावत् उच्चारण होनेके लिये स्वरोंका विन्यास और उच्चारण का क्रम स्वतन्त्ररूप से विधिबद्ध कियागया है।

कर्म में वेदके मंत्रोंका अर्थज्ञान केवल उच्चारणशुद्धिके निमित्त ही जानना आवश्यक है, मुख्य तो मंत्रोंका यथार्थरूपसे उच्चारण ही है, इसीकारण कर्मके समय वेदमंत्रोंके अर्थका विचार वा वर्णन न होकर

पर कुछ ध्यान नहीं दिया कि मनमाना अर्थ करने से पुरातन मर्यादानुकूल स्वरविन्यास के प्रतिकूल मेरा हास्य और वैदिकधर्मकी मूल में कुठाराघात होगा, जो केवल अर्थमात्र दिखाकर वेद को ऐहिकोन्नतिमात्र साधन के प्रेमियोंका रुचिकर बनाना चाहते हैं, वह वेद के वेदत्व को जानते ही नहीं। ऐसे कल्पित अर्थमात्रसारवाले वेद न समझे जायँ इसकारण यह वेदका संक्षिप्त अर्थ पुरातन महीधर उव्वट आदि रचित भाष्यों के अनुसार लिखा है।

वैदिक यज्ञादिमें पश्वालम्भनके विषयको लेकर आजकल प्रायः विवाद होता है, इसका कारण यह है कि आजकल लोग धर्मका स्वरूप मनमाना बनाते हैं, पहिले लोगोंका विश्वास था कि--जिसको वेद कर्त्तव्य कहता है वह धर्म है और जिसका वेद निषेध करता है वह अधर्म है, इस नियमका पालन करके निजकर्त्तव्यका पालन करनेवालोंको कुछ शक्ति प्राप्त होती थी, उस शक्तिको धार्मिकजन योगानुष्ठानसे सम्मार्जितकर पञ्चभूतोंपर प्रभुता जमालेते थे, सूक्ष्मसृष्टिमें पहुँचजानेके कारण उनको देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता था, वह प्रकृति और पुरुषके स्वरूपको करामलकवत् देखते थे, इसप्रकार अपना उद्धार करके वह परमपदको पाते थे, ऐसेही महात्मा वैदिक यज्ञों में यजमान होता ऋत्विज् आदिके आसनको सुशोभित करते थे, उनके मंत्रों के प्रभाव से स्थूलसूक्ष्म दोनों प्रकारके पाँचभौतिक शरीर उनकी इच्छानुसार परिचालित होते थे, उनके विश्वासानुसार जैसा कि--पूर्वमीमांसादिमें निर्णय किया है, वैदिक यज्ञोंमें यथाविधि पश्वालम्भन धर्म था, उसमें उदरम्भरोंकी कीहुई हिंसा की समान भाव नहीं होता था, आजकल के शिश्नोदरपरायण स्वकल्पित कृत्यको धर्म माननेवालों के सामने इस बातको रखकर मानो वैदिकधर्मसे उनकी रुचि हटाना है इसीकारण शास्त्रने सिद्धान्त किया है कि हरएक बात अधिकारीसे कहना चाहिये, आजकलके स्वतन्त्रचित्तोंका अनुमान करकेही पुरातन महर्षि कलिमें अश्वमेधादि यज्ञोंके करनेका निषेध करगये इसके अतिरिक्त ऐसे यज्ञोंमें श्रद्धा न होनेके कारण आजकलके वेद २ पुकारनेवाले उन यज्ञोंके अधिकारी भी तो नहीं हैं, फिर वह इनकी चर्चा

हीं क्या करें, अथवा वैदिक यज्ञादि कर्मकलाप काम्य है, जो प्रवृत्तिमार्ग के वर्गोंही स्वर्गादिकी चाहना रखते हों, और उनको यह विश्वास हो कि–इन यज्ञोंके करनेसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होताहै, तो वह इन यज्ञोंका पुरातन रीतिसे यथाविधि अनुष्ठान करें, और उनको यदि इन उपायोंसे स्वर्गादि मिलनेमें श्रद्धा नहीं है तो वह इनका अनुष्ठान करेंगे ही क्यों ? और शास्त्र उनको करनेका प्रेरणा ही कब करताहै, क्योंकि–वह श्रद्धाहीन होनेसे उस कर्मके अधिकारी नहीं है, धर्ममें तो सबसे पहिले अधिकारी होनेकी आवश्यकता है, जैसे वैद्यकशास्त्रमें अनेकों रोगोंपर बहुतसी ओषधियें काष्ठादिक लिखीहैं और बहुतसी मांसमयी लिखी हैं, जिनको मांस में घृणा हो वह मांसमयी औषधि क्यों खायँ, जिन प्रवृत्तिप्रेमियोंको मांसका अभ्यास है उनके ही निमित्त वह उपयोगी होंगी, ऐसे ही जिनको मांससे घृणा है और जो प्रवृत्तिको हेय समझकर निवृत्तिसे प्रेम करनेवाले हैं वह उन काम्य यज्ञोंको क्यों करें उनको चित्तशुद्धिके लिये नित्यनैमित्तिक कर्तव्य कर्मानुष्ठान तथा योगसाधनाके अङ्गरूप शमदमादि निर्दिष्ट हैं । ऐसे ही निवृत्तिमार्गप्रेमी कितने ही धार्मिक मित्रोंकी प्रेरणासे मैंने इस सादिसार्थको लिखतेसमय अश्वालम्भनादि स्थलोंपर पुरातन भाष्योंके अविरुद्ध हिंसाभासको भी बचादिया है, वास्तवमें मुझे इस सादिसार्थके लिखनेका अहङ्कार नहीं है, क्योंकि–इस अनुवादमें मेरी अपनी रचना कुछ नहीं है, मैंने अबतकके छपेहुए संस्कृतभाष्य और भाषानुवादोंको सामने रखकर इस अनुवादका स्वतन्त्र रीतिपर सम्पादनमात्र करदियाहै, और अतिसुलभ मूल्यपर पत्राकाके ग्राहकोंकी सेवामें भेजनेकी इच्छा से छपवाकर प्रकाशित किया है ।

निवेदक—

ऋ० कु० रामस्वरूप शर्मा



धन्यवाद ।

मुरादाबादके प्रतिष्ठित रईस साहू पुरुषोत्तमशरण जीको कोटिशः धन्यवाद हैं, इस सनातनधर्म प्रेस की स्थिति और सानुवाद यजुर्वेदसंहिता के प्रकाशित होनेका आश्रय आप ही हैं, क्योंकि–आपने ही स्वर्गीय परोपकारपरायण महाराज गोपालजी की प्रेरणा से उपयुक्त रुपये की ऋणरूप सहायता देकर प्रेसको स्थायी किया और आपनेही यजुर्वेद की तयारीके निमित्त भी ऋणस्वरूप रुपया देकर इस कार्यको मेरे हाथसे पूर्ण करादिया, कदाचित् आपकी यह सहायता न मिलनेसे मैं इस कार्यका निर्वाह न करसकता, साहूसाहबकी ऐसी ही सहायता समय २पर मिलते रहनेसे आशाहै सनातनधर्मपताकाके ग्राहक बहुतसे धर्मग्रन्थोंको बहुत ही सुलभता से पासकेंगे, आपका पवित्र चित्र भी किसी दूसरे पुस्तकमें ग्राहकों की भेट कियाजायगा । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि–वह साहू साहबके पुत्रपौत्र धनधान्यादिकी दिनप्रतिदिन वृद्धि करें । इसके सिवाय खुरजेके रायबहादुर ला० नत्थीमल साहबने भी पचास रुपया यजुर्वेदके छपनेकी सहायतार्थ धर्मार्थ दिया था, तिसका धन्यवाद है ।

रामस्वरूप शर्मा

सम्पादक सनातनधर्मपताका मुरादाबाद.

* हरिः ॐ *

श्रीशुक्लयजुर्वेदः

अन्वयेन भावार्थेन च सहितः

प्रथमोऽध्यायः

प्रणम्य साम्बं गिरिशं गणेशं भाष्यं समालोक्य महीधरीयम् ।
यजुर्मन्त्रां लिखिष्यामि चार्थं परोपकाराय निजेक्षणाय ॥ १ ॥

हरिः ओं ॥ परमात्मा का श्वासरूप वेद प्रथम ब्रह्माजी को प्राप्त हुआ, ब्रह्माजी से ऋषियों को प्राप्त हुआ, परन्तु कितने ही काल के अनन्तर मनुष्यों को मन्दमति देखकर कृपालु भगवान् वेदव्यास ने वेद को ऋक्-यजुः-साम और अथर्व इन चार भागों में विभक्त किया एवं क्रम से पैल वैशम्पायन-जैमिनि तथा सुमन्तु इन अपने चार शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, उन्होंने भी अपने शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, इस प्रकार वेद की सहस्रों शाखा होगई। उनमें से व्यासजी के शिष्य वैशम्पायन जी ने याज्ञवल्क्यादि अपने शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया था, सो दैवात् किसी कारण से क्रुद्ध होकर वैशम्पायन जी ने याज्ञवल्क्य जी से कहा कि-मेरे पढ़ाये हुए वेद को त्याग दे, उसी समय याज्ञवल्क्य जी ने योगसामर्थ्य से वेदविद्या को मूर्त्तिमान् करके उगल दिया उन उगलेहुए यजुर्मन्त्रों को, "ग्रहण करलो" इसप्रकार गुरु के कहने पर वैशम्पायन जी के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि (तीतर) बनकर चुगलिया, वह यजुः बुद्धि की मलिनता के कारण कृष्ण होगए। तब दुःखित हुए याज्ञवल्क्य जी ने सूर्य भगवान् की आराधना करके अन्य शुक्ल यजुर्मन्त्र पाए। उन यजुर्मन्त्रों को याज्ञवल्क्य जी नेजावाल यौधेय-कण्व एवं मध्यन्दिन आदि अपने १५ पन्द्रह शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, इस विषय को सूचित करनेवाली श्रुति भी है-" आदित्यानीमानि

शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त इति (बृहदारण्य० माध्य० ५।५।३३)अर्थात्-(आदित्यानि) आदित्य से पढ़ेहुए (शुक्लानि) शुद्ध (वाजसनेयेन) वाज कहिये अन्न का सनि कहिये दान है जिसके वह हुआ वाजसनि तिसके अपत्य-वाजसनेय (याज्ञवल्क्येन) याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों के अर्थ (आख्यायन्तो) कहेजाते हैं "। तिन याज्ञवल्क्य ऋषि से मध्यन्दिन महर्षि ने जो यजुर्वेद की शाखा प्राप्त करी वह माध्यन्दिन नाम वाली हुई। यद्यपि याज्ञवल्क्य ने यह मन्त्र बहुत से शिष्यों को उपदेश किये थे, परन्तु ईश्वर की कृपा से मध्यन्दिन महर्षि के नाम से ही लोक में प्रसिद्ध हुए उस माध्यन्दिन वेद को जो पढ़ते हैं वा जानते हैं शिष्यपरम्परा से वर्त्तमान वह भी माध्यन्दिन कहाते हैं।

शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।७ में लिखा है कि—"स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" अर्थात् स्वाध्याय (अपने पितृपितामहादि परम्परा करके प्राप्त वेदशाखा) को पढ़ना चाहिये, परन्तु वह अध्ययन (पढ़ना) प्रत्येक मन्त्र के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जानकर करना चाहिये, नहीं तो "एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवत्यथान्तराश्वगर्त्तं वापद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान् भवति" अर्थात् इन ऋषि छंद आदि को विना जाने जो वेद पढ़ता है, पढ़ाता है गायत्री आदि का जप करता है व्याहृत्यादि से हवन करता है, यज्ञ करता है तथा औरों को यज्ञ कराता है उसकाब्रह्म (वेद)निर्वीर्य (कार्यको सिद्ध न करनेवाला) यातयाम (निष्फल) होता है, और ऋषि छन्द आदि को न जानकर वेदाध्ययन आदि करने के अनन्तर श्वगर्त (नरक विशेष) में पड़ता है, वायु आदि से टूटी है शाखा जिसकी ऐसे शुष्कवृक्ष की योनि को प्राप्त होता है (प्रमीयते) अन्ध वा बधिर होता है और अत्यन्त पापाचारी होता है जिसका फल

यह होता है कि म्लेच्छ चाण्डाल आदि योनि में जन्म धारण करना पडता है। ऐसा कात्यायन ऋषि का कथन है। जो ऋषि छन्द आदि को जानकर वेदाध्ययन आदि करते हैं उनके विषय में कात्यायन ऋषि का ऐसा कथन है कि-"अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते" अर्थात्—जो ऋषि छन्दआदि को जानकर वेदाध्ययन आदि करता है उसका वेद वीर्यवान् (कार्य को सिद्ध करने वाला) होता है, जो अर्थ को भी जानता है, उसका वेद अत्यन्त वीर्यवान् होता है, ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जानकर जो जप होम तथा यज्ञ करता है वह उसका फल पाता है। इस कारण वेद मन्त्रों के ऋषि आदि का जानना तथा अर्थ को जानना अत्यन्त ही आवश्यक है, नहीं तो वेदाध्ययनादि का फल नहीं प्राप्त होसक्ता। अतएव हम पूर्वाचार्यों के भाष्यों के अनुसार वेदों के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ के लिखने का संकल्प करके प्रथम यजुर्वेद का प्रारम्भ करते हैं, तहां यजुर्वेद के मन्त्रों में कोई यजु है और कोई ऋचा हैं, तिनमें नियत हैं अक्षर पादावसान जिनके ऐसी ऋचाओं का आवश्यक छन्द कात्यायन ऋषि ने कहा है, और एकाक्षरादि नियताक्षर यजुषों का छन्द पिङ्गल से जानना क्योंकि—साधारणतः तो बत्तीस अक्षर का अनुष्टुप् होता है, परन्तु "इषे त्वा" इस तीन अक्षर के मन्त्र का जो अनुष्टुप् छन्द कहा है सो कैसे ? इस विषय में पिङ्गल का यह सूत्र है कि—छंदः। गायत्री। दैव्येकम्। आसुरी पञ्चदश। प्राजापत्याष्टौ। यजुषां षट्। साम्नां द्विः। ऋचां त्रिः। द्वौ द्वौ साम्नां वर्द्धेत। त्रींस्त्रीनृचाम्। चतुरश्चतुरः प्राजापत्यायाः। एकैकं शेषे। जह्यादासुरी। तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यः। तिस्रस्तिस्रः समाभ्य एकैका ब्राह्मयःप्राग्यजुषामार्ष्य इति' अर्थात् दैवी गायत्री छंद पंद्रह अक्षर का प्राजापत्या गायत्रीछन्द आठ अक्षर का, याजुषी गायत्री छन्द छः अक्षर का, साम्नीगायत्री छन्द बारह अक्षर का,

आर्चीगायत्रीछन्द अठारह अक्षर का, आर्षीगायत्री छन्द चौबीस अक्षर का, ब्राह्मी गायत्री छन्द छत्तीस अक्षर का है। दैवीगायत्री पर एक२ बढ़ाने पर क्रमसे उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द होते हैं। और आसुरी में एक२ घटाने से, प्राजापत्या में चार २ बढ़ाने से, याजुषी में एक २ बढ़ाने से, साम्नी में दो २ बढ़ाने से, आर्ची में तीन २ बढ़ाने से ब्राह्मी में छः २ बढ़ाने से, तथा आर्षी में चार२ बढ़ाने से क्रमशः उष्णिक् आदि छन्द होते हैं, स्पष्ट होने के लिये नीचे ७२ कोष्ठ का यन्त्र लिखते हैं।

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
दैवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्राजाप०	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

जहाँ दो तीन छन्दों की संख्या समान हो, जैसे कि दैवी त्रिष्टुप् और याजुषी गायत्री की तथा साम्नी गायत्री—याजुषी जगती एवं आसुरी बृहती की है, ऐसे स्थल पर यदि सन्देह हो कि

यहाँ कौनसा छन्द है तो "देवतादितश्च" पिङ्गल ७। २ के प्रमाणानुसार चतुर्थाध्याय के १०। ११। १२ खण्डों में वर्णन करेहुए गायत्री आदि छन्दों के देवताओं से निश्चय करे, और यदि वहाँ वर्णन करेहुए देवताओं से अन्य देवता होय तो जितने छन्द प्राप्त हों उन में से चाहे जौनसा छन्द मानलेय और जहां आचार्य ने स्वयं छन्द लिखे हैं वहां तो सन्देह करने की कोई आवश्यकता है ही नहीं। इसप्रकार एक अक्षर से लेकर एक सौ छः अक्षर तक के यजुः का छन्द पिङ्गल के अनुसार जानना, परन्तु इस से अधिक अक्षरों के "होता यक्षद्वनस्पतिमित्यादि,, (य० २१। ४६) मंत्रों में छन्द की कल्पना है ही नहीं।

अब ऋषिका स्वरूप लिखते हैं कि-"ऋषिर्दर्शनात्,,इस निरुक्त के प्रमाणानुसार जिस ने जिसमन्त्र को देखा वह उस का ऋषि हुआ, क्योंकि—"अजान्ह वै पृश्नींस्तपमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्या नर्षत्तहषयोभवन्,, इस प्रमाण के अनुसार वेद की प्राप्ति के निमित्त तप करनेवाले जिन पुरुषों को स्वयम्भू वेद प्राप्त हुआ, वह परमेश्वर के अनुग्रह से अतीन्द्रिय वेद का मानस दर्शन करने से ऋषि कहलाए, इस ही आशयको लेकर स्मृति में भी लिखा है कि-"युगांतेऽन्तर्हितान् वेदान्सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥,,

अब देवता का स्वरूप कहते हैं, कि—"देवता मंत्रांतर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजो वा,, अर्थात्—मंत्रों के मध्य में पढ़ेहुये हविर्भोक्ता वा सूक्तभोक्ता अग्नि—सोम—इन्द्र—विष्णु आदि देवता हैं। और "यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मंत्रो भवति (नि० ७। १) अर्थात् जो कामना करनेवाला ऋषि जिस देवता में आर्थपत्य (उस कार्यसाधनके स्वामित्व) की इच्छा करता हुआ स्तुति करता है वह उस मंत्र का देवता होता है।

प्रथम अध्याय से प्रारम्भ करके द्वितीय अध्याय की अट्ठाईस-

कण्डिका पर्यंत दर्शपौर्णमास यज्ञ(१)के मंत्र हैं, उनका परमेष्ठी प्रजापति ऋषि है, अथवा प्रजापति के पुत्र देवता ऋषि हैं। उव्वट भाष्य में ऐसा लिखा है कि—' परमेष्ठिनः प्राजापत्यस्यार्षं देवानां वा प्राजापत्यानाम्., अर्थात्—इन दर्शपौर्णमास मंत्रों का प्राजापत्य (प्रजापति का अपत्य) परमेष्ठी ऋषि है अथवा प्रजापति के पुत्र देवता ऋषि हैं। ऐसा ही ब्राह्मण में भी लिखा है कि–"परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्दर्शपौर्णमासाविति,, तथा "ते देवा अकामयन्त,, त्युपक्रम्य "ततएतंहविर्यज्ञं ददृशुर्यद्दर्शपौर्णमासाविति,,॥ इस कारण आगे हम दर्शपौर्णमास मंत्रों का महीधर के अनुसार 'प्रजापति परमेष्ठी ऋषि न लिखकर श्रुति प्रमाणयुक्त होने के कारण उव्वट के अनुसार दर्शपौर्णमास मंत्रों का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि लिखेंगे॥

द्वितीय अध्याय के अन्त की छः कण्डिका पितृयज्ञ के मन्त्र हैं, उनका प्रजापति ऋषि है। प्रथम अध्याय में सब मन्त्र यजु हैं एक " पुरा क्रूरस्य " इत्यादि मन्त्र ऋक् है, यजुः मन्त्रों का पिङ्गल के अनुसार छन्द जानना, अधिक विस्तार होजाने के कारण यहां नहीं कहेंगे। ऋचों के छन्द कहेंगे।

यहां (प्रथम अध्याय में)प्रथम कण्डिका में पांच मन्त्र हैं,दो तीन २ अक्षर के, तीसरा चार अक्षर का, चौथा बासठ अक्षर का और पाँचवां नौ अक्षर का है।

प्रकृतिरूप होने के कारण प्रथम दर्शपौर्णमास के मन्त्र कहते हैं। विधि दो प्रकार की होती हैं, एक प्रकृतिसंज्ञक,दूसरी विकृतिसंज्ञक जहां सकल अङ्गों का उपदेश होता है अर्थात् जिन के मन्त्रों में सकल विधान वर्णित होता है वह प्रकृति कहाती हैं और जहां किसी विशेष अङ्गमात्र का उपदेश होता है एवं शेष अङ्ग(विधान)

(१)अमावास्या में जब कि—चन्द्रमा सूर्य का परस्पर दर्शन हो, जो याग किया जाता है उसको दर्श कहते हैं, और पूर्णिमा के दिन जो इष्टि की जाती है उस को पौर्णमासयाग कहते हैं,इस विषय में यह श्रुति है कि—"दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत॥.,

प्रकृति मन्त्रों से जाने जाते हैं वह विकृति कहाती है। प्रकृति तीन प्रकारकी है, अग्निहोत्र, इष्टि और सोम।

यद्यपि दर्शपौर्णमास यज्ञ में कृताधान (अग्निहोत्र करनेवाले) को ही अधिकार है, इसकारण प्रथम अग्न्याधान (अग्निस्थापना) के मन्त्र कहने चाहिये थे परन्तु अग्न्याधान में पवमान नामक इष्टि करनी पड़ती है, अतः पवमान इष्टियों के विना अग्न्याध्यान होही नहीं सक्ता और पवमान इष्टि दर्श पौर्णमासकी विकृति हैं अतः दर्शपौर्णमास के ज्ञान के बिना पवमानेष्टि नहीं होसक्ती इसकारण से, तथा सोमयाग में भी दीक्षणीय प्रायणीय आदि के विषै दर्शपौर्णमास की अपेक्षा होती है इसकारण भी प्रथम दर्शपौर्णमास मन्त्रों का कथन ही उचित है यह दर्शपौर्णमास के मन्त्र आगे लिखे 'इषे त्वा' इत्यादि हैं—

हरिः ओ३म्। इषे त्वा। ऊर्जे त्वा वायव स्थ। देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशं सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः। यजमानस्य पशून् पाहि॥ १॥

भावार्थः-मूल में जो "इषे त्वा" इत्यादि लिखा है, वह एक काण्डका है और उस कण्डिका में पाँच मन्त्र हैं, प्रथम मन्त्र के दोपद और तीन अक्षर हैं, उसका दैवी अनुष्टुप् छन्द, शाखा देवता और पलाश की शाखा का छेदन करने में विनियोग है, यहाँ शङ्का होती है कि-शाखा तो अचेतन (जड़) है वह देवता कैसे होसक्ती है? इसका उत्तर यह है कि-यद्यपि यह शाखा उखा आदि अचेतन हैं परन्तु इनके अभिमानी देवताओं का सान्निध्य होने से इनमें देवतात्व माना है, भगवान् वेदव्यासजी ने भी वेदान्तदर्शन में "अभिमानिव्यपदेशस्तु अ० २ पा० १ सूत्र ५" इस सूत्र के द्वारा यही वर्णन किया है, तथा "मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्" अर्थात् मृत्ति का बोली, जल बोले यह श्रुति अभिमानी

देवताओं के सान्निध्य से मूर्त्ति का आदि में देवतात्व मानने से ही सङ्गत होती है, यही कारण है कि– शास्त्र के तत्त्वको जानने वाले विद्वान् अचेतन भी शालिग्राम की शिला में शास्त्रदृष्टि से विष्णु भगवान् की सन्निधि मानतेहुए विष्णु भगवान् को ही सम्बोधन करके षोडशोपचारके द्वारा पूजन करतेहैं। ऊपर उत्थानिका में लिख आये हैं कि–"इषेत्वा" इत्यादि दर्शपौर्णमास के मन्त्र हैं उसका ही प्रसङ्ग उठाते हैं कि–प्रतिपदा में दर्शयाग को करने की इच्छा करनेवाला पुरुष, अमावस्या के दिन प्रातःकाल के समय अग्निहोत्र करके दर्शयाग के निमित्त, कात्यायन मुनि प्रणीत श्रौतसूत्र अ० २ का० १ सू० ३ में कहेहुए "अग्निर्वर्चे इत्यादि" मन्त्र के द्वारा अग्नियों में समिदाधानरूप अन्वाधान करके वत्सापाकरण (गौओं के समीप से बछड़ों को हटाना) करै, दर्शयाग में तीन् हवि होते हैं–आठ कपालों (इस प्रकार के पात्र) में पकाया हुवा अग्नि है देवता जिसका ऐसा दधि, इंद्र है देवता जिसका ऐसा दधि, तथा इंद्र है देवता जिसका ऐसा पय (दुग्ध)। इस दधि दुग्धादिरूप हवि की प्रतिपदा के दिन हवन करने की आवश्यकता होती है इस कारण दधि बनाने के लिये अमावस्या की रात्रि में गौओं को दुहे, तिस दुहने के निमित्त अमावास्या के दिन प्रातःकाल के समय प्रतिदिन के नियमानुसार गौओं के लौकिक दुहने के अनन्तर अपनी माताओं के साथ चरतेहुए बछड़ों को पलाशकी शाखा से अलग करै, इसकारण पलाशकी शाखाका छेदन कियाजाता है। शतपथ ब्राह्मण १।७।१।८।२।१० में लिखा है कि–जब गायत्री पक्षी का रूप धारण करके स्वर्ग से सोमवल्ली लाई थी, उससमय तिस सोमवल्लीका पत्र (पत्ता) भूमि पर गिरकर उगआया तिस से पलाशहुआ इसकारण शास्त्रों में पलाशकी प्रशंसा करी है और उसको ब्रह्मत्व कहा है, अतएव बछड़ों को हटाने के लिये पलाशकी शाखा का तथा शमी (१) की शाखा

(१) पर्णशाखां शमीशाखां वा (कात्या०) अस्यार्थः पालाशशाखा शमीशाखा वात्र विकल्पिता।

का भी छेदन करना कहा है,तिस छेदन करने के समय प्रथम का मन्त्र "इषेत्वा" पढ़ना चाहिये इसका अर्थ यह है कि-(शाखे) हे पलाशकी शाखे ! अथवा शमी की शाखे (त्वा) तुझको। (इषे) वृष्टि के निमित्त (छिनद्मि) छेदन करता हूँ (क्योंकि-शाखा से बछड़ों को पृथक् कियाजायगा तब गौओं का दुग्ध दुहकर दधि होगा—तिस दधि का हवन करने से "अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः" इस श्रुति के अनुसार वर्षा होती है। इस कण्डिका में दो पद और तीन अक्षर का दूसरा मन्त्र है "ऊर्जे त्वा" इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि दैवी अनुष्टुप् छन्द, शाखा देवता माध्यन्दिनी शाखा वालों के मत में इस मन्त्र का भी शाखा के छेदन में विनियोग है अर्थात् इन के यहां शाखाछेदन के मन्त्र में विकल्प है चाहे इस द्वितीय मन्त्र से शाखाछेदन करै और चाहे प्रथम मन्त्र से शाखा छेदन करै, परन्तु काण्व शाखावालों के मत में इस द्वितीय मन्त्रका शाखा के सन्नमन में विनियोग है अर्थात् काण्व शाखावाले शाखा छेदन प्रथममन्त्र सेही करते हैं और इस दूसरे मन्त्र से शाखाका सन्नमन (शाखा में लगी हुई धूलि आदि को दूर करके शुद्ध और सूधी) करते हैं(१)इस द्वितीय मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे शाखे ! मैं (ऊर्जे) सकल मनुष्य पशु आदिकों को पान आदि के द्वारा दृढ़ शरीर करनेवाले अथवा चेष्टारूप जीवन देनेवाले वर्षा के जलरूप रसकी प्राप्तिके लिये (त्वा) तुझको। (छिनद्मि) (माध्यन्दिनी शाखावालों के मतमें) छेदन (काण्व शाखावालों के मतमें) शोधन करता हूँ। इस सब का तात्पर्य यह है कि—अध्वर्यु (यजुर्वेदियों को यज्ञ करानेवाला आचार्य) इन दोनों

(१)इषेत्वोर्जे त्वेति वा छिनद्मि इति वोभयोः साकांक्षत्वात्सन्नमयामीति चोत्तर इति कात्यायनोक्तेः। अस्यार्थः-शाखाच्छेदने इषेत्वोर्जेत्वेति द्वौ मन्त्रौ विकल्पितौ तयोः क्रियापदाकांक्षत्वादर्थावबोधाय छिनद्मि इति पदमध्याहर्त्तव्यमित्येकः पक्षः। इषेत्वेति छेदनार्थो मन्त्रः। ऊर्जेत्वेति सन्नमनार्थः। सन्नमनं ऋजूकरणं शाखालग्नधूल्याद्यपनयनञ्च। इदं पक्षान्तरमित्यर्थः।

मन्त्रों को पढ़कर शाखाभिमानी देवता से प्रार्थना करता है कि-इस वृक्षकी शाखा का छेदन और शोधन जो कियाजाता है तिससे यज्ञ के द्वारा वर्षा हो और वर्षा के द्वारा हमारे इस यजमान को अन्न तथा बलकारक घृत दुग्धादि प्राप्त हो ।

दो पद और चार अक्षर का तीसरा मन्त्र है " वायवःस्थ " इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द, वायु देवता और गौओं के समीप से बछड़ों को हटाने में इसका विनियोग है । इस मन्त्र को पढ़कर गौओं को दुहने के निमित्त तिस पलाश शाखा के द्वारा बछड़ों को गौओं से अलग करके हटादेय । इस मन्त्रका अर्थ यह है कि-(वत्साः) हे बछड़ो ! तुम, (वायवः) गमन करनेवाले होजाओ, क्योंकि बिना तुम्हारे अलग हुए सायंकाल को यज्ञ के निमित्त दोहना नहीं होसकेगा । अथवा ऐसा अर्थ समझना कि—हे बछड़ो तुम वायुरूप [वायु की समान] हो, जिस प्रकार वायु पादप्रक्षालन [चरण धोना] निष्ठीवन [थूकना] आदि से दोषयुक्त हुई पृथ्वी को सुखाकर पवित्र करता है तिसी प्रकार तुम लीपने के निमित्त गोमय (गोबर) देकर भूमि को पवित्र करते हो । अथवा इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि—जिस प्रकार अपने निवास करने के निमित्त मनुष्यों को गृह आदि बनाने की सामर्थ्य है तिस प्रकारपशुओं को नहीं है अतः पशु निरावरण (बिना छाये) अन्तरिक्ष में विचरते हैं तिस अन्तरिक्ष का अधिपति वायु अपने अवयवों (अङ्गों) की समान पशुओं का पालन करता है अतः हे बछड़ो ! हम तुमको गौओं से पृथक् करके चरते हुए तुम्हारी रक्षा करने के निमित्त वायु देवता को समर्पण करते हैं । अथवा यह अर्थ जानना कि-हे बछड़ो तुम वायुरूप होवो अर्थात् अब गौओं से पृथक् हुए तुम दिन में तृण भक्षण के निमित्त जहाँ तहाँ वन में विचरकर सायंकाल के समय वायु की समान वेग से लौटकर यजमान (अपने स्वामी) के घर को आओ ।

बासठ अक्षर का तीसरा मन्त्र है, इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, ब्राह्मी पङ्क्ति छन्द,इन्द्र देवता और पलाशशाखा से गौओं का उपस्पर्शन करने में विनियोग है। पूर्वोक्त मन्त्र से पृथक् करेहुए वछड़ों की माता जो गौएं हैं, उनमें से एक गौ को पृथक् करके "देवोव इत्यादि,, इस मंत्र को पढताहुआ पलाश से स्पर्श करे, ऐसा करने से उसगौ का दधिरूप हवि इन्द्र देवता का होता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि-(गावः) हे गौओं! (सविता) सब का प्रेरक (देवः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर (वः) तुमको,(श्रेष्ठतमाय) यज्ञरूप श्रेष्ठतम* (कर्मणे) कर्म के निमित्त, (मार्पयतु) बहुत से तृणोंवाले वन में पहुँचावे (जिस से तुम यथेष्ट तृणभक्षण करके बहुत से दुग्धदधिरूप हवि को उत्पन्न करतीहुई यज्ञ में सहायक होवो)।(अघ्न्याः) हे अवध्य गौओं! [यज्ञ में] (इन्द्राय) इन्द्र के निमित्त (भागम्) हवि बनाने के अर्थ तिस हवि रूप दधि के हेतुभूत दुग्ध को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ, (प्रजावतीः)जीवित सन्तति वाली (अनमीवाः) कृमिपीड़ा आदि क्षुद्र रोग रहित (अयक्ष्माः)राजयक्ष्मा आदि प्रबल रोगरहित (वः) तुमको, (स्तेनः) चोर पुरुष, (अपहर्तुम्) चुराने को, (मा) मत,(अघशंसः) चाण्डाल वा व्याघ्रादि हिंसकजीव(निहन्तुम्) वध करने को (मा)मत, (ईशत) समर्थ हो, (अस्मिन्) इस (गोपतौ) गौओं के स्वामी यजमान के समीप, (ध्रुवाः) निरन्तर रहनेवालीं, (बह्वीः) बहुतसी, (स्यात) होवो।

नौ अक्षर का पांचवां मंत्र है"यजमानस्य पशून्पाहि,,इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि,याजुषी बृहती छन्द, शाखा देवता और शाखा के उपगूहन (ग्रहण) करने में विनियोग है। यजमान के अग्न्यागार (आहवनीय वा गार्हपत्य अग्नि के स्थान) के

* कर्म चार प्रकार के होते हैं, अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम—लोक विरुद्ध हिंसा चोरी आदि अप्रशस्त कर्म हैं, लोक में श्लाघनीय कुटुम्बपालन आदि प्रशस्त कर्म हैं, स्मृतियों में कहे हुए वापी कूप तड़ागादि श्रेष्ठ कर्म हैं और वेदोक्त यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म कहाते हैं,ऐसाही श्रुति में भी कहा है कि—"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म,,

आगे शाखा को उपगूहन करता हुआ "यजमानस्य पशून्पाहि" इस मन्त्र को पढ़े । इस मंत्र का अर्थ यह है कि–(शाखे) हे शाखाभिमानी देवते! (यजमानस्य) यजमान के (पशून्)पशुओं [गौओं के बछड़ों] को,(पाहि) व्याघ्र चोर आदि से रक्षाकर [जिससे कि सायंकाल को आनन्दपूर्वक यजमान के घरको लौट कर आवें और गौओं के दुहने में सहायक हों तथा यज्ञ के निमित्त हवि सम्पादित हो] ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि । परमेण धाम्ना दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ २ ॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं–प्रथम "वसोरित्यादि" मंत्र का प्रजापति का अपत्य परमेष्ठी ऋषि,याजुषी उष्णिक् छंद,वायु देवता और पलाशशाखा में पवित्र बांधने में विनियोग है।दो या तीन कुशा को पवित्र कहते हैं, पलाश की शाखा में वह कुशाओं का पवित्र बांधे, तिस पवित्र के बांधते में इस प्रथम मंत्र को पढ़े, " वसोः पवित्रमसि " इसका अर्थ यह है कि–(पवित्र) हे कुशाओं के पवित्र! (वसोः)इन्द्र देवता के भागरूप दुग्ध को (पवित्रम्) पवित्र करने वाले (असि) हो ।

"द्यौरसि पृथिव्यसि,,यह दूसरा मंत्र है तिसका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी जगती छंद, उखा देवता और दुग्ध धारणार्थ उखाग्रहण में इसका विनियोग है। पलाशशाखामें पवित्र बांधने के अनन्तर जिस स्थालीमें दुग्ध रखना हो उस को ग्रहण करते समय द्यौरसीत्यादि मंत्र को पढ़े;इसका अर्थ यह है कि–(स्थालि) हे स्थालि! अर्थात् हांडी (द्यौः) द्युलोक के अवयवभूत जल से बनी हुई, (असि)है इस कारण द्युलोक रूप है, (पृथिवी) पृथिवी में से ली हुई मृत्तिका के द्वारा बनीहुई (असि) है, अतः पृथिवी रूप है ।

"मातरिश्वनेत्यादि" तीसरा मन्त्र है, इसका परमेष्ठी प्राजापत्य

ऋषि प्रजापत्या जगती छन्द, उखा देवता और दुग्ध की हांडी को अग्निपर चढ़ाने में इसका विनियोग है, द्वितीय मंत्र से हांडी में दुग्ध करने के अनन्तर उस दूध की हांडी को गार्हपत्य अग्नि में से अङ्गारों को निकाल, उस गार्हपत्य के उत्तर में बिछाय उनपर चढा देय उस समय "मातरिश्वेत्यादि" यह तीसरा मंत्र पढ़ाजाता है। इस मंत्रका अर्थ यह है कि-(उखे) हे उखे! अर्थात् हांडी तुम्हारे भीतर अन्तरिक्ष शून्य स्थान में वायु का सञ्चार होता है अतः तुम (मातरिश्वनः) वायु की (घर्मः) दीपक कहिए अभिव्यञ्जक वा प्रकाशक (असि) हो, इसकारण अन्तरिक्ष लोक रूप हो, दूसरे मंत्र में द्युलोकरूप पृथिवी लोकरूप स्थाली को कहा और इस मंत्र में अन्तरिक्ष लोकरूप कहा, इस प्रकार तीनों लोकों के धारण करने से (विश्वधाः) विश्व को धारण करने में समर्थ (असि) हो, (परमेण) बहुत दुग्ध को धारण करने की सामर्थ्यरूप उत्तम (धाम्ना) तेज करके (दृंहस्व) दृढ़ हो अर्थात् तेज का अधिष्ठातृ देवता तुमको दृढ करे, नहीं तो टूटजाने से दुग्ध निकलजायगा, (ह्वाः) टेढी (मा) मत होवो, जिस से कि (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान (मा ह्वार्षीत्) कुटिल [तुझ में स्थितदुग्ध के निकलजाने से यज्ञानुष्ठान में विघ्नवाला] नहो (यह मैं यज्ञ पुरुष परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ) ॥ २॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा। कामधुक्षः ॥ ३॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्" का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः छंद, वायु देवता और उखा पर पवित्र को स्थापन करने में विनियोग है। उखा [हांडी] के मुखपर कुशों के पवित्र को इस प्रकार रक्खै, कि जिस में पवित्रे के कुशाओं का अग्रभाग पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर को रहै इस प्रकार पवित्रे को रखते समय

यह मंत्र पढाजाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि (शाखापवित्र) हे शाखा में बंधे हुए पवित्र (वसोः) इंद्रदेवता के निवास के हेतु दुग्ध का (त्वम्) तू (शतधारम्) सैंकडों धारावाला (सहस्रधारम्) सहस्रों धारावाला। (पवित्रम्) शोधक। (असि) है।

दूसरे "देवस्त्वा सविता पुनातु वसोःपवित्रेण शतधारेण सुप्वा" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप्छन्द, पयो देवता और दुग्ध के पवित्र करने में विनियोग है। दुहने के अनन्तर हांडी में दुग्ध डालते समय यह मन्त्र पढाजाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे क्षीर! (सविता) सबका प्रेरक (देवः) द्योतमान परमात्मा (शतधारेण) वस्त्र सम्बन्धी शतधार, (सुप्वा) अच्छे शोधक (पवित्रेण) पवित्रे से (त्वा) तुझ को (पुनातु) पवित्र [निर्दोष] करै॥

तीसरे "कामधुक्षः" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छंद, प्रश्न देवता और गोदोहन के प्रश्न में विनियोग है। अध्वर्यु इस मंत्रको पढकर दुहनेवाले से प्रश्न करै। इसका मंत्र का अर्थ यह है अध्वर्यु दुहनेवाले से बूझता है कि—हे दोग्धः! तुम ने इन विद्यमान गौओं में से (काम्) कौनसी को (अधुक्षः) दुहा है॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा। विश्वधायाः। इन्द्रस्य त्वा भागꣳसोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष॥४॥

इस कण्डिका में पांच मंत्र हैं, प्रथम "सा विश्वायुः" मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द, गौ देवता और प्रथम प्रश्न के उत्तर में विनियोग है। दोग्धा जब उत्तर देय कि—मैंने इस गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मंत्र को पढै। इसका अर्थ यह है अध्वर्यु कहता है कि हे दोग्धः! जिस गौ को तुम ने दुहा और मैंने बूझा (सा) वह गौ (विश्वायुः) विश्वायु शब्द से कहने योग्य है अर्थात् परमेश्वर से प्रार्थना है कि—यह गौ यजमानको पूर्ण आयु देने वाली हो।

दूसरे "सा विश्वकर्मा" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि,

दैवी पंक्ति छन्द गौ देवता और द्वितीय प्रश्न के उत्तर में विनियोग है। कात्यायन महर्षि ने लिखा है कि—जिस प्रकार प्रथम गौ के दुहने का भी प्रश्न करे, इस कारण, दूसरी गौ के दुहने पर दोग्धा से अध्वर्यु प्रश्न करे कि "कामधुक्षः" कौनसी गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मंत्र को पढ़े। इसका अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस दूसरी गौ को तुमने दुहा और मैंने बूझा (सा) वह, (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा शब्द से कहने योग्य है अर्थात् वह गौ जगत् की स्थिति की कारण है क्योंकि यज्ञों में हवि की साधन होकर सबकी कामनाओं को सिद्ध करती है सो हमारे इस यजमान की कामना को सिद्ध करे।

तीसरे "सा विश्वधायाः" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी पङ्क्ति छंद, गौ देवता और तृतीय प्रश्न के उत्तर में विनियोग है। तृतीय वार किस गौ को दुहा, अध्वर्यु के इस प्रकार प्रश्न करने पर जब दोग्धा कहे कि—मैंने इस गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मंत्र को पढ़े। इस का अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः! जिस तीसरी गौ को तुमनें दुहा और मैंने बूझा, (सा) वह (विश्वधायाः) विश्वधाया शब्द से कहनेयोग्य है क्योंकि क्षीर दधि आदिरूप हवि देकर सकल देवताओं को पुष्ट करती है सो परमेश्वर से प्रार्थना है कि—इस यज्ञ में भी इन्द्रादि देवताओं को दधिदुग्धादिरूप हवि देकर हमारे यजमान की कामना को सिद्ध करावे॥

चौथे "इन्द्रस्य त्वा भाग ५ सोमेनातनच्मि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्यऋषि, याजुषी जगती छन्द, इन्द्र देवता और दधिको जमाने में विनियोग है। गरम करेहुए दुग्ध को अग्निपर से उतार कर कुछ एक गरम रहनेपर उसमें प्रातःकाल के होम से बचेहुए दधिको डालकर दधि बनावे उस समय इस मन्त्र को पढ़े। इसका अर्थ यह है कि—हे क्षीर ! (इन्द्रस्य) इन्द्र के (भागम्) भाग रूप (त्वा) तुझको, (सोमेन) सोमवल्ली के रसरूप मानेहुए

हवनसे बचेहुए दधि के द्वारा, (आतनच्मि) कठिन करता हूँ कहिए जमाता हूँ,अर्थात् परमेश्वर की कृपा से यह दधि जमै और उससे देवता को याग प्राप्त होकर यजमान की अभीष्टसिद्धि हो॥

पाँचवें "विष्णो हव्यं रक्ष,, मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छंद, पयो देवता और विष्णु की प्रार्थना में विनियोग है। उस दुग्ध की हाँडी को जल भरेहुए किसी,मृत्तिका का न हो, ऐसे पात्रसे ढके और उससमय इस मंत्र को पढ़े। इसका अर्थ यह है कि-(विष्णो) हेयज्ञपुरुष (हव्यम्)हवि को(रक्ष) रक्षा करो, [क्योंकि-जगत् में रक्षा करने का भार आप के ही ऊपर है अर्थात् आप रक्षा के अभिमानी देवता हैं] ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतञ्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, प्रथम "अग्ने व्रतञ्चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; उष्णिक् छन्द,अग्नि देवता और यज्ञानुष्ठान की प्रतिज्ञा में इसका विनियोग है यजमान आहवनीय अग्नि के समीप पूर्व को मुखकर अग्नि को, देखता हुआ दाहिने हाथ में जल लेकर इस मंत्र को पढ़े। इसका अर्थ यह है कि (व्रतपते) हे इस कियेजाते हुए कर्म के पालक [विष्णुभगवान् के अंशयुक्त] अग्निदेव ! (व्रतम्)व्रत को, (चरिष्यामि) करूंगा, (तत्) उस को,(शकेयम्)करसकूं (मे) मेरे,(तत्)उसव्रत को,(राध्यताम्)सिद्ध करो। अर्थात् तुम्हारा भरोसा करके मैं इस कर्म को करता हूं, आपके अनुग्रह से मैं इस कर्म के कर ने को समर्थ होऊं, मेरा यह कर्म निर्विघ्नतापूर्वक फलकी प्राप्ति पर्यन्त सिद्ध हो।

"इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि"मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि,साम्नी गायत्री छंद,अग्नि देवता और सत्यप्राप्ति की प्रार्थना में विनियोग है। आहवनीय अग्नि के समीप पूर्वोक्त प्रकार से इस मंत्र को भी पढ़े। इसका अर्थ यह है कि-हे अग्निदेव ! (अहम्) मैं यजमान,

(अनृत त्) अनृत कहिये स्वप्न में देखेहुए हस्ती आदि की समान शीघ्रही नाशको प्राप्त होनेवाले मनुष्यशरीर से (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य कहिये बहुत काल पर्यन्त स्थित रहनेवाले देवशरीर को(उपैमि) प्राप्तहोता हूं ऐसा अर्थ करने में इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्त्तत इति(१।१।१।४)यह शतपथ की श्रुति प्रमाण है। अथवा लोकप्रसिद्ध ही सत्य अनृत को मानकर ऐसा अर्थ करना चाहिये कि–हे अग्निदेव!(अहम्)मैं (अनृतात्) मिथ्याभाषण से पृथक् होकर (इदम्)इस (सत्यम्) सत्य भाषण को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ। "नानृतं वदेत्" अर्थात् मिथ्याभाषण न करै, इस प्रमाण के अनुसार सत्य भाषण कर्म का अङ्ग है अतः कर्मानुष्ठान के समय सर्व प्रकारसे सत्यभाषण का पालन करना चाहिये ॥५॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति
तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं-प्रथम "कस्त्वा-इत्यादि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप्छन्द, प्रजापति देवता और जलप्रणयन तथा आहवनीय अग्नि के उत्तर प्रदेश के विषैं धारण में विनियोग है। पञ्चम कण्डिका में कही हुई रीति से सत्यभाषणादि रूप प्रतिज्ञा करके यज्ञ के आरम्भ में अपने कर्तृत्व (मैं कर्त्ता हूं, इस अभिमान) को त्यागकर प्रजापति को यज्ञ का कर्त्ता मान अतएव तदनन्तर ब्रह्मा का वरण करके जलों का प्रणयन करै। यजमान ब्रह्मा से प्रश्न करै कि—ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि—हे ब्रह्मन् ! जलों का प्रणयन करूं। तब ब्रह्मा "(का० २।२।८ प्रणययज्ञं देवता वर्द्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानोऽस्तु सप्त ऋषीणांꣳसुकृतां यत्र लोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानञ्च धेहि) इस प्रकार धीरे २ पढ कर "ॐ प्रणय" इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहे कि—जिस में अध्वर्यु सुनलेय फिर अध्वर्यु चमस(काष्ठ के बने हुए यज्ञ के पात्र विशेष) को लेकर आहवनीय अग्नि की उत्तर दिशा में वेदी के बाहर कुशों पर स्थापन करै उस समय इस मंत्र को पढ़े । इस मंत्र

का अर्थ यह है कि हे प्रणीता जल को धारण करने वाले पात्र! (त्वा) तुझको (कः) कौन पुरुष, (युनक्ति) आहवनीय अग्नि के उत्तर भाग में स्थापन करता है, यह प्रश्न है, जो सकल वेदों में जगत् का निर्वाह करने वाला प्रसिद्ध है, वह प्रजापति परमेश्वर ही हे पात्र! तुझ को स्थापन करता है यह उत्तर हुआ। (कस्मै) किस प्रयोजन के लिये (त्वा) तुझको (युनक्ति) स्थापन करता है? यह प्रश्न है, (तस्मै) तिस प्रजापति परमेश्वर की प्रसन्नता के अर्थ (त्वा) तुझको (युनक्ति) स्थापन करता है, (इसका ही निष्कर्ष श्रीकृष्णभगवान् ने गीता में अर्जुन से कहा है—"ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्) ॥

दूसरे "कर्मणे इत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, स्रुक् और शूर्पाभिमानी देवता तथा शूर्प एवं अग्निहोत्रहवणी के ग्रहण में विनियोग है। कुशों का परिस्तरण कर दो दो पात्रों को रखकर शूर्प और अग्निहोत्रहवणी को ग्रहण करे, उससमय इस मन्त्र को पढ़े। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे शूर्प! हे अग्निहोत्रकी हवणि! मैं (कर्मणे) यज्ञ सम्बन्धी कर्म के निमित्त (वाम्) तुम को, ग्रहण करता हूँ तथा (वेषाय) सूचित कर्म्मोंमें व्याप्ति के अर्थ (वाम्) तुम दोनों को, ग्रहण करता हूँ शकट [गाड़ी] में स्थित धान्यों को हवि के निमित्त अलग करना तथा प्रोक्षण करने के निमित्त जलको धारण करना इत्यादि अग्निहोत्रहवणी [काष्ठ के पात्रविशेष] के व्यापार हैं। धान्यों का फटकना धारण करना और उलूखलमें डालना फिर निकालना इत्यादि शूर्प के व्यापार हैं) ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः। निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं प्रथम "प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा

अरातयः "मन्त्र और द्वितीय "निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी बृहती छन्द, रक्षोघ्न देवता और अग्निहोत्रहवणी तथा शूर्प को तपाकर राक्षसों के जलाने में विनियोग है। इन दोनो मन्त्रों में से किसी एक को पढ़ताहुआ अग्निहोत्रहवणी और शूर्प को गार्हपत्य अग्नि में तपावै इन दोनो मन्त्रों का अर्थ यह है कि–अग्निहोत्रहवणी और सूर्प के तपाने से इन में अपनी माया के बल से स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (प्रत्युष्टम्)एक एक करके दग्धहुई, (अरातयः) देवताओं को हविर्देन में प्रतिबन्धक होकर यज्ञ में विघ्न करने वाले (प्रत्युष्टाः) दग्ध हुए। अपनी माया के प्रभाव से शूर्प आदि के विषैं गुप्त रूप से स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (निष्टप्तम्) निःशेषरूप से सन्तप्त हुई, (अरातयः) यज्ञसिद्धि में विघ्नकरने वाले (निष्टप्ताः) निःशेषरूप से सन्तप्त हुए।

तीसरे "उर्वन्तरिक्षमन्वेमि" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, रक्षोघ्न देवता अवकाश में चलने में विनियोग है। धान्यों की गाड़ी के समीप जाताहुआ इस मन्त्र को पढ़े। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(उरु) विस्तारयुक्त (अन्तरिक्षम्) अवकाश को अन्वेमि पाकर चलता हूँ अर्थात् जाने में मुझको विघ्नकर्त्ता प्रतिबन्धक न हों इसलिये यज्ञपुरुष परमेश्वर चलते समय मेरे दोनो ओर के राक्षसों को दूर करें॥ ७॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति
तं धूर्व यं वयं धूर्वामः देवानामसि वह्नितमꣳ
सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, प्रथम "धूरसीत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, अग्नि देवता और अग्नि की प्रार्थना में विनियोग है। गार्हपत्य अग्नि के पश्चात् भाग में स्थित सुन्दर अङ्गों वाला शकट[छकड़ा]होता है उसके धुर [वृषभ] जोतने के(स्थान) को स्पर्श करता हुआ "धूरसीत्यादि" मन्त्र

को पढ़े, वृषभ को जोतने के स्थान में शास्त्र में वर्णित एक हिंसक अग्नि है, उसकी प्रार्थना करने का यह मन्त्र है। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे अग्ने! तुम (धूः) हिंसक [दग्ध करनेवाले] (असि) हो, अतः (धूर्वन्तम्) हिंसा करने वाले पाप को (धूर्व) विनष्ट करो, (यः) जो राक्षसादि, यज्ञ में विघ्न करके (अस्मान्) हम को (धूर्वति) हिंसा करने को उद्यत होता है, (तम्) उसको एवं जिस आलस्यादि रूप वैरी का (वयम्) हम (धूर्वामः) हनन करना चाहते हैं (तम्) उसको (धूर्व) विनष्ट करो॥

दूसरे "देवानामसीत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, शकटाभिमानी देवता और शकट के उपस्तम्भन नामक काष्ठ के पश्चाद्भाग में ईषा का स्पर्श करने में विनियोग है। गाड़ी के दीर्घ काष्ठ ईषा का अग्रभाग जिस में कि युग (जुआ) बाँधा जाता है भूमि में स्पर्श न हो इस कारण इस के रोकने के निमित्त एक काष्ठ लगाया जाता है उसको उपस्तम्भ कहते हैं, तिस उपस्तम्भ के पश्चाद्भाग में तिस ईषा का स्पर्श करता हुआ इस मन्त्र को पढ़े। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकटाभिमानी देव! (त्वम्) तुम (देवानाम्) देवताओं के (वह्नितमम्) अतिशय करके व्रीहीरूप हवि के पहुँचाने वाले (सस्नितमम्) अत्यन्त शुद्ध (पप्रितमम्) व्रीहियों करके अत्यन्त पूर्ण (जुष्टतमम्) देवताओं के अत्यन्त प्रिय (देवहूतमम्) देवताओं का अतिशय करके आवाहन करने वाले (असि) हो (तुम मेरे ऊपर भी अनुग्रह करके अपनी सकल शक्तियों के द्वारा मेरे यज्ञ को पूर्ण करो)॥ ८॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व माह्वार्मा ते
यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमताम्। उरु
वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च॥ ९॥

इस कण्डिका में "अह्रुत यहाँ से लेकर माह्वार्षीत् पर्यन्त जो मन्त्र है वह पूर्व की अष्टम कण्डिका के अन्तिम मन्त्र का शेष है। शेष नवम कण्डिका में चार मन्त्र हैं—प्रथम "विष्णुस्त्वा-

क्रमताम् " मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, शकटाभिमानी देवता और शकटपर आरोहण करने में विनियोग है। दूसरे "उरु वाताय " मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि; दैवी पङ्क्ति छन्द, शकटाभिमानी देवता और व्रीहियों के अवलोकन में विनियोग है। तीसरे " अपहत ᳪ रक्षः " मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी, गायत्री छन्द, रक्षो देवता और तृणादि के अपाकरण में विनियोग है। चौथे " यच्छन्तां पञ्च " मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी पङ्क्ति छन्द, हवि देवता और हवि ग्रहण करने में विनियोग है।

भाषार्थः—अहुतमित्यादि प्रथम मन्त्र के शेष का अर्थ यह है कि— हे शकट के अभिमानी देव! तुम (अहुतम्) अकुटिल हो [अतः चढ़ते समय टूटने का भय नहीं है] (हविर्धानम्) व्रीहिरूप हवि के धारण करनेवाले (असि) हो, (दृंहस्व) दृढ होवो (मा) मत, (ह्वाः) कुटिल होवो, जिससे कि—(ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान, (माह्वार्षीत्) यज्ञक्रिया में विघ्न रूप कुटिलतायुक्त न हो॥

विष्णुरित्यादि प्रथम मन्त्र को पढ़कर शकटपर आरोहण किया जाता है तिस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे शकट (विष्णुः) सर्वव्यापी यज्ञपुरुष विष्णु भगवान् (त्वा) तुम्हारे ऊपर (क्रमताम्) चढ़ें, [इस प्रकार कर्म करने में अपनी निरभिमानिता दिखाई]॥

उरु इत्यादि द्वितीय मन्त्र को पढ़कर शकट में के व्रीहियों को देखाजाता है, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकट! अपने में स्थित व्रीहियों के विषें (वाताय) वायु का सञ्चार होने के निमित्त, (उरु) विस्तीर्ण हो [इस मन्त्र से व्रीहिरूप हवि को वायुरूप प्राण का प्रवेश करके सप्राण कियाजाता है]

अपहतमित्यादि तीसरे मन्त्र को पढ़कर व्रीहियों के ऊपर से तृण आदि अलग कियेजाते हैं, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि— (रक्षः) राक्षस [यज्ञ विघातक तृणादि] (अपहतम्) दूरहुआ॥

यच्छेत्यादि चौथे मन्त्र को पढ़कर शकट में से मुट्ठी भरकर

व्रीहि लियेजाते हैं, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि-(पञ्च) पांच अङ्गुलियों की बँधीहुई मुट्ठी (यच्छन्ताम्) व्रीहिरूप हवि को ग्रहण करें ॥ ९ ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॑ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। अ॒ग्नये॑ जुष्टं॑ गृह्णाम्य॒ग्नीषोमा॑भ्यां॒ जुष्टं॑ गृह्णामि ॥ १० ॥

इस दशवीं कण्डिका में तीन मन्त्र हैं-उनमें से प्रथम "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्" मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता और हवि के ग्रहण करने में विनियोग है। दूसरे "अग्नये जुष्टं गृह्णामि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, लिङ्गोक्तदेवता और हवि के ग्रहण में विनियोग है। तीसरे "अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, लिङ्गोक्त देवता और हवि के ग्रहण में विनियोग है ॥

भावार्थः—इस कण्डिका के तीनों मन्त्रों को पढ़कर हवि ग्रहण कियाजाता है और वह अग्निहोत्रहवणी में अग्नि के निमित्त चार मुट्ठी तदनन्तर अग्नि सोम के अर्थ चार मुट्ठी, तिस में से तीन मुट्ठी मन्त्र पढ़कर और चौथी मुट्ठी मौन होकर डाली जाती है इन तीनों मन्त्रों का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (सवितुः) सब के प्रेरक (देवस्य) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर के (प्रसवे) प्रेरणा करनेपर (अश्विभ्याम्) देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार की बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे अपने बाहुओं से (पूष्णः) देवताओं के समीप उनके भागको देनेवाले पूषा देवता के (हस्ताभ्याम्) हस्तों की करी है भावना जिनमें ऐसे अपने हस्तों से, (अग्नये) अग्नि देवता के अर्थ (प्रियम्) प्रिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्निसोमदेवताओं के अर्थ (जुष्टम्) प्रिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥

"सत्यं देवा अनृतं मनुष्याः" इस श्रुति के अनुसार देवता

सत्यरूप हैं सो उनके नामके स्मरण के साथ हवि ग्रहण करने से यज्ञ सत्यफल और निर्विघ्न होगा। देवताओं का स्मरण न करके मनुष्यों का किया हुआ अनुष्ठान मनुष्यों के अनृतरूप (असत्–शीघ्रविनाशी) होने से अमृत (निष्फल) होता है॥ सर्वात्मक अग्नि के मंत्रों से अभिमंत्रित करेहुए हवि को ग्रहण करने में मनुष्य समर्थ नहीं होसक्ता, अतः प्रार्थना करने पर परमेश्वर की आज्ञा से बाहुओं में अश्विनी कुमार की बाहुओं की और हस्तों में पूषा देवता के हस्तों की भावना करनी होती है, क्योंकि—अश्विनीकुमार देवताओं के अध्वर्यु और पूषादेव देवताओं का भागधुक् है॥ १०॥

भूताय॑ त्वा॒ नारा॑तये॒। स्व॑रभि॒विख्ये॑षम्। दृꣳह॑न्तां॒ दुर्या॒: पृथि॒व्याम्। उ॒र्व॑न्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि। पृथि॒व्यास्त्वा॒ नाभौ॒ सादया॒म्यदि॑त्या उ॒पस्थेऽग्ने॑ ह॒व्यꣳर॑क्ष॥ ११॥

इस कण्डिका में पाँच मंत्र हैं—प्रथम 'भूताय त्वा नारातये' मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द हविर्देवता, और व्रीहिशेष के विचार में विनियोग है। दूसरे 'स्वरभिविख्येषम्' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि याजुषी गायत्री छंद, सूर्य देवता और पूर्वाभिमुख होकर यज्ञभूमि के अवलोकन में विनियोग है। तीसरे 'दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्' इस मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छंद, गृह देवता और शकट से उतरने में विनियोग है। चौथे 'उर्वन्तरिक्षमन्वेमि' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छंद, शकट देवता और अन्तरिक्ष में चलने में विनियोग है, पाँचवें 'पृथिव्यास्त्वानाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्नेहव्यꣳरक्ष' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि साम्नी पंक्ति छंद, हविर्देवता और हवि के स्थापन करने में विनियोग है॥

इस कण्डिका के प्रथम मंत्र को पढकर शकट में शेष रहे हुए व्रीहियों का अभिमर्शन कियाजाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है

कि–हे शकट में शेष रहे हुए व्रीहि! इम (त्वा) तुझे [सद्भाव के अर्थ अर्थात् शेष रहे हुए तुम्हारे द्वारा अन्य याग ब्राह्मण भोजन तथा बीज बनाकर अन्यबहुत से व्रीहियों की उत्पत्ति हो इसनिमित्त शेष छोडताहूं] (अरातये) कृपणता के कारण अदान के अर्थ (न) नहीं ।

दूसर मंत्र को पढ़कर पूर्वमुख होकर यज्ञभूमि को देखाजाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि–मैं (स्वः) यज्ञको (आभिविख्येषम्) देखूँ (अर्थात् ईश्वर मुझको अन्न धनादि से सम्पन्न करैं जिस से कि—मैं फिरभी अपने को ऐसाही यज्ञ करता देखूँ)

तीसरे मंत्र को पढ़कर शकट परसे उतरै, इस मंत्र का अर्थ यह है कि–(पृथिव्याम्) भूमि पर(दुर्योः) गृह (दृँहन्ताम्) दृढ हों (हव्य लेकर ब्रह्मभाव को प्राप्तहुए उतरतेहुए अध्वर्यु के भार से गृहक्षोभ होने की सम्भावना है वह इस मन्त्र के द्वारा निवारण करीजाती है) ।

चौथे मंत्र को पढ़कर उत्तर दिशा की ओर को चलै, तिस मंत्र का अर्थ यह है कि–(उरु) विस्तीर्ण (अन्तरिक्षम्) अवकाशको (अन्वेमि) अनुसरण करकै गमन करता हूँ।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर गार्हपत्य वा आहवनीय अग्नि के पश्चात् भाग में शूर्प में स्थित हवि को स्थापन करै, मंत्र का अर्थ यह है कि हे हविमें (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) मध्य में, (आदित्याः) देवमाता की (उपस्थे) गोद में (सादयामि) स्थापित करता हूं, (अग्ने) हे अग्ने ! (हव्यम्) तुम्हारे समीप में स्थापन करेहुए इस हविकी (रक्ष) रक्षा करो ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ । सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं ँ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं—प्रथम "पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ"

मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, लिङ्गोक्त देवता, और पवित्री के छेदन में विनियोग है। दूसरे "सवितुर्व इत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या पङ्क्ति छन्द, आपो देवता और जलके अतिशय करके पवित्रकरने में विनियोग है। तीसरे "देवीरापो इत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः आपो देवता और अतिशय पवित्र जल से पूर्ण अग्निहोत्रहवणी को ऊपर चलाने में विनियोग है॥

इस बारहवीं कण्डिका के प्रथम मन्त्र को पढ़कर पूर्ण, अन्तर्गर्भ (जिसकी तै के भीतर तै हों) एक समान दोकुशों को, छुरीरूप बनाए हुए अन्य कुशों से छेदन करें; मन्त्र का अर्थ यह है कि— (पवित्रे) हे कुशरूप शोधक दोनों पवित्रों! (वैष्णव्यौ) यज्ञसंबंधी (स्थः) हो (अतः तुम यज्ञमें सहायता देकर यजमान की अभीष्ट सिद्धिकरो)।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर, अग्निहोत्रहवणी में जल डालकर पूर्वोक्त दोनों कुशों से पवित्र करे—मन्त्र का अर्थ यह है कि हे जलों! (सवितुः) प्रेरक परमात्मा के (प्रसवे) प्रेरणाकरनेपर (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र (पवित्रेण) वायुकी समान शोधक पवित्र के द्वारा (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणों के द्वारा (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर, पूर्वमन्त्र से पवित्र करेहुए जलों से भरी हुई अग्निहोत्रहवणी को वाम हाथ पर स्थापन करके दाहिने हाथ से ऊपर को चलावे मंत्र का अर्थ यह है कि—(देवीः) हे प्रकाशमान, (अग्रेगुवः) प्रथम समुद्र को प्राप्त होनेवाले (अग्रेपुवः) जहाँ जाओ उस स्थान को प्रथम पवित्र करनेवाले अथवा सोम रसका पान करनेवाले (आपः) जलों (अद्य) आज सुन्दरदिन में प्रवर्त्तमान (इमम्) इस (यज्ञम्) दर्शपौर्णमास नामक यज्ञको (नयत) निर्विघ्न समाप्त करो, (सुधातुम्) दक्षिणादि के द्वारा यज्ञको पुष्ट करनेवाले, (यज्ञपतिं में) यज्ञका पालन करने (देवयुवम्)

देवताओं को यज्ञ में एकत्र करनेवाले अथवा यज्ञपुरुष परमेश्वर की कामना करने वाले (यज्ञपतिम्) यजमान को (नयत) यज्ञका फल प्राप्त कराओ ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

इस तेरहवीं कण्डिका में प्रथम का "युष्मा इंद्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये" इतना भाग प्रथम कण्डिका के अंतिम मंत्र का शेष है। आगे चार मंत्र हैं—उन में से प्रथम प्रोक्षिता स्थ" मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि दैवी बृहती छन्द, आपो देवता और जलों के प्रोक्षण करने में विनियोग है। दूसरे "अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि- याजुषी बृहती छन्द, लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारण पूर्वक हवि के प्रोक्षण करने में विनियोग है तीसरे "अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप्छन्द लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारणपूर्वक हवि के प्रोक्षण करने में विनियोग है। चौथे "दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, पात्र देवता और यज्ञपात्रों के प्रोक्षण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—पूर्वमन्त्रशेष " युष्मा इत्यादि वृत्रतूर्य्ये पर्यन्त " का अर्थ यह है कि—हे जलो ! (इन्द्रः) इन्द्र (वृत्रतूर्य्ये) वृत्रासुर के वधके निमित्त (युष्मा) तुमको (अवृणीत) सहायता के निमित्त चाँहा-ताहुआ और (यूयम्) तुमने (इन्द्रम्) इन्द्र को (वृत्रतूर्य्ये) वृत्रासुर के नाशके, (अवृणीध्वम्) सहायता देते हुए (इसीप्रकार यह यजमान अपने पापकी निवृत्ति केअर्थ तुमसे प्रार्थना करता है तुमभी पापको दूरकरने के निमित्तइस यजमानको चाँहो)॥

इसकण्डिका के प्रथम मन्त्र को पढकर जलों का प्रोक्षण किया

जाता है, अर्थ यह है–हे जलों ! तुम (प्रोक्षिताः) प्रोक्षित (स्थ) हो [क्योंकि विना संस्कार हुए औरों को संस्कृत (शुद्ध) करने को समर्थ नहीं होसक्ते] ।

दूसरे मन्त्रको पढकर अग्नि देवता के निमित्त हविका प्रोक्षण किया जाता है,मन्त्रका अर्थ यह है कि–हेहवि ! (अग्नये) अग्नि देवता के निमित्त (जुष्टम्) प्रिय (त्वा)तुमको (प्रोक्षामि)प्रोक्षण करताहूं ॥

तीसरे मन्त्र को पढकर अग्निसोम केअर्थ हवि का प्रोक्षण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि–हे हवि! (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नीषोम देवता के निमित्त(जुष्टम्)प्रिय(त्वा)तुम को(प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूँ ।

[इसीप्रकार अन्यदेवताओं के हवियोंका भी प्रोक्षण करै]

चौथे मंत्र को पढकर कृष्णाजिन उलूखलादि अन्य यज्ञ के पात्रों को प्रोक्षण कियाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे यज्ञ के पात्रों (दैव्याय) ईश्वर सम्बन्धी (देवयज्यायै)देवता सम्बन्धी(कर्मणे) दर्शादि यागकर्म के निमित्त (शुन्धध्वम्)तुम शुद्ध होवो,(अशुद्धाः) नीचजाति बढई आदि (यत्) जो (वः)तुम को (पराजघ्नुः) अंग को छीलने आदि के समय अपने हस्तस्पर्श से अपवित्र करते हुए (तत्)सो (इदम्) इस (वः) तुम्हारे अंग को(शुन्धामि) प्रोक्षणादि से पवित्र करता हूँ ॥ १३ ॥

शर्म्मासि। अवधूत्ᳪरक्षोऽवधूता अरातयः। अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यः ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

इस चौदहवीं कण्डिका में पाँचमन्त्र हैं–प्रथम "शर्म्मासि,, मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी अनुष्टुप् छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन को ग्रहण करने में विनियोग है। द्वितीय "अवधूतᳪरक्षोऽवधूता अरातयः,, मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद, रक्षो देवता और राक्षसदूरीकरण में विनियोग है। तीसरे " अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु"मन्त्र का

परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन के बिछाने में विनियोग है। चौथे "अद्रिरसि वानस्पत्यः" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी अनुष्टुप् छन्द, उलूखल देवता और कृष्णाजिनपर उलूखल रखनेमें विनियोग है। पाँचवें "ग्रावासि पृथुबुध्नःप्रतित्वादित्यास्त्वग्वेत्तु, मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में विनियोग है॥

प्रथम मंत्र को पढकर कृष्णाजिन (कृष्ण मृगका चर्म) ग्रहण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि-हे कृष्णाजिन! तू उलूखल के धारण के निमित्त (शर्म) सुख का हेतु (असि) है। अर्थात् तुझको हम शास्त्रकी विधि के अनुसार कृष्णाजिन पै रख कर यज्ञको पूर्ण करैं तिससे तेरा अभिमानी देवता हमको सुख देय)।

दूसरे मंत्र को पढकर पात्रों से अलग करके मृगचर्म को झाड़ा जाता है—मंत्र का अर्थ यह है कि—कृष्णाजिन के झाड़ने से उस में छुपाहुआ (रक्षः) राक्षस (अवधूतम्)अलग गिरादिया और (अरातयः)यज्ञ में विघ्न करने वाले शत्रु भी(अवधूताः) गिरादिये।

तीसरे मंत्र को पढकर दोनों हाथों से कृष्णाजिन को इसप्रकार बिछावे कि-ग्रीवा को ग्रीवा रहै, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे कृष्णाजिन तू (अदित्याः) भूमिदेवता का (त्वक्) चर्म*रूप (असि) है इस कारण (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) ग्रहण करके अपना ही जानै।

चौथे मंत्र को पढकर कृष्णाजिन पर उलूखल रक्खे मंत्र का अर्थ यह है कि—हे उलूखल! तू (अद्रिः) भी है अद्रिका विदीर्ण करने वाला है और यद्यपि (वानस्पत्यः) काष्ट का है परंतु (ग्रावा) दृढ होने के कारण पाषाण की समान (असि) है।

* पुरा यज्ञो देवेभ्यः कृष्णमृगो भूत्वागमत्तदा देवा ज्ञात्वा तदीयां त्वचमुत्खिद्य भूमावास्तरणमित्यभिप्रायः श्रुतावाम्नातः १।१।४।१॥

पाँचवें मंत्र को पढकर भी * कृष्णाजिनपर उलूखल रक्खाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे उलूखल! (पृथुबुध्नः) तेरी जड़ स्थूल है (मुसल लगने के आघात से हिले नहीं यह उलूखलाभिदेवता से प्रार्थना की जाती है) अतः दृढता में पाषाणकी समान है, (अदित्याः) नीचे बिछाईहुई कृष्णाजिनरूप भूमि की (त्वक्) त्वचा (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जाने अर्थात् अपने अङ्गके अभिमान से चेतन करै ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि । बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं—प्रथम "अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आर्ची उष्णिक् छन्द, हवि देवता और हवि का आवपन करने में विनियोग है। दूसरे "बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी जगती छन्द, मुसल देवता और मुसल के ग्रहण करने में विनियोग है। तीसरे "स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः मुसल देवता और मुसल को उलूखल में स्थापन करने में विनियोग है। चौथे "हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि, मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छंद, वाग्देवता और हवि का संस्कार करनेवाले का आह्वान करने में विनियोग है।

पहिले मंत्र को पढकर हवि छोड़ने के निमित्त ओखली में डालाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे हवि! (जलों के प्रणयन काल में मौन हुई यजमान की वाणी हविके आवपनके

* कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में चौथे और पांचवें दोनों मन्त्रों का विकल्प है अर्थात् चाहे चौथे को पढकर रक्खे और चाहे पांचवें को पढ़कर रक्खै परन्तु "प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु" यह दोनों ही मन्त्रों में पढ़ना पड़ता है।

समय में खुलती है अतः) (वाचः) वाणी का (विसर्जनम्) खोलनेवाला, (अग्नेः) अग्नि का (तनूः) शरीर (असि) है (क्योंकि—हवि अग्नि में डालते ही अग्निरूप होजाता है) (देववीतये) देवताओं की तृप्ति के लिये (त्वा) तुझको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥

दूसरे मंत्र को पढकर मुसल को हाथ में लियाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मुसल ! तू (वानस्पत्यः) काष्ठ का बनाहुआ (ग्रावा) पाषाण की समान दृढ (बृहत्) महान् (असि) है ।

तीसरे मंत्र को पढकर मूशल उलूखल (ओखली) में स्थापन कियाजाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मूसल ? (सः) वह (त्वम्) तू (देवेभ्यः) अग्नि आदि देवताओं के उपकार के निमित्त (इदम्) इस हवि को (शमीष्व) भूसी आदि को दूर करके शान्तरूप करो तथा (सुशमि) भूसी दूर होनेपर तण्डुलों के ऊपर की मलिनता को भी दूर करके (शमीष्व) शान्तरूपकरो ॥

चौथे मंत्र को पढकर अध्वर्यु हवि को कूटने के निमित्त यजमान की पत्नी वा और जो कोई हो उसको तीन बार पुकार कर बुलावै मंत्रका अर्थ यह है कि—(हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करने वाले (एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करनेवाले (एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करने वाले (एहि) आओ [तीन वार कहेहुए अर्थ को देवता मानते हैं इस कारण तीन वार आह्वान है] ॥ १५ ॥

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वयावयꣳसंघातꣳसंघातं जेष्म । वर्षवृद्धमसि । प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु । परापूतꣳरक्षः परापूता अरातयः । अपहतꣳरक्षः । वायुर्वो विविनक्तु । देवोवः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में सात मन्त्र हैं—प्रथम "कुक्कुटोऽसि मधुजि

इषमूर्जमावद त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप् छन्द, वाक् देवता और शम्या से दृषत् उपल को कूटने में विनियोग है। दूसरे "वर्षवृद्धमसि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, शूर्प देवता और शूर्प के ग्रहण में विनियोग है। तीसरे "प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी बृहती छन्द, हवि देवता और हवि को उलूखल से बाहर निकाल कर शूर्प में डालने में विनियोग है। चौथे "परापूत ꣳ रक्षः परापूता अरातयः" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, रक्षो देवता और निष्पवन करने में विनियोग है। पाँचवें "अपहत ꣳ रक्षः" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, रक्षो देवता और भूसी को दूरकरने में विनियोग है। छठे "वायुर्वो विविनक्तु" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी उष्णिक् छन्द, तण्डुलाभिमानी देवता और भूसीमिलेतण्डुलों को पृथक् करने में विनियोग है। सातवें "देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, तण्डुलाभिमानी देवता और तण्डुलों को पात्र में रखकर अभिमन्त्रण करने में विनियोग है॥

भावार्थ—पहिले मन्त्र को पढकर शम्या से दृषद् और उपल को कूटाजाता है * मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शम्या नामक

---

* मनु राजा का एक वृषभ था, उस वृषभ में असुरों की नाश करनेवाली वाणी स्थित थी अतः उस वृषभ के शब्द करनेपर तिस शब्द को सुनतेही असुर मरण को प्राप्त होजाते थे, इसकारण किलात और आकुली नामक असुरयाजकों (असुरों को यज्ञ करानेवालों) ने मनुके पास जाकर तिस वृषभ के द्वारा ही यज्ञ कराया, तब वह वृषभ की असुरघ्नी वाक् मनुकी स्त्री में प्रविष्ट होगई, तब तो उन असुर याजकों ने उस स्त्री के द्वारा भी मनुको यज्ञ कराया, तब वह असुरघ्नीवाक् यज्ञके पात्रों में प्रविष्ट होगई, अतः असुरों का तिरस्कार करने के निमित्त उस असुरघ्नी वाक् को प्रकट करने की इच्छा से शम्या से दृषद् और उपल को कूटाजाता है यह श्रुति का कथन है (शत० १।१।४।१४)

यज्ञ के आयुध के अधिष्ठात्री देवता ! तुम (कुक्कुटः), कुक्कुट अर्थात् यज्ञ में विघ्न करनेवाले असुर कहाँ कहाँ हैं, यह जानने के लिये उनको मारने के अर्थ सर्वत्र विचरते हो, अथवा असुरों को भयभीत करने के निमित्त कुक्कुट की समान शब्द करनेवाले (मधुजिह्वः) मधुरभाषिणी जिह्वावाले देवताओं के भृत्य (असि) हो, हम को (इषम्) अन्नको और (ऊर्जम्) बलदायक रसको (आवद) बोलो अर्थात् तुम अपना शब्द करके असुरों को यज्ञभूमि से दूरकरो जिससे कि-(त्वया) तुम्हारे द्वारा (वयम्) हम (संघातम् संघातम्) प्रत्येक समूह को (जेष्म) जीतें। हम निर्विघ्नता के साथ यज्ञ करें और उस यज्ञ के द्वारा वर्षा होकर हमको अन्न और बलकारक रसकी प्राप्ति हो, जिससे कि-हम बलिष्ठ होकर प्रत्येक संग्राम में असुरों को जीतें और कदापि हमारा पराजय न हो।

∴ दूसरे मन्त्रको पढ़कर शूर्प ग्रहण कियाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे शूर्प ! (वर्षवृद्धम्) वर्षा के जल से बढ़ी हुई वेणुशलाका (तुली) ओं के बने होने के कारण वर्षवृद्ध (असि) हो (अतः तुम्हारा अभिमानी देवता इस यज्ञ में सहायता देकर तुम्हारी वृद्धि की कारणरूप वर्षा को यज्ञ के द्वारा करावे) ।

तीसरे मन्त्रको पढ़कर हवि को ओखली में से बाहर निकालकर शूर्प में डालाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे हवि ! (वर्षवृद्धम्) शूर्पाभिमानी देवता (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जाने (क्योंकि-शूर्प और तुम दोनो वृष्टि से वृद्धि को प्राप्त हुए हो)।

चौथे मन्त्र को पढ़कर हवि फटकाजाता है अर्थात् भूसी उससे पृथक् करके नीचे गिराई जाती है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-(रक्षः) राक्षसों को (परापूतम्) दूरकिया (अरातयः) आलस्यादिशत्रु (परापूताः) निरादर किएगए। (अर्थात् शूर्प से भूसी को दूरकरनेपर उसमें माया से छुपीहुई राक्षस जाति को भी दूरकिया) ॥

पाँचवें मन्त्र को पढ़कर पृथिवी पर गिरीहुई हवि की भूसी को उठाकर कूड़े के स्थानपर डाले, मन्त्र का अर्थ यह है कि-(रक्षः)

राक्षस को (अवहतम्) दूर लेजाकर मारा (अर्थात् भूसी में माया से स्थित राक्षसों को भी भूसी के साथ हवि से पृथक् किया) ।

छठे मन्त्र को पढ़कर भूसी के चावलों में से बिना भूसीकों को पृथक् करे मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलो ! (वायुः शूर्प के चलाने से उठाहुआवायु (वः) तुमको (विविनक्तु) सूक्ष्मकणोंसे पृथक्करे ।

सातवें मन्त्र को पढ़कर शूर्प में के तण्डुलों को किसी पात्र में डाल कर अभिमन्त्रण करे, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलो ! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि(सुवर्णकी अंगूठी आदि आभूषण युक्त हैं हाथ जिसके, अथवा दैत्यों ने मारीन्त्र के प्रहार से सविता के हाथ काटदिये थे उनको देवताओं ने हिरण्यमय किया यह बहुच कहिये ऋग्वेद के किसी सूक्त की कथा है इस कारण हिरण्यपाणि) (सविता) सविता (देवः) देव (वः) तुमको, (विविनक्तु) मिलित हैं अङ्गुलियें जिसमें ऐसे हाथसे (प्रतिगृभ्णातु) स्वीकार करे(जिस से कि पात्री में डालते समय तण्डुल भूमि में न गिरें) ॥ १६ ॥

धृष्टिरसि । अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्याद छं सेध । आदेवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृ छंह ब्रह्म वनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७ ॥

इस कंडिका में चार मन्त्र हैं । प्रथम "धृष्टिरसि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, दैवी बृहती छन्द-उपवेष देवता और पलाश शाखा का उपवेष ग्रहण करने में विनियोग है । दूसरे "अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेध" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, अग्निदेवता और अङ्गारों को पूर्वभाग में स्थित करने में विनियोग है । तीसरे "आदेवयजं वह" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,दैवी जगती छन्द,अग्नि देवता और अङ्गारों में से उपवेष से एक अङ्गार को अलग करने में विनियोग है । चौथे "ध्रुवमसि पृथिवीं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय,, मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, क-

मन्त्र: देवता और अङ्गार को कपाल से ढकने में विनियोग है॥

भावार्थ-प्रथम मन्त्र को पढकर उपवेष (पलाश की शाखा को मूलसे काटकर लिए हुए काष्ठ के भाग) को ग्रहण किया जाता है, मंत्रका अर्थ यह हैकि-हे उपवेष! तू (धृष्टि:) धृष्ट [जाज्वल्यमान अङ्गारों को इधर उधर हटानेवाला] (असि) है [इस यज्ञमें भी तेरा अभिमानी देवता तुझ को अङ्गारों को इधर उधर हटाने की शक्ति देय]।

दूसरे मन्त्र को पढकर उपवेष से गार्हपत्य अग्नि में से तीन अङ्गारों को पूर्वभाग में अलग करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-(अग्ने) हे गार्हपत्य अग्ने !(आमादम्) जिस में याग की योग्यता नहीं है ऐसे अपक्व भक्षण करनेवाले (अग्निम्) लौकिक अग्नि [लौकिक अग्निनामक अपनेरूप]को[अपजहि]त्यागो तथा (क्रव्यादम्)शवका दाहकरनेके समय मांसभक्षणकरनेवाले चिताग्नि [चिताग्नि नामक अपने रूप] को भी (निःषेध) त्यागो ॥

तीसरे मन्त्र को पढकर उपवेष से अलग करेहुए अङ्गारों में से एकअङ्गार लियाजाता है,मन्त्रका अर्थ यह है कि-हेअग्ने!(देवयजम्) देवताओं के अर्थ याग करने के योग्य तीसरे अग्नि [अपने रूप] को (आवह) हमारे समीप में प्राप्त करो ॥

चौथे मन्त्र को पढकर उस अलग करेहुए अङ्गार को कपाल से ढकाजाता है,मन्त्रका अर्थ यह है कि -हेकपाल ! तू (ध्रुवम्) स्थिर (असि) है [क्योंकि-अङ्गार के ऊपर स्थित होकर इधर उधर को चलायमान नहीं होता है] (पृथ्वीम्) पृथ्वी को (दृंह)दृढ कर [जिस से कि-पुरोडाश का पाक करने के समय तेरे स्थान-भान से भूमि को अग्नि के दाह से शिथिलता न हो अर्थात् जल कर धसक न जाय] और (ब्रह्मवनि)पुरोडाश बनाने के निमित्त ब्राह्मण से स्वीकार करे हुए, (क्षत्रवनि) क्षत्रिय करके स्वीकार करे हुये एवं (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके स्वीकार करे हुए (त्वा) तुझ को मैं (भ्रातृव्यस्य) असुर और पापों

का (वधाय) नाश करने के निमित्त (उपदधामि) अङ्गार पर स्थापन करता हूं ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व । धरुणमस्यन्तरिक्षं दृᳪह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृᳪह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि । चित स्थोर्ध्वचितः भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं—प्रथम "अग्ने ब्रह्मगृभ्णीष्व" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी उष्णिक् छन्द, अग्नि देवता और स्थापन में विनियोग है । दूसरे "धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह ब्रह्मवनित्वा क्षत्रवनि सजातवन्यु पदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, कपालदेवता और पूर्वस्थापित कपाल के पश्चिमभाग में द्वितीय कपाल के स्थापन करने में विनियोग है । तीसरे "धर्त्रमसि दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपधामि भ्रातृव्यस्य वधाय" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप् छन्द, कपाल देवता और प्रथम कपाल के पूर्वभाग में तीसरे कपाल को स्थापन करने में विनियोग है । चौथे "विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषीत्रिष्टुप्छन्द, कपाल देवता और प्रथम कपाल के दक्षिणभाग में चतुर्थ कपाल को स्थापन करने में विनियोग है । पांचवें "चितस्थोर्ध्वचितः" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, कपाल देवता और दक्षिण एवं उत्तर में दो २ कपाल स्थापन करने में विनियोग है । छठे "भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, कपाल देवता और अङ्गारों से कपालों के छादन करने में विनियोग है ॥

भावार्थः—प्रथम मन्त्र को पढ़कर सम्म हाथ की अञ्जलि करके

शून्य में अङ्गार को स्थापन कियाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि- (अग्ने) हे स्थापन करेहुए अङ्गार रूप अग्ने ! (ब्रह्म) हमारे करेहुए मौढ़ कर्म को वा ब्राह्मण को (गृभ्णीष्व) ग्रहण करो अर्थात् हमारे ऊपर अनुग्रह करके इस कर्म में विघ्न करने वाले राक्षसों को वध करके इस यज्ञ को पूर्ण करो अथवा हे अग्ने! मुझ ब्राह्मण के ऊपर अनुग्रह करो अर्थात् अग्नि के विषै लगी हुई मेरी अंगुलि को दृढ करो जिससे दाहजनित पीड़ा न हो ॥

दूसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व स्थापित कपालके पश्चिम में दूसरा कपाल स्थापन कियाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे दूसरे कपाल के अभिमानी देव ! तुम (धरुणम्) पुरोडाश धारण करनेवाले (असि) हो, इस कारण (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (दृंह) दृढ़ करो, [जिससे कि पुरोडाश के पाकसे उत्पन्न हुई ज्वाला करके अन्तरिक्ष में उपद्रव न हो यद्यपि यह कपाल, ज्वाला और अन्तरिक्ष के बीच में व्यवधान करनेवाला नहीं है तथापि अन्तरिक्ष की दृढ़ता के निमित्त कपालाभिमानी देवता की प्रार्थना कीजाती है.] हे कपाल ! पुरोडाश सिद्धि के लिये (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों करके स्वीकार करेहुए (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके स्वीकार करेहुए और (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके स्वीकार करेहुए (त्वा) तुमको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पाप का (वधाय) वध होने के लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूं।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व स्थापित कपाल के पूर्व में तृतीय कपाल स्थापन कियाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे तृतीय कपालाभिमानी देव ! तुम (धर्त्रम्) पुरोडास को धारण करने वाले (असि) हो, तुम (दिवम्) द्युलोक को (दृंह) दृढ़करो [अर्थात् यज्ञ समाप्ति में साधन होकर द्युलोक को वर्षा करनेवाला करो] पुरोडाश सिद्धि के निमित्त (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों करके प्रार्थना करेहुए (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके प्रार्थना करेहुए तथा (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके प्रार्थना करेहुए (त्वा)

तुझको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पापका (वधाय) वध होने के लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूं।

चौथे मन्त्र को पढ़कर पूर्वस्थापित कपाल के दक्षिण में चतुर्थ कपाल को स्थापन कियाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि–हे चतुर्थ कपाल ! (विश्वाभ्यः) सकल (आशाभ्यः) दिशाओं की दृढ़ता के लिये तुझको (उपदधामि) स्थापन करता हूं। [इस प्रकार तीन कपालों को स्थापन करने से यजमान त्रिलोकी जीतता है और चौथे से दिशाओं को जीतता है, अर्थात् उन कपालों में का पुरोडाश त्रिलोकीरूप होकर देवताओं को तृप्त करता है] आग्नेय पुरोडाश अष्टाकपाल [आठ कपालों में पकाया हुआ] होता है, उनमें से चार कपाल तो उपरोक्त मन्त्रों से स्थापन कियेगये, शेष चार कपालों में से दो २ पांचवें मन्त्र को पढ़कर दक्षिण और उत्तर में स्थापन किये जाते हैं, मन्त्र का अर्थ यह है कि–हे कपाल विशेषो ! तुम (चितः) प्रथम कपाल का तथा (ऊर्ध्वचितः) ऊर्ध्व स्थापित द्वितीयादि कपाल का उपकार करनेवाले (स्थ) हो।

षष्ठ मन्त्र को पढ़कर अङ्गारों से कपालों का आच्छादन किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि–हे कपालो ! तुम (भृगूणाम्) भृगु और (अङ्गिरसाम्) अङ्गिरा नामक देवर्षियों के (तपसा) तपो रूप अग्नि से (तप्यध्वम्) तप्त होओ [अर्थात् तुम्हारे अभिमानी देव तुम्हारे विषं भृगु और अङ्गिरा नामक देवर्षियों का तपोरूप तेज प्राप्त करें] ॥ १८ ॥

शर्मा॑सि । अव॑धूत॒ꣳ रक्षोऽव॑धूता॒ अरा॑तयः । अदि॑त्या॒स्त्वग॑सि॒ प्रति॑ त्वादि॑तिर्वेत्तु । धि॒षणा॑सि पर्व॒ती प्रति॑ त्वादि॑त्या॒स्त्वग्वे॑त्तु । दि॒व स्क॑म्भ॒नीर॑सि । धि॒षणा॑सि पार्वते॒यी प्रति॑ त्वा पर्व॒ती वे॑त्तु ॥ १९ ॥

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं–प्रथम "शर्मासि" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी अनुष्टुप्छन्द कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन के ग्रहण में विनियोग है । दूसरे अवधूत ꣳ रक्षो

ऽधृता अरातयः ” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आसुरी त्रिष्टुप् छंद, रक्षो देवता और राक्षस तथा शत्रुओं के अपाकरण में विनियोग है। तीसरे “ आदित्यास्त्वगसि प्रतित्वादितिर्वेत्तु ” मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद, कृष्णाजिन देवता और कृष्णा जिनको बिछाने में विनियोग है। चौथे “ धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, दृष्ट दाभिमानी देवता और मृग चर्म पर शिला को स्थापन करने में विनियोग है। पांचवें “ दिवस्कम्भनीरसि ” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी उष्णिक् छंद, शम्या देवता और शिला के पश्चाद्भाग में नीचे से शम्या रखने में विनियोग है। छठे “ धिषणासि पार्वतेयी प्रतित्वा पर्वती वेत्तु ” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या अनुष्टुप् छंद, उपल देवता और ऊपर की शिला को ग्रहण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—प्रथम मंत्र को पढकर मृगचर्म ग्रहण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि–हे मृगचर्म के अधिष्ठातृ देव ! तुम (शर्म) सुख के हेतु (असि) हो।

दूसरे मंत्र को पढकर राक्षसादि दूर किये जाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि–(रक्षः) राक्षस जाति (अपहतम्) दूर हुई, (अरातयः) आलस्यादि शत्रु (अवधूताः) निरादर किये गए।

तीसरे मंत्र को पढकर मृगचर्म बिछाया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि–हे मृगचर्म तुम (अदित्याः) भूमि देवता के (त्वक्) त्वचा रूप) असि) हो, (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुम को (प्रतिवेत्तु) अपना करके जानै।

चौथे मंत्र को पढकर मृगचर्म के ऊपर शिला बिछाई जाती है मंत्र का अर्थ यह है कि–हे शिला ! तुम (पर्वती) पर्वत की पुत्री (असि) हो [क्योंकि पर्वत से उत्पन्न हुई हो] (धिषणाः)कर्म को देने वाली [साधन होकर यज्ञ रूप कर्म का फल देने वाली] (असि) हो, (आदित्याः) भूमि की (त्वक्) त्वचा [मृगचर्म]

(त्वा) तुझ को (प्रतिवेत्तु) स्थिति की आज्ञा देय।

पाँचवें मंत्र को पढकर शिला के पश्चिम की ओर नीचे शम्या को स्थापन कया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि–हे शम्या के अधिष्ठातृ देव! तुम (दिवः) स्वर्ग लोक की (स्कम्भनी) स्तम्भन करने वाली (असि) हो।

छटे मंत्र को पढकर शिला पर उपल [ऊपर का छोटा पत्थर] रक्खा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि–हे ऊपर की शिला! तू (पार्वतेयी) पेषण के व्यापारको धारण करने वाली और नीचे की शिला की बालक रूप (असि) है, (पर्वती) माताकी समान नीचे की शिला (त्वा) तुझको (प्रतिवेत्तु) पुत्रभाव से जाने ॥ १६ ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान्। प्राणाय त्वा। उदानाय त्वा। व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा। महीनां पयोऽसि ॥ २० ॥

इस कण्डिका में सात मंत्र हैं–प्रथम,, धान्यमसि धिनुहि देवान्,, मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी बृहती छंद, हविर्देवता और तण्डुलों को शिलापर स्थापन करने में विनियोग है। दूसरे "प्राणायत्वा,, तीसरे "उदानायत्वा,, एवं चौथे "व्यानाय त्वा,, मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दूसरे चौथे मंत्र का दैवी बृहती, छन्द तथा तीसरे का दैवी पंक्ति छन्द, सब का हविर्देवता और तण्डुलों को पीसने में विनियोग है। पाँचवें,, दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना,, मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्षी त्रिष्टुप् छन्द, हविर्देवता और मृगचर्म पर पिसे तण्डुलों को गिराने में विनियोग है। छटे "चक्षुषे त्वा मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी बृहती छन्द, हविर्देवता और पिष्टतण्डुलों का अवलोकन करने में विनियोग है। सातवें "महीनां पयोऽसि" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी त्रिष्टुप् छन्द, आज्य देवता और अन्यपात्र में से घृत

को हवि में डालने में विनियोग है॥

भावार्थ–प्रथम मंत्र को पढकर शिलापर चावल रक्खेजाते हैं,मंत्र का अर्थ यह है कि–हे हवि! (धान्यम्) तृप्त करने वाला होने के कारण तू धान्य (असि) है सो तू इस यज्ञ में (देवान्) अग्न्यादि देवताओं को (धिनुहि) तृप्त कर [जिस से यज्ञ सिद्ध होकर यजमान की अभीष्टसिद्धि हो]।

दूसरे तीसरे और चौथे मंत्र को पढकर तण्डुलों को पीसा जाता है, मंत्रों का अर्थ यह है कि–हे तण्डुलो ! मैं (त्वा) तुमको (प्राणाय) सदा अधिकता के साथ मुख में चेष्टा करनेवाले प्राण [श्वास] वायु के देने के लिये,पीसता हूँ; (उदानाय) ऊपर को चेष्टा करने वाले उदानवायु के देने के लिये (त्वा) तुमको,पीसता हूँ, तथा (व्यानाय) सब शरीरमें व्यापक होकर चेष्टा करनेवाले बलके हेतु व्यानवायु के देने के लिये (त्वा) तुमको, पीसता हूँ [देवताओं का हवि सजीव होता है इस कारण यह हवि सजीव किया गया]।

पाँचवें मंत्रको पढकर शिलापर का पिसाहुआ तण्डुल रूप हवि नीचे बिछी हुई कृष्णाजिन पर गिराया जाता है, मंत्रका अर्थ यह है कि–हे हवि ! (आयुषे) निरन्तर यज्ञादिकर्म परम्परा के होने के निमित्त यजमान की आयुको बढाने की इच्छा से (दीर्घाम्) अविच्छिन्न (प्रसितिम्) कर्म सन्तति को (धाम्) धारण करता हूँ। (अथवा पूर्व के तीन मंत्रों से हवि को सजीव किया और इस मंत्र से हविको आयु दियाजाता है, अर्थ ऐसा होगा कि–हे हवि ! तेरी आयु की वृद्धि करने के लिये तुझको दीर्घ कृष्णाजिन पर स्थापन करता हूँ, इस वेदोक्त कर्म से कृष्णाजिन का अभिमानी देवता आयु देय)। हे हवि !(हिरण्यपाणिः)हिरण्यपाणि (सविता) सविता (देवः) देवता (वः)तुमको(अच्छिद्रेण)अच्छिद्र(पाणिना) हस्तसे (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करे।

छठे 'चक्षुषे त्वा' मंत्र को पढकर उस पिसे हुए हवि को देखा

जाता है, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (चक्षुषे) यजमान के चक्षुः इन्द्रिय का प्रकाश अधिक होने के लिये अथवा हवि को सजीव करने पर चक्षुरादि की अपेक्षा होती है अतः चक्षु शक्ति के देने के निमित्त (त्वा) तुम को (पश्यामि) देखता हूँ।

सातवें मन्त्र को पढ़कर पिसे हुए हवि में दूसरा पुरुष घृत डालता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू दुग्ध से उत्पन्न होने के कारण (महीनाम्) गौओं का (पयः) दुग्धरूप (असि) है॥२०॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । संवपामि । समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ संमधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, प्रथम "देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्", मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता पिष्ट को पवित्रयुक्त पात्री के विषे डालने में विनियोग है। दूसरे "संवपामि" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, हविर्देवता और पिष्टको पात्री में डालने में विनियोग है, तीसरे "समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ समधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, आपोदेवता और पिष्ट में जल मिलाने में विनियोग है।

प्रथम तथा दूसरे मन्त्र को पढ़कर कुशा के पवित्रे युक्त पात्र में पिसा हुआ तण्डुलों का हवि डाला जाता है, दोनों मन्त्रों का अर्थ यह है कि—(सवितुः) सबके प्रेरक सविता (देवस्य) देवता के (प्रसवे), प्रेरणा करने पर (अश्विनोः) अश्विनीकुमार की बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे (बाहुभ्यां) बाहुओं करके और (पूष्णः) पूषा देवता के हस्तों की करी है भावना जिनमें ऐसे (हस्ताभ्याम्), हस्तों करके हे हवि ! (त्वा) तुझको (संवपामि) विधि पूर्वक भलीप्रकार पात्र में डालता हूं [सविता देव तुझको

पूर्ण करने की शक्ति देय]।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर अग्नीध, पिष्ट हवि में डालने के उपसर्जनी नामक जलको लावे और अध्वर्यु पवित्राओं करके उस जल की पात्री में लेय अर्थात् पवित्रों के ऊपर होकर जल की धारा पात्र में गिरावे,मन्त्रका अर्थ यहहै कि(आपः)जल(ओषधीभिः) पिष्ट तण्डुल रूप ओषधियों से (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिलें, (ओषधयः) पिष्ट तण्डुल (रसेन) जल करके (सम्पृच्यन्ताम्) मिलें (रेवतीः) जल (जगतीभिः) पिष्ट तण्डुलों से (संपृच्यन्ताम्) मिलें और (मधुमतीः) माधुर्ययुक्त जल (मधुमतीभिः) मधुर ओषधियों से (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिलें॥२१॥

जनयत्यै त्वा संयौमि। इदमग्नेः। इदमग्नीषोमयोः। इषे त्वा। घर्मोऽसि विश्वायुः। उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्। अग्निष्टे त्वचं माहिंसीत्। देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके॥ २२॥

इस कण्डिका में आठ मन्त्र है, प्रथम "जनयत्यै त्वा संयौमि" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, हविर्देवता और जलपिष्ट के संमिश्रण में विनियोग है। दूसरे "इदमग्नेः" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, हविर्देवता और हविके पिण्ड को स्पर्श करने में विनियोग है। तीसरे "इदमग्नीषोमयोः" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी जगती छन्द, हविर्देवता और हवि के पिण्ड को स्पर्श करने में विनियोग है। चौथे "इषे त्वा" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी अनुष्टुप् छन्द, आज्य देवता और घृत को तपाने में विनियोग है। पांचवें "घर्मोऽसि विश्वायुः" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को अग्नि पर चढाने में विनियोग है। छठे "उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि

आर्षे गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशके कपाल में फैलाने में विनियोग है । सातवें, "अग्निष्टे त्वचं माहिꣳसीत्" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश के ऊपर,जलस्पर्श करने में विनियोग है । आठवें " देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठीऋषि, प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को पकाने में विनियोग है ।

प्रथम मन्त्र को पढकर जल और तण्डुलों के पिष्ट को मिलाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे जल और पिष्ट ! (त्वा) तुमको । (जनयत्यै) पुरोडाश बनानेके निमित्त अथवा यजमान के सन्तति उत्पन्न होने के निमित्त (संयौमि)मिलाता हूँ क्योंकि—जैसे जल और पिष्टका मेलन होता है तिसीप्रकार शुक्र शोणित (वीर्यरज) के मेलन से यजमान के सन्तति की उत्पत्ति हो ।

दूसरे मन्त्र को पढकर मिलाएहुए पिष्ट के अवदान (छेदन) के चिन्हयुक्त दो पिण्ड करके अलग २ स्थापन कर एकको स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिण्ड (अग्नेः) अग्नि देवता का, है (अतः इसको अग्नि ग्रहण करके यजमान के ऊपर प्रसन्न हो)

तीसरे मन्त्र को पढकर पूर्व की समान दूसरे पिण्ड को स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिण्ड (अग्नीषोमयोः) अग्नीषोम देवता का, है (उक्त देवता इसको ग्रहण करके यजमान के ऊपर प्रसन्न हों) ।

चौथे मन्त्र को पढकर पिघलाने के लिये घृत का पात्र,अग्नि पर तपाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे घृत (इषे) इच्छित वृष्टि के अर्थ (त्वा) तुझको, तपाता हूँ, (क्योंकि तेरे द्वारा पुरोडाश तयार होने पर उस से यज्ञ होकर वृष्टि होगी) ।

पाचवें मन्त्र को पढकर पुरोडाश अग्नि पर चढाया जाता है,

मन्त्रका अर्थ यह है कि हे पुरोडाश ! तू (घर्मः) दीप्यमान यज्ञ का अंश (विश्वायुः) यजमान को पूर्ण आयु देनेवाला (असि) है।

छठे मन्त्र को पढकर पुरोडाश सब कपालों में रखने के लिये फैलाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे पुरोडाश ! तू स्वभाव से ही (उरुप्रथाः) विस्तार के साथ फैलनेवाला है (उरु) फैलकर (प्रथस्व) प्रख्यात हो। और (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञपति यजमान (उरु) बहुत से पुत्रपश्वादि को प्राप्त होकर (प्रथताम्) प्रसिद्ध हो।

सातवें मन्त्र को पढकर पुरोडाश के ऊपर जल छिड़का जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश ! (अग्निः) पकाता हुआ अग्नि (ते) तेरे (त्वचम्) त्वचारूप ऊपर के भाग को (माहिंसीत्) जलाकर वा काला करके नष्ट न करे ।

आठवें मन्त्र को पढकर पुरोडाश पकाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश (सविता) सविता (देवः) देवता (वर्षिष्ठे) बड़े वेग के साथ बड़ी ज्वालाओं से प्रज्वलित होते हुए, राक्षसों के नाशक (नाके) स्वर्ग के नाकनामक अग्नि में (त्वा) तुझको (अधिश्रपयतु) पक्व करे ॥ २२ ॥

मा भेर्मा संविक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा । द्विताय त्वा एकताय त्वा ॥२३॥

इस कण्डिका में पांच मन्त्र हैं, प्रथम "माभेर्मासंविक्था" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को स्पर्श करने में विनियोग है। दूसरे "अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्षी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और अङ्गारों के द्वारा दग्ध कर भली प्रकार पक्व करने में विनियोग है तीसरे "त्रितायत्वा" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी बृहती छन्द, त्रित देवता पात्र और अङ्गुलियों के प्रक्षालन के जल को आधाने में विनियोग है। चौथे "द्वितायत्वा" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवीबृहती,

छन्द, द्वित देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है। पांचवें "एकता यत्वा" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, एकत देवता और तृतीय मंत्रोक्त विनियोग है।

प्रथम मन्त्र को पढकर, पुरोडाश पका है या नहीं यह जाने के निमित्त स्पर्श कराजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश (मभेः) भयभीत मत हो, (मा सम्विक्थाः) चलायमान मत हो। दूसरे मन्त्रको पढकर पके हुए पुरोडाश को अङ्गारों से ढककर पकाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(यज्ञः) यज्ञसाधक पुरोडाश(अतमेरुः) ऊपर भस्म जमजाने की मलिनतारूप ग्लानि रहित हो (यजमानस्य) यजमान की (प्रजा) पुत्रपौत्रादि सन्तति (अतमेरुः) ग्लानिरहित (दुःखरहित) हो, अर्थात् यजमान की सन्तति को कदापि दुःख न हो। तीसरे चौथे और पाँचवें मंत्र को पढकर लिप्टलिसपात्र तथा अंगुलियों के धोवन का जल पात्र में लाकर गार्हपत्य अग्नि के ऊपर औंधावे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे पात्र और अंगुलियों के प्रक्षालन के जल ! (त्रिताय) त्रित(१) नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुझ को (द्विताय) द्वित नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुझको और (एकताय) एकतनामक देवता के अर्थ (त्वा) तुझ को त्यागता हूँ॥ २३॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः॥

इस कंडिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,

(१) पूर्वकाल में किसी कारण से भयभीत हुआ अग्नि देवता जल में प्रवेश करगया तदनन्तर देवताओं ने जानकर ग्रहण किया; उस समय अग्नि ने अपने वीर्य को जल में त्यागा, उस से त्रित, द्वित और एकत नामक व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने देवताओं के साथ विचरते हुए, यज्ञ में पात्र और अंगुलियों के प्रक्षालन का जलरूप भाग पाया, यह कथा शतपथ १।२।३।१-२ में लिखी है।

व्रजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौ. वधान देव सवित परमस्यां पृथिव्या ᳪ शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में चार मन्त्र है, प्रथम "पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलम्माहि ᳪ सिषम्, मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजुः, वेदि देवता और तृणों को हटाकर भूमि को स्फ्य से खोदने मे विनियोग है। दूसरे "व्रज गच्छ गोष्ठानम्" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी जगती छन्द, पुरीष देवता और खोदीहुई मृत्तिका को ग्रहण करने में विनियोग है। तीसरे "वर्षतु ते द्यौ.,, मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द वेदि देवता और वेदी को अवलोकन करने मे विनियोग है चौथे 'वधान देव सवित. परमस्या पृथिव्या ᳪ शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्' मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु सविता देवता और खोदी हुई मृत्तिका को उत्कर (घूरा) स्थान में डालने में विनियोग है।

प्रथम मन्त्र को पढकर तृणों को हटाकर भूमि खोदी जाती है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(देवयजनि) देवताओं के यज्ञ करने के योग्य (पृथिवि) हे पृथिवी ! मैं (ते) तेरी (ओषध्या) तृणरूप ओषधि की (मूलम्) मूल को (माहिंसिषम्) नष्ट नहीं करता हूं, (किन्तु यज्ञ के निमित्त खोदता हू)।

दूसरे मन्त्र को पढकर पुरीष (कुदाल से खोदने पर उत्पन्न हुई मृत्तिका) को ग्रहण कियाजाता है मन्त्र का अर्थ यह है कि— हे खुदी हुई मृत्तिका ! तू (गोष्ठानम्) जहा इस समय गौएं स्थित हैं ऐसी (व्रजम्) गोशाला को (गच्छ) जा।

तीसरे मंत्र को पढकर वेदिको (ठीक हुई या नहीं यह जानने के लिये) देखा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे वेदी ! (ते) तेरे लिये (द्यौ) द्युलोक का अभिमानी देवता (वर्षतु) जल की वर्षा करे (जिस से खोदने में होनेवाले दुःख की शान्ति हो)

चौथे मंत्रको पढकर उत्कर (कूडा डालने के स्थान) पर कुदाल से खोदी हुई मृत्तिका डालीजाती है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—(सवितः) हे सविता (देव) देवता ! (य) जो (अस्मान्) हमारेऊपर (द्वेष्टि) द्वेषदृष्टि रखताहै (च) और (यम्) जिसके प्रति (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेषदृष्टि रखते हैं (तम्) इसदोनो प्रकार के हमारे शत्रु को (परमस्याम्) अन्तिम (पृथिव्याम्) पृथिवी के विषे अर्थात् जहां भूमिके अन्तिम स्थान में अन्धतामिस्र नरक है तहां (शतेन) सैंकडों (पाशैः) पाशों से (बधान) बांधो और (अतः) उस अन्धतामिस्र नरक में से (मामौक्) कदापि मत छोडो ॥ २५ ॥

अपारुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासम् । व्रजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬं शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मामौक् । अररो दिवं मा पप्तः । द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् । व्रजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬं शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मामौक् ॥ २६ ॥

इस कण्डिका में नौ मन्त्र हैं—प्रथम "अपारुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासम्" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, असुरदेवता और उत्कर स्थान में द्वितीय वार मृत्तिका डालने में विनियोग है। द्वितीय "व्रजमित्यादि," तृतीय "वर्षत्वित्यादि" और चतुर्थ "बधानेत्यादि" मन्त्र इनके ऋषि इत्यादि पच्चीसवीं कण्डिका की समान जानने। पांचवें "अररो दिवं मा पप्त" मन्त्र का प्रा० प० पर० ऋषि, यजु, असुर देवता और उत्कर के अभिमुख हाथों को रखने में विनियोग है। छठे "द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन्" मंत्रका प्रा०प०ऋषि, यजु, असुर देवता और तृतीय वार मृत्तिकाको उत्करस्थान में डालने में विनियोग है॥सप्तम अष्टम और

नवम मंत्रका ऋषि छन्दादि पचीसवीं कंडिका की समान जानना।

प्रथम मंत्र को पढकर द्वितीयवार, खोदी हुई मृत्तिका को ग्रहणकर उत्कर स्थान मे डाले, मंत्र का अर्थ यह है कि—(पृथिव्यै) पृथिवी के (देवयजनात्) देवयजननामके वेदिके स्थान से (अररुम्) अररु नामक असुर को (अपवध्यासम्) दूर लेजाकर मारता हूं।

(द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ मंत्र का कार्य और भावार्थ पूर्व अर्थात् पचीसवीं कंडिका की समान जानना)

पांचवें मन्त्र को पढकर उत्कर के अभिमुख हाथ रखे जाते है मंत्र का अर्थ यह है कि—हे अररुनामक असुर! (दिवम्) यज्ञ के फलरूप द्युलोक को (मा पप्तः) तू मत प्राप्त हो।

छठे मंत्र को पढकर तृतीय वार मृत्तिका को ग्रहण कर उत्कर स्थान मे डालाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे वेदिके देवता! (ते) पृथिवी रूप जो तू तिसका (द्रप्स.) उपजीव्य रस अर्थात् भोग (द्याम्) स्वर्गलोक को (मास्कन्) मतजाओ।

(सातवे आठवे और नवे मंत्रों का कार्य और भावार्थ पचीसवी कण्डिका की समान जानना) ॥ २६ ॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि।। जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि। स्योना चासि सुषदा चासि। ऊर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ २७॥

इस कण्डिका मे छ: मंत्र हैं—प्रथम 'गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि' मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद विष्णु देवता और वेदि खोदने से पाहिले स्फय से रेखा खेंचने में विनियोग है। द्वितीय 'त्रैष्टुभेन त्वा छंदसा परिगृह्णामि' मंत्र का मा० पर० ऋषि आसुरी अनुष्टुप्छन्द, विष्णु देवता और स्फ्य से द्वितीय रेखा खेंचने में विनियोग है। तृतीय "जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि" मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद, विष्णु

देवता और स्फ्य से तीसरी रेखा करने में विनियोग है। चौथे 'सुस्मा चासि शिवा चासि' मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छंद वेदि देवता और वेदि खोदने के पश्चात् स्फ्य से रेखा करने में विनियोग है। पाँचवें 'स्योना चासि सुषदा चासि' मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, आसुरी जगती छंद वेदि देवता और द्वितीय रेखा करने में विनियोग है। छठे 'ऊर्जस्वती चासि पयस्वती च' मंत्र का प्राजापत्य प० ऋषि, आसुरी पंक्ति छंद वेदि देवता और तृतीय रेखा करने में विनियोग है॥

जिस स्थान से अररु नामक असुर को निकाला वहाँ वेदी के परिमाण का निश्चय करने के लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर इन तीन दिशाओं में स्फ्य से रेखा करीजाती है, तिसमें से प्रथम मंत्रको पढकर दक्षिण में द्वितीय को पढकर पश्चिम में और तृतीय मंत्रको पढकर उत्तर में रेखा करे, इस कर्म का नाम पूर्वपरिग्रह है तीनों मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे यज्ञ ! गायत्री त्रिष्टुप् और जगती छंद रूप से भावना करे हुए स्फ्य के द्वारा (त्वा) तुझ को (गायत्रेण) गायत्री के (छन्दसा) छन्दोरूप स्फ्य करके (परिगृह्णामि) परिग्रहण करता हूँ; (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् के (छन्दसा) छंदोरूप स्फ्य करके (त्वा) तुझको (परिगृह्णामि) परिग्रहण करता हूँ (जागतेन) जगती के (छन्दसा) छंदोरूप स्फ्य करके (त्वा) तुझ को (परिगृह्णामि) परिग्रहण करताहूं, (तीनोंछंदों के देवता तीनों दिशाओं में तेरी असुरों से रक्षा करेंगे और पूर्व दिशा में आहवनीय अग्नि ही रक्षा करेगा। चौथे पांचवें और छठे मंत्र को पढकर उत्तरपरिग्रह कियाजाता है अर्थात् पहिले जो पूर्व परिग्रह कर्म कहा वह वेदि खोदने से पूर्व कियाजाता है, और वेदी खोदने के अनन्तर चतुर्थादि तीनों मंत्रों को पढकर फिर दक्षिणादि तीनों दिशाओं में स्फ्य से तीन रेखा करी जाती हैं, इस का नाम उत्तरपरिग्रह कर्म है। मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे वेदी तुम ईश्वर के तेज से युक्त होने के कारण (सुस्मा) सुन्दर (असि) है (च) और उग्र असुर के निकल

जाने तथा यज्ञपुरुष का निवासस्थान होने से (शिवा) शांतस्वरूप (च) भी (असि) हो (च) और (स्योना) सुखरूप (असि) हो (च)और(सुपदा)देवताओं की सुन्दर स्थिति की स्थान(च)भी(असि) हो (ऊर्जस्वती) अन्न वाली (असि) हो (च) और (पयस्वती) दध्यादि के मूलभूत दुग्ध की खानि (च) भी हो ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्ताम्रु धीरासोऽअनु दिश्य यजन्ते। प्रोक्षणीरासादय। द्विषतो वधोऽसि॥२८

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, प्रथम "पुराक्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुं यामैरयन् चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽनुदिश्य यजन्ते,, मन्त्र का अघर्षस ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, चन्द्रमा देवता और वेदी को समान तथा शुद्ध करने में नियोग है। दूसरे "प्रोक्षणीरासादय" मन्त्र का अघर्षस ऋषि याजुषी उष्णिक् छन्द, भैपदेवता और प्रोक्षणीपात्र को स्थापन करने में विनियोग है। तीसरे "द्विषतो वधोऽसि,, मन्त्र का अघर्षस ऋषि, याजुषीगायत्री छन्द, अभिचारिक देवता और स्फ्यको ऊपरको उठानेमें विनियोग है। प्रथम मन्त्र को पढकर वेदी को लोष्ठादि निकालकर समान और शुद्ध किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(विरप्शिन्) हे परमेश्वर विष्णो! हुमं प्रार्थना को (शृणु) सुनो, और अनुग्रह करो * (विसृपः) नाना योधायुक्त (क्रूरस्य) युद्ध के (पुरा) प्रथम देवताओं ने (जीवदानुम्) जीवों की धारणा करनेवाली सारभूत (याम्) जिस (पृथिवीम्) पृथिवी के आत्मा को (उदादाय) ऊँचा उठाकर (स्वधाभिः) वेदों सहित (चन्द्रमसि) चन्द्रमा में

* किसी समय असुरों के साथ देवताओं का युद्ध हुआ उस समय देवताओं ने आपस में सम्मति करी कि—इस भूमिका जो देवयजन नाम उत्तम स्थल है उसको चन्द्रमा में स्थापन करके युद्ध करें, यदि हमारा पराजय होजायगा तो फिर भी यत्न करके असुरों को जीतलेंगे, यह सम्मति करके पृथिवी के सारभूत देवयजन भागको चन्द्रमामें स्थापित किया, अब भी वह कृष्णवर्ण दीखता है। (शत० १।२।२।१८)

(प्रेरयन्) स्थापन कर दिया था (ताम्) उसही चन्द्रमा में स्थित पृथिवी के आत्मा को (अनुदिश्य) शास्त्रोपदेश के द्वारा सिद्धकरके अर्थात् वही सारभूत भूमि इस वेदीमें विद्यमानहै ऐसी भावना करके (धीरासः) धीरपुरुष (यजन्ते) यज्ञ करते हैं ।

दूसरे मंत्र को पढकर मोक्षणी को लायाजाता है, अध्वर्यु कहता है, हे अग्नीध्र ! (मोक्षणीः) मोक्षण करने के जलों को (आसादय) वेदी पर स्थापन करो ।

तीसरे मंत्र को पढकर स्फ्य को ऊँचा करके उत्कर स्थान में डालाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे स्फ्य ! तू (द्विषतः) यज्ञ में विघ्न करने वाले शत्रुओं का (वधः) वध करने वाला (असि) है ॥ २८ ॥

प्रत्युष्ट ँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः । निष्टप्त ँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद् वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि । प्रत्युष्ट ँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः । निष्टप्त ँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं, प्रथम "प्रत्युष्ट ँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः,, और दूसरे "निष्टप्त ँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः,, मन्त्रका ऋषि,आदि सातवीं कण्डिका के अनुसार जानना केवल विनियोग में अन्तर है अर्थात् इसका स्रुव को तपानेमें विनियोग है। तीसरे "अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि,, मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि,प्राजापत्या बृहती छन्द, स्रुवदेवता और स्रुवका मार्जन करने में विनियोग है। चौथे "प्रत्युष्ट ँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः,, और पांचवें निष्टप्त ँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः,, मन्त्रका ऋषि आदि ७ वीं कण्डिका के समान है और स्रुच् को तपाकर अध्वर्यु को समर्पण करने में विनियोग है। छठे "अनिशितेत्यादि" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्रा० प० बृह० छन्द, स्रुच् देवता और स्रुचका मार्जन करने में विनियोग है। प्रथम

वा द्वितीय मन्त्रको पढकर स्रुव (खैर के काठका हस्तकी समान यज्ञका पात्र)अग्निपर तपायाजाता है,इन दोनो मंत्रोंका अर्थ ७ वीं कण्डिका के १।२मंत्रके अर्थकी समान जानना।तीसरे मन्त्रको पढकर स्रुव का सम्मार्जन करे,मंत्र का अर्थ यह है कि–हे स्रुव ! तुम हमारे विषय में (अनिशितः) तीक्ष्णता रहित, उपद्रव न करनेवाले, (असि) हो (सपत्नजित्) हमारे शत्रुओं का वध करते हो, इस कारण, हमारे हितैषी होने से, (वाजिनम्) यज्ञ के द्वारा अन्न से युक्त, अथवा यज्ञनामक अन्न के योग्य तुम को (वाजेध्यायै) यज्ञ नामक अन्नके प्रकाशके अर्थ (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार शोधता हूँ, क्योंकि मार्जन करे हुए स्रुव में आज्य के ग्रहण करने और होम करने से अग्निदेवता प्रज्वलित होता है । उसमें आहुति देने से तिस आहुति का फलरूप अन्न प्रकाशित [उत्पन्न होता है]। छठे मन्त्र को पढ़कर सम्मार्जन करेहुए जुहू, उपभृत और ध्रुवनामक तीन स्रुच् (वटके पत्रकी समान आकृति वाला बाहुकी बराबर विङ्कत काष्ठका यज्ञका पात्र) का मार्जन करके प्रत्येक को चौथे और पांचवें मन्त्रको पढ २ कर अग्निपर तप्त कर २ के वेदी में स्थापन करने के निमित्त अध्वर्यु को देय चौथे और पांचवें मन्त्रका अर्थ ७वीं कण्डिका में कहे अनुसार जानना और छठे मन्त्रका अर्थ इसीकण्डिका के तीसरे मन्त्रकी समान जानना ॥ २९ ॥

अदि॑त्यै॒ रास्ना॑सि । विष्णो॑र्वे॒ष्पो॑ऽसि । ऊ॒र्जे त्वा॑ । अद॑ब्धेन त्वा॒ चक्षु॒षाव॑पश्यामि । अ॒ग्नेर्जि॒ह्वासि॑ सु॒हूर्दे॒वेभ्यो॒ धाम्ने॑ धाम्ने मे भव॒ यजु॑षे यजुषे ॥ ३० ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम "अदित्यै रास्नासि" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, योक्त्र देवता और मुंज की रज्जुसे यजमानकी स्त्री की कमर को युक्त करने में विनियोग है । दूसरे "विष्णोर्वेष्पोऽसि" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि दैवी पंक्ति छन्द, योक्त्र देवता और कमर की रज्जु

को दक्षिणके पाशको उत्तरकी ओर कमर में लगानेमें विनियोग है। तीसरे "ऊर्जे त्वा" मंत्र का मा० पर०. ऋषि, दैवी अनुष्टुप् छन्द, आज्य देवता और घृतपात्र को अग्निपर से उतारने में विनियोग है। चौथे "अदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने भव यजुषे यजुषे" मंत्रका मा०पर० ऋषि, यजुः, आज्य देवता और पत्नी के घृतावलोकन करने में विनियोग है॥ प्रथम मंत्र को पढ कर, अग्नीध्र योक्त्र (तीन वल की मुंज की मेखला) से, गार्हपत्य अग्नि के दक्षिण में ईशान कोण को मुख करके बैठी हुई यजमान की भार्या की नाभि से नीचे कमर में प्रदक्षिण लपेटे, मंत्रका अर्थ यह है कि—हेमुंजकी मेखला तू (अदित्यै) भूमि की (रास्ना) मेखला (असि) है। दूसरे मंत्र को पढ कर, तिस मेखला के दक्षिण पाश (सिरे) को शंकुस्थानीय (घुण्डी युक्त) दूसरे पाश (सिरे) में दो लपेटों से उरस कर ऊपर को उद्गूहन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हेदक्षिण पाश। तू (विष्णोः) यज्ञ का (वेष्पः) व्यापक (असि) है। तीसरे मंत्र को पढ कर घृत को अग्निपर से नीचे उतार कर यजमान की स्त्री के सन्मुख रखकर कहे कि—हेयजमान की पत्नी घृतको अवलोकन कर, मंत्रका अर्थ यह है कि—हेघृत! (त्वा) तुझको (ऊर्जे) उत्तम रसकी प्राप्ति के अर्थ। अग्निपर से तायकर उतारता हूँ (क्योंकि ताया हुआ घृत दोषरहित होनेकेकारण अति स्वादरसयुक्त होता है)। चौथे मन्त्र को पढते समय यजमान की स्त्री घृतको देखे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे घृत (त्वा) तुझको (अदब्धेन) अधोमुखी होकर नीरोग (चक्षुषा) नेत्रों से (अवपश्यामि) अवलोकन करती हूँ, हेघृत! तू (अग्नेः) अग्निकी (जिह्वा) जिह्वारूपहै, (क्योंकि—अग्नि में घृतका हवनकरनेपर जिव्हाकी समान ज्वाला उत्पन्न होती है) तुम (देवेभ्यः) देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त (सुहूः) ॥ से होमेजानेवाले (असि) हो, अथवा तुम अग्नि की

जिव्हा हो कि—जिसके द्वारा देवताओं का आवाहन होता है, (क्योंकि—यज्ञमें वेदके मंत्रों से प्रज्वलित हुई अग्नि की ज्वालाको देखकर देवता आते हैं) अतःहे घृत यज्ञकी आहुतिओं में उत्तमता से साधनरूप होकर तू (मे) मेरे (धाम्ने धाम्ने) सब यागों के फलों के उपभोग के स्थानों की प्राप्ति कराने के अर्थ और (यजुषे यजुषे) तिस २ यागकी सिद्धि कराने के अर्थ [समर्थ] (भव) हो ३०

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ ३१॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम "सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, साम्नी जगती छन्द, आज्य देवता और घृतको पवित्र करने में विनियोग है। दूसरे "सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या पंक्ति छन्द, आपो देवता और प्रोक्षण के जल का शोधन करने में विनियोग है। तीसरे "तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द आज्य देवता और घृतके अवलोकन में विनियोग है। चौथे "धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्ची उष्णिक् छन्द, आज्य देवता और स्रुवे से घृत को ग्रहण करने में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढ़कर घृत को पवित्र कराजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(सवितुः) सविता देवता की (प्रसवे) आज्ञा में वर्त्तमान होनेपर मैं हे घृत (त्वा) तुझको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्र और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ। द्वितीय मंत्र को पढ़कर प्रोक्षण का जल शोधाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे जलों! (सवितुः) सर्वप्रेरक देव

की (प्रसवे) प्रेरणा होनेपर मैं (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । तीसरे मंत्रको पढकर घृत का अवलोकन कियाजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू (तेजः) शरीर की कान्ति का हेतु होने से तेजःस्वरूप (असि) है (अथवा गीता के भगवद्वचनानुसार भगवान् की विभूति है) दीप्तिमान् अथवा वर्षा अन्नादि की उत्पत्ति का हेतु होने से वीर्यरूप है, (अमृतम्) अमृत (चिरकाल पर्यन्त निर्दोष रहनेवाला) (असि) है अथवा अमृत की समान देवताओं को तृप्ति देनेवाला है, अथवा पूर्ण मंत्र का ऐसा वाक्यार्थ समझना कि-जो घृत का भक्षण, दान वा हवन करता है उसको घृताभिमानी देवता, तेज, वीर्य और अमृत (चिरकालस्थायित्व) देता है । चौथे मंत्र को पढकर एक स्रुवे में घृत लेय और तीन स्रुवे में बिना मंत्र बोले मौन होकर घृत लेय, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू (धाम) धाम (देवताओं की चित्त की वृत्ति के धारण होने का स्थान) (असि) है (नाम) नाम (सकल जीवों को अपनी ओर झुकाने वाला (असि) है क्योंकि घृतको देखकर भोजन करनेके लिये सब नमते है) (देवानाम्) देवताओंका (प्रियम्) प्रिय (अनाधृष्टम्) यज्ञ में विघ्न करनेवाले राक्षसों करके अप्रतिहत (देवयजम्) देवताओं के याग का साधन (असि) है, इस कारण मैं तुझको ग्रहण करता हूँ ॥ ३१ ॥

इतिश्री शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ भारद्वाजगोत्रोद्भूतगौडवंशावतंसश्रीमद्भोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा प्राचीन उव्वटमहीधरादि भाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनीय शाखाकी आज्यग्रहान्त प्रथम अध्याय समाप्त,

द्वितीयोऽध्यायः।

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि। बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "कृष्णोऽस्याखरेष्ठोग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, इध्म देवता, इध्मप्रोक्षण में विनियोग है। दूसरे वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि,, मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, लिङ्गोक्त देवता और वेदी के प्रोक्षण में विनियोग है। तीसरे बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्य उष्णिक् छन्द, लिङ्गोक्त देवता और कुशप्रोक्षण में विनियोग है। प्रथम मन्त्रको पढकर इध्म (ईंधन—काष्ठ) का प्रोक्षण कियाजाता है मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे इध्म तू (आखरेष्ठः) स्वर्ग देनेवाले आहवनीय अग्निमें स्थित, (कृष्णः) कृष्णमृगरूप यज्ञ(असि)है,अग्निके अर्थ(जुष्टम्)प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि)शुद्धिके निमित्त जलसे प्रोक्षण करताहूँ।दूसरे मन्त्रको पढ़कर वेदीका प्रोक्षण कियाजाता है,मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे वेदी तुम (वेदीः) असुरों से देवताओं को प्राप्त होने के कारण वेदी नामवाली (असि) हो(बर्हिषे)बर्हिके अर्थ (जुष्टाम्)प्रिय (त्वा)तुझको (प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूँ। तीसरे मन्त्रको पढ़कर, वेदी में पूर्वग्रन्थि करके कुशों का प्रोक्षण करै, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे दर्भ! (बर्हिः) बहुत होने से वेदी की वृद्धि करने में समर्थ (असि) हो (स्रुग्भ्यः) स्रुचों के धारणार्थ (जुष्टं) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) प्रोक्षण करता हूं ॥ १ ॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽसि ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः। भुवपतये स्वाहा। भुवनपतये स्वाहा। भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

इस कण्डिका में छः मंत्र हैं, प्रथम "आदित्यै व्युन्दनमसि" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द आपो देवता और प्रोक्षणावशिष्ट जल को कुशों के पूले की मूल पर डालने में विनियोग है । द्वितीय "विष्णोस्तुपोऽसि" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, प्रस्तरो देवता और प्रस्तरग्रहण में विनियोग है । तृतीय "ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, वेदि देवता और वेदी को कुशाओं से आच्छादन करने में विनियोग है । चतुर्थ "भुवपतये स्वाहा" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, दैवी जगती छन्द, अग्निदेवता स्कन्न के स्पर्श में विनियोग है । पंचम "भुवनपतये स्वाहा" प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, अग्निदेवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है । छठे "भूतानां पतये स्वाहा" मंत्रका प्रा०पर० ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, अग्नि देवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है । प्रथम मंत्र को पढकर प्रोक्षण से बचेहुए जल को कुशों के पूले की जड़में डाले, मंत्रका अर्थ यह है कि–हे प्रोक्षणशेप जल के अभिमानी देव ! तुम (आदित्यै) भूमि को (व्युन्दनम्) विशेष करके आर्द्र करनेवाले (असि) हो । दूसरे मन्त्र को पढकर कुशाओं के पूले को खोल कर पूर्वभाग से प्रस्तर को ग्रहण करै मंत्रका अर्थ यह है कि–हे दर्भ के पूलेरूप प्रस्तर तुम (विष्णोः) यज्ञपुरुष की (स्तुपः) शिखा (असि) हो । तीसरे मन्त्रको पढकर वेदीके ऊपर कुशाओं को बिछावे, मंत्रका अर्थ यह है कि–हे वेदी (ऊर्णम्रदसम्) जिस प्रकार स्वामी के बैठालने को भूमि ऊर्णासन बिछाकर कोमल करीजाती है तिसीप्रकार (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (स्वासस्थाम्) सुखपूर्वक स्थिति होने के लिये (त्वा) तुझ को कुशाओं से (स्तृणामि) आच्छादन करता हूँ । चौथे पांचवें और छठे मंत्र को पढकर स्कन्न * (हविको ग्रहण करतेसमय जो परिधि

* पूर्वकालमें अग्नि के भ्राता वषट्कार के भय से भूमि में प्रवेश करगए, उन

से बाहर गिरा हो उस) को स्पर्श कराजाता है, चतुर्थ मंत्र का अर्थ यह है कि–यह स्कन्न हवि अग्नि के प्रथम भ्राता (भुवपतये) भुवपति के अर्थ (स्वाहा) दिया। पंचम मंत्रका अर्थ यह है कि यह स्कन्न हवि अग्निके द्वितीय भ्राता (भुवनपतये) भुवनपति के अर्थ (स्वाहा) दिया। छठे मंत्र का अर्थ यह है कि–यह स्कन्न हवि अग्नि के तृतीय भ्राता (भूतानां पतये) भूतपति के अर्थ (स्वाहा) दिया ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वां विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ३

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, " प्रथम गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः " मंत्र और द्वितीय " इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः " मंत्र तथा तीसरे " मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः,, मंत्र का मा० पर० ऋषि, यजुः, परिधि देवता और क्रमसे पश्चिम दक्षिण और उत्तर में तीनों परिधियों के स्थापन में विनियोग है। प्रथम मन्त्र को पढ़कर पश्चिमदिशामें परिधि को स्थापन कराजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे परिधिदेव! (विश्वावसुः) विश्वा-

के दुःख से अग्नि भी भागकर जलमें प्रवेश करगया, तब देवताओं ने अग्नि को लाकर उसके अधिकार में स्थापित किया, उससमय अग्नि ने कहा कि मेरे भ्राताओं को मेरे पास ही चारों ओर रक्खो, और इनको यज्ञ का भाग दो, उससमय से यह अग्नि के भ्राता परिधिरूप हुए और स्कन्न (गिराहुआ) हवि उनका भाग हुआ। यह कथा शतपथ १।२।३।१३-१६ में लिखी है ॥

वसु (सर्वत्र निवास करनेवाला) * (गन्धर्वः) गन्धर्व (विश्वस्य) आहवनीय अग्नि के सकल स्थान को (अरिष्टयै) रक्षा के निमित्त (त्वा) तुमको (परिदधातु) पश्चिम दिशा में सर्वत्र स्थापन करे, जिससे राक्षस उस स्थान में प्रविष्ट होकर विघ्न न करें, तुम केवल आहवनीय अग्नि के ही परिधि नहीं हो किंतु तुम (यजमानस्य) यजमान की भी रक्षा के लिये (परिधिः) पश्चिम दिशा में स्थापन करे हुए हो। तुम (इडः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदि करके स्तुति [illegible]
(असि) [illegible]
को स्थापन [illegible]
धिदेव तुम (विश्वस्य) सकल विघ्नों की (अरिष्टयै) शांति करने के निमित्त (इंद्रस्य) इंद्र के (दक्षिणः) दक्षिण (बाहुः) बाहु की समान समर्थ (असि) हो, तथा (यजमानस्य) यजमान के भी (परिधिः) रक्षक (असि) हो, तुम (इडः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदि करके स्तुति करे हुए (अग्निः) भुवनपति नामक अग्नि के द्वितीय भ्राता (असि) हो। तीसरे मंत्र को पढ कर उत्तर दिशा में तीसरे परिधि को स्थापन करा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे तीसरे परिधिदेव ! (मित्रावरुणौ) वायु आदित्य देवता, (विश्वस्य) सकल विघ्नों की (अरिष्टयै) शान्ति के लिये (त्वा) तुमको (ध्रुवेण) निश्चलता के साथ (धर्मणा) धारण करके (उत्तरतः) उत्तर दिशा में (परिधत्ताम्) स्थापन करें, तुम (यजमानस्य) यजमान के भी (परिधिः) रक्षक (इडः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदिकों करके स्तुति करे हुए (अग्निः) भूतपति नामक अग्नि के तीसरे भ्राता (असि) हो ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्त ꣳ समिधीमहि अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

* द्युलोक में स्थित सोम की रक्षा करने के लिये उसके समीप में स्वान गन्धर्व रहता था यह शतपथ की श्रुति में कथा है।

इस मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि गायत्री छंद अग्नि देवता और परिधि को स्पर्श कर समिधा को अग्नि में छोडने में विनियोग है। इस मंत्र को पढकर समिधा से परिधि को स्पर्श कराकर अग्नि में छोडे; मंत्र का अर्थ यह है कि-(कवे) हे भूत भविष्य और दूरवर्त्ति पदार्थों के अतिक्षण जाननेवाले कवि(अग्ने)भगवान् अग्निदेव! हवन करने से (वीतिहोत्रम्) यजमान को पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि प्राप्त कराने वाले (धुमन्तम्) स्वतः प्रकाशवान् (बृहन्तम्) महान् (त्वा) तुमको (अध्वरे) इस यज्ञ में। यजमान को पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि की प्राप्ति के निमित्त (समिधीमहि) ईंधन के काष्ठ से हम प्रज्वलित करते हैं ॥ ४ ॥

समिदसि। सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहू स्थः। ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः। आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु॥

इस कण्डिका में पाँच मंत्र हैं, प्रथम "समिदसि" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, दैवी बृहती छंद अग्नि देवता और परिधि को विना स्पर्श करे दूसरी समिधा को अग्नि में छोडने में विनियोग है। दूसरे "सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छंद, लिङ्गोक्त देवता और अग्नि को देखते हुए इस मंत्र का जप करने में विनियोग है। तीसरे "सवितुर्बाहूस्थः" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छंद, विधृति देवता और दो कुशों को उत्तराग्र स्थापन करने में विनियोग है। चौथे "ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः" मंत्र का प्राजापत्य पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छंद, प्रस्तर देवता और कुशों पर प्रस्तर को स्थापन करने में विनियोग है। पाँचवें "आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्या सदन्तु" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि आसुरी गायत्री छंद, प्रस्तर देवता और प्रस्तर पर दोनों हाथ रखने में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढकर परिधिको विना स्पर्श करे अग्नि में दूसरी समिधा छोडे, मंत्र का अर्थ यह है कि-हे

सामेधा न् (समिद्) अग्नि को दीप्त करने वाला (आसि) है। दूसरे मंत्र को अध्वर्यु बैठकर आहवनीय अग्नि को देखता हुआ पढे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आहवनीय अग्ने ! (पुरस्तात्) पूर्वदिशा में (सूर्यः) सूर्य (त्वा) तुम को (कस्याश्चित्) किसी (अभिशस्त्यै) हिंसाओंसे (पातु) रक्षा करै (तीनों दिशाओं में तीन परिधि रक्षक हैं, इस कारण शेष पूर्व दिशामें सूर्य को रक्षक कहा, इसही विषय को "गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्त्यथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद् गोप्तारं करोति,, यह शतपथ १।३।४।८ की श्रुति कहती है)। तीसरे मंत्र को पढकर दो कुशा के तृणमस्तर को स्थापन करने के लिये उत्तर को अग्रभाग रहै इस प्रकार स्थापन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि हे कुशतृणों—तुम दोनो (सवितुः) सविता की (बाहू) बाहुरूप (स्थः) हो। चौथे मंत्र को पढकर उन दोनों कुशाओं पर प्रस्तर बिछावै, मंत्र का अर्थ यह है कि—हेप्रस्तर ! (ऊर्णम्रदसम्) ऊनकी समान कोमल (स्वासस्थम्) देवताओंके सुखासनरूप (त्वा) तुझको (स्तृणामि) बिछाता हूँ। पांचवें मंत्र को पढकर प्रस्तर पर दोनों हाथ रक्खे, मंत्र का अर्थ यह है कि हेप्रस्तर ! प्रातः माध्यन्दिन और तृतीय इन तीनों सवनों के अभिमानी (वसवः) वसु, (रुद्राः) रुद्र और (आदित्याः) आदित्य देवता (त्वा) तुझै (आसदन्तु) सर्वतः फैलावैं ॥ ५ ॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय॑ᳬ सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय॑ᳬ सद आसीद । घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय॑ᳬ सद आसीद । प्रियेण धाम्ना प्रिय॑ᳬ सद आसीद । ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि । पाहि यज्ञम् । पाहि यज्ञपतिम् । पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में छः मंत्र हैं, प्रथम "घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं

प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद' मंत्र का प्रा॰पर॰ ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, जुहू देवता और जुहू को प्रस्तरपर स्थापन करने में विनियोग है। दूसरे घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद' मन्त्र का प्रा॰पर॰ ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, उपभृत् देवता और प्रस्तरपर उपभृत् को स्थापन करने में विनियोग है। तीसरे घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद' मन्त्र का प्राजापत्यपर॰ ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, ध्रुवा देवता और ध्रुवा को प्रस्तरपर स्थापन करने में विनियोग है। चौथे 'प्रियेण धाम्ना प्रियꣳसद आसीद' मन्त्रका प्रा॰पर॰ ऋषि याजुषी जगतीछन्द हविर्देवता और हवियों को वेदीपर स्थापन करने में विनियोग है। पांचवें "ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञपतिम्' मन्त्र का प्रा॰ पर॰ ऋषि यजु, विष्णुदेवता और सबका स्पर्श करने में विनियोग है। छठे 'पाहिमां यज्ञन्यम्' मंत्रका प्रा॰पर॰ ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, विष्णुदेवता और अपने को स्पर्श करने में विनियोग है।

प्रथम मंत्रको पढकर जुहू को ग्रहण कर प्रस्तरपर स्थापन करे मंत्रका अर्थ यह है कि—हे जुहू! तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (जुहूः) तुम्हारे द्वारा हवन कियाजाता है, इसकारण जुहू नामवाले (असि) हो। (सा) ऐसे तुम (प्रियेण) देवताओं के प्रिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस (प्रियम्) प्रिय (सदः) प्रस्तररूप स्थानपर (असीद) स्थित होवो। दूसरे मंत्रको पढकर उपभृत् को ग्रहण कर प्रस्तरपर स्थापन करे, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे उपभृत्! तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नामकरके प्रसिद्ध (उपभृत्) समीप में स्थित होकर घृत को ग्रहण करनेवाले (असि) हो। (सा) वह तुम (प्रियेण) देवताओं के प्रिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस प्रस्तररूप (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो। तीसरे मंत्र को पढकर ध्रुवा को ग्रहणकर प्रस्तरपर स्थापन करे, मंत्र

का अर्थ यह है कि–हे ध्रुव तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नामकरके प्रसिद्ध (असि) हो। (ध्रुवा) निश्चल अर्थात् जुहू और उपभृत्की समान चलायमान नहीं (असि) होते हो [इसकारण तुम्हारा नाम ध्रुवा है], (सा) वह तुम (प्रियेण) देवताओं के प्रिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस प्रस्तररूप (प्रियम्) प्रिय (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो । चौथे मन्त्रको पढकर आज्यस्थाली पुरोडाशादि हवि को वेदी के विषैं स्थापित करै, मन्त्रका अर्थ यह है कि–हे हवि ! (प्रियेण) देवताओं के प्रिय (धाम्ना) घृतकरके सहित (इदम्) इस (प्रियम्) प्रिय (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो ।

पाँचवें मन्त्रको पढकर सबको स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि (ऋतस्य) अवश्य फल युक्त होने के कारण सत्यरूप यज्ञके (योनौ) स्थान में जो हवि (असदन्) है, (विष्णो) हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णुभगवान् (ताः) उन हवियों को (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञम्) यज्ञ को (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञपतिम्) यजमान को (पाहि) रक्षा करो । छठे मंत्रको पढकर अध्वर्यु अपने हृदय को स्पर्श करै, मंत्रका अर्थ यह है कि–हे विष्णुभगवन् (यज्ञन्यम्) यज्ञ करानेवाले (माम्) मुझ अध्वर्यु को (पाहि) रक्षाकरो ॥६॥

अग्ने॑ वाजजिद्वाजं॑ त्वा सरि॒ष्यन्तं॑ वाज॒जित॒ꣳ सम्मा॑र्ज्मि । नमो॑ दे॒वेभ्यः॑ । स्व॒धा पि॒तृभ्यः॑ । सु॒यमे॑ मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में चार मन्त्र हैं, प्रथम 'अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳसम्मार्ज्मि मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि, यजुः अग्नि देवता और अग्निके मार्जन में विनियोग है। दूसरे 'नमो देवेभ्यः' मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, दैवी पंक्ति छंद, देवा देवता और अञ्जुलि करने में विनियोग है। तीसरे "स्वधा पितृभ्यः" मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, पितर देवता और दक्षिण को उत्तान अंजुलि करने में विनियोग है। चौथे

'सुयमे मे भूयास्तम्' मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, आर्ची उष्णिक् छंद जुहूपभृत् देवता और जुहू उपभृत् के ग्रहण करने में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढकर इन्धन के बांधने के तृण (जूने) से दक्षिण उत्तर और पश्चिम की परिधियों के समीप तीन स्थानमें वर्तमानीय अग्नि का मार्जन करे, मंत्रका अर्थ यह है कि-(वाजजित्) हे अन्न को जीतनेवाले (अग्ने) अग्निदेव! (अन्नम्) अन्नको (सरिष्यन्तम्) सम्पादन करने में उपयुक्त (वाजजित्) अन्न के प्रतिबन्ध का निवारण करनेवाले (त्वा) तुमको (सम्मार्ज्मि) सम्मार्जन करता हूँ॥

दूसरे मंत्र को पढकर पूर्व दिशा की ओर को हाथ जोडे, मंत्र का अर्थ यह है कि-(देवेभ्यः) जो देवता इस यज्ञरूप अनुष्ठान के ऊपर अनुग्रह करते हैं उनको (नमः) नमस्कार करता हूँ। तीसरे मंत्र को पढकर दक्षिण दिशा की ओर को ऊपर को हाथ जोडे जाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि—(पितृभ्यः) जो पालन करने वाले पितर हैं, उनके अर्थ (स्वधा) स्वधा हो अर्थात् उन को जो देना योग्य है सो दूँगा। चौथे मंत्र को पढकर जुहू और उपभृत् को ग्रहण करे, मंत्र का अर्थ यह है कि-जुहू और उपभृत् (मे) मेरे निमित्त (सुयमे) भली प्रकार सावधान (भूयास्तम्) होवो जिस से कि अनुष्ठान में तुम्हारे विषै धारण कराहुआ घृत गिरै नहीं, तुम्हारे अभिमानी देव तुमको ऐसी शक्ति दें॥७॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ सम्भ्रियासम्। अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषम्। वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसि। इत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात्॥८॥

इस कण्डिका में 'अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ सम्भ्रियासम्' पूर्व मंत्रका शेष है, इस से आगे प्रथम 'अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषम्' मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द, विष्णु देवता और दक्षिणातिक्रमण में विनियोग है। दूसरे 'वसुमती-

मग्ने से छायामुपस्थेयं विष्णोः स्थानमसि' मंत्रका प्रा० पर० ऋषि यजुः अग्नि देवता और उपस्थान में विनियोग है । तीसरे "इत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात्" मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, यजुः इन्द्र देवता और हवन करने में विनियोग है । प्रथम मन्त्रके शेष का अर्थ यह है कि-तुम्हारे सावधान होनेपर (अद्य) आज इस अनुष्ठान के दिन में (देवेभ्यः) देवताओं के उपकारके निमित्त (आज्यम्) घृत तुम में (अस्कन्नम्) जैसे भूमिमें न गिरे तिस प्रकार (सम्भ्रियासम्) धारण करता हूँ । प्रथम मंत्र को पढकर दक्षिण दिशा अर्थात् यजन के स्थान को गमन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि-(विष्णो)हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णुभगवन्!मैं (अङ्घ्रिणा) चरण करके (त्वा)तुमको (मावक्रमिषम्) अवक्रमण न करूं अर्थात् चरण से तुमको उल्लंघन करनेका दोष मुझको न हो । दूसरे मंत्रको पढकर यजनस्थान में ईशान को मुखकरके बैठे, मंत्रका अर्थ यह है कि-(अग्ने) हे अग्निदेव! (ते) तुम्हारी (छायाम्) छाया की समीपवर्ती (वसुमतीम्) भूमिको (उपस्थेयम्) सेवन करूं, हे भूमि तू (विष्णोः) यज्ञपुरुष का (स्थानम्) स्थान (असि) है अर्थात् यहां बैठकर यज्ञ करने में समर्थ होते हैं, अथवा ऐसा अर्थ करना कि हे अग्निदेव ! मैं धनप्राप्ति करानेवाले तुम्हारे आश्रय का सेवन करता हूँ क्योंकि—तुम यज्ञ पुरुष विष्णु का स्थान हो । तीसरे मंत्र को पढकर अग्नि में घृत का हवन करे मंत्र का अर्थ यह है कि-(इन्द्रः) इन्द्र (इत) इस देवयजननामक स्थान से उद्युक्त होकर (वीर्यम्) शत्रुवधरूप वीर का कार्य (अकृणोत्) करता हुआ इस कारण ही (अध्वरः) यज्ञ (ऊर्ध्वम्) श्रेष्ठ (आस्थात्) मानागया है ॥ ८ ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यम् । अवतां त्वां द्यावापृथिवी । अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत् स्वाहा । संज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

इसमें "अग्ने वेहोंत्रं वेर्दूत्यम् अवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत् स्वाहा." यह पूर्व मन्त्रका शेष है, और "संज्योतिषा ज्योतिः" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, आज्य देवता और जुहूस्थ घृत को ध्रुवा में टपकाने में विनियोग है॥ भावार्थ—इसमें प्रथम मंत्र के शेष "अग्ने इत्यादि" का अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (होत्रम्) होताके कर्म को (वेः) जानो, और देवताओं के (दूत्यम्) दूत कर्म को (वेः) जानो (अर्थात् इस याग में दूतरूप * होकर देवताओं का भाग पहुंचाओ) (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी के अभिमानी देवता (त्वाम्) तुमको (अवताम्) रक्षा करें और तुम (द्यावापृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवी के अभिमानी देवताओं की (अव) रक्षा करो, इस प्रकार परस्पर रक्षा करने से (इन्द्रः) इन्द्रदेव इस याग में हमारे दियेहुए (आज्येन) घृतरूप हवि के द्वारा (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (स्विष्टकृत्) शोभन इष्ट करनेवाले (भले प्रकार अभीष्ट भाग देनेवाले) (भूत्) हों अर्थात् हम जो २ भाग जिस २ देवता के अर्थ दें वह (स्वाहा) पूर्णाहुतापूर्वक उन सकल देवताओं को प्राप्त हो हमारा इन्द्रके उद्देश्य से होमाहुआ घृतरूप हवि सुहुत हो अर्थात् इन्द्र देवता को प्राप्त हो इस "संज्योतिषेत्यादि" मन्त्रको पढ़कर जुहू नामक स्रुच् में के घृत का बिन्दु ध्रुवा में डाले, मंत्रका अर्थ यह है, (ज्योतिषा) ध्रुवा में स्थित घृतरूप ज्योति के साथ (ज्योतिः) टपकायाहुआ घृत (सङ्गच्छताम्) मिले ॥ ९ ॥

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्, अस्माकꣳसन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयताम्, अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥ १० ॥

---

* होतृत्वं दूतत्वं चाग्नेः कर्म तथा च श्रुतिः "उभयं वा एतदग्निर्देवानां होता च दूतश्च" (शत० १।४।६।४).

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, प्रथम " मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्, अस्माक २ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः " मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, यजुः, आशीर्वचन और आशासन में विनियोग है। दूसरे " उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयताम्, अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा " मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, यजुः पृथिवी, देवता और हविः प्राशन में विनियोग है। प्रथम मंत्र को प्रधान याग के अनन्तर शेष पुरोडाश के प्राशन के समय होता आशीर्वाद देय उस समय यजमान पढ़े, मंत्रका अर्थ यह है कि-(इन्द्रः)परमेश्वर(इदम्) इस(इन्द्रियम्) इच्छित वीर्य को (मयि) मुझ यजमान के विषें (दधातु) स्थापन करे, (रायः) धन और (मघवानः) धनवान् (अस्मान्) हमको (सचन्ताम्) सेवन करें, (अस्माकम्) हमको (आशिषः) अभीष्ट अर्थ के आशीर्वाद (सन्तु) हों और वह (नः) हमारे विषय के (आशिषः)आशीर्वाद (सत्याः) सत्य (सन्तु) हों। होता के द्यावा पृथिवी का उपह्वान करते समय दोनों पुराडाशों में से एक २ अंशके छः छः भागकर आग्नीध्र को देवे और इस दूसरे मंत्र को पढ़कर उनका भक्षण करे, मंत्र का अर्थ यह है कि-(माता) जगत् का निर्माण करने वाली पृथिवी (उपहूता) मुझ से आवाहन कीगई है, यह (माता) मातारूप मानी हुई (पृथिवी) पृथिवी (माम्) मुझको (उपह्वयताम्) शेषहवि के भक्षण की आज्ञा देय में (आग्नीध्रात्)अग्नि का कर्म करनेवाला होने के कारण (अग्निः) अग्निरूप(अग्नि देवकरके अपनाया हुआ) होकर तिस हविःशेष को भक्षण करता हूँ, यह जाठराग्नि में (स्वाहा) सुहुत हो ॥ १० ॥

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम " उपहूतो द्यौष्पितोप मां

द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा" मंत्र का प्रा० पर० ऋषि साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, द्यौदेवता और द्वितीयवार प्राशन में विनियोग है। द्वितीय "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्" मंत्र का बृहस्पति * ऋषि प्राजापत्या बृहती छंद, सविता देवता एवं तृतीय "प्रतिगृह्णामि" मंत्र का बृहस्पति ऋषि, दैवी पंक्ति छंद, प्राशित्रदेवता और द्वितीय तृतीय इन दोनों मंत्रों का स्वीकार करने में विनियोग है। चौथे "अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि" मंत्र का बृहस्पति ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छंद, प्राशित्र देवता और भक्षण में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढकर दूसरा भाग भक्षण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(पिता) जगत् का पालन करनेवाला (द्यौः) स्वर्ग (उपहूता) मुझ से आवाहन कियागया यह (पिता) पितारूप भावना किया हुआ (द्यौः) स्वर्ग (माम्) मुझको (उपह्वयताम्) इस शेष हवि के भक्षण की आज्ञा देय, मैं (आग्नीध्रात्) अग्नि का कर्म करने वाला होने के कारण (अग्निः) अग्निरूप (अग्नि देवता करके अपनाया हुआ) होकर तिस हविः शेष को भक्षण करता हूँ, यह जाठराग्नि में (स्वाहा) सुहुत हो। दूसरे और तीसरे मंत्र को पढकर प्राशित्र को ग्रहण कियाजाता है मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे प्राशित्र ! (सवितुः) सविता (देवरूप) देवता की (प्रसवे) प्रेरणा होने पर मैं (अश्विनोः) अश्विनी कुमारों के बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे (बाहुभ्याम्) बाहुओं करके और (पूष्णः) पूषा देवता के हस्तों करी है भावना जिन में ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके (त्वा) तुझ को (प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूं । चतुर्थ मंत्र को पढकर तिस ग्रहण करे हुए प्राशित्र को इसप्रकार भक्षण करे कि—दंतों से स्पर्श न हो, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे प्राशित्र ! (अग्निः) अग्नि देवता के (आस्येन) मुखकरके (त्वा) तुझको (प्राश्नामि)

* यहां से लेकर "ॐ प्रतिष्ठ" यहां पर्यन्त के मंत्रों को प्रकरण है, इन का आङ्गिरस बृहस्पति ऋषि है।

स्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में। अग्नीषोमयोरित्यादि। इन्द्राग्न्योरित्यादि। इन्द्राग्नी इत्यादि। यह तीन मन्त्र हैं, तीनों का प्राजापत्य ऋषि, छंद पहिले का यजुः, दूसरे का आर्षी उष्णिक्, तीसरे का आर्षी पंक्ति। और तीनों का लिङ्गोक्त देवता। पहिले मंत्र को पढ़कर यजमान जुहू को अपने स्थान पश्चिम से उठाकर पूर्व में रक्खे, और उपभृत् को पूर्व से उठाकर पश्चिम में रक्खे। मंत्र का अर्थ यह है कि-(अग्नीषोमयोः) द्वितीय पुरोडाश देवताओं के (उज्जितम्) निर्विघ्नता के साथ हविको स्वीकार करनेपर उत्तम विजयको (अनु) अनुसरण करके (उज्जेषम्) उत्तम जयको प्राप्त हुआ हूँ (वाजस्य) पुरोडाश आदि अन्न की (प्रसवेन) प्रेरणा से (मा) मुझ जुहूरूप यजमान को (प्रोहामि) उत्साह देता हूं [उपभृत् को पश्चिम में रक्खै] (यः) जो असुरादि शत्रु (अस्मान्) हमारे प्रति (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (यम्) जिस अनुष्ठानविरोधी शत्रु के प्रति (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तम्) उसको (अग्नीषोमौ) अग्नि और सोमदेवता (अपनुदताम्) तिरस्कृत करें (वाजस्य) अन्न के (प्रसवेन) आज्ञा करनेपर (अपोहामि) निराकरण करता हूं। अगले, दूसरा और तीसरा दोनों मंत्र दर्शके अधिष्ठात्री देवता की प्रार्थना विषय के हैं, एकसमान पद होने से सबका अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार है केवल (अग्नीषोमौ) के स्थान में (इन्द्राग्नी) पद है, उसका अर्थ है-इन्द्र और अग्निदेवता ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा आदित्येभ्यस्त्वा सञ्जानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोऽक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवङ्गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में वसु० इ०। रुद्रे० इ०। आदि० इ०। सञ्जा० इ०। व्य-

न्तु० ३० । छः मन्त्र हैं । सब का प्रजापति ऋषि है । छन्द—पहिले और दूसरे का दैवी बृहती, तीसरे का दैवीपंक्ति । चौथे का यजुः । पाँचवें का प्राजापत्या गायत्री । छठे का बृहती । १ २ । ३ मंत्र का परिधि देवता । ४ । ५ । का प्रस्तर देवता और ६ का परिध्यग्नि देवता है । पहिले मंत्र को पढ़कर मध्यमपरिधि को जुहू के द्वारा घृत से छिड़के मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मध्यम परिधि (वसुभ्यः) वसुदेवताओं की प्रीति के लिए (त्वा) तुझको, घृत से सींचताहूं । दूसरे मंत्र से दक्षिण परिधि को सींचा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे दक्षिण परिधि ! (रुद्रेभ्यः) रुद्रों की प्रीति के निमित्त (त्वा) तुझको, घृतसिक्त करता हूं । तीसरे मंत्र से उत्तरपरिधि को सींचाजाता है, अर्थ यह है—हे उत्तर परिधि (आदित्येभ्यः) आदित्य देवताओं की प्रसन्नतार्थ (त्वा) तुझ को, घृतसिक्त करताहूं । चौथे मंत्र से प्रस्तर ग्रहण कियाजाता है, मन्त्रार्थ यह है कि–(द्यावापृथिवी) हे द्युलोक भूलोक के अधिष्ठात्री देव ! (सञ्ज्ञानाथाम्) इस ग्रहण किएहुए प्रस्तर को भलीप्रकार जानो । हे प्रस्तर (मित्रावरुणौ) वायु और सूर्य देवता (त्वा) तुझको (वृष्ट्या) जल की वर्षा से (अवताम्) रक्षा करें । पांचवें मंत्र को पढ़कर ग्रहण करेहुए प्रस्तर के अग्र—मध्य—और मूलभागों को क्रम से जुहू—उपभृत्—और ध्रुवा में स्थित घृत से लिप्त करै, मन्त्रार्थ—(अक्तम्) घृतलिप्त प्रस्तर को (रिहाणाः) चाटतेहुए (वयः) अन्तरिक्षचारी देवता वा पक्षिरूप गायत्री आदिछन्द (व्यन्तु) विचरें [इस प्रस्तर काहिए पूली में से एक कुश अलग करके उस को नीचे हाथ से छटे मंत्र को पढ़ताहुआ अग्नि में छोड़े] मन्त्रार्थ यह है—हे प्रस्तर तुम (मरुताम्) मरुत् नामक देवताओं के (पृषतीः) वाहन को (गच्छ) प्राप्त हो अर्थात् पवन के वाहन की समान वेग से जा । (वशा) स्वाधीन (पृश्निः) दिव्यशरीर धारिणी कामधेनु गौकी समान तृप्ति करने वाली

(भूत्वा) होकर (दिवम्) स्वर्ग को (गच्छ) जा। (ततः) तिस के अनन्तर (नः) हमारे निमित्त (वृष्टिम्) वर्षा को (आनय) ला। अर्थात् अन्तरिक्ष में जाकर तहाँ वाहनसहित मरुद्गणों को तृप्त करो फिर स्वर्ग में जाकर देवताओं को तृप्त करो जिससे पृथिवीपर वर्षा हो, यह आहुति का फल दिखाया [आगे के मन्त्र से अध्वर्यु प्रस्तर से लियेहुए तृण को आहवनीय अग्नि में डालकर आत्मा को हृदय देशपर स्पर्श करके आचमन करे] मन्त्रार्थ यह है-(अग्ने) हे अग्निदेव! क्योंकि-तुम (चक्षुष्पाः) नेत्रों की रक्षा करनेवाले (असि) हो, इसकारण (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रको (पाहि) रक्षाकरो, अर्थात् प्रस्तर की तीव्र ज्वाला से नेत्रों को पीडा न पहुँचे ॥ १६ ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः। तं त एतमनु जोषम्भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाताै। अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

इस कण्डिका में-य परिधिमित्यादि और अग्नेरित्यादि दो मन्त्र हैं, दोनों का देवल ऋषि, अग्निदेवता तथा पहिले का विराट्रूप त्रिष्टुप्छन्द और दूसरे का याजुषी छन्द है। पहिले मन्त्र को पढ कर मध्यम परिधि को अग्नि में डालाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-(अग्नेदेव) हे आहवनीय अग्निदेव (पणिभिः) असुरों से (गुह्यमानः) रुकेहुए तुम (यम्) जिस (परिधिम्) परिधि को, असुरोंका उपद्रव दूर करने को पश्चिम दिशा में (पर्यधत्थाः) स्थापित करतेहुए (ते) तुम्हारे (जोषम्) प्रिय (तम्) उस (एतम्) इस परिधि को (अनुभरामि) अग्नि में डालकर तुम्हारे अर्पण करता हूँ (एषः) यह परिधि (त्वत्) तुम से (न इत्-अपचेतयातै) वियुक्त न हो [दूसरे मन्त्र को पढकर दक्षिण उत्तर परिधि का अग्नि में डालाजाता है] मन्त्रार्थ-हे दक्षिण उत्तर परिधि! तुम (अग्नेः) अग्नि के (प्रियम्) प्रिय (पाथः) भक्षणयोग्य अभाव को (इतम्) प्राप्त करो ॥ १७ ॥

मं०—संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः । इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् । स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १ संस्रवभागा इ० । २ स्वाहा वाट् । दोनों का सोमशुष्म ऋषि । पहिले का त्रिष्टुप् छन्द । दूसरे का यजुः । और दोनों के विश्वेदेवा देवता हैं । पहिले को पढ़कर अध्वर्यु घृत से गीले प्रस्तर का हवन करे । मंत्रार्थ यह है—(हे विश्वेदेवाः) हे विश्वेदेवा तुम (संस्रवभागाः) स्राणहुए घृत के भागी (इषा) घृतयुक्त अन्न के द्वारा (बृहन्तः) महान् (च) और (प्रस्तरेष्ठाः) प्रस्तर पर स्थित (परिधेयाः) परिधि से प्रादुर्भूत (स्थ) हो (इमाम्) इस मेरी (वाचम्) वाणी को (अभिगृणन्तः) सादर ग्रहण कर वर्णन करतेहुए (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) यज्ञ में (आसद्य) प्राप्त होकर (मादयध्वम्) तृप्त होवो [दूसरे मंत्र से होम करे] (स्वाहा) हमारे दिएहुए हवि को ग्रहण करो (वाट्) हमारी दीहुई आहुति को भली प्रकार स्वीकार करो ॥ १८ ॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातᳪ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञ नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं—घृताची इत्यादि पहिले मंत्र का प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द स्रुक् स्रुच् देवता और यज्ञ नम इत्यादि दूसरे मंत्रका शूर्पादि ऋषि, यजुश्छन्द तथा यज्ञ देवता है । पहिले मंत्र को पढ़कर अध्वर्यु जुहू और उपभृत् को शकट की धुरी पर धरे । मंत्रार्थ—हे जुहू उपभृत् तुम दोनों (घृताची) घृत को प्राप्त करनेवाले (स्थ) हो (धुर्यौ) शकट के दोनों वाहनों को (पातम्) रक्षा करो, तुम (सुम्ने) सुखरूप (स्थ) हो (सुम्ने) सुख में (मा) मुझको (धत्तम्) स्थापन करो [दूसरे मंत्र को पढ़कर वेदी को स्पर्श कियाजाता है] मंत्रार्थ—(यज्ञ) हे वेदी ! (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार हो (च) और (उपच) वृद्धि

भी हो (यज्ञस्य) यज्ञ के (शिवे) कल्याण में (सन्तिष्ठस्व) स्थित हो (मे) मेरे (स्विष्टे) सुन्दरयाग में (सन्तिष्ठस्व) प्राप्ति कराओ ॥ १९ ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः । पाहि प्रसित्यै । पाहि दुरिष्ट्यै । पाहि दुरद्मन्या अविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाट् । अग्नये संवेशपतये स्वाहा । सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं। १ अग्नेऽदब्धा० इ० । अग्नये० इ० । ३ सरस्व० इ० । पहिले का प०प० ऋषि, याजुषी छन्द, गार्हपत्याग्नि देवता । दूसरे का प० ऋ०, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द, दक्षिणाग्नि देवता । और तीसरे का प० ऋ०, या० त्रि० छन्द, तथा लिङ्गोक्त देवता है । पहिले मंत्र [को पढ़कर अध्वर्यु होमार्थ स्रुक् और स्रुव को ग्रहण करे ।] मन्त्रार्थ—(अदब्धायो) हे यजमान के मङ्गलकारिन् (अशितम्) बहुभोजी वा सर्वत्र व्यापक (अग्ने) गार्हपत्यनामाग्ने (मा) मुझको (दिद्योः) शत्रु के वज्रसमान शस्त्र से (पाहि) रक्षा करो (प्रसित्यै) बंधन करने वाले जाल से (पाहि) रक्षा करो (दुरिष्ट्यै) अशास्त्रीय याग से (पाहि) रक्षा] करो (दुरद्मन्याः) दूषितभोजन से (पाहि) रक्षाकरो (सुषदायौनौ) सम्यक् स्थितियोग्य स्थान में (नः) हमारे (पितुम्) अन्न जल को (अविषम्) विषरहित (आकृणु) करो (स्वाहावाट्) यह आहुति भलीप्रकार स्वीकृत हो [दूसरे तीसरे मंत्र को पढ़कर स्रुवे से दक्षिणाग्नि में हवन करे] मन्त्रार्थ (संवेशपतये) स्त्रीपुरुषों के एकत्र शयन को संवेश कहते हैं तिस के पति (अग्नये) अग्नि के निमित्त (स्वाहा) सुन्दर हविदिया अर्थात् इस आहुति के फल से हम को संवेश का फल मिलै (यशोभगिन्यै) यश की बहिन वाणीरूप (सरस्वत्यै) सरस्वती के अर्थ (स्वाहा) सुन्दर आहुति हो अर्थात् इसके फल हम को यश मिलै ॥ २० ॥

वेदोऽसि येन त्वन्देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातु विदो गातुं वित्वागातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं। १ वेदोसीति। २ वित्वा इत्या०। पहिले का प्रजापति ऋषि, याजुषी छन्द, वेदा देवता। दूसरेका मनसस्पति ऋषि, त्रिपदा विराट् छन्द और वातदेवता है, पहिले को पढकर यजमान की पत्नी मुट्ठीभर दर्भके पूलेकी गाँठ को खोलती है जो कि-वेदी से पहिले ही बनायाजाता है, मन्त्रार्थ-हे कुश मुष्टिसे निर्मित वेदपदार्थ (वेदोऽसि) तुम ऋगादि वेदरूप हो (देव) हे प्रकाशात्मक (वेद) सबके ज्ञाता (येन) जिसकारण से तुम यज्ञका समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त जानते हो अत: (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (वेदः) ज्ञापक (अभवः) होतेहुए (तेन) तिसकारण से (मह्यम्) मेरे निमित्त (वेद) ज्ञापक (भूयाः) हो [दूसरे मंत्र को पढकर यज्ञके आगे से देवताओं का विसर्जन कियाजाता है] मन्त्रार्थ-(गातुविदः) यज्ञके जाननेवाले (देवाः) देवताओं ! (गातुम्) यज्ञके सब वृत्तान्त को (वित्वा) जानकर (गातुमित) यज्ञ के प्रति आओ वा हमारे यज्ञसे सन्तुष्ट होकर अपने लोकों को जाओ (मनसस्पते) हे मन के प्रवर्त्तक (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (स्वाहा) तुम्हारे अर्पण करता हूं, आप इस यज्ञको (वाते) वायुरूप देवता में (धाः) स्थापित करो ॥ २१ ॥

सम्बर्हिरङ्क्ता हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, इसका प्र० प० ऋषि, विराट्रूपा त्रिष्टुप् छन्द और बर्हि देवता है, इसको पढ़कर जुहू से कुशा का होम होता है। मन्त्रार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र देवता (बर्हिः) कुशा को (हविषा) हविरूप (घृतेन) घृत से (समङ्क्ताम्) भली

प्रकार लिप्त करो (आदित्यैः) १२ आदित्यों के (सम्) साथ (वसुभिः) ८ वसुओं के (सम्) साथ (विश्वदेवैभिः) विश्वदेवों के (सम्) साथ (अक्ताम्) लिप्त करो, वह (यत्) जो (दिव्यम्) दिव्यप्रकाशरूप (नभः) सूर्यरूप ज्योति को (गच्छतु) प्राप्त हो (स्वाहा) सुन्दर होम हो ॥ २२ ॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति पोषाय रक्षसां भागोऽसि॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १ कस्त्वा० । २ रक्षसां० । पहिले का प्र० ऋषि, याजुषी छंन्द, प्रजापति देवता । दूसरे का प्र० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द और रक्षो देवता है। पहिले मंत्र को पढ़कर पूर्व स्थापित (१,६) पात्र का विसर्जन करे । मन्त्रार्थ—अध्वर्यु स्वयं आहवनीय की परिक्रमा करके वेदी के दक्षिणभाग में उत्तरमुख होकर प्रणीतापात्र को वेदी के मध्य में स्थापन कर किसी स्थान पर पलट देय । हे प्रणीतापात्र ! (कः) कौन (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्याग करता है (सः) वह प्रजापति (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (कस्मै) किस निमित्त (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (तस्मै) उस प्रजापति के सन्तोषार्थ (त्वा) तुझको (विमुञ्चति) त्यागता है (पोषाय) यजमान के पुत्र पौत्रादि को पोषण करने के निमित्त तुझको त्यागता हूं। दूसरे मंत्र को पढ़कर प्रथम पुरोडाश के कपाल से ओदनकणों को निकालकर कृष्णाजिन के समीप स्थान में उत्कर पर डाले । मन्त्रार्थ—हे कणसमूह तुम (रक्षसाम्) राक्षसों के (भागः) भाग (असि) हो ॥ २३ ॥

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, जिस का प्र० ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और त्वष्टा देवता है । इस मंत्र को पढकर यजमान अंजलि से पूर्ण पात्र को ग्रहण करे । अध्वर्यु आहवनीय की परिक्रमा कर

दक्षिण में बैठाहुआ उत्तर को मुखकर पूर्णपात्र को लेय तथा यजमान अञ्जलि में जल लेकर मुख शुद्ध करै। मन्त्रार्थ—हम आज (वर्चसा) ब्रह्मतेज से वा अन्न से (समगन्महि) संयुक्त हों (पयसा) दुग्धादि रस से संयुक्त हों (तनूभिः) अनुष्ठान में समर्थ शरीर के अवयवों से संयुक्त हों। (शिवेन) शान्तकर्म श्रद्धायुक्त (मनसा) मन से संयुक्त हों (सुदत्रः) उत्तम दानी (त्वष्टा) त्वष्टा देवता (रायः) धन (विदधातु) विधान करै (यत्) जो (तन्वः) शरीरका (विलिष्टम्) दोषरूप न्यून अङ्ग है उस को (अनुमार्ष्टु) शोधन करै॥ २४॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अस्मादन्नात्। अस्यै प्रतिष्ठायै। अगन्म स्वः। सं ज्योतिषाभूम॥ २५॥

इस कण्डिका में ७ मंत्र हैं। पहिले दिवि इत्यादि मंत्र का म० ऋषि, याजुषी छ०, विष्णुर्देवता। दूसरे अस्यै इत्यादि का म० ऋषि, याजुषी गायत्री छ० विष्णुर्देवता। तीसरे पृथि० इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी गा० छ०, विष्णु दे०। चौथे अस्मात् इत्यादि मंत्र का म० ऋ०, दैवी बृह० छ० भाग देवता पांचवें अस्यै इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी गा० छ०, भूमिदेवता। छठे अगन्मस्वः का म० ऋ०, दैवी बृ० छ०, देवा देवता और सातवें संज्यो० इ० का म० ऋ०, गा० छ०, आहवनीय देवता है। पहिले तीन मंत्रों को पढकर यजमान अपने आसन से उठकर वेदीपर खडा हो धीरे२ कुछ पग चले, ऐसे प्रदक्षिणा करै और यह विचारै कि—यज्ञपति विष्णु ही यह चरण रखरहे हैं। मन्त्रार्थ—(विष्णुः) सर्वव्यापी नारायण(जागतेन छन्दसा)

बृ० छ०, सूर्य देवता है। पहिले दूसरे मंत्रको पढकर सूर्य को देखे। मन्त्रार्थ—हे सूर्य तुम (स्वयंभूः) स्वयंसिद्ध (असि) हो (श्रेष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ (रश्मिः) हिरण्यगर्भ पुरुष, हो। क्योंकि तुम (वर्चोदा) तेज के देनेवाले (असि) हो, अतः (मे) मेरेनिमित्त (वर्चः) ब्रह्मतेज को (देहि) दो तीसरे मंत्र को पढकर प्रदक्षिणा करे। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृत्तम्) प्रदक्षिणा को (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेऽहंगृहपतिना भूयास ꣳसुगृहपतिस्त्वं मयाग्नेगृहपतिना भूयाः अस्थूरिणौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳहिमाः।सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्ते २७

इस कण्डिका में दो मंत्र है, पहिले अग्ने इत्यादि मंत्र का म० ऋ०, ब्राह्मी बृहती छ०, गार्हपत्याग्नि देवता। दूसरे सूर्यस्य इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी बृ० छ० और सूर्य देवता है, पहिले मंत्र से गार्हपत्य का उपस्थान करे। मंत्रार्थ—(गृहपते) मेरे घर के रक्षक (अग्ने) हे गार्हपत्य अग्निदेव ! (त्वया) तुम (गृहपतिना) गृहपति करके (अहम्) मैं (सुगृहपतिः) सुन्दर गृहपति (भूयासम्) होऊँ (अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (मया) मुझ (गृहपतिना) गृहपति करके (सुगृहपतिः) श्रेष्ठ घरके रक्षक (भूयाः) होवो (अग्ने) हे अग्निदेव (नौ) हमदोनोंके (गार्हपत्यानि) गृहपति संबन्धी कर्म (शतम्) पूर्णायुपर्यन्त (हिमाः) वर्षोंतक (अस्थूरि) निरन्तर (सन्तु) हों। अगले मंत्र से सूर्य की परिक्रमा करे। मंत्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृतम्) परिक्रमा को (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि। इदमहं यएवास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र है, पहिले अग्ने इ० का म० ऋ०, साम्नी पंक्ति छ०, अग्नि देवता। दूसरे इदमहमित्यादि का म० ऋ०, याजुषी पंक्ति छ० और अग्नि देवता है। पहिले को पढ़-

कर व्रत का विसर्जन करै। मंत्रार्थ—(अग्ने) अग्निदेव ! (व्रतपते) व्रत के पालक (व्रतम्) जिसव्रतको (अचारिषम्) किया (तम्) उस को (अशकम्) तुम्हारी कृपा से करने में समर्थ हुआ (मे) मेरे (तत्) उस कर्म को (अराधि) आपने सिद्धकिया। दूसरे मंत्र को पढकर कर्म को समाप्त करै। (इदम्) यह (अहम्) मैं (यः) जो (अस्मि) था (सः) वही देवता (अस्मि) हूँ ॥ २८ ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहता असुरा रक्षांᳬसि वेदिषदः ॥ २९ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, पहिले अग्न इ० का प्र० ऋ०, याजुषी गा० छ०, देव देवता। दूसरे सोमाय इ० का प्र० ऋ०, याजुषी छ०, देव देवता और तीसरे अपहता इ० का प्र० ऋ०, उष्णिक् छ०, असुर देवता है। पहिले और दूसरे मंत्र को पढ़ता हुआ सार चावल को कुछ एक पकाकर अभिधारण उद्वासन और देखने के पश्चात् होम करै। मंत्रार्थ-(कव्यवाहनाय) पितरों के हवि को उनके पास पहुँचानेवाले (अग्नये) अग्नि के अर्थ (स्वाहा) यह आहुति सुन्दर रूप से प्राप्त हो (पितृमते) पितरों के आधिष्ठान (सोमाय) सोमदेवता के अर्थ (स्वाहा) यह आहुति सुन्दर रूप से प्राप्त हो। तीसरे मंत्र से दक्षिण ओर रेखा करै मंत्रार्थ-(वेदिषदः) वेदी पर स्थित होनेवाले (असुराः) असुर (रक्षांसि) राक्षस (अपहताः) वेदी से दूर निकालेगए ॥ २९ ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका प्र० ऋ०, त्रिष्टुप्छन्द और कव्यवाहन अग्नि देवता। इस को पढ़कर वेदी के आगे एक जलती हुई लकडी घुमाकर रखदेय। मंत्रार्थ-(स्वधया) पितरों का अन्न भक्षण करना चाहिये इस इच्छा से (रूपाणि) अपने रूपों को

(प्रतिमुचमानाः) पितरों की समान करते (सन्तः) हुए (ये) जो (असुराः) असुर (चरन्ति) पितृगण में फिरते हैं (ये) जो असुर (परापुरः) स्थूल शरीर (निपुरः) अपना असुरत्व छुपाने के लिए सूक्ष्म शरीरों को (भरान्ति) धारण करते हैं (अग्निः) उल्मुकरूप अग्नि (अस्माल्लोकात्) इस पितृयज्ञस्थान से (तान्) उन असुरों को (प्रणुदतु) दूर हटाओ ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमी मदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं। पहिले अत्र इ० का प्र० ऋ०, साम्नी बृहती छन्द, पितर देवता। दूसरे अमी इ० का प्र० ऋ०, सा० बृ०छ० और पितर देवता है। यजमान पड्ञ्जलि करे पीछे पिण्ड के सामने श्वास रोककर जब तक न थके पहिले मंत्र का जप करै, थकनेपर दूसरे मंत्र को पढ़कर रोकाहुआ श्वास छोड़देय मन्त्रार्थ-(पितरः) हे पितरो ! (अत्र) इन कुशों पर (मादयध्वम्) बैठकर प्रसन्न हूजिए (यथाभागम्) अपने २ भागों को (आवृषायध्वम्) वृष की समान भोजन कर तृप्ति पाओ (पितरः) यह पितर (अमीमदन्त) अत्यन्त प्रसन्न होतेहुए (यथाभागम्) अपने २ भागको (आवृषायिषत) वृषभ की समान स्वीकार कर तृप्त होवो ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रसाय । नमो वः पितरः शोषाय । नमो वः पितरो जीवाय । नमो वः पितरः स्वधायै। नमो वः पितरो घोराय । नमो वः पितरो मन्यवे।नमो वः पितरः पितरो नमो वः। गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्म । एतद्वः पितरो वास आधत्त ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका मे ८ मंत्र हैं । नमो वः इत्यादि पहिले ६ मंत्रों का प्र० ऋ०, याजुपी बृ० छ० पङ्क्त्यार्षी उष्णिक् छन्द लिङ्गोक्त देवता । गृहान्त इ० सातवें का प्र० ऋ०, साम्नी अनुष्टुप् छन्द, पितर देवता, और एतत् इ० आठवें का प्र० ऋ०, प्राजा० गाय०

छः; पितर देवता हैं। पहिले छः मंत्रों को पढ़ताहुआ पितरों के आगे हाथ जोड़े। मन्त्रार्थ–१(पितरः) हे पितरों! (वः)तुम्हारे (रसाय) रसस्वरूप वसन्त ऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है। २(पितरः) हे पितरो (वः) तुम्हारे (शोषाय) ग्रीष्मऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है। ३(पितरः) हे पितरो (वः) तुम्हारे (जीवाय) प्राणियों के जीवनस्वरूप वर्षाऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है। ४ (पितरः) हे पितरो (वः) तुम्हारी (स्वधायै) स्वधारूप शरद्ऋतु को (नमः) नमस्कार है। ५ (पितरः) हे पितरो (वः) तुम्हारी (घोराय) जीवमात्र को असह्य हेमन्त ऋतु को (नमः) नमस्कार है। ६ (पितरः) हे पितरो (वः) तुम्हारे (मन्यवे) क्रोधरूप शिशिरऋतु को (नमः) नमस्कार है, अर्थात् हे पितरो! आप के अनुग्रह से देश में वसन्त ऋतु के प्रचार से सब वस्तु रसयुक्त हों ग्रीष्म शुभदायक होकर वर्चे, सब को सजीव करनेवाली वर्षा उत्तम हो, शरद् में श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न हों, हेमन्त से किसी को कष्ट न हो और शीतऋतु में किसी का स्वास्थ्य न बिगड़े। (पितरः) हे छः ऋतुरूप पितरो (वः) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार है(पितरः, वः, नमः)हे पितरो, आप को, नमस्कार है। सातवें मंत्र को पढ़ता हुआ स्त्री की ओर देखे। मंत्रार्थ–(पितरः) हे पितरो (नः) हमारे अर्थ (गृहान्) स्त्री पुत्रादि घर के स्वरूप को (दत्त) दो। (पितरः) हे पितरो (वः) तुम्हारे अर्थ (सतः) देनेयोग्य विद्यमान वस्तुएं (देष्म:) देते हैं अर्थात् दानकरते हुए हमारा धन कभी कम न हो। आठवें मंत्र को पढ़कर - पितृपिण्डों पर ऊन के दशासूत्र या साठ वर्ष से अधिक अवस्था का यजमान अपनी छाती के बाल धरे मंत्रार्थ–(पितरः) हे पितरो! (वः) तुम्हारे अर्थ है (एतत्) यह (वासः) सूत्ररूप पहिरने का वस्त्र (आधत्त) धारण करो॥ ३२॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥ ३३॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका म० ऋ०, गायत्री छ० और पितर देवता है। इसको पढ़ते में पुत्र की इच्छावाली पत्नी बीच के पिण्ड को उठाकर खालेय। मंत्रार्थ-(पितरः)हे पितरों!(यथा) जैसे (इह) इस ऋतु में (पुरुषः) देव पितर मनुष्यों की अभिलाषा को पूरी करनेवाला (असत्) होवे, इसप्रकार (पुष्करस्रजम्) पुष्कर मालाधारी अश्विनीकुमार की समान नीरोग सुन्दर (कुमारम्) पुत्ररूप (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) स्थापन करो॥३३।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका म० ऋ०, त्रिपदाविराट् छन्द और आप देवता है, इसको पढ़कर कुशमार्जन से बचे जल को पिंडों पर सींचे। मंत्रार्थ—(ऊर्जम्) अनेक प्रकार के स्वादुरस (अमृतम्) सकल रोग और मृत्युनाशक (परिस्रुतम्) पुष्पसार (घृतम्) घृत (कीलालं) सब बंधन दूर करनेवाले (पयः) दुग्ध को (वहन्तीः) धारण करनेवाले जलों (स्वधा, स्थ) पितरों की हविःस्वरूप हो (मे) मेरे (पितॄन्) पितरों को (तर्पयत) तृप्त करो ॥ ३४ ॥

इन दोनों अध्यायों का दयानन्दजी का किया अर्थ ब्राह्मण कल्पसूत्र मीमांसा आदि के सर्वथा विरुद्ध होनेके कारण मान्य नहीं होसक्ता ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखीय भारद्वाजगोत्रोद्भूतगौडवंशावतंस श्रीमज्ज्वालानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा उव्वटमहीधरादिप्राचीनभाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भावार्थसहित इष्यपोशादि पित्र्यान्त द्वितीय अध्याय समाप्त.



आदधे) अन्नादि लाभ की इच्छा के लिए, अन्न के भक्षक, अग्नि को, स्थापन करता हूँ। और उसको स्थापन करके (भूम्ना, द्यौरिव) बहुतायत से तारागण से भरे द्युलोक की तुल्य पुत्र पौत्र आदि से युक्त होऊँ (वरिम्णा, पृथ्वीव) बहुतों के आश्रय से बड़ी होने के कारण, पृथ्वी की समान अनेकों का आश्रय होऊँ (तैत्तिरीय उपनिषद् के ५ वें अनुवाक में ३ व्याहृति का विस्तार के साथ वर्णन है) ॥ ५ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में एक मंत्र है, उसका सर्पराज्ञी कद्रू ऋ०, गायत्री छ०, और अग्नि देवता है, यहां से तीन मंत्रों को पढ़कर गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि को क्रम से स्थापन करे। मन्त्रार्थ—(अयम्) यह अग्नि (गौः) यज्ञसाधनार्थ यजमान के घर जानेवाला (पृश्निः) अनेकों वर्ण की ज्वालायुक्त (आक्रमीत्) सब ओर तीनों अग्नियों के स्थानों में पादक्रमण करता हुआ (पुरः, मातरम्, असदत्) मैंने आहवनीयरूप से पृथ्वीको, पाया (स्वः, प्रयन्) सूर्यरूप से स्वर्ग में, विचरा, (पितरञ्च असदत्) द्युलोक को भी, प्राप्त किया अर्थात् अग्नि से सब, जगत् का पालन होता है ॥ ६ ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उस का प्र० ऋ०, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है। वायुरूप से अग्निकी स्तुति करते हैं। मंत्रार्थ—(अस्य, रोचना, प्राणात्, अपानती, अन्तः, चरति) इस अग्नि की, वायुनामक कोई शक्ति, प्राण के अनन्तर, अपान की शक्ति को बढाती हुई, पृथिवी स्वर्ग के मध्य में, चलती है। इस प्रकार वायु आदित्यस्वरूप अपनी शक्ति से जगत् के ऊपर अनुग्रह करके (महिषः, दिवम्, व्यख्यत्) अग्नि, भोगस्थान द्युलोक को

विशेष प्रकाशित करता हुआ ॥ ७ ॥

त्रिꣳशद्धाम॒ वि रा॑जति॒ वाक् प॑त॒ङ्गाय॑ धीयते। प्रति॒ वस्तो॒रह॒द्युभिः॑ ॥ ८ ॥

इस कण्डिका के १ मंत्र का प्र० ऋ०, और अग्नि देवता है। इस से अग्नि का उपस्थान होता है। मंत्रार्थ (वाक्, त्रिंशद्धाम, विराजति) जो वेदवाणी, तीस मुहूर्त्त स्थानों में, शोभा पाती है (प्रतिवस्तोः), अहद्युभिः, पतङ्गाय, धीयते) प्रतिदिन, प्रस्तारित आगे कहे रूपों से, अग्नि के अर्थ, उच्चारण कीजाती है। अर्थात् वेदमंत्रों में अग्नि की जो स्तुति कीजाती है, वह विशेष विराजित होती है ॥ ८ ॥

अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॑। सूर्य्यो॒ ज्योति॒र्ज्योतिः॒ सूर्य्यः॒ स्वाहा॑। अ॒ग्निर्वर्च्चो॒ ज्योति॒र्वर्च्चः॒ स्वाहा॑। सूर्य्यो॒ वर्च्चो॒ ज्योति॒र्वर्च्चः॒ स्वाहा॑। ज्योतिः॒ सूर्य्यः॒ सूर्य्यो॒ ज्योति॒ः स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में। १ अग्निरित्यादि। २ सूर्योज्योतिरित्यादि ३ अग्निर्वर्चेरित्यादि। ४ सूर्योवर्चेरित्यादि। ५ ज्योतिः सूर्यइत्यादि ५ मंत्र हैं। ऋषि पहिले और दूसरे का सक्षा, तीसरे चौथे का प्र० और पाँचवें का जीवल। छन्द पाँचों का एकपदा गायत्री, तथा देवता पाँचों का लिङ्गोक्त है। यहाँ से अग्निहोत्र के मंत्र हैं। पहिले मंत्र को पढ़कर सायंकाल समिधा से होम करे। मंत्रार्थ—(अग्निः, ज्योतिः, ज्योतिः, अग्निः, स्वाहा) जो अग्निदेव है, वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है, वही अग्निदेव है, ऐसे अग्नि को मैं हवि देता हूँ। दूसरे मंत्र से प्रातःकाल होम करे। मंत्रार्थ—(सूर्यः, ज्योतिः, ज्योतिः, सूर्यः, स्वाहा) जो सूर्य देवता है, वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है, वही सूर्य है, इससे ज्योतिको मैं हवि देता हूँ। ब्रह्मतेज चाहने वाला ३ रे मंत्र से सन्ध्या के समय हवन करे। मंत्रार्थ—(अग्निः, वर्चः ज्योतिः, वर्चः, स्वाहा) जो अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है, जो ब्रह्म ज्योति

है वही तेज है, उस के अर्थ अच्छा होम हो ब्रह्मतेज की इच्छा से प्रातःकाल हवन करने का ४ था मंत्र है उस का अर्थ—(सूर्यः, वर्चः ज्योतिः, वर्चः, स्वाहा) जो सूर्य है, वही ब्रह्मतेज है, जो ज्योति है, वही तेज है, उस के अर्थ श्रेष्ठ होम हो। प्रातःकाल हवन करने के पांचवें मंत्र का अर्थ—(ज्योतिः, सूर्यः, सूर्यः, ज्योतिः, स्वाहा) जो ज्योति है, वही सूर्य है, जो सूर्य है, वही प्रकाशज्योति है, उस के लिए श्रेष्ठ होम हो ॥ ९ ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, । १ सजूरित्यादि । २ सजूरित्यादि दोनों का प्रजापति ऋ०, एकपदा गा०छं० और लिङ्गोक्त देवता है। दोनों मंत्रों को पढ़कर हवन कियाजाता है । मंत्रार्थ—१ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सब के प्रेरक, सूर्यदेव के साथ, प्रीति करने वाले (इन्द्रवत्या, रात्र्या, सजूः) इन्द्र देवतावाली, रात्रि के साथ, प्रीति करनेवाले (जुषाणः, अग्निः, वेतु, स्वाहा) हम पर प्रीति करनेवाले, अग्नि देवता, इसको स्वीकार करें, उनको यह श्रेष्ठ आहुति दी । २ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सर्वप्रेरक, देव के साथ प्रीति करनेवाले (इन्द्रवत्या, उषसा, सजूः) इन्द्र देवतावाली, उषा के साथ, प्रीति करनेवाले (जुषाणः, सूर्यः वेतु, स्वाहा) हम पर प्रेम करनेवाले सूर्यदेव, आहुति को वा हमारे कर्म को प्राप्त करो, उनके निमित्त यह सुन्दर होम हो ॥ १० ॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का गौतम ऋ०, निचृद्गायत्री छं०, और अग्नि देवता है। यहां से लेकर २६ वीं कण्डिका तक के मंत्रों को तीन २ बार पढ़कर तीन २ आहुति देताहुआ दोनों म० .. ी अग्नि का उपस्थान करे, पहिले आहवनीय का उपस्थान

है। मन्त्रार्थ—(अध्वरं, उपप्रयन्तः, आरे, च, अस्मे, शृण्वते, अग्नये, मन्त्रं, वोचेम) यज्ञ के प्रति, जातेहुए हम, दूर, और, अपने समीप, सुननेवाले, अग्नि देव के अर्थ, मनन करतेही रक्षा और उच्चारण करते ही मनोरथ सिद्ध करनेवाले शब्दसमूह रूप मन्त्र को, उच्चारण करते हैं ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा७ँ रेता७ँसि जिन्वति ॥ १२ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का विरूप ऋ०, निच्यृद्गायत्री छ०, और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, अग्निः, दिवः, मूर्द्धा, ककुत्) यह, अग्नि, स्वर्गलोक का, शिर की समान प्रधान, वैल के कन्धे की समान सर्वोन्नत वा जगत् का महान् कारण है। (पृथिव्याः, पतिः) सूर्यरूप से प्रकाश देने के कारण पृथिवी का, पालक है (अपाम्, रेतांसि, जिन्वति) जलों के, सारभागों को, पुष्ट करता है अर्थात् *द्युलोक से गिरतेहुए वर्षा के जलों को अन्नादि के पकाने की शक्ति* देता है, वा आहुति के फल से वर्षा को उत्पन्न करता है॥ १२॥

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै । उभा दातारा विषा७ँ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का भरद्वाज ऋ०, त्रिष्टुप्छन्द और इन्द्राग्नी देवता हैं । मन्त्रार्थ—(इन्द्राग्नी, वाम्, उभा, आहुवध्यै) हे इन्द्र अग्नि देवताओं!, तुम, दोनों को, आव्हान करना चाहता हूं (उभा, सह, राधसः, मादयध्यै) दोनों को, एकसाथ, हविरूप धन से, प्रसन्न करना चाहता हूँ। (उभा, इषाम्, रयीणाम्, दातारा) तुमदोनो, अन्नों के, और धनों वा जलों के, देनेवाले हो। (वाम्, उभा, वाजस्य, सातये, हुवे) तुम, दोनों को, अन्न के, दानार्थ, आव्हान करता हूँ ॥ १३ ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ १४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का देवश्रव और देववात ऋषि, स्वराड् अनुष्टुप् छन्द और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने, अयम्, ते ऋत्वियः, योनिः) हे गार्हपत्य अग्ने! यह, तुम्हारा, सायं प्रातःकाल सम्बन्धी, उत्पत्ति स्थान है (यतः, जातः, अरोचथाः) जिससे, प्रकट हुए तुम, कर्मकाल में प्रज्वलित होते हो (तम्, जानन्, आरोह) उस गार्हपत्य को, जानते अर्थात् अपना अंश मानतेहुए, उसमें प्रविष्ट हूजिये (अथ, नः, रयिम्, आवर्द्धय) फिर, हमारे निमित्त, यज्ञ साधन धनको, चारों ओर से बढाइये॥१४॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे॥१५॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वामदेव ऋषि, जगती वा भुरिक् त्रिष्टुप् छ०, और अ० दे० है। मन्त्रार्थ—(अयम्, होता, यजिष्ठः अध्वरेषु, ईड्यः, इह, धातृभिः, आधायि) यह अग्नि, देवताओं का आवाहन करनेवाला, यज्ञ में स्थित वा अतिशय यज्ञ करानेवाला, यज्ञों में, ऋत्विजों से स्तुति कियाहुआ, इस कर्म स्थान में, स्थापन करनेवालोंकरके, स्थापित कियागया है। (अप्नवानः, भृगवः, विशेविशे, चित्रम्, विभुम्, यम्, वनेषु, विरुरुचुः) पुत्रवान्, यज्ञविद्या जाननेवाले भृगुवंशी मुनियों ने, यजमान के उपकारार्थ, आश्चर्यरूप, व्यापक शक्तिवाले, जिस अग्नि को, वनों में, प्रज्वलित किया है॥१५॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम्॥१६॥

इस कण्डिका के मन्त्रका अवत्सार ऋ०, गा० छ० और गोऽग्निपय देवता है। मन्त्रार्थ—(अह्रयः, अस्य, प्रत्नाम्, द्युतम्, अनु, ऋषिम्, सहस्रसाम्, शुक्रम्, पयः दुदुह्रे) संस्कारशुद्ध होने से अयोग्यता की लज्जा से रहित ऋषि, इस अग्नि की, पुरातन, कान्ति को, अनुसरण करके, दोहनस्थान में जानेवाली गौके द्वारा सहस्रोंकार्यों

के साधक, शुद्ध, दूध को, दुहते हुए ॥ १६ ॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि । वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ १७ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का अवत्सार ऋ० त्रिष्टुप् छ० और अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ–(अग्ने, तनूपाः असि) हे अग्निदेव, तुम स्वभाव से ही अग्निहोत्रियों के रक्षक, हो (मे, तन्वम्, पाहि) मेरे, शरीर को, रक्षा करो (अग्ने, आयुर्दा, असि) हे अग्ने तुम, आयु देनेवाले, हो (मे, आयुः, देहि) मेरे लिये, आयु, दीजिये (अग्ने, वर्चोदा, असि) हे अग्ने, तेज देनेवाले, हो (मे, वर्चः, देहि) मेरे लिए, तेज, दीजिए (अग्ने, मे, तन्वाः, यत् ऊनम्, तत्, आपृण) हे अग्निदेव, मेरे शरीर का, जो अङ्ग, कम हो, उसको, सब प्रकार से पूर्ण करो ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वा शत ᳪ हिमा द्युमन्त ᳪ समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृत ᳪ सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का अवत्सार ऋ० निचृद्ब्राह्मी पंक्ति वा महापंक्ति छन्द और अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ–(अग्ने, इन्धानाः, वयस्वन्तः, सहस्वन्तः, अदब्धासः, द्युमन्तम्, वयस्कृतम्, सहस्कृतम्, सपत्नदम्भनम्, अदाभ्यम्, त्वा, शतम्, हिमाः, समिधीमहि) हे अग्निदेव ! दीप्तिमान्, अन्नवान्, बलवान्, पीडारहित हम, कान्तिमान, अन्नवान, बलवान, शत्रुओं के हिंसक, किसी से पीडा न पानेवाले, तुमको, सौ, वर्षोंपर्यन्त, निरन्तर प्रज्वलित करें । अर्थात् हमको यह सब पदार्थ प्राप्त हों (चित्रावसो, स्वस्ति, ते, पारम्, अशीय) हे चन्द्रतारागणादिकी निवासस्थान रात्रि, कल्याणपूर्वक, तेरे, पारको, पाऊं । देवयज्ञ में राक्षस न घुस आवें इसलिये रात्रि से प्रार्थना की है ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणा ᳪ स्तुतेन ।
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया
सᳬ रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥ १९॥

इस मंत्र का अवत्सार ऋ०, जगतीछन्द और अग्नि देवता है मंत्रार्थ—(अग्ने, त्वम्, सूर्यस्य, वर्चसा, समगथाः) हे अग्निदेव! तुम, रात में सूर्य के, तेज से, युक्त हुए हो (ऋषीणाम्, स्तुतेन, सम्) मंत्रों के, स्तोत्र से, संयुक्त हुए हो (प्रियेण, धाम्ना, सम्) प्रिय, आहुति से, संयुक्तहुए हो। उसी प्रकार (अहम्, आयुषा, संग्मिषीय) मैं, आपकी कृपा से अपमृत्युरहित आयु से, युक्त होऊँ (वर्चसा, सम्) विद्या ऐश्वर्य आदि के तेज से युक्त होऊँ (प्रजया, सम्) पुत्रादि से, संयुक्त होऊँ (रायस्पोषेण, सम्) धनकी पुष्टि से, संयुक्त होऊँ ॥ १९ ॥

अन्धस्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज
स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय॥

इस कण्डिका के मंत्र का याज्ञवल्क्य ऋ०, भुरिग्बृहती छ० और गौ देवता है। बीसवीं और इक्कीसवीं कण्डिका को पढकर गौओं, के पास जाय मंत्रार्थ—हे गौओं ! तुम (अन्धः, स्थ) दूध आदि अन्न को उत्पन्न करनेवाली, हो (वः, अन्धः, भक्षीय) तुम्हारे दूध घी आदि को, खाता रहूँ (महः, स्थ) पूज्यरूप, हो (वः, महः, भक्षीय) तुम्हारी, पूज्यता को, पाऊँ (ऊर्जः, स्थ) बलरूप, हो (वः, ऊर्जं, भक्षीय) तुम्हारे, दुग्धादि के द्वारा बल को, पाऊँ (रायस्पोषः, स्थ) धनपुष्टिरूप, हो (वः, रायस्पोषम्, भक्षीय) तुम्हारे अनुग्रह से, धन की पुष्टि को, पाऊँ ॥ २० ॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिल्लोकेऽस्मि-
न्क्षये। इहैव स्त मापगात ॥ २१॥

इस कण्डिका के मंत्र का याज्ञवल्क्य ऋ०, उष्णिक् छ०, और गौ देवता है। मन्त्रार्थ—(अस्मिन्, गोष्ठे, अस्मिन, लोके, अस्मिन क्षये, रमध्वम्) हे धनप्राप्ति की साधन गौओं, इस, दुहने के स्थान

में, इस, गोठ में, इस, यजमान् की दृष्टिमें वा रासमें, इस, यजमानि के घर में, क्रीडा करो (इह, एव, स्त, मा, अपगात) यहां यजमान केघर में, ही, रहो, मत, जाओ ॥ २१ ॥

स छ्ँहितासि विश्वरूप्यूर्जमाविश गौपत्येन । उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ २२॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । पहिले संहितेत्यादि का वैश्वामित्र मधुच्छन्दा ऋषि, भुरिगासुरी गायत्री छ०, गौ देवता । दूसरे उपेत्यादि का पूर्वोक्त ऋ०, गायत्री छन्द, और अग्नि देवता है। पहिले मंत्र से गौ को स्पर्श करे । मन्त्रार्थ-हे गौ! तुम (विश्वरूपी, संहिता, असि) अनेकों रूपवाली, हवि के निमित्त यज्ञ में संयुक्त, हो (ऊर्जा, गोपत्येन, माम्, आविश) दूध आदि रस से, गोस्वामित्व से, मुझ में, सब प्रकारसे प्रवेशकर अर्थात् हमारा गोस्वामित्व अटल रहे । दूसरे मंत्र से गार्हपत्य में जाय। मंत्रार्थ—(दोषावस्तः, अग्ने, वयं, दिवे दिवे, धिया, नमोभरन्तः, त्वा, उपएमसि) रातमें भी निरन्तर वसनेवाले, हे अग्निदेव ! हम, प्रतिदिन श्रद्धायुक्त बुद्धि से, नमस्कार करते हुए, तुम को, प्राप्त होते हैं ॥ २२॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमान छ्ँस्वे दमे॥ २३॥

इस कण्डिका के मंत्र का वै० मधु० ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(राजन्तम्, अध्वराणाम्, गोपाम्, ऋतस्य, दीदिविम्, स्वे, दमे, वर्धमानम्) दीप्तिमान, यज्ञों के, रक्षक, सत्यवचन रूपव्रत के, रक्षक, अपने, घर में, सोम आदि से बढ़नेवाले। अग्नि की हम शरण हैं ॥ २३ ॥

सनः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वै० मधु० ऋ०, विराट् गायत्री छन्द

ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, निच्यृद् गायत्री छन्द और ब्रह्मणस्पति देवता है मंत्रार्थ—(ब्रह्मणस्पते, अररुषः मर्त्यस्य, शंसः, धूर्तिः, नः, मा, प्रणक्, नः, आरक्ष) हे वेदरक्षक जगदीश्वर !, देवपितरों को कभी हव्यकव्य न देनेवाले यज्ञ से विमुख, मनुष्य का, अनिष्टचिन्तन, द्रोह, हमको, न, सतावे, हमारी, सबप्रकार से रक्षा करो ॥ ३० ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्य्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, विराड् गायत्री छंद और आदित्य देवता है । मन्त्रार्थ (मित्रस्य, अर्यम्णः, वरुणस्य, त्रीणाम्, महि, द्युक्षम्, दुराधर्षम्, अवः, अस्तु) प्राणवृत्ति और दिन के अधिष्ठात्रीदेव मित्र, नेत्र वा सूर्य के अधिष्ठात्री देव अर्यमा, अपान और जलों के अधिष्ठात्री देव वरुण, इन तीनों से सम्बन्ध रखनेवाली, बड़ी, कान्तिमान् सुवर्णादि से युक्त, तिरस्कार पाने को अशक्य, रक्षा, हमको प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का सत्यधृति वारुणी ऋषि, निच्यृद्गायत्री छन्द और आदित्य देवता है । मन्त्रार्थ—(तेषाम्, अमा, अध्वसु, वारणेषु, चन, अघशंसः, रिपुः, नहि ईशे) ईश्वर और इनतीन देवताओं की उपासना करने वालों के, घर में, मार्ग में, दुर्गम वन आदि और संग्रामों में, भी, स्थित यजमान को, कष्टपहुँचाने को पापकर्मा, शत्रु, समर्थ नहो ॥ ३२ ॥

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का स०धृ०वारु० ऋ०, वि० गा०. छन्द और आदित्य देवता है । मन्त्रार्थ—(हि, ते, अदितेः, पुत्रासः,

मर्त्याय, प्रजीवसे, अजस्रम्, ज्योतिः, प्रयच्छन्ति) क्योंकि, वह मित्र अर्यमादि,देवमाता के,पुत्र इसमनुष्य यजमानको, चिरजीवन के निमित्त, निरन्तर, अखण्ड तेज, देते हैं ॥ ३३ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का मधुच्छन्दाऋ०, पथ्या बृहती छ०, और इन्द्र देवता है। मन्त्रार्थ—(इन्द्र, कदाचन, स्तरीः, न, असि) हे परमैश्वर्यवान् तुम, कभी भी, हिंसक, नहीं, हो (दाशुषे, उप इन्नु, सश्चसि) हवि देनेवाले के, हवि को समीप होकर, सेवन करते हो (मघवन, देवस्य, ते, भूय इत्, दानम्, नु, इत, उपपृच्यते)हे ज्ञानधनवाले इन्द्र नामक जगदीश्वर, दीप्यमान, तुम्हारे, बहुतसे, दान को, शीघ्र ही यजमान, प्राप्त होता है ॥३४॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका विश्वामित्र ऋषि, निचृद्गायत्री छन्द और सविता देवता है । मन्त्रार्थ–(सवितुः, देवस्य, तत्, वरणीयम्, भर्गः, धीमहि, यः, नः, धियः, प्रचोदयात्) आदित्य मण्डलस्थित अन्तर्यामी सविता नामक, प्रकाशस्वरूप परब्रह्म के, उस, सबके वरणीय, सर्वपापनिवर्त्तक तेज को, ध्यान करते हैं, जो सविता देवता, हमारी, बुद्धियों को, सत्कर्मोंमें प्रेरित करैं ॥३५॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ२॥ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वामदेव ऋषि, नि० गायत्री छन्द और अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—हे अग्ने (ते, दूडभः, रथः, अस्मान्, विश्वतः, पर्यश्नोतु, येन, दाशुषः, रक्षसि) तुम्हारा, स्वच्छन्दगतिवाला, रथ, हमको, रक्षा करने के लिए सबदिशाओं में स्थित हो, जिसके द्वारा, यजमानों की, रक्षा करते हो ३६

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः

पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि। शꣳस्य पशून्मे पाहि। अथर्य पितुं मे पाहि॥ ३७॥

इस कण्डिका में चार मन्त्र हैं, १ भूरित्यादि का वामदेवऋषि ब्राह्मी उष्णिक् छन्द, और अग्नि देवता है। २ नर्येत्यादि का वाम० ऋ० यजु छ०, अग्नि दे० शंस्येत्यादि का वाम० ऋ०, यजु छ०, अग्नि देवता। ४ अथर्येत्यादि का वाम० ऋ०, यजु छ० और अग्नि देवता है। पहिले मंत्र से क्षुल्लकोपस्थान, दूसरे से ग्रामान्तर को जातेसमय गार्हपत्य उपस्थान, तीसरे सेआहवनीयोपस्थान और चौथे से दक्षिणाग्नि का उपस्थान करै। मन्त्रार्थ—१ (भूः, भुवः स्वः, प्रजाभिः,सुप्रजाः, वीरैः, सुवीरः, पोषैः,सुपोषः, स्याम् (हे अग्ने तुम भूः,भुवः,स्वःतीन व्याहृति वा तीनलोकस्वरूप हो तुम्हारे अनुग्रह से, सन्तानों से, सुन्दर सन्तानवाला, वीरपुत्रों से,प्रशंसित वीर पुत्रों वाला, और अधिक सम्पत्तियों से, सुन्दर सम्पत्तिवाला, प्रसिद्ध होऊं (नर्य, मे, प्रजाम्, पाहि) हे हिंसाधक अग्ने, मेरी, पुत्रादि प्रजा को, रक्षाकरो। ३—(शंस्य, मे, पशून, पाहि) हे अनुष्ठान वालों से प्रशंसित अग्ने, मेरे, गौ आदि पशुओं को, रक्षाकरो। ४—(अथर्य, मे, पितुम्, पाहि) हे निरन्तर गमन शील अग्ने, मेरे, पिता को, रक्षा करो॥ ३७॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व॥ ३८॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और आह० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(सम्राट्, अग्ने, अभ्यागमन्म, विश्ववेदसम्, अस्मभ्यम्, वसुवित्तमम्, द्युम्नम्, सह, अभि आयच्छस्व) हे सम्यक्प्रदीप्त, अग्निदेव!, ग्रामान्तर से आये हैं, क्यों कि—तुम विश्व के सब चरित्र जानते हो, हमको, अत्यन्त धन के देनेवाले हो, धनयुक्त बलके सहित, आइये, और हम में धन बल स्थापित कीजिये॥ ३८॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अ-

मे गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३९ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का आसुरि ऋ०, न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्द और गार्हपत्याग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अयम्, गार्हपत्यः, अग्निः, गृहपतिः, प्रजायाः, वसुवित्तमः) यह, गार्हपत्य, अग्निही, हमारे घरका अधिपति है, पुत्र पौत्रादि का अनुग्रह करनेवाला, अत्यन्त धनवान् है। (गृहपते, अग्ने, द्युम्नम्, अभि, सह अभि, आयच्छस्व) हे गृहपालक, अग्निदेव, धन को, सब ओर से, बलको भी सब ओर से, दीजिये ॥ ३९ ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः। अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ४० ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि ऋ०, निचृद् अनुष्टुप् छ०, और दक्षिणाग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(अयम्, अग्निः, पुरीष्यः, रयिमान्, पुष्टिवर्द्धनः, पुरीष्य, द्युम्नम्, अभि, सह अभि, आयच्छस्व) यह, दक्षिणाग्नि, पशुओं का हितकारी, धनी, पुष्टिवर्धक है, हे पशुओं के हितकारिन् !, सब ओर से धनको, सब ओर से बलको, दीजिये ॥ ४० ॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥४१॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि, ऋषि, आर्षी पंक्ति छन्द और वास्तु अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ-(गृहाः, मा, बिभीत) हे घर के अधिष्ठाथी देवताओं !, मत, डरो (मा च, वेपध्वम्) और मत. काँपो (ऊर्जम्, बिभ्रतः, एमसि) बल को, धारण करनेवाले आपके, निकट प्राप्त हुए हैं (ऊर्जम्, बिभ्रत्, सुमनाः, सुमेधाः, मनसा, मोदमानः, गृहान्, एमि) मैं भी बलको, धारण करता हुआ, श्रेष्ठमनवाला, सुन्दर बुद्धि से युक्त, दुःखरहित मन से, प्रसन्न होता हुआ, घरों में, प्राप्त होता हूं ॥ ४१ ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका शंयु ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और वास्तुपति अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ-(प्रसवन्, येषाम्, अध्येति) देशान्तर को जाताहुआ यजमान, जिन घरों की, कुशल चाहता है (येषु, बहुः, सौमनसः, गृहान्, उपह्वयामहे) जिन घरों में, बहुत, प्रीति करता है, उन गृहों को, प्रीति से आव्हान करते हैं । घर के अधिष्ठात्री देव हमारे निकट आवें (ते, जानतः, नः, जानन्तु) वह हमारे बुलाएहुए देवता, उपकार को जाननेवाले, हम को, अकृतघ्नी जानें ॥ ४२ ॥

उप॑हूता इ॒ह गाव॒ उप॑हूता अ॒जाव॑यः । अथो॒ अन्न॑स्य की॒लाल॒ उप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः । क्षेमा॑य वः॒ शान्त्यै॒ प्रप॑द्ये शि॒वꣳ श॒ग्मꣳ शं॒योः शं॒योः ॥ ४३ ॥

इस कण्डिकामें दो मन्त्र हैं, उपहूता इत्यादि पहिले मंत्रका शंयु बार्हस्पत्य ऋ०, भुरिग्जगती छन्द, वास्तुपति देवता । क्षेमायेत्यादि का शंयु बार्हस्पत्य ऋ०, यजुश्छन्द और वास्तुपति देवता है । मंत्रार्थ-(इह, नः, गृहेषु, गावः, उपहूताः, अजावयः, उपहूताः, अथ, अन्नस्य, कीलालः, उपहूतः) इन, हमारे, घरों में, गौएं, हमारी आज्ञा से सुखपूर्वकरहो, बकरी भेड़आदि सुखपूर्वक रहो, और, अन्नसम्बन्धीरस, बढ़ता रहै । यह हमारी आप से प्रार्थना है । २ (क्षेमाय, शान्त्यै, वः, प्रपद्ये) हे गृहों ! के अधिष्ठात्री देवों ! धन की कुशल केलिए, सकल अरिष्टों की शान्ति के लिए, आप को, शरणागत होता हूँ । (शंयोः, शिवम्, शंयोः, शग्मम्) सब सुखसाधन चाहने वाले मुझ यजमान का, कल्याण हो, पारलौकिक सुखचाहनेवाले मुझ यजमान का, कल्याण हो ॥४३॥

अथ चातुर्मास्यमन्त्राः

प्र॒घा॒सिनो॑ हवामहे म॒रुत॑श्च रि॒शाद॑सः । क॒र॒म्भेण॑ स॒जोष॑सः ॥ ४४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का प्रजापति ऋ०, गायत्री छन्द और मरुत् देवता है । चातुर्मास्य यज्ञ के चार पर्व हैं, वैश्वदेव, वरुण

प्रघास, साकमेध, शुनासीरीय। वैश्वदेव और शुनासीरीय का इस में उपदेश नहीं है, शेष दोनों का विधान करते हैं। वरुणप्रघास नाम दूसरे पर्व में दक्षिण उत्तर दोनों वेदियों में हवि स्थापन कर आवाहन करे। मन्त्रार्थ—(रिशादसः, करम्भेण, सजोषसः, च, प्रघासिनः, मरुतः, हवामहे) शत्रु की कीहुई हिंसा को दूर करने वाले, दधि मिले सक्तु के साथ सब समान प्रीति करने वाले तथा, प्रघासनामक हवि को भक्षण करनेवाले, हे मरुद्गणों! हम तुम्हारा आवाहन करते हैं ॥ ४४ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का प्रजापति ऋषि, स्वराट् अनुष्टुप् छन्द और मरुत् देवता है। यजमान पत्नी को साथ लेकर करम्भ भरे कई पात्रों को शूर्प में मस्तकपर रखकर वेदी के पूर्व पश्चिम में खड़ा होकर दक्षिणाग्नि में हवन करताहुआ इस मंत्र को पढ़े। मन्त्रार्थ—(यत्, एनः, ग्रामे, यत्, अरण्ये, यत्, सभायाम्, इन्द्रिये, अचकृम, तत्, इदम्, अवयजामहे, स्वाहा) जो, पाप, ग्राम में वसतेहुए, जो पाप, वन में, जो पाप, सभा में और इन्द्रियोंके विषय में, किया है, उस, इस पापको, आहुति देकर नष्ट करता हूँ, यह हवि पापनाशक देवता को सुन्दर रूपसे प्राप्तहो ॥ ४५ ॥

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः। महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का अगस्त्य ऋषि, भुरिक् पंक्ति छन्द और इन्द्रमरुत् देवता है। इसका जप करे। मन्त्रार्थ—(शुष्मिन्, इन्द्र, अत्र, पृत्सु, देवैः, नः, मा, सु, ते, अवयाः, हिस्म, मीढुषः, हविष्मतः, यव्याः महश्चित्, गीः, मरुतः, वन्दते) हे बलवन्!, इन्द्रदेव, इन, संग्रामों में, मरुत् देवताओं के साथ, हमको, विनष्ट न करो, भले प्रकार रक्षा करो, तुम्हारा, यज्ञीयभाग, स्थित है,

वर्षा के द्वारा जगत् को सींचनेवाले, हवि पानेवाले आपकी, यवकी पिट्ठी के करम्भ पात्रों से निष्पन्न हुई होमक्रिया से, निश्चित पूजा करते हैं, हमारी स्तुति, आपके सखा मरुत्देवताओं को, प्रणाम करती है ॥ ४६ ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥ ४७ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का अगस्त्य ऋषि, विराट् अनुष्टुप् छन्द और अग्निदेवता है । प्रतिप्रस्थाता यजमान को, करम्भपात्र के होम-स्थान से अपने स्थान को लेजाताहुआ इस मन्त्र को पढ़े । मन्त्रार्थ-(कर्मकृतः, मयोभुवा, वाचा, सह, कर्म, अक्रन्, सचाभुवः, देवेभ्यः कर्मकृत्वा, अस्तम्, प्रेत) वरुणप्रघास कर्म को करनेवाले ऋत्विज्, सुखरूप, स्तुति के साथ, वरुणप्रघास को, करचुके, इस कर्मस्थित हे ऋत्विजों देवताओं के लिए, वरुणप्रघास कर्म, करके, घर को, जाओ ॥ ४७ ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् । पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का और्णवाभ ऋषि, ब्राह्मी अनुष्टुप् छन्द और यज्ञ देवता है । वरुणप्रघासकर्म के अन्त में, स्त्री पुरुष को जल में अवभृथस्नान करावे, उस समय पढने का यह मन्त्र है। मन्त्रार्थ—(निचुम्पुण, अवभृथ, निचेरुः, असि) हे मन्दगति जलाशय, अवभृथ नामक यज्ञ, तुम अत्यन्तगमन करनेवाले, हो (निचुम्पुण) यहां पर मन्दगति हूजिये (देवैः, देवकृतम्, एनः, अवयासिषम्) ज्ञानेन्द्रियों से,जो कुछ हविके स्वामी देवता ओं का, ज्ञानपूर्वक पापकिया, वह सब मैंने इस जलाशय में त्यागदिया (मर्त्यैः, मर्त्यकृतम्, अव) हमारे सहायक ऋत्विजों करके, यज्ञ देखने को आएहुए मनुष्यों का, अवज्ञा रूप पाप किया है, उसको इसजल में त्यागदिया, (देव, पुरुराव्णः, रिषः,)

पाहि) हे अवभृथ यज्ञ के अधिष्ठात्री देव, विरुद्धफल देनेवाले वध वा हिंसा से, हमारी रक्षा करो ॥ ४८ ॥

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥ ४९ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका और्णवाभ ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है। इस मन्त्र को पढ़कर दर्वीके द्वारा स्थालीसे ओदन ग्रहण करे। मन्त्रार्थ—(दर्वि, पूर्णा, परा, पत) हे अन्न देने के साधन काष्ठपात्र, तुम स्थाली के निकट से अन्न को ग्रहण करने से पूर्ण होकर, उत्तमता को प्राप्त होतेहुए, इन्द्र के प्रति गमन करो। (सुपर्णा, पुनः, आपत) कर्मफल से सम्यक् पूर्ण होकर, फिर, हमारे निकट आओ (शतक्रतो, वस्नेन, इषम्, ऊर्जम्, विक्रीणावहै) हे बहुकर्मा इन्द्र, मूल्य द्वारा, अभीष्ट हविरूप अन्न को, परस्पर बेचैं। अर्थात् मैं तुम्हें हविदेता हूँ और तुम मुझको बल तथा पुण्यदो ४९

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारञ्च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

इस कण्डिका के मंत्र का और्णवाभ ऋषि, भुरिक् अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है। इस को पढकर आहुति देय। मन्त्रार्थ मन में यह कल्पनाकरे कि—इन्द्र कहरहे हैं (मे, देहि, ते, ददामि) हेयजमान! तुम मुझ इन्द्र के अर्थ, प्रथम हविदो, तुझयजमान के अर्थ, पीछे अपेक्षित हवि दूँगा (मे, निधेहि, ते, निदधे) मुझ इन्द्रके निमित्त, पहिले हवि सम्पादन कर, तुझ यजमान के अर्थ, फिर मैं इच्छितफल देताहूँ। यजमान कहता है—(निहारम्, मे, हरासि, निहारम्, ते, निहराणि, स्वाहा) हे इन्द्र मूल्य से खरीदने योग्य पदार्थ, मुझे दीजिये, मूल्यरूप हवि को, मैं तुम्हारे अर्थ समर्पण करता हूँ, यह आहुति भलीप्रकार फलीभूत हो ॥५०॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी॥५१॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गौतम ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द

और इन्द्र देवता है। इस को पढ़कर पितृयजन करे। मंत्रार्थ–इस पितृयज्ञ कर्म में जो पितर हैं वह हमारे दिए हविस्वरूप अन्न को (अक्षन्, हि, अमीमदन्त, मियाः, अधूषत, मियाः, अवाधूषत) खाचुके, क्योंकि, प्रसन्नहुए, और हमारी भक्ति को जानकर प्रीतियुक्त हो, अपना शिर हिलातेहुए, अपने शरीरों को, कम्पित करतेहुए। और (स्वभानवः, विप्राः, नविष्ठया, मती, अस्तोषत) स्वयं दीप्तियुक्त, वह बुद्धिमान, नवीनबुद्धि से, युक्त होकर, स्तुति करतेहुए, अर्थात् हमारी आहुति को स्वीकार करके कृतज्ञता प्रकाशित की, इस कारण (इन्द्र, नु, ते, हरी, अयोज) हे इन्द्र! तुमभी सन्तुष्ट होकर इन पितरों के साथ मिलने के उद्देश्य से, शीघ्रही, तुम अपने, हरितवर्ण के दोनो घोड़ों को, जाने के निमित्त रथ में जोतो अर्थात् पितरों की तृप्ति से सन्तुष्ट होकर आप को आना चाहिये ॥ ५१ ॥

सु॒सं॒दृशं॑ त्वा व॒यं मघ॑वन् वन्दिषी॒महि॑। प्र नू॒नं पू॒र्णब॑न्धुरः स्तु॒तो या॑सि॒ वशाँ॒ २॥ अनु॒ योजा॒ न्विन्द्र ते॒ हरी॑ ॥ ५२ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गौतम ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द और इन्द्र देवता है, इस से आहवनीय का उपस्थान होता है। मन्त्रार्थ–(मघवन्, वयम्, सुसन्दृशम्, त्वा, वन्दिषीमहि) हे इन्द्रदेव! हम, सबको अनुग्रह युक्त समदृष्टि से देखनेवाले, आपकी, स्तुति करते हैं (स्तुतः, वशान्, अनु, नूनम्, प्रयासि, पूर्णबन्धुरः, इन्द्र, ते, हरी, आयोज) स्तुति कियेहुए तुम, अभिलाषावाले यजमानों को, देखकर, अवश्य, आओगे, कारण कि तुम हमारी कामना पूरी करने को रथपर स्थित हो, अतः हे इन्द्र! तुम, अपने, घोड़ों को, जोतो ॥ ५२ ॥

मनो॒ न्वाह्वा॑महे नाराश॒ꣳसेन॒ स्तोमे॑न। पि॒तॄ॒णां च॒ मन्म॑भिः ॥ ५३ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका बन्धुर्ऋ०, अतिपाद् निचृद् गायत्री

छन्द और मन देवता है। इससे गार्हपत्य का उपस्थान करे। मन्त्रार्थ-(नाराशंसेन, स्तोमेन, च, पितॄणाम्, मन्मभिः नु, मनः, आह्वामहे) हम मनुष्यों के योग्य स्तुति वाले, स्तोत्र, और, पितरों के, इच्छित स्तोत्रों से, शीघ्र, मन के अधिष्ठात्री देवता को, आह्वान करते हैं। अर्थात् पितृयज्ञ को करते समय हमारा मन पितृलोक को गयासा होगया था, उसको बुलाते हैं॥ ५३॥

आ न॒ एतु॒ मनः॒ पुनः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑। ज्योक् च॒ सूर्य्यं॑ दृ॒शे॥ ५४॥

इस कण्डिका के मंत्र का बन्धुर्ऋ०, विराट् गायत्री छन्द और मन देवता है। इस से भी गार्हपत्य का उपस्थान करे। मन्त्रार्थ—(नः, मनः, क्रत्वे, दक्षाय, ज्योक्, जीवसे, सूर्यन्दृशे, च, आएतु) हमारा, मन, यज्ञसङ्कल्प के लिए, कर्मानुष्ठान के उत्साह के लिए, चिरकालतक, जीवन के लिए, चिरकालतक सूर्य के दर्शन के लिए भी, प्राप्तहो॥ ५४॥

पुन॑र्नः पित॒रो मनो॒ ददा॑तु॒ दैव्यो॒ जनः॑। जी॒वं व्रात॑ᳫ्ं सचेमहि॥ ५५॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, निचृद् गायत्रीछन्द और मन देवता है। इससे भी उपस्थान करे। मन्त्रार्थ—(पितरः, दैव्यः, जनः, नः, मनः, पुनः, ददातु) हे पितरो! आपकी आज्ञा से, देवसम्बन्धी, पुरुष, हमारे लिए, हमारे पूर्वोक्त मनको, फिर इस कार्य के लिये देय। इसप्रकार अनुष्ठान करके हम आपके अनुग्रह से (जीवम्, व्रातम्, सचेमहि) जीवन वाले, पुत्र पशु आदिकों को, हम सेवन करें॥ ५५॥

व॒यᳫ्ं सो॑म व्र॒ते तव॒ मन॑स्त॒नूषु॒ बिभ्र॑तः। प्र॒जाव॑न्तः सचेमहि॥ ५६॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, गायत्री छन्द और सोम देवता है। इससे दक्षिणाग्नि का उपस्थान कर जप करे। मन्त्रार्थ (सोम, वयम्, तव, व्रते, तनूषु, मनः, बिभ्रतः, प्रजावन्तः, सचे-

महि) हे पितृयज्ञ के सोमदेव ! हम यजमान. तुम्हारे, व्रतानुष्ठान में वर्त्तमान हुए, आपके शरीरों में, चित्तको, धारण करतेहुए, आपके अनुग्रह से पुत्र पौत्रादि को प्राप्त हुए, हम, सेवन करते हैं ॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।
एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं। एषत इत्यादि पहिले मंत्रका बन्धुर्ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द और रुद्र देवता है । दूसरे एषत इत्यादि मंत्र का याजुषीगायत्री छन्द और रुद्र देवता है । शाकमेध के अङ्ग, पितृयज्ञ के शेषांश त्र्यम्बकयाग [चन्द्रयाग] का आरम्भ होता है, उस में इस कण्डिका के पहिले मंत्र से अवदान हवन करे । मन्त्रार्थ —(रुद्र, ते, स्वस्रा, अम्बिकया, एषः, भागः, तं, जुषस्व) हे पापियों और देहाभिमानियों को रुलानेवाले रुद्र, अपनी, भगिनी, अम्बिका के साथ, यह हमारादिया हुआ, पुरोडाशरूपभाग है, उसको, सेवन करिये । यजमान के जितने पुत्र पौत्रादि पुरुषहों, उनमें से हरएक का एक २ पुरोडाश, फिर उन में से और एक अधिक पुरोडाश निर्वपण करे, उस अतिरिक्त पुरोडाश का होम न करे, किन्तु चूहे के खोदे बिल के समीप खोदी हुई मट्टीपर इस दूसरे मंत्र को पढकर वखेरदेय । मंत्रार्थ-(रुद्र, एष., ते, भागः, ते, आखुः, पशुः) हे रुद्र, यह हमारा वखेराहुआ, तुम्हारा, पुरोडाश, सेवनीय है, आपका, चूहा, रक्षणीय पशु है ॥ ५७ ॥

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५८॥

इस कण्डिका के मंत्र का बन्धुर्ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है । चूहे की मट्टी के पास से आकर इस का जप करे । मन्त्रार्थ—(रुद्रम्, त्र्यम्बकम्, देवम्, अव, अदीमहि) शत्रुओं को रुलानेवाले. तीनों लोकों के रक्षक, सृष्टिआदि से क्रीड़ा करने वाले वा शत्रुजयशीलवा सब प्राणियों में आत्मस्वरूप से चेष्टा

करनेवाले, श्रुतिमान, स्तोत्रों से स्तुत वा सर्वगत परमेश्वर को, गुरु तथा शास्त्र के द्वारा जानकर, सब दुःखों का नाश करते हैं (यथा, नः, वस्यस्करत्, यथा, नः, श्रेयस्करत्, यथा, नः, व्यवसाययात्) जिस प्रकार हमको वह, उत्तम प्रकार से निवास करने वाले करें, जिसप्रकार, हमको, ज्ञातियों में श्रेष्ठ करें, जिस प्रकार हमको, सब कार्यों में निश्चययुक्त करें। इस प्रकार इनका जप करते हैं ॥ ५८ ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, स्वराड् गायत्री छन्द और रुद्र देवता है। जप करे। मन्त्रार्थ—(भेषजम्, असि) हे रुद्र आप औषध की समान सब उपद्रवों को दूर करनेवाले, हो (गवे, अश्वाय, पुरुषाय, भेषजम्, मेषाय, मेष्यै, सुखम्) गौ, घोडे, और पुत्र पौत्रादि परिवार के लिये, रोगदूर करने को औषधि दो, मेष, मेषी आदि पशुओं के निरुपद्रव जीवन के लिये, अपने सुखदायक स्वरूप का प्रकाश करिये ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, त्र्यम्बकम् इत्यादि पहिले का वशिष्ठ ऋषि, बाह्र्याली त्रिष्टुप् छन्द और रुद्र देवता है दूसरे त्र्यम्बकमित्यादि का ऋषि आदि पूर्वोक्त है। जैसे पितृमेध में पुत्रादि अपनी वाम ऊरु को ताड़न करके उलटी प्रदक्षिणा करते हैं तथा देवता की सेवा में दाहिनी जंघा ताड़न करके, तीन प्रदक्षिणा करते हैं, तिसी प्रकार इसमें भी पुरुष पहिले मंत्र जपकर अग्नि की तीन प्रदक्षिणा करते हैं। मन्त्रार्थ—(सुगन्धिम्, पुष्टिवर्धनम्, त्र्यम्बकम्, यजामहे) दिव्यगन्धयुक्त मर्त्यधर्महीन उभय

लोक का फल देनेवाले, धन धान्यादिकी पुष्टि बढ़ानेवाले, पूर्वोक्त तीन नेत्रोंवाले शिवको, हम पूजते हैं । वह हमको (मृत्योः, मुक्षीय, बन्धनात्, उर्वारुकमिव, अमृतात्, मामुक्षीय) संसार के मरण से छुड़ावें,बन्धन से, कर्कटी फल को जैसे, अर्थात् जैसे पकाहुआ फल अपनी धुंढी से छूटकर भूमि पर गिरजाता है,वैसेही, शिवकी कृपा से मैं जन्ममरण रहित होजाऊँ, और अमरतारूप मुक्ति से, भ्रष्ट न होऊँ । दूसरे मंत्र को पढ़कर यजमान की कन्या तीन परिक्रमा करे । मन्त्रार्थ—(पतिवेदनम्, सुगन्धिम्, त्र्यम्बकम्, यजामहे, ऊर्वारुकम्, इव, इतः, बन्धनात्, मुक्षीय, अमुतः, मा) सुन्दर पति के प्राप्त करानेवाले, दिव्य यशवाले—धर्माधर्म के ज्ञाता, त्र्यम्बक शिवको, हम पूजती हैं, कर्कटीफल की, समान, इस माता पितादि कुटुम्ब रूप बन्धन से, छूटकर, विवाह उपरान्त पति के समीप से, मत छुटाओ। अर्थात् पिता के गोत्र और घर से अलग होकर पति के घर और गोत्र में शिवजी के अनुग्रह से सदा निवास करूँ ॥ ६०॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन पुरो मूजवतोऽतीहि । अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंᳬसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

इस कण्डिका के एतत्त पहिले मंत्र का वशिष्ठ ऋषि, भुरिगास्तार पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है दूसरे कृत्तिवासा इत्यादि का वशिष्ठऋषि, भुरिगास्तार पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है । त्र्यम्बक याग के हवन से बचे हुए चावल जो आदि पुरोडाश को तृण वांस आदि के बने हुए दोपात्रों में रखकर एक बांस की लकड़ी के दोनो सिरों में उस को बांध कंधेपर रखकर उत्तरको मुख किए कुछ दूरजाकर जिसको गौ मुख उठाकर सूंघ न सके ऐसे वृक्ष आदि ऊँचे स्थान पर इस मंत्रको पढकर स्थापन करै, इस से गौओं को रोग न होगा । मंत्रार्थ—(रुद्र, एतत्, ते, अवसम्) हे रुद्रदेव ! यह आपका, हविशेष नामक भोजन है (तेन, अ-

ततधन्वा, पिनाकावसः, मूजवतः, परः, अतीहि) तिस के साथ तुम, हमारे विरोधियों के न रहने से प्रत्यञ्चा उतारे हुए अपने पिनाक धनुष को वस्त्र से ढांपे, मूंजवान नाम पर्वत के, पार होकर, गमन करो । जिससे कि प्राणी भयभीत न हों । दोनों पात्रों को वृक्ष आदि ऊँचे स्थान में स्थापित करके यजमान वेदी के पास आ दूसरे मंत्र से जल स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(कृत्तिवासाः, नः, अहिंसन्, शिवः, अतीहि) हे रुद्र तुम चर्माम्बर धारण किए हो वा सबप्राणियों के, अन्तर्यामी होने से चर्माम्बरधारी हो, हमारी हिंसा न करतेहुए, हमारी पूजा से प्रसन्न हो कल्याणस्वरूप होतेहुए, अपने स्थान में निवास करो ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का नारायण ऋषि, उष्णिक् छन्द और रुद्र देवता है । यजमान शिर का मुण्डन करावे उससमय पहिले इस मंत्रको पढ़े । मन्त्रार्थ—(जमदग्नेः, त्र्यायुषम्, कश्यपस्य, त्र्यायुषम्, यत्, देवेषु, त्र्यायुषम्, तत्, त्र्यायुषम्, नः, अस्तु) जमदग्नि ऋषि की, जो बालकपन आदि तीन अवस्था हैं, कश्यप प्रजापति की, जो तीनों अवस्था हैं, जैसी, देवताओं में, तीन अवस्था हैं, वह सब, त्र्यायुष, हम यजमानों को, प्राप्त हों अर्थात् रुद्र के अनुग्रह से हमारे चरित्र इनके से होजाय ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः । निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, पहिले शिव इत्यादि का नारायण ऋषि, भुरिग् जगती छन्द और क्षुर देवता है, निवर्त्तयेत्यादि दूसरे मंत्रका नारायण ऋ०, भुरिग्जगती छन्द और लिङ्गोक्त देवता है । पहिले को पढकर क्षुर उठावे । मंत्रार्थ–(सर्वव्यापक होने से क्षुरे में भी विद्यमान देव ! तुम (नाम, शिवः, असि)

नाम से, शान्तस्वभाव वा कल्याणकारक, हो (स्वधिते:, ते, पिता) वज्र, तेरा, रक्षक है (ते, नम:) तुझको, नमस्कार है (माम्, मा, हिंसीः) मुझको, मत, हिंसितकरो । दूसरे मंत्रको पढ़कर मुण्डन करे । मन्त्रार्थ-हे यजमान ! इस कर्म के फल से (आयुषे, अन्नाद्याय, प्रजननाय, रायस्पोषाय, सुप्रजास्त्वाय, सुवीर्याय, निर्वर्त्तयामि) जीवन के लिये, अन्नादि भक्षण के लिए अधिक सन्तान के लिए, धनपुष्टि के लिए, सन्तान उत्पन्न करने की उत्तम शक्ति के लिए, और श्रेष्ठ बलकी प्राप्ति के लिये, मुण्डन करता हूँ ॥ ६३ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ भारद्वाजगोत्रो-
[illegible] द्वारा

तृतीय अध्याय समाप्त.

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

एदमंगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे । ऋक्सामाभ्याᳫं सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व । स्वधिते मैनᳫं हिᳫंसीः ॥ १ ॥

इस कंडिका में ४ मन्त्र हैं । १ एदमित्यादि का प्रजा० ऋ० विराट् ब्राह्मी जगती छन्द देवयजन देवता है। २ आप इत्यादि का प्र० ऋ०, पूर्वोक्त छ०, आप देवता है। ३ ओषध इ० का प्र० ऋ० वि० ब्रा० पंक्ति छ० औषधि देवता है। ४-स्वधित इत्यादि का ऋषि छन्द पूर्वोक्त और क्षुर देवता है। तीसरे अध्याय में आधान, अग्निहोत्र, उपस्थान और चातुर्मास्य के मन्त्र कहे अब ४ अध्याय में ३२ कण्डिका तक अग्निष्टोम के मंत्र कहे जावेंगे, आदि में यजमान १६ ऋत्विजों का वरण करके अरणी में अग्नि का समारोपण कर पहिले मंत्र को पढता हुआ यज्ञशाला में प्रवेश करे, । मन्त्रार्थ-

(इदम्, पृथिव्याः, देवयजनम्, आ अगन्म) हम इस, पृथ्वीसम्बन्धी, देवयजनस्थान में, आये हैं (यत्र, विश्वेदेवाः, अजुषन्त) जहाँ, सर्वदेवता, प्रीति से स्थितहुए (ऋक्सामाभ्याम्, यजुर्भिः, सन्तरन्तः, रायः, पोषेण, इषा सम्मदेम) हम ऋग्वेद सामवेद, और यजुर्वेद के मन्त्रों से, समुद्रसमान गम्भीर सोमयाग को करते हुए, धनकी, पुष्टि, और इच्छित अन्न से, हृष्ट और तृप्त हों। दूसरे मन्त्र से यजमान के बाल भिगोवै। मन्त्रार्थ (देवीः, आपः, मे, शम्, उ, सन्तु) प्रकाशयुक्त निर्मल, शिरपर लगाएहुएजल, मुझ यजमान के निमित्त, सुखदायक-ही, हों । तीसरे मन्त्र को पढतेहुए सूक्ष्म कुशाग्र को छुरेसे काटकर जलपात्र में डाले। मन्त्रार्थ-(ओषधे, त्रायस्व) हे कुशतरुण ओषधि के देवता, यजमान की छुरे से रक्षा करो। अध्वर्यु चौथे मन्त्र के पढेजाने पर नाई को छुरादेय वह यजमान का क्षौर करै। मन्त्रार्थ-(स्वधिते, एनम्, मा, हिंसीः) हे क्षुर के अधिष्ठात्री देव, इस यजमान को, मत पीड़ा दो ॥ १ ॥

आपो॑ अ॒स्मान्मा॒तरः॑ शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्वः॑ पुनन्तु। विश्व॑ᳪं हि रि॒प्रम्प्र॒वह॑न्ति दे॒वीरुदिदा॑भ्यः॒ शुचि॒रापू॑त एमि। दी॒क्षा॒तप॒सो॑स्त॒नूर॑सि॒ तान्त्वा॑ शि॒वाᳪं श॒ग्माम्परि॑दधे भ॒द्रं वर्णं॒ पुष्य॑न् ॥ २ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, आप इत्यादि और दीक्षेत्यादि दोनों का प्रजा० ऋ० और स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द है, पहिले का आप और दुसरेका वास देवता है। १मन्त्रसे तडाग आदि में स्नान करके निकले। मन्त्रार्थ—(मातरः, आपः, अस्मान, शुन्धयन्तु) माताकी समान पालनकर्त्ता, हेजलों, हम को शुद्ध करो। (घृतप्वः, नः, घृतेन पुनन्तु) पढतेहुए जलों से पवित्र करनेवाले हेजलदेवतो ! क्षरितजलसे, हमको, शुद्ध करो (हि, देवीः, आपः विश्वम्, रिप्रम्, प्रवहन्ति) निश्चय, दीप्तिमान्, निर्मल, जल, सम्पूर्ण, पाप को, धोदेते हैं। (आभ्यः, शुचिः, आपूतः, उत्-इत्, एमि) इनजलों से, स्नान करने पर शुद्ध, बाहर भीतर प-

वित्र हुआ मैं, इस जल से ऊपर, आता हूँ। दूसरे मन्त्र से स्नान के अनन्तर रेशमी वा कोरी धोती पहिरै फेंट न बांधे। मन्त्रार्थ—(दीक्षातपसोः,तनूः,असि) हे क्षौमवस्त्रतुम दीक्षाभिमानी और तपोऽभिमानी देवता के,शरीरसमान प्रिय, हो (ताम्,शिवाम्,शग्माम् त्वा, वर्णम्, पुष्यन्, परिदधे) उस दीक्षा तप के शरीर रूप, कल्याणरूप, सुखस्पर्श, तुमको, तुम्हारे धारने से कल्याणरूप कान्ति को, पुष्ट करता हुआ, मैं धारण करता हूँ ॥ २ ॥

महीनाम्पयोऽसि वर्च्चोदा असि वर्च्चो मे देहि । वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥

इस कण्डिका में महीनामित्यादि और वृत्रस्येत्यादि दो मंत्र हैं, दोनों का प्रजा० ऋ०, भुरिक्त्रिष्टुप्छंद और पहिले का नवनीत देवता तथा दूसरे का अञ्जन देवता है। पहिले मन्त्र से यजमान शाला के पूर्व में कुशाओं पर पूर्वमुख बैठ कर गौ के मक्खन का मस्तक से चरणतक उबटन करै। मंत्रार्थ—(महीनाम्, पयः, असि) हे नवनीत तुम गौओं के दूधरूप, हो। (वर्चोदाः, असि, मे, वर्चो, देहि) तेजसम्पादन करने में समर्थ हो, मुझको तेज, दो। दूसरे मंत्र से त्रिककुत् पर्वत के, उसके न मिलने पर दूसरे अञ्जन को यजमान दाई आँख में दो वार और बाई में तीनवार आँजै। मन्त्रार्थ—(वृत्रस्य, कनीनकः, असि) हे अञ्जन तुम वृत्रासुर की,काली पुतलीरूप, हो, (चक्षुर्दाः, असि, मे, चक्षुः, देहि) चक्षु इन्द्रिय को शक्ति देने वाले,हो, मुझको दृष्टि,दो ॥ ३ ॥

चित्पतिर्म्मा पुनातु वाक्पतिर्म्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥

इसकण्डिका में तीन मन्त्र हैं तीनों का प्रजापति ऋ० निचृद्ब्राह्मी पंक्ति छन्द और प्रजापति सविता देवता है। इन ३ मन्त्रों को सात सात वार पढ़कर कुश से शिर पर मार्जन करै। मन्त्रार्थ-(चित्पतिः,

अच्छिद्रेण, पवित्रेण, सूर्यस्य, रश्मिभिः, मा,पुनातु) ज्ञानाधीश ब्रह्मा, वायुरूप, पवित्रसे, सूर्यकी किरणों से,मुझको, पवित्र करें। (वाक्पतिः, मा, पुनातु) वाणी का अधिष्ठात्री देवता, मुझको पवित्र करे । (सविता, देवः, मा, पुनातु) सर्वान्तर्यामी, देव, मुझको पवित्र करें। (पवित्रपते,तस्य पवित्रपूतस्य,ते, यत्,कामः, पुने, तत्, शकेयम्) हे पवित्रात्मा के रक्षक, उस,पवित्रपूत,आपके, पवित्र से मैं पवित्र हुआ हूँ, जिस, कामनासे, मैं पवित्र हुआहूँ उसको करने को,मैं समर्थ होऊँ ॥ ४ ॥

आवो देवास ईमहे वामम्प्रयत्यध्वरे । आवो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है, उसका प्र० ऋ० निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्द और आशीर्देवता है । इस मंत्र को अध्वर्यु यजमान से कहलावै । मन्त्रार्थ-(देवासः, अध्वरे, प्रयति, वामम्,वः, आईमहे) देवताओं !, इस यज्ञ के, वर्त्तमान होनेपर,आपसे माँगनेयोग्य यज्ञफल को, आपसे, माँगते हैं। (देवासः, यज्ञियासः, आशिषः, आ,वः, हवामहे) हे देवताओं, यज्ञसम्बन्धी,फलरूप आशीर्वादों के, प्राप्त करने को, आपको, आवाहन करते हैं ॥ ५ ॥

स्वाहा यज्ञम्मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् । स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, चारों का प्र० ऋ०, निचृदार्ष्यनु० छन्द और यज्ञदेवता है । पहिले मन्त्र से दोनो हाथ की कन अंगुलियों को सकोडकर तथा शेष मन्त्रों से, और अंगुलियों को सकोडकर मुट्ठी बाँध स्वाहा कहै और मौन होकर फिर खोलै । मन्त्रार्थ-(मनसः, यज्ञम्, आरभे स्वाहा) चित्त से, यज्ञ को, आरम्भ करता हूं, यह सुसिद्ध हो । (उरोः, अन्तरिक्षात्, स्वाहा) विस्तीर्ण, अन्तरिक्ष से,यज्ञलाभ करते हैं। (द्यावापृथिवीभ्याम्, स्वाहा) द्युलोक और भूलोक से, यज्ञलाभ करते हैं । (वातात्, प्र- प्रवहमानवायु से, यज्ञलाभ करते हैं। (स्वाहा)यह अनुष्ठान सु-

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा। आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में ५ मन्त्र हैं। पहिले चार का प्र० ऋ०, पंक्ति छ०, अग्नि देवता है। ५ वें का म० ऋ०, आर्षी बृहती छ० और लिङ्गोक्त देवता है। इन में पहिले ४ मन्त्रों से अभ्रग्रहण करके ५ वें मन्त्र से तथा अगली कण्डिका के मन्त्रों से स्थाली में से स्रुवे के द्वारा दो उद्ग्रभण (कार्यारम्भसूचक) आहुति देय। मन्त्रार्थ (आकूत्यै, प्रयुजे, अग्नये, स्वाहा) यज्ञ करने की मनकी प्रबल इच्छा को पूरी करने के लिए, प्रेरक, अग्नि के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो (मेधायै, मनसे, अग्नये स्वाहा) धारण शक्ति के लिये, मनके प्रेरक, अग्नि के अर्थ, यह आहुति, सुसिद्ध हो (दीक्षायै तपसे, अग्नये, स्वाहा) व्रतनियमादि दीक्षा की सिद्धि के लिये, तप के प्रवर्त्तक, अग्निदेव के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो (सरस्वत्यै, पूष्णे, अग्नये, स्वाहा) मन्त्रोचारण की शक्ति के लिये, पुष्टि के साधक, अग्निदेव के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो (देवीः, बृहतीः, विश्वशम्भुवः आपः, द्यावापृथिवी, उरो, अन्तरिक्ष, बृहस्पतये, हविषा, विधेम, स्वाहा) प्रकाशवान्, महान्, जगत् के सुखदाता, हे जलो, हे पृथिवी द्युलोक, हे विस्तीर्ण, अन्तरिक्ष तुम्हारे अर्थ और बृहस्पति के अर्थ, हवि देते हैं, सुहुत हो ॥ ७ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, उसका स्वस्त्यात्रेय ऋ०, आर्ष्यनुष्टुप्छन्द और सविता देवता है। इस मन्त्र से औद्ग्रभण का हवन करे। मन्त्रार्थ—(विश्वः, मर्त्तः, नेतुः, देवस्य, सवितुः, सख्यम्, वुरीत,) सकल मनुष्यों के, कर्मानुसार नियामक, दानादिगुणयुक्त, परमात्मा के, भक्तिभाव को, चाहो। (पुष्यसे, द्युम्नम्

वृणीत) कर्म-उपासना-ज्ञान की पुष्टि के लिये, अन्नको, चाहो (विश्वः, राये, इषुध्यति, स्वाहा) सकल मनुष्य, धन के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, उस परमेश्वर के लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः । शर्म्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हिᳬसी ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का आङ्गिरस ऋ०, आर्षी पंक्ति छन्द और कृष्णाजिन देवता है। पहिले मंत्र से यजमान बैठने को बिछाई हुई मृगचर्म के शुक्ल कृष्ण रोमों की संधि को छुए। मन्त्रार्थ-- (ऋक्सामयोः, शिल्पे, स्थः) हे मृगचर्म के श्वेतश्याम रेखाओं, तुम ऋक्साम के मंत्रों के अधिष्ठात्री देवताओं के, चातुर्य, हो (ते, वाम्, आरभे) उन, तुमको, स्पर्श करता हूँ (ते, मा, अस्य, यज्ञस्य, आ उदृचः, पातम्) वह तुम, मुझको, इस, यज्ञकी, समाप्तितक, रक्षा करो। दूसरे मंत्र से मृगचर्म पर दाहिने जानु से चढे और पश्चिम भाग में उसी दाहिण जानु से बैठे। मन्त्रार्थ-(शर्म, असि, मे, शर्म, यच्छ) शरणदाता, हो, मुझे, शरण, दो। (ते, नमः, अस्तु, मा, माहिंसीः) तुम्हें नमस्कार, हो, मुझको, मत पीडा दो ॥ ९ ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्ज्जम्मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्म्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यᳬहस आस्य यज्ञस्योदृचः ॥ १० ॥

इस कण्डिका में ६ मन्त्र हैं सब का आंगिरस ऋ० ।१।२।३।४। का निचृदार्षी जगती छन्द ५।६का साम्नीत्रिष्टुप् छन्द १।२।३।४का मेखला-नीवी-वस्त्र-कृष्णाविषाण देवता । ५ । ६ का कृष्ण विषाण दण्ड देवता है। पहिले मन्त्र से यजमान वेणी के आकार तिहेरी सन मूंज मिली मेखला धोती के भीतर बांधे। मन्त्रार्थ-आ-

ङ्गिरसी, ऊर्क्, ऊर्णम्रदाः, असि, ऊर्जम्, मयि, धेहि) हे मेखला तुम अंगिरावंशी ऋषियों से सम्बन्ध रखने वाली, अन्नरसरूप, ऊनकी समान कोमल, हो, अन्नरस को, मुझ में स्थापन करो। दूसरे मन्त्र से मेखलाको कमर में बांधे। मन्त्रार्थ—(सोमस्य नीविः) हे मेखले ! तुम सोम देवता की, नीवी हो। तीसरे मन्त्र से शिरपर पगडी पहिरे। मन्त्रार्थ—(विष्णोः, शर्म, असि) हे उष्णीष तुम बहुव्यापी यज्ञकी, कल्याणरूप, हो (यजमानस्य, शर्म) मुझ यजमान का, कल्याण करो। चौथे मन्त्र से तीन वा पांचरेखावाले कालेमृग के सींग को दुपट्टे के किनारे में बांधे इस से खुजावे और दक्षिण भौं के ऊपर ललाट में स्पर्श करे। मन्त्रार्थ—(इन्द्रस्य, योनिः) हे विषाण तुम जैसे इंद्र के, स्थान हो तैसे मेरे होओ। पांचवें मंत्र से वेदी के बाहर विषाण से रेखा करे। मंत्रार्थ—(कृषिः, सुशस्याः, कृधि) हे विषाण तुम खेती को, सुन्दर धान्य वाली, करो। छठे मंत्र से यजमान अपने मुखतक ऊंचा गूलड का दण्डा लेकर उस को खडा करे। मंत्रार्थ—(वनस्पते, उच्छ्रयस्व, उर्ध्वः, अस्य, यज्ञस्य, उदृचः, मा, अंहसः, पाहि) हे वनस्पति के दण्ड, तुम ऊंचे होवो, ऊंचे होकर, इस, यज्ञकी, समाप्ति पर्यंत, मुझको, पाप से, रक्षा करो ॥ १० ॥

व्रतङ्कृणुत व्रतङ्कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः दैवीन्धियम्मनामहे सुमृडीकामभिष्टये। वर्चोधा यज्ञवाहसᳬं सुतीर्था नो असद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों के आङ्गिरस ऋषि, पहिले का स्वराड्ब्राह्मी अनुष्टुप्छन्द, यज्ञ देवता, दूसरे का प्राजापत्या जगती छन्द यज्ञ देवता और तीसरे का प्राजापत्या त्रि० छ० और अग्निमित्रावरुणादित्यविश्वेदेवा देवता हैं। पूर्वमुख दीक्षित यजमान आहवनीय के सामने व्रतं कृणुत, इस मंत्र को तीन बार

पढकर 'अग्निर्यज्ञः' कहकर वाग्विसर्जन कर ऋत्विजों को यज्ञकी आज्ञा देय। मन्त्रार्थ—(व्रतम्, कृणुत, व्रतम्, कृणुत, अग्निः, ब्रह्म अग्नि, यज्ञः, वनस्पतिः, याज्ञियः) हे ऋत्विजो, व्रतानुष्ठान, करो, दुग्धको. दोहन आदि से सम्पादन करो, यह यज्ञाग्नि, तीनों वेदरूप है, यह अग्नि, यज्ञसाधनरूप है, खादिरादि वनस्पति, यज्ञ के योग्य होने से यज्ञस्वरूप है। दूसरे मंत्र से यजमान आचमन करे। मन्त्रार्थ—(अग्निष्ट्ये, दैवीम्, सुमृडीकाम्, वर्चोधाम्, यज्ञ वाहसम्, धियम्, मनामहे) इस अनुष्ठान की सिद्धि के लिए देव-संबंधिनी, सुन्दर,सुखकारिणी,तेजोधारिणी,यज्ञ का निर्वाह करने वाली, बुद्धि को, परमात्मा से प्रार्थना करते हैं (सुतीर्था:, नः वशे, असत्)सर्वमसंनीय बुद्धि, हमारे, वशमें, हो। तीसरे मंत्र से यजमान मृत्तिका के पात्रमें दूधपिये। मन्त्रार्थ—(ये, मनोजाताः, मनोयुजः, दक्षक्रतवः, देवाः, ते, नः, अवन्तु, तेभ्यः, स्वाहा) जो, इच्छारूप मनसे प्रकट हुए, रूपादि को देखते में मन से युक्त, सत्सङ्कल्पवाले, चक्षुरादि इन्द्रिय रूप प्राण, वे सब, हमको, विघ्नदूरकर रक्षाकरो, उन देवताओं के अर्थ, यह क्षीर सुफल हो॥ ११॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः॥ १२॥

इस कण्डिका में एक मंत्र है, इसका आ०ऋ०,जगती छन्द और आप् देवता है। इस मंत्र से यजमान अपनी नाभि का स्पर्श करे। मंत्रार्थ—(आपः, यूयम्, पीताः, श्वात्राः, भवत) हे दुग्धरूप जलो, तुम, पिये हुए, शीघ्रही जीर्ण, होजाओ(अस्माकम् अन्तरुदरे, सुशेवाः, ताः, अयक्ष्माः, अनमीवाः, अनागसः, ऋतावृधः, देवीः, अमृताः, अस्मभ्यम्, स्वदन्तु)हम पीनेवालों के, उदर के भीतर, सुखकारी, वह तुम, रोगादिरहित, साधारण रोगों को दूर करनेवाले, भूँख प्यास आदि दोषों को दूरकरनेवाले, यज्ञवृद्धि के हेतु, प्रकाशवान, मृत्युको हटानेवाले स्वयं मरण धर्मरहित तुम,

हमारे लिए, स्वादयुक्तहोत्रो ॥ १२ ॥

इयन्ते यज्ञियांतनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् । अᳫंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव १३

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं,तीनों के आङ्गिरस ऋषि, १ । ३ का प्राजापत्या गा० छ०,२ का याजुषी छन्द । १ का यज्ञदेवता २ का यजमान देवता और ३ का पृथिवी देवता है । १ मन्त्र से प्रस्राव के समय यजमानकाले हिरन के सींग से मट्टी या,कुछ तृण ग्रहण करै । मन्त्रार्थ—(इयम्, ते, यज्ञिया, तनुः) हे यज्ञपुरुष ! यह पृथिवी, तुम्हारा, यज्ञ के योग्य, शरीर है ।,अतः यहां मूत्र की, अपवित्रता दूर करने को ढेले वा तृण गृहण करता हूँ । दूसरे मन्त्र से मूत्रत्याग कियाजाता है । मन्त्रार्थ–(अपः, मुञ्चामि, न, प्रजाम्, अंहोमुचः स्वाहाकृताः, पृथिवीम्, आविशत) मैं मूत्ररूप जल को, छोड़ता हूँ, नकि,सन्तानोत्पत्ति के कारण वीर्य को,हे मूत्ररूपजल अशुचिरूप तुम, दूषणीतसमय स्वाहामन्त्र से स्वीकृत तुम, पृथिवी में प्रवेश करो । वह ग्रहणकी हुई मृत्तिका वा तृण दुर्गन्धि दूरकरनेको मूत्र की भूमिपर डाले । मन्त्रार्थ–(पृथिव्या, सम्भव) हे लोष्ट आदि तुम पृथिवी के साथ, एकीभाव को प्राप्त होजाओ ॥१३॥

अग्ने त्वᳫं सुजागृहि वयᳫं सुमन्दिषीमहि । रक्षाणो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है उस के आङ्गिरस ऋ० अनुष्टुप् छन्द और अग्नि देवता है । इस मन्त्र से यजमान आहवनीय अग्नि के दक्षिण में उत्तरमुख वा पूर्व को शिरकरके अग्नि की अपेक्षा नीची भूमि में सोवै । मंत्रार्थ–(अग्ने, त्वं सुजागृहि) हे अग्ने ! आप, भलेप्रकार जागिये (वयम्, सुमन्दिषीमहि) हम, सुख से सोवैं (अप्रयुच्छन्, नः, आरक्ष) सावधानी से, हमको, चारों ओर से रक्षा करो (नः, पुनः,प्रबुधे, कृधि) हम को, फिर, प्रबोध के निमित्त, उपयुक्त करो ॥ १४ ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म

आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्म आगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है,उसके आङ्गिरस ऋषि, भुरिग्ब्राह्मी बृहती छंद और अग्नि देवता है । फिर जागकर इस मंत्र को पढ़े मन्त्रार्थ-(मे, मनः, पुनः आगन्) मेरा, मन, सुषुप्ति काल में विलीन होकर फिर, शरीर में प्राप्त हुआ (आयुः, पुनः,) स्वप्न में नष्टप्राय हुई आयु फिर प्राप्तहुई(प्राणः,पुनः,आगन्) वही प्राण, फिर, प्राप्त हुए (मे, आत्मा, पुनः) मेरा, जीवात्मा, फिर, प्राप्त हुआ (चक्षुः, पुनः) चक्षु इन्द्रिय, फिर प्राप्त हुई (मे, श्रोत्रम्. पुनः, आगन्) मेरी,श्रोत्र इन्द्रिय, फिर,प्राप्तहुई (वैश्वानरः, अदब्धः, तनूपाः, अग्निः, अवद्यात्, दुरितात्, नः, पातु) सबमनुष्यों का उपकारक, अविनाशी, हमारे शरीर का रक्षक, ईशानाग्नि, निन्दित, पाप से, हमारी, रक्षा करै ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आमर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः । रास्वेयत्सोमाभूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं,दोनो का वत्स ऋ० भुरिगार्षी पंक्ति छन्द १ का अग्नीषोम देवता और २ का सोम देवता है । १ मन्त्र से यजमान, किसी कारण क्रुद्ध होना पडा हो या यज्ञविरुद्ध भाषण करना पडा हो उसका दोष दूर करने को प्रायश्चित्त करै । मन्त्रार्थ-(अग्ने, देवः त्वम्, आमर्त्येषु, व्रतपाः, असि). हे अग्ने, प्रकाशात्मक, तुम, मनुष्यपर्यन्त सब प्राणियों में, यज्ञकर्म के रक्षक, हो (यज्ञेषु, आईड्यः) यज्ञों में, सब प्रकार से पूजनयोग्य हो । दूसरे मंत्र से अग्नि में हवन करने को लाएहुए सुवर्ण को स्पर्श करै । मन्त्रार्थ —(सोम, इयत्, रास्व, भूयः, आभर, वसोः, दाता, सविता, देवः नः वसु, अदात्) हे सोम, इतना, धन दीजिये, फिरभी, धन दीजिये । क्योंकि धन के दाता सविता, देवता ने, हमको, धन, दिया था ॥ १६ ॥

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव आर्जङ्गच्छ ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं—दोनों का वत्स ऋषि और आर्षी त्रिष्टुप्छन्द, पहिले का हिरण्याज्य देवता और दूसरे का वाग्देवता है : पहिले मंत्र से अध्वर्यु ध्रुवे के आज्य से जुहू को ४ बार भर कर उस घी में दर्भ से बँधे हुए सुवर्ण को छोड़े, मन्त्रार्थ—(शुक्र एषा, ते, तनूः एतत्, वर्चः, तया, सम्भव, भ्राजम्, गच्छ) हे दीप्यमान अग्ने, यह घृत तुम्हारा, शरीर है, यह सुवर्ण, तेज है, इन दोनों से एकीभाव को प्राप्त हूजिये, सुवर्ण में की कान्ति को प्राप्त हूजिये। दूसरे मंत्र से अग्नि में समिदाधानकरताहुआ होम करे। मन्त्रार्थ—(जूः, असि, मनसा, धृता, विष्णवे, जुष्टा) हे वाणी तुम वेगवान, हो, वा जीवन देनेवाली हो, मन से, धारण की हुई, यज्ञ पुरुष के लिये,प्रीतियुक्त हो ॥ १७ ॥

तस्यांस्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, स्वराडार्षी बृहती छ० और वाक्य हिरण्य देवता हैं । इस मंत्र से जुहू में के तृणवद्ध सुवर्ण को निकाल कर वेदी पर धरे। मन्त्रार्थ—(तस्याः, ते, सत्यसवसः, प्रसवे, तन्वाः, यन्त्रम्, अशीय, स्वाहा) उस, तुम्हा, सत्य अनुज्ञा वाली वेदवाणी की, आज्ञा में वर्त्तमान मैं,शरीर के नियमनकी, दृढता को, प्राप्त करूँ, इस घृत की सुन्दर आहुति हो (शुक्रम्, असि, चन्द्रम्, असि, अमृतम्, असि, वैश्वदेवम्, असि) हे सुवर्ण तुम दीप्यमान, हो, आल्हाद के देनेवाले, हो, जीवन के उपाय, हो, सब देवताओं के सम्बन्धी,हो।क्योंकि—सब देवता सुवर्णदान से तृप्त होते हैं ॥ १८ ॥

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, भुरिग्ब्राह्मी पंक्ति छन्द और वाग्देवता है। इस मंत्र से वाग्रूप अध्यारोप कल्पना करके सोमक्रयणी गौ की स्तुति कीजाती है। मंत्रार्थ-(चित्, असि, मना असि, धीः, असि) हे सोमक्रयणी गौ ! तुम चिदात्मा, हो, ब्रह्माविष्णुमहेशरूप पूज्य, हो, बुद्धिस्वरूपा, हो, (दक्षिणा, असि, क्षत्रिया, असि, यज्ञिया, असि) दक्षिणारूप, हो, दाता की कष्ट से रक्षा करने वाली, हो, यज्ञसम्बन्धिनी होने से, यज्ञ के योग्य हो (अदितिः, असि, उभयतःशीर्ष्णी) अखण्डिता देवमाता रूप, हो, पृथिवी और स्वर्ग दोनों ओर शिर रखनेवाली अर्थात् दिव्य एवं भौम भोगों की देने वाली हो (सा, नः, सुमाची, सुप्रतीची, एधि) वह तुम, हमारे लिये, पूर्वमुखी, पश्चिममुखी, होवो (मित्रः, पदि, त्वा, बध्नीताम्) सूर्य, दक्षिणपाद में, तुझको, बाँधे (पूषा, अध्यक्षाय, इन्द्राय, अध्वनः, पातु) पूषा देवता, यज्ञ के स्वामी, इन्द्रदेवता की प्रसन्नता के अर्थ, मार्ग में, तुम्हारी रक्षा करें ॥ १९ ॥

अनु॑ त्वा मा॒ता म॑न्यता॒मनु॑ पि॒तानु॒ भ्राता॒ सग॑र्भ्यो॒ऽनु॒ सखा॒ सयू॑थ्यः । सा दे॑वि दे॒वमच्छे॑ही॒न्द्राय॒ सोम॑ꣳ रु॒द्रस्त्वा॒ व॑र्त्तयतु स्व॒स्ति सोम॑सखा॒ पुन॒रेहि॑ ॥ २० ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, पूर्वार्द्ध का साम्नी जगती और उत्तरार्द्ध का भुरिगार्च्युष्णिक् छन्द और वाक् तथा गौ देवता हैं। इस से भी गौ की स्तुति कीजाती है। मन्त्रार्थ-(त्वा, माता, अनुमन्यताम्) हे गौ हे वाक्, सोम लाने में प्रवृत्त तुमको, तुम्हारी पृथिवी माता, आज्ञा देय (पिता, अनु) पिता स्वर्ग, आज्ञादेय (सगर्भ्यः, भ्राता, अनु) सहोदर, भाई ईश, आज्ञा देय (सयूथ्यः, सखा, अनु) एक यूथमें प्रकट होने वाला, सखा आत्मप्रतिबिम्ब, आज्ञा देय (देवि, सा, इन्द्राय, सोमम्, देवम्, अच्छेहि) हे दिव्यगुणयुक्त सोमक्रयणी, वह तुम, इंद्रके अर्थ, सोमलता, देवता को, पाने को जाओ (रुद्रः, त्वा, वर्त्तयतु) रुद्रदेवता, तुम को, हमारी

ओर को लौटावैं (सोमसखा, स्वस्ति, पुनः, एहि) सोमसहित तुम, क्षेमपूर्वक, फिर, आओ॥ २०॥

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि। बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णा तु रुद्रो वसुभिराचके॥ २१॥

इस मंत्र का वत्स ऋ० विराडार्षी बृहती छंद और वाक् गौ देवता हैं। इस मंत्र से सोमक्रयणी को उत्तर की ओर गमन कराके उस के पीछे २ जाकर स्तुति करै। मन्त्रार्थ-(वस्वी, असि, अदितिः, असि, आदित्या, असि, रुद्रा, असि, चन्द्रा, असि) हे वाक् हे गौ तुम वसुदेवता की शक्तिरूप, हो, देवमातारूप, हो, द्वादश आदित्य रूप, हो, एकादश रुद्ररूप, हो, चन्द्ररूप, हो, (बृहस्पतिः, त्वा, सुम्ने, रम्णातु) बृहस्पति देवता, तुमको, सुख में, रमण करावैं। (रुद्रः, वसुभिः, आचके) रुद्र देवता, आठ वसुओं के साथ, तुम्हें रक्षा करने की कामना करैं॥ २१॥

अदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत्स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः॥ २२॥

इस कण्डिका में ७ मंत्र हैं, सबका वत्स ऋ० और ब्राह्मी पंक्ति छन्द है। देवता पहिलेका आज्य, दूसरेका स्थान, तीसरेका पद, चौथे और पांचवेंका यजमान, छठेका अध्वर्यु और सातवें का पत्नी है। पहिले मंत्र से सोमक्रयणी के पीछे छः पग चलकर जहां ७वाँ पग पड़कर खुरका चिन्ह हो उसमें सोनेका टुकड़ा डालकर उसपर घीकी आहुति देय। मंत्रार्थ-(अदित्याः, पृथिव्याः मूर्धन्, देवयजने, त्वा, आजिघर्मि, इडायाः, पदम्, असि, घृतवत्, स्वाहा) अखंडित, पृथ्वी के, शिरःस्वरूप हे घृत, देवताओं के यज्ञयोग्य स्थान में, तुमको, टपकाता हूं, हे स्थान तुम गौके, चरणचिन्ह, हो, घृतयुक्त, श्रेष्ठ होम होय। दूसरे मंत्रसे अध्वर्यु गोचरणचिन्ह में स्फ्यसे ३ रेखा करै। मंत्रार्थ-(अस्मे, रमस्व)

हे गोपद तुम मुझमें, क्रीड़ा करो । तीसरे मंत्रसे उसमें की मट्टी सोनेको हटाकर हाथसे ले थालीमें डाले । मंत्रार्थ-(अस्मे, ते, बन्धुः) हम, तुम्हारे, बन्धुरूप हैं । चौथे मंत्रसे गौके उठाएहुए पद के स्थानपर जल डालकर वह पद यजमान को देय । मंत्रार्थ (त्वे, रायः) हे यजमान, तुममें, धन इस पदरूप से स्थित हो । पांचवें मंत्रसे यजमान ग्रहण करे मंत्रार्थ-(मे, रायः) यह मेरे, धन वा पशु हैं । छठे मंत्रसे अध्वर्यु अपने हृदय को छुए । मंत्रार्थ (वयम्, रायः, पोषेण, मा, वियौष्म) हम, धनकी, पुष्टिसे, न, वियुक्त हों । अध्वर्यु यजमान से पद लेकर पत्नी को देय और सहकारी अध्वर्यु ७वें मंत्रको पढ़े । मंत्रार्थ-(तोतः, रायः) ब्रह्मा विष्णु महेश-पराक्रपधारी पत्नीसहित यजमान को, धन वा पशु, प्राप्त हों ॥ २२ ॥

समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा । मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहन्तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ २३ ॥

इस मंत्रका वत्स ऋ०, आस्तारपंक्ति छन्द और वाग्देवता है । सोमक्रयणी को देखनेवाली पत्नी से अध्वर्यु यह मंत्र पाठ करावै । मंत्रार्थ-(देव्या, दक्षिणया, उरुचक्षसा, धिया, समख्ये) हे सोमक्रयणी गौ प्रकाशवान्, यज्ञकी प्रधानदक्षिणा के योग्य, विशाल दर्शनवाली तेरे द्वारा, मैं बुद्धिपूर्वक, यज्ञपुरुष को देखती हूँ (मे, आयुः, मा, प्रमोषीः) तुम मेरी, आयुको, मत, खण्डित करो (तव, आयुः, अहम्, मा, उ) तेरी, आयु को, मैं, खण्डित न करूँ (देवि, तव, सन्दृशि, वीरम्, विदेय) हे पराशक्ति, तेरा, सुन्दर दर्शन होनेपर, बली पुत्र को, प्राप्त करूँ ॥ २३ ॥

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, १।२।३ का वत्स ऋ०, ब्राह्मी जगती छन्द, लिङ्गोक्त देवता ४का वत्स ऋ०, याजुषी पंक्ति छन्द और लिङ्गोक्त देवता हैं।१।२।३ मंत्र को अध्वर्यु सोमकी ओर जानेवाले यजमान से कहलावे। मंत्रार्थ-(सोमाय, मे, इति, ब्रूतात्, ते, एषः, भागः, गायत्रः) हे अध्वर्यु, सोमाधिष्ठात्री देवता के अर्थ मेरा, यह वचन, कहो, कि-तुम्हारा, यह भाग, गायत्रीसम्बन्धी है १।(ते, एषः, भागः, त्रैष्टुभः, इति, मे, सोमाय, ब्रूतात्,) तुम्हारा यह, भाग, त्रिष्टुप्छन्दसम्बन्धी है, ऐसा, मेरा, वचन, सोमदेवता के अर्थ, कहो २।(एषः, ते, भागः, जागतः, इति, मे, सोमाय, ब्रूतात्) यह तुम्हारा, भाग, जगतीछन्दसम्बन्धी है, यह, मेरा वचन, सोमदेवता से, कहो (छन्दोनामानाम्, साम्राज्यम्, गच्छ, इति, मे, सोमाय ब्रूतात्) तुम उष्णिक् आदि सब छंदों के, आधिपत्य को, पाओ, यह मेरा वचन, सोम देवता से, कहो ३। यजमान पूर्वमुख बैठकर इस ४ मंत्र से सोम स्पर्श करै। मन्त्रार्थ— (आस्माकः असि, शुक्रः, ते, ग्रह्यः, विचितः, त्वा, विचिन्वन्तु) हे सोम क्रयमार्ग से प्राप्त हुए तुम हमारे, हो, यह शुक्रनामक रस, तुम्हारे, ग्रहण करने योग्य है, यह सब माहात्मा तुम्हारा सारासार जानने में समर्थ हैं, सारासार विचार कर तुम्हारे सारभाग को, ग्रहण करैं ॥ २४ ॥

अभि त्यन्देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियम्मतिङ्कविम् । ऊर्ध्वा यस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥ प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनोंका वत्स ऋ०, १ का विराट् ब्राह्मी जगतीछन्द, २ का निचृदार्षी गायत्रीछन्द, ३ का यजुश्छंद और तीनोंका सविता देवता है। १ मंत्रसे सोम बांधने के कपड़े को दुहरा तिहरा करके उसमें १० चुकटी सोम डाले। मंत्रार्थ— (तम्, ओण्योः, देवम्, कविक्रतुम्, सत्यसवसम्, रत्नधाम, अभिप्रियम्, मतिम्, कविम्, सवितारम्, अभ्यर्चामि) उस, द्यावा

पृथिवी के, प्रकाशक, ब्रह्मसङ्कल्पसे प्रकट, सत्य प्रेरणावाले, रत्नों के धारक, समस्त चराचर के मित्र, अनूपम कल्पना शक्तिवाले, वेदाविद्या के उपदेशक, सूर्यदेव को, सब ओरसे पूजता हूं (यस्य, अमितिः, ऊर्ध्वा,भाः, सवीमनि,अद्युतत्) जिस सूर्यकी, अनंत आकाशाभिमुखी, दीप्ति, आकाश अथवा पराप्रकृतिरूप ब्रह्माण्ड को, प्रकाशित करती है (हिरण्यपाणिः, सुक्रतुः, कृपाः, स्वः) ज्योतिःस्वरूप, हाथवाले, सत्यसंकल्प जिसकी, कृपा से, स्वर्ग रचागया है, उसकी पूजा करता हूँ।

दूसरे मंत्रसे उष्णीश के दोनों सिरे मिलाकर गांठ देय । मंत्रार्थ–(प्रजाभ्यः, त्वा) हे सोम ! प्रजाके उपकार के अर्थ, तुझ को बांधता हूँ। तीसरे मंत्रसे गांठ के बीचमें अंगुली देकर छिद्र करै, जिससे उष्णीश में बँधे सोमका श्वास न रुके । मंत्रार्थ—(प्रजाः, त्वा, अनुप्राणन्तु, त्वम्, प्रजाः अनुप्राणिहि) हे सोम ! प्रजा, श्वास लेतेहुए तुझको, अनुसरण करके जीवित रहैं, तू, श्वास लेनेवाली, प्रजा का, अनुसरण कर ॥ २९ ॥

शुक्रन्त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतेन सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषम्पुषेयम् ॥२६॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं । सबका वत्स ऋषि, भुरिग् ब्राह्मी पंक्ति छन्द और देवता पहिलेका सोम, दूसरे तीसरेका लिङ्गोक्त, तथा चौथेका अजा है । यजमान को सुवर्णका स्पर्श कराकर पहला मंत्र उच्चारण करवावे । मन्त्रार्थ–(चन्द्रम्, अमृतम्, शुक्रम्, त्वा, शुक्रेण, अमृतेन, चन्द्रेण, क्रीणामि) हे सोम ! तुम आल्हाद करने वाले, अमृत की समान स्वादु, दीप्तिमान् हो, तुमको, दीप्तिमान् विनाशरहित, आल्हादकारक, सुवर्ण से क्रय करता हूँ । दूसरे मंत्र से सोना सोम बेचने वाले को देकर उसको कंपित करै । मन्त्रार्थ (गोः, ते, सग्मे) हे सोम बेचनेवाले,सोम के मूल्य में दीहुई गौ, तेरी गौ, फिर लौटकर यजमान के घर में स्थित हो । तीसरे मंत्र

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, ऋषि तीनों का वत्स। छन्द पहिले का स्वाराड् याजुषी त्रिष्टुप्, दूसरे का विराडार्षी त्रिष्टुप् और तीसरे का स्वाराड् ब्राह्मी है। देवता पहिले का कृष्णाजिन दूसरे का सोम और तीसरे का वरुण है। पहिले मन्त्र से शकट के ऊपर मृग चर्मबिछावै। मन्त्रार्थ-(अदित्याः, त्वक्, असि) हे कृष्णाजिन तुम पृथिवी के, त्वचारूप, हो। दूसरे मंत्र से उसपर सोम की गाँठरक्खे। मन्त्रार्थ-(अदित्यै, सदः, आसीद) भूमिसम्बन्धी, स्थानपर, सबप्रकार स्थित होवो। तीसरा मंत्र सोम को स्पर्श करताहुआ पढ़े। मन्त्रार्थ-(वृषभः, द्याम्, अन्तरिक्षम्, अस्तभ्नात्) श्रेष्ठस्वरूप वरुण, द्युलोक को, अन्तरिक्षको, स्थिर करता हुआ (पृथिव्याः, परिमाणम्, अमिमीत) पृथिवी के, विस्तारको, जानता हुआ (सम्राट्, विश्वा, भुवनानि, आसीदत, विश्वा, इत्, वरुणस्य, व्रतानि) सम्यक् प्रकाशवान् ब्रह्म, सम्पूर्ण, संसार में प्रविष्ट हुआ, सब, ही, वरुणदेव के, कर्म हैं अर्थात् वह सदा जगन्निर्माणादि कर्म करता है ॥ ३० ॥

वनेषु व्यन्तरिक्षन्ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु। हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निन्दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द और वरुण देवता है, सोम बांधने के वस्त्र से सोमको सब ओर से बांधकर इस मंत्रको जपे। मन्त्रार्थ-(वरुणः, वनेषु, अन्तरिक्षम्, विततान) वरुणस्वरूप विष्णु ने, वनके वृक्षोंके अग्रमें, आकाश को, फैलाया है (अर्वत्सु, वाजम्, उस्रियासु, पयः, हृत्सु, क्रतुम्, विक्षु, अग्निम्, दिवि, सूर्यम्, अद्रौ, सोमम्) पुरुषों में, वीर्य को, गौओं में, दुग्ध को, हृदयों में, संकल्पात्मक मन को, प्रजाओं में, जाठराग्नि को, द्युलोक में, सूर्यको, पर्वतों में, वल्लीरूप सोम को, स्थापित किया है ॥ ३१ ॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम्। यत्रैतशेभि-

रीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, निच्यृदार्ष्यनु० छ० और कृष्णाजिन देवता है। इस मंत्र को पढ़कर, आसन के लिए जो दो मृगचर्म हैं, उन में से एक को शकट के पूर्वभाग में, जुए के समीप ऊँचे दण्ड में लगावे, यदि आसन का मृगचर्म एकही हो तो उस की ग्रीवा की ओर के भाग को अलग करके शकट के पूर्वभाग में लगावे । मन्त्रार्थ–(सूर्यस्य, चक्षुः, अग्नेः, अक्ष्णः, कनीनकम्, आरोह) हे कृष्णाजिन तुम —सूर्य के, नेत्र, और अग्नि के, नेत्र के तारे पर, आरोहण करो (यत्र, विपश्चिता, भ्राजमानः, एतशेभिः, ईयसे) जहाँ इन दोनों के दर्शन वा प्रकाश में सर्वत्र सूर्य और अग्नि से, प्रकाशित होता, अश्वों के द्वारा, गमन करता है । क्यों कि—सूर्य और अग्नि की दृष्टि, पड़ने से मार्ग, राक्षसों की बाधा से मुक्त होता है ॥ ३२ ॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का व० ऋ०, ऊर्ध्वबृहती छ० और अनड्वाह देवता हैं । इससे बैलों को शकट में जोड़े । मंत्रार्थ–(उस्रौ, धूर्षाहौ, अनश्रू, अवीरहणौ, ब्रह्मचोदनौ, एतम्, युज्येथाम्, स्वस्ति, यजमानस्य, गृहान्, गच्छतम्) हे अनड्वानों, शकट के धुर को धारण करने में समर्थ, उत्साहवाले, सींगों से बालकों को न मारने वाले, ब्राह्मणों को यज्ञ में प्रेरणा करनेवाले तुम दोनों, इस शकट में, जुत जाओ, कुशलपूर्वक, यजमान के, घरों को, जाओ ॥ ३३ ॥

भद्रो मेसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभिधामानि । मा त्वा परिपरिणो विदन्मा त्वा परिपन्थिनो विदन्मा त्वा वृका अघायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छतन्नौ संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का व० ऋ०, भुरिगार्षी गायत्री और भु० आ० बृ० छन्द तथा सोम देवता है । सोम लेकर यज्ञशाला में जा

नेवाले यजमान से अध्वर्यु यह मंत्र कहलावै। मन्त्रार्थ—(मे, मद्रः, असि, भुवः पते, विश्वानि, धामानि, अभिमच्यवस्व) हे सोम तुम मुझ यजमान के लिए, कल्याणरूप, हो, हे यजमान अध्वर्यु आदि सबके पालक, सब, पत्नीशाला हविर्धानादि स्थानों को, देखकर चलो (त्वा, परिपरिणः, मा, विदन्) तुमको, सब ओर फिरनेवाले तस्कर, न, जानें (परिपन्थिनः, त्वा, मा, विदन्) यज्ञद्रोही, तुम को, न, जानें (अघायवः, वृकाः, त्वा, मा, विदन्) दूसरों का अपराध करनेवाले, दुर्जन, तुमको, न, जानें (श्येनः, भूत्वा परापत) श्येन की समान वेगगामी, होकर, सन्मुख चलो (यजमानस्य, गृहान्, गच्छ, तत्, नौ संस्कृतम्) यजमान के घरों को, जाओ, वह यज्ञस्थान, हम तुम दोनों के लिए, सब सामग्री से युक्त है॥३४॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महोदेवाय तदृतꣳ सपर्यत। दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत ॥ ३५ ॥

इस क॰ के मंत्र का व॰ ऋ॰ नि॰ जगती छ॰ और सूर्यदे॰ है। इसको पढकर मतिमस्याता शाला के पूर्व में कृष्णशारङ्ग पशु को, उसके अभाव में लोहित सारंग को लेकर स्थित होय। मन्त्रार्थ—(मित्रस्य, वरुणस्य, चक्षसे, महोदेवाय, दूरेदृशे, देवजाताय, केतवे, दिवः, पुत्राय, सूर्याय, नमः तत्, ऋतम्, सपर्यत, शंसत) चराचर के मित्र, दुःखों को दूर करनेवाले सूर्यदेवता के, सन्मुख, महातेजःस्वरूप प्रकाशवान्, सब जगत् को दूर से ही देखनेवाले, देवताओं पर अनुग्रह करने को उत्पन्न हुए, प्रज्ञानघन, द्युलोक के, पुत्रवत् प्रिय, सूर्य देवता के अर्थ, नमस्कार है, उस, सत्यब्रह्मको, भजो, तथा उन की स्तुति करो ॥ ३५ ॥

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥ ३६ ॥

इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं। ऋषि सबका वत्स, छंद विराड्ब्राह्मी

वृहती और देवता वरुण हैं। पहिले को पढकर शाला के समीप शकट को पूर्वमुख वा उत्तरमुख खडाकर तिपाए से बाँधै। मंत्रार्थ—(वरुणस्य, उत्तम्भनम्, असि) हे काष्ठाभिमानी देवता तुम--वरुण देवता की प्रीति के लिए इस शकट में,वस्त्रबद्ध सोम के उन्नमन, हो। दूसरे मंत्र से दोनों बैलों को शम्या से मुक्त करै । मन्त्रार्थ--(वरुणस्य,स्कम्भसर्जनी, स्थः) हे शम्ये तुम दोनों—वरुण की, रोकनेवाली,हो। तीसरे मंत्र से अध्वर्यु आदि चारों ऋत्विज् गूलर की लकडी की बनीहुई, नाभिप्रमाणवाले पायों की, फैली कन अंगुलि से मुट्ठीतक नाप में लम्बी, दिव्य कपास के डोरों से बुनी हुई मञ्चिका को आसन्दी कहते हैं, उस सोम रखने को शकट के समीप लावै और हाथसे स्पर्श करै मन्त्रार्थ--(वरुणस्य,ऋतसदनी, असि) हे आसन्दी तुम-वरुण देवता की प्रीति के लिए, यज्ञकी प्राप्तिका स्थान, हो। चौथे मंत्र से मंचिका पर मृगचर्म बिछावै। मंत्रार्थ--(वरुणस्य, ऋतसदनम्. असि) हे कृष्णाजिन तुम--वरुण की प्रीति के लिए अथवा बद्ध सोमके, यज्ञके निमित्त बैठने का स्थान, हो। पांचवें मंत्रसे मृग चर्मपर सोमवल्ली की गांठ धरै। मन्त्रार्थ-(वरुणस्य, ऋतसदनम्, आसीद) हे सोम तुम-वरुणदेव की प्रीति के लिए लाएगए हो, यज्ञसम्बन्धी आसन्दीपर बिछेहुए मृगचर्म पर, सुख से स्थित हूजिए ॥ ३६ ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥ ३७ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गोतम ऋ०, निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द और सोम देवता है। सोम को स्थापितकर अध्वर्यु यजमान से यह मंत्र कहलावै। मन्त्रार्थ--(सोम, ते, या, धामानि,हविषा, यज्ञम्, यजन्ति) हे सोम, तुम्हारे, जिन, प्रातःसोमादि स्थानोंको पाकर, तुम्हारे रसरूप हविसे, यज्ञपुरुष का, पूजन करते हैं (ते, ता, विश्वा, परिभूः, अस्तु) तुम्हारे, वह, सम्पूर्ण, स्थान, तुमसे

सब ओर से व्याप्त, हों (-गयस्फानः, प्रतरणः, सुवीरः, अवीरहा, दुर्यान्, आचर) घरकी वृद्धि करनेवाले, यज्ञको प्राप्त करानेवाले, हम ऋत्विज् वा यजमान के पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न तुम, वीर पुरुषों को पालनेवाले, यज्ञगृहों को, प्राप्त हूजिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ भारद्वाजगोत्रोद्भूतगौडवंशावतंस श्रीमज्ज्वालानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा उव्वटमहीधरादिप्राचीनभाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ और भावार्थसहित शालागमनाद्यावान्तर्गत चतुर्थ अध्याय समाप्त.

॥❀॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥❀॥

चौथे अध्याय में ऋत्विज् सहित यजमान के शालाप्रवेश से लेकर सोमक्रय करके शाला आगमनतक के मंत्र कहे, अब पांचवें अध्याय का प्रारम्भ होता है, जिसकी आदिमें आतिथ्येष्टि, हविर्ग्रहणादि के मंत्रोंका वर्णन है—

ॐ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा॥१॥

इस कण्डिका के मंत्रका गोतम ऋषि, स्वराट् ब्राह्मी बृहती छन्द और विष्णुदेवता है। इस मंत्र से हविर्ग्रहण करै, मन्त्रार्थ—१ (अग्नेः, तनूः, असि, विष्णवे, त्वा) हे सोम तुम-अग्नि के, शरीर, हो, परमात्मा की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूं। २ (सोमस्य, तनूः, असि, विष्णवे, त्वा) तुम सोमदेवता के, शरीर, हो, विष्णु के अर्थ, तुमको ग्रहण करता हूं। ३ अतिथेः, आतिथ्यम्, विष्णवे, त्वा) हे सोम तुम-यज्ञमंडप में आयेहुए अतिथि के, अतिथिसत्कार से सन्तुष्ट करनेवाले हो, विष्णुदेव की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूं। ४ (सोमभृते, श्येनाय, विष्णवे, त्वा) हे सोम-सोम लानेवाले, शत्रुके दमन

करनेको श्येन की समान उद्योगी मुझ यजमान के कल्याणार्थ यज्ञाधिष्ठात्री विष्णुदेवता के प्रसन्नतार्थ, तुमको ग्रहण करता हूं। ५ (रायस्पोषदे, अग्नये, त्वा, विष्णवे, त्वा) धनसम्बन्धी पुष्टि देनेवाले, अग्नि के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूं, यज्ञपति विष्णुदेव की प्रीति के निमित्त, तुम को ग्रहण करता हूं ॥ १ ॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि । गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि॥ २ ॥

इस कण्डिका में ८ मंत्र हैं,आपि सब का गोतम छंद पहिले ५ का आर्षी गायत्री, ६ । ७ । ८ का आर्षी त्रिष्टुप् देवता १ से ५ तक का शकलादि, ६ से ८ तक का अग्नि है, पहिले से यज्ञसंबंधी वृक्ष के टुकडे को लेकर वेदीपर उत्तर को अग्रभाग करके धरै। मंत्रार्थ—(अग्नेः, जनित्रम्, असि) हे खण्ड तुम —अग्नि के, उत्पन्न करनेवाले, हो, । दूसरे से उस टुकडेपर कुशतरुण को रक्खै मन्त्रार्थ—(वृषणौ, स्थः) हे दोनों कुश तुम—सींचनेवाले अर्थात् अरणिकाष्ठों में अग्नि उत्पन्न करने की शक्ति देनेवाले हो। तीसरे से इन दोनों कुशाओं पर नीचे की अरणि को उत्तराग्र धरै मन्त्रार्थ—(उर्वशी, असि) हे नीचे की अरणि! अग्नि की उत्पत्ति के लिए हमने तुमको स्त्रीरूप माना है अब तुम--उर्वशी नामवाली, हो । चौथे मंत्र से आज्यस्थालीः से, उत्तरारणि का स्पर्श करै। मन्त्रार्थ- (आयुः, असि) हे स्थाली के आज्य तुम- अग्नि की आयु, हो। पाँचवें मन्त्र से नीचे की अरणि पर उत्तर अरणि धरै। मन्त्रार्थ—(पुरूरवाः,असि) हे उत्तरारणि ! हम अग्नि उत्पन्न करने के निमित्त तुमको पुरुष रूपसे कल्पना करते हैं अतः तुम—पुरूरवा नामक, हो। ६ । ७ । ८ मन्त्र से दोनों अरणियों को मथकर अग्नि निकालै। मन्त्रार्थ—(गायत्रेण,छन्दसा,त्वा,मन्थामि) गायत्री, छन्द के अधिष्ठाता,अग्नि देवता केबलसे,तुम को मन्थन से प्रकट करता हूं। (त्रैष्टुभेन,छन्दसा, त्वा, मन्थामि) त्रिष्टुप्,छन्द के अधिष्ठाता इन्द्रदेवता

केवल से, तुझको, दो अरणियों के द्वारा मथता हूं (जागतेन, छन्दसा, त्वा, मन्थामि) हे अग्ने–जगती, छन्द के अधिष्ठाता विश्वेदेवा के बलसे, तुझको, दो अरणी के द्वारा मथता हूं ॥ २॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्ट मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥३॥

इस कण्डिका के मन्त्र का ऋ०गो०, छन्द आर्षी पंक्ति और देवता निर्मथ्याहवनीयाग्नि । इस से मथीहुई अग्नि को आहवनीय अग्नि के साथ युक्त करे । मंत्रार्थ—(जातवेदसौ, नः, समनसौ, सचेतसौ, अरेपसौ, भवतम्) हे दोनो अग्नि !, हमारी कार्यसिद्धि के लिए, एकाग्रमन, समानचित्त, हमपर कोप न करनेवाले, हूजिये (यज्ञम्, मा, हिंसिष्ट, यज्ञपतिम्, मा) यज्ञ को, मत, नष्ट करो, यज्ञपति को, मत क्षतग्रस्त करो (अद्य, नः, शिवौ, भवतम्) आज, हमारे निमित्त, कल्याणस्वरूप, हूजिये ॥ ३ ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपा वा । स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्स्वाहा ॥ ४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का ऋ० गोतम, छंद आ० त्रि० और देवता अग्नि है । स्रुवे से आज्यस्थाली में का घी लेकर डाली हुई अग्नि पर इस मंत्र से आहुति देय । मन्त्रार्थ–(ऋषीणाम्, पुत्रः, वा, अभिशस्तिपाः, अग्निः, अग्नौ, प्रविष्टः चरति, सः, नः, स्योनः, सुयजा, इह, सदम्, अप्रयुच्छन्, देवेभ्यः, हव्यम्, यज, स्वाहा) वेदवेत्ता ऋषियों के, उत्पन्न कियेहुए ऋषिकुमार, या, वैकल्पनिमित्तक अभिशाप से या दुष्टों के आक्रमण से रक्षा करने वाला, मथित अग्नि, आहवनीय अग्नि में प्रविष्ट हुआ, हवि को भक्षण करता है, वह अग्नि तुम, हमको, सुखरूप होकर, सुन्दर याग से, इस स्थान में, सदा प्रमादरहित होकर, इन्द्रादि देवताओं के अर्थ, हवि, लेजाओ, तुम्हारे निमित्त घृतका श्रेष्ठ होम हो ॥ ४ ॥

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय

शक्वन्न ओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यन्देवाना-मोजोनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, ऋषि दोनों का गोतम छन्द पहिले का आर्च्युष्णिक्, दूसरे का भुरिगार्षी पंक्ति, देवता पहिले का वायु और दूसरे का आज्य है । पहिले को पढ़कर व्रतप्रदान पात्र में स्रुवे से दो बार आज्य लेय । मन्त्रार्थ– (त्वा, परिपतये, तनूनप्त्रे, शाक्वराय, शक्वने, ओजिष्ठाय, आपतये, परिपतये, गृह्णामि) हे आज्य । तुझ को, सर्वज्ञ, सब जगत् के विस्तारकर्त्ता आत्मा के पौत्र, आकाश के पुत्र, सबकर्मों में समर्थ, बलवान, सदागति वायुदेवता के लिए, ग्रहण करता हूँ । वेदी की दक्षिण श्रोणि अर्थात् नैर्ऋत्य कोणपर आज्यपात्र रखकर ऋत्विक् और यजमान सब मिलकर पात्र को स्पर्श करतेहुए इसदूसरे मन्त्र को पढ़ें मन्त्रार्थ–(अनाधृष्टम्, अनाधृष्यम्, देवानाम्, ओजः, अनभिशस्ति, अभिशस्तिपम्, असि, आञ्जसा, अनभिशस्त्येनम्, सत्यम्, उपगेषम्, स्विते, मा, धाः)हे आज्य तुम आजतक किसी से तिरस्कार न पानेवाले, न आगे किसी से तिरस्कार पाओगे, तुम देवताओंके, सारपदार्थ, स्वयं अनिन्दनीय, निन्दित कर्म से हमारी रक्षाकरने वाले, हो । इस कारण हे आज्य सीधे मार्गसे, अनिन्दित मोक्ष के प्राप्त करानेवाले हो आज हम सरल अन्तःकरण से तुम को स्पर्श कर शपथपूर्वक, यज्ञ करने का भार लेते हैं । अब शोभन मार्ग वाले यज्ञानुष्ठान में, मुझ को, स्थापन करो ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का ऋषि गोतम, छन्द विराट् ब्राह्मी पंक्ति और देवता अग्नि है । इस को पढ़कर आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि में समिधा छोड़े । मंत्रार्थ–(व्रतपाः अग्ने, त्वे, व्रतपाः तव, या, तनूः, सा, इयम्, मयि, या, मम, तनूः, सा एषा, त्वयि, व्रतपते, नौ व्रतानि, सह,

दीक्षापतिः; मे, दीक्षाम्, अनुमन्यताम्, तपस्पतिः, तपः, अनु) हे सब व्रतोंके रक्षक, अग्निदेव, तुम, हमारे व्रतकी रक्षाकरो। तुम्हारा, जो, शरीर है, वह, यह, मुझ में हो। जो, मेरा,शरीर है,वह, यह, तुममें,हो। हे व्रतरक्षक,हम दोनोंके, अनुष्ठित कर्म,साथ हों। दीक्षा का रक्षक सोम, मेरी,दीक्षाको, माने। उस सद्रूप तपका रक्षक सोम देवता, मेरे सद्रूप तपको, माने॥ ६॥

अ॒ꣳशुर॑ꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधन॒विदे।
आ तुभ्य॒मिन्द्रः प्यायतामात्वमिन्द्राय प्यायस्व। आ-
प्याययास्मान्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम
सुत्यामशीय। एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो
नमो द्यावापृथिवीभ्याम्॥ ७॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, ऋषि पहिले का गोतम, दूसरे का वत्स। छन्द पहिले का आ० बृहती, दूसरे का आ० जगती। देवता पहिले का सोम और दूसरे का लिङ्गोक्त है। पहिले मंत्र से ब्रह्मा उद्गाता, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र यह पाँचों ऋत्विक् और छठा यजमान सोमको जल से सजीव करें। मंत्रार्थ-(देव, सोम, ते, अंशुः, अंशुः, एकधनविदे, इन्द्राय, आप्यायताम्, तुभ्यम्, इन्द्रः, आप्यायताम्, त्वम्, इन्द्राय, आप्यायस्व, सखीन्, अस्मान्, सन्न्या, मेधया, आप्यायस्व, सोम-देव, ते, स्वस्ति, सुत्याम्, अशीय) हे सोम, देवता, तुम्हारे, सब अवयव, गाँठ, मुख्य धन प्राप्त करने वाले, इन्द्रदेव की प्रीति के लिये, वृद्धि पाओ। तुम्हारे पीने के लिए, इन्द्र, प्रादुर्भूत हों। तुम, इन्द्रके पान के लिए, सब ओर से वृद्धि पाओ। हे सोम-सखा की समान प्रीति के पात्र, हम ऋत्विजों को, धनदान, और धारणशक्ति से, बढ़ाओ। हे सोम, देवता, तुम्हारा, कल्याण हो। तुम्हारी कृपा से मैं-सोमयज्ञ के अन्तस्नान दिनको, पाऊँ। दूसरे मंत्रसे सब ऋत्विज् प्रस्तर के ऊपर दोनों हाथों को ऊँचा कर के वा दाहिने हाथको ऊँचा रखकर रक्षा के लिए सोम की परिचर्या करें। मंत्रार्थ-(एष्टाः, रायः, प्रेषे, भगाय, ऋतवादिभ्यः, ऋतम्,

द्यावापृथिवीभ्याम्, नमः) हे सोम-हमारे इच्छित, धन, जिसेतुम अवश्य प्रेरणा करो ऐसे, ऐश्वर्यादि हमको प्राप्त हों। सत्य बोलने वाला हमारा अवश्यभावियुक्त कर्म सम्पादन करो, स्वर्गपृथिवी के अभिमानी देवताओं को, नमस्कार है ॥ ७ ॥

या ते॑ अग्नेऽयःशया॒ तनूर्वर्षि॑ष्ठा गह्वरे॒ष्ठा उ॒ग्रं वचो॒ अपा॑वधीत्त्वे॒षं वचो॒ अपा॑वधी॒त्स्वाहा॑। या ते॑ अग्ने रजः॒शया॒ तनूर्वर्षि॑ष्ठा गह्वरे॒ष्ठा उ॒ग्रं वचो॒ अपा॑वधीत्त्वे॒षं वचो॒ अपा॑वधी॒त्स्वाहा॑। या ते॑ अग्ने हरि॒शया॒ तनूर्वर्षि॑ष्ठा गह्वरे॒ष्ठा उ॒ग्रं वचो॒ अपा॑वधीत्त्वे॒षं वचो॒ अपा॑वधी॒त्स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, ऋषि पहिले का गोतम, दूसरे तीसरे का वत्स। छन्द पहिले का वि० ब्रा० बृहती, दूसरे तीसरे का नि० ब्रा० बृ०। देवता तीनों का अग्नि है। पहिले मंत्र से जुहूआदि में मस्तार को लगाकर परिधिस्थापन पूर्वक स्रुवेसे उपसद अग्नि में हवन करे। मंत्रार्थ-(अग्ने, या, ते अयःशया, तनूः वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा, उग्रं, वचः, अपावधीत्, त्वेषम्, वचः,अपावधीत्, स्वाहा) हेउपसद नामक अग्ने, जो, तुम्हारा, लोहपुरवासी, शरीर,देवताओं को इच्छित फल देनेवाला, और असुरों के विषम देश में स्थित रहने वाला है उसने, दैत्यों की कठोर, वाणीको, भतिरूप में नष्टकिया है। असुरों के कहे देवताओं पर आक्षेपरूप, वाक्यको, नष्ट किया, ऐसे उपकारक तुझ अग्नि के लिये श्रेष्ठ होम हो। दूसरे दिन दूसरी उपसद नामक अग्नि में आहुति देय। मंत्रार्थ-(अग्ने, या, ते, रजःशया, तनूः, वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा, उग्रम्, वचः, अपावधीत्, त्वेषम्, वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे उपसद अग्ने, जो, तुम्हारा, रजत-पुरवासी, शरीर, देवताओं को इच्छित फलदाता, और असुरों के विषम देश में स्थितिशील है उसने, दैत्यों की छिन्धि भिन्धिरूप उग्र, वाणीको, नष्टकिया था,उनके आक्षेपरूप,वचन को, नष्टकिया था, ऐसे उपकारक अग्नि के लिए श्रेष्ठहोम हो। तीसरे दिन तीसरे

मंत्र से आहुति देय। मन्त्रार्थ-(अग्ने,या,ते, हरिशया,तनूः वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा, उग्रम्, वचः अपावधीत्, त्वेषम्, वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे अग्ने, जो, तुम्हारा, सुवर्णपुरवासी, शरीर, देवताओं को इच्छित फलदाता,और असुरों के विषमदेश में स्थितिशील है उसने. असुरों के तीव्र, वचनों को, विनष्ट किया है। असुरों के आक्षेपरूप, वचनों को,नष्टकिया है,ऐसे उपकारक अग्नि के लिए श्रेष्ठ होम हो ॥

आख्यायिका-ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरश्चक्रिरे अयस्मयीमेवास्मिन् लोके रजतामन्तरिक्षे हरिणीं दिवि[३ । ४ । ४ । ३ शतपथ] इत्यादि श्रुतियों में लिखा है कि-प्रजापति के पुत्र देवता और असुरों में परस्पर वैर था अतः असुरों ने तप करके त्रिलोकी में ३ पुर बनाये, पृथिवी में लोहे का, अन्तरिक्ष में चाँदी का और स्वर्ग में सुवर्ण का । तब देवताओं ने अग्नि की उपासना करी वह अग्नि उपसद नामवाला हुआ, उसने देवताओं के हितार्थ उन पुरों में प्रवेश कर उनको भस्म करडाला तब वह तीनों पुर अग्नि के शरीर कहाए और देवताओं की विजय हुई,इसीप्रकार जो कोई उन अग्नियों की उपासना करेगा वह शत्रुओं के किले आदि तोडकर जय पावेगा ॥ ८ ॥

तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभोनामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि योस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे । अनु त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

इस खिडका मे १४ मंत्र हैं, इनमें १ से ४ तक का गोतम,५ से ८ तक का वत्स छन्द १ से ४ तक का भुरिगार्षी गायत्री,५वें का

भुरिग्ब्राह्मी बृहती,६ठे का निच्यृद्ब्राह्मी जगती,७ वें का यजुः,८ वें का भु०ब्रा०बृ०,९म का नि० ब्रा०ज०,१०वें का यजुः, ११वें का भुरि०, १२वें का नि०ब्रा०ज०,१३ वें का यजुः, १४वें का याजुषी अनुष्टुप् है। देवता १ से ४ तक का पृथिवी, ५।८। ११ वें का अग्नि, ६।७।९।१०।१२।१३।१४वें का लिङ्गोक्त है। चारोंदिशा में शम्या गाड़कर स्फ्य से चौकोण रेखा करै उन चारों रेखाओं को करतेसमय पहिले चारों मंत्र पढ़े। मंत्रार्थ-(मे, तप्तायनी, असि) हे भूमि तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करने को, निर्धनतासे दुःखी पुरुषों को शरण देनेवाली, हो (मे, वित्तायनी, असि) हे भूमि-मेरे निमित्त, धनार्थियों को धनकी खानि, हो (मा, नाथितात्, अवतात्) हे भूमिदेवि-मुझ को, याचना से, रक्षाकरो (मा, व्यथितात्, अवतात्) हे भूमि-मुझे, मन की पीड़ासे, रक्षाकरो। ५वें मंत्र से उन रेखाओं के आगे को स्फ्य से चत्वाल खोदै,जिस स्थानमें से वेदी बनाने के लिए मट्टी खोदीजाय उसको चत्वाल कहते हैं। मंत्रार्थ-(नभः, नाम, अग्निः, विदेत्) हे चत्वालमें की मृत्तिके-नभ, नामवाला, तेरा अधिष्ठाता अग्नि, मुझसे खोदीहुई तुझको जानै। छठे मंत्रसे गढ़े में से खोदीहुई मिट्टी निकालै। मंत्रार्थ-अङ्गिरः, अग्ने, आयुना, नाम्ना, एहि) हे गतिमान्, अग्ने,आयु,नामसे-तुम इस स्थानमें,आओ।७वें से उत्तर वेदी के स्थानमें उस मृत्तिका को डाले।मंत्रार्थ-(अस्याम,पृथिव्याम्,असि, ते,यत्,यज्ञियम्,अनाधृष्टम्,तेन,त्वा,आदधे) हे अग्ने जो तुम-इस, पृथिवी में,हो,इससे तुम्हारा,जो,यज्ञ के योग्य,अनिन्दनीय,नामहै, उससे,तुमको,इस स्थान में स्थापन करता हूं।८वें से दूसरी रेखाकी ओर चत्वाल खोदे। मंत्रार्थ-(नभः, नाम, अग्निः, विदेत्) हे मृत्तिके तुमको-नभ, नामा, अग्नि, जानै। ९ वें से खोदी मट्टी गढ़े से निकाले। मंत्रार्थ-(अङ्गिरः, अग्ने, आयुना, नाम्ना, एहि) हे गतिमान्, अग्ने, आयु, नाम से, आओ। १० वें से उत्तर वेदी के स्थान में सब मट्टीडाले। मंत्रार्थ-(यः, द्वितीयस्याम्, पृथिव्याम्,

असि) हे अग्ने क्योंकि तुम-दूसरी, पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्ष में, हो (ते, यत्, अनाधृष्ट, यज्ञियम्, नाम, तेन, त्वा, आदधे) इसकारण तुम्हारा, जो, यज्ञके योग्य, अनिन्दनीय, नाम है, उससे, तुमको, यहाँ स्थापन करता हूँ। ११ वें से तीसरी, ओर खोदे मंत्रार्थ-(नभ इत्यादि) अर्थ ९ वें की समान जानना। १२ वें से मृत्तिका निकाले। मंत्रार्थ-(अद्रिर इत्यादि) अर्थ नवम की समान। १३ वें से मृत्तिका डाले। मंत्रार्थ-(यः, तृतीयस्याम्, पृथिव्याम्, असि, ते, यत्, यज्ञियम्, अनाधृष्टम्, नाम, तेन, त्वा, आदधे) हे अग्ने जिससे कि तुम तीसरी, पृथ्वी द्युलोक में स्थित, हो, शेष अर्थ १० वें मंत्रवत् जानना। १४ वें से चौथी ओर खोदकर मट्टी निकालना डालना आदि सब कार्य करे। मंत्रार्थ-(देववीतये, त्वा, अनु) हे मृत्तिके-देवताओं की प्रीति के निमित्त उत्तरवेदी बनेगी अतः पूर्ववत्, तुमको, आहरणादि करता हूँ ॥ ९ ॥

सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ कल्पस्व सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ शुन्धस्व सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ शुम्भस्व ॥ १० ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों का ऋ० गोतम, छ० ब्राह्मी उष्णिक्, और देवता वेदि है। पहिले को पढकर वेदी को शम्या से ठीककर चारों ओर मध्यभाग में समान करे। मंत्रार्थ-(सिंही, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, कल्पस्व) हे वेदी तुम-सिंही के समान शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाली, हो, देवताओं के उपकारार्थ, उत्तर वेदीरूप से समर्थ होजाओ। दूसरे को पढकर वेदी का प्रोक्षण करै मन्त्रार्थ-(सिंही, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, शुन्धस्व) सिंही समान, शत्रुओं का पराभव करती, हो, देवताओं की प्रीति के अर्थ, शुद्ध होजाओ। तीसरे को पढकर वेदी के कंकर आदि दूर करै। मंत्रार्थ-(सिंही, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, शुम्भस्व) हे उत्तर वेदी तुम-सिंहीसमान, शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाली, हो, देव[illegible] के लिए सिकता पड़ने से शोभित होजाओ ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहन्तप्तं वार्वहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, पाँचों का गोतम ऋ०, निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द और उत्तर वेदि देवता है। पहिले चार मंत्रों से उत्तर वेदी की पूर्वादि चारों दिशा में जलद्वारा हाथ से मार्जन करे। मंत्रार्थ-(इन्द्रघोषः, वसुभिः, त्वा, पुरस्तात्, पातु) हे उत्तर वेदी-इन्द्र नाम से प्रसिद्ध देवता, आठ वसुओं के साथ, तुमको, पूर्व-दिशा में, रक्षा करें। (प्रचेताः, रुद्रैः, पश्चात्, त्वा, पातु) वरुण देव, ११ रुद्रों के साथ, पश्चिम में, तुमको, रक्षा करें। (मनोजवाः, पितृभिः, दक्षिणतः, त्वा, पातु) मनकी समान वेगवाले यमदेवता, दिव्य पितरों सहित, दक्षिण में, तुम्हारी, रक्षा करें (विश्वकर्मा, आदित्यैः, उत्तरतः, त्वा, पातु) विश्वकर्मा, १२ आदित्यों के साथ, उत्तर में तुम्हारी, रक्षा करें। पाँचवें मंत्रको पढ़कर मार्जन से बचा जल वेदी के बाहर दक्षिण में लगाहुआ डाले। मंत्रार्थ-(अहम्, तप्तम्, इदम्, वाः, यज्ञात्, बहिर्धाः, निःसृजामि) मैं, असुर निवारणार्थ जिससे प्रोक्षण किया था उस अग्राह्य, इस, जलको, यज्ञकी वेदी से बाहर, डालता हूं ॥ ११ ॥

सिंहीरसि स्वाहा सिंहीरस्यादित्यवनिः स्वाहा सिंहीरसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा। सिंहीरसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिंहीरस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में ६ मंत्र हैं, १ से ५ तक का गोतम ऋ०, भुरिग्ब्राह्मी पंक्ति छ०, वेदि देवता। ६ ठें का गो० ऋ०, यजुः, और स्रुग् देवता है। पहिले ५ मन्त्रों को पढ़कर वेदी की दोनों श्रोणी और दोनों अंश तथा नाभि में कुछ २ सुवर्ण स्थापन करके उसको देखते २ अध्वर्यु जुहू में आज्यलेकर पाँच आहुति देय। पहिली दक्षिण अंश

आग्नेय कोण में, मंत्रार्थ-(सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी-असुरों का भक्षण करनेवाली, हो,तुमको यह हवि देते हैं सुन्दर रूपसे ग्रहण करो। दूसरी आहुति उत्तर श्रोणि वायुकोण में देय। मन्त्रार्थ-(आदित्यवनि, सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदि तुम आदित्यों को प्रसन्न करनेवाली, सिंहीरूप, हो, तुमको हवि देते हैं सुन्दर रूप से ग्रहण करो। तीसरी आहुति दक्षिण श्रोणी नैर्ऋत्यकोण में देय । मन्त्रार्थ-(ब्रह्मवनि, सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम-ब्राह्मण क्षत्रियों की प्रीति को देनेवाली, सिंही समान, हो, यह सुन्दर आहुति तुमको देते हैं । चौथी आहुति उत्तर अंश ईशानकोण में देय । मंत्रार्थ-सुप्रजावनि,रायस्पोषवनि, सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम, अच्छी प्रजा और, धन पुष्टि को देनेवाली, पराक्रममें सिंही, हो, यह आहुति देते हैं इसको श्रेष्ठरूप से स्वीकार करो। ५वीं आहुति उत्तरवेदी के मध्यबिंदु नाभि में देय । मन्त्रार्थ-(सिंही, असि, यजमानाय, देवान्, आवह, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम-सिंहीरूप हो, यजमान के उपकारार्थ, देवताओं को, यहां पहुँचाओ, यह हवि तुमको देते हैं। छठे से वेदीके ऊपर जुहू को ग्रहण करे । मंत्रार्थ-(भूतेभ्यः, त्वा) हे घृतयुक्त जुहू-सब प्राणियों की प्रीति के लिये, तुम को वेदी के ऊपर ग्रहण करता हूं-तुम जरायुजादिभाग हो ॥ १२ ॥

ध्रुवो॒सि पृथि॒वीन्दृ॑ह ध्रु॒वक्षि॑दस्यन्तरि॑क्षन्दृ॒ꣳहाच्यु॒तक्षि॑दसि॒ दिवं॑ दृ॒ꣳहाग्नेः पुरी॑षमसि ॥ १३ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, चारों का गोतम ऋ०, १ से ३ तक का भुरिगार्ष्यनु० छन्द, ४ थे का दैवी जगती छ०, देवता १ से ३ तक का परिधि और ४ थे का सम्भार है। पहिले ३ मंत्रों को पढकर देवदारु की बनी ३ परिधियों के द्वारा उत्तर वेदी की नाभि से, दर्श पौर्णमास इष्टि की समान पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तीन दिशाओं में परिधि करे। मंत्रार्थ-(ध्रुवः, असि, पृथिवीम्, दृंह ध्रुवक्षित्, असि, अन्तरिक्षम्, दृंह । अच्युतक्षित्, असि दिवम्, दृंह) हे मध्य

मपरिधि तुम-स्थिर हो, यहां की पृथ्वी को,दृढ़ करो। हे दक्षिण परिधि तुम-स्थिर यज्ञ में निवास करती हो, अन्तरिक्ष को, दृढ करो। हे उत्तरपरिधि ? तुम-अविनाशी यज्ञ में निवास करती,हो, द्युलोक को, दृढ करो। चौथे मंत्र से नाभि के मध्यविन्दु में संभार (गूगल, तेजपात भेड़के वाल) स्थापन करै। मंत्रार्थ-(अग्नेः, पुरीषम्, असि) हे सम्भार तुम अग्नि के, पूर्णकर्ता हो ॥ १३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो वि-पश्चितः। विहोत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का श्यावाश्व ऋ०, स्वराडार्षी ज०छं० और सविता देवता है। हविर्धान मंडप बनाकर अध्वर्युशाला में प्रवेशकर आज्य का संस्कार करके चार वार ग्रहण किएहुए आज्य को परिस्तरणसमिदाधानपूर्वक अग्नि में इस मंत्र से आहुति देय। मंत्रार्थ-(बृहतः, विपश्चितः, विप्रस्य, विप्राः, होत्राः, मनः, युञ्जते, उत, धियः युञ्जते, वयुनावित्, एकः, इत्, विदधे, सवितुः, देवस्य परिष्टुतिः, मही, स्वाहा) वेदपाठ से महत्व को प्राप्त, सर्वज्ञ, यजमान के वेदवेत्ता, होम करने वाले ऋत्विज, मनको, यज्ञानुष्ठान में लगाते हैं, और इंद्रियों को, लगाते हैं, क्यों कि- सव प्राणियों के मन बुद्धि की वृत्तियों को जाननेवाले, अकेले सृष्टिकर्त्ता ने, ही इन ब्राह्मणों की मनोवशीकारादि सामर्थ्य को रचा है, क्योंकि-प्रेरक अन्तर्यामी, परमात्मा देव की, सदा कीहुई स्तुति, बड़ी है, उस परमेश्वर के निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ १४ ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाᳪसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

इस मंत्र का मेधातिथि ऋ०,गु०,गाय०छ०और विष्णु देवता है। फिर घृत का संस्कार कर और ४ वार ग्रहण किएहुए को लेकर दक्षिण हविर्धान के दक्षिण चक्रमार्ग में, सुवर्ण को रखकर शाला द्वार की अग्नि में इस मंत्र से होम करै। मन्त्रार्थ-(विष्णुः, इदम्,

विचक्रमे, त्रेधा, पदम्, निदधे, अस्य, पांसुरे, समूढम्, स्वाहा) सर्वव्यापी त्रिविक्रमावतारधारी विष्णुने, इस विश्व को, विभागपूर्वक उल्लंघन किया, पहिला भूमि में दूसरा अन्तरिक्ष में तीसरा द्युलोक में ऐसे तीन प्रकार, पद, रक्खा; इस विष्णु के, पद में, सम्यक्प्रकार विश्व अन्तर्भूत है, उस परमात्मा को हवि देते हैं ॥

इस मंत्र में वामनावतार की कथा गर्भित है जिसका प्रमाण निरुक्त का यह वचन है—"यदिदं किञ्च विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यत इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा" ॥ १५ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवे ते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वशिष्ठ ऋ० स्व० आ० त्रि० छ० और विष्णु देवता है। आहवनीय अग्नि के ईशानकोण में रक्षित उत्तर शकट (हविर्धान) के दक्षिण चक्रमार्ग में सुवर्ण रखकर प्रतिप्रस्थाता और अध्वर्यु के दियेहुए स्रुवे और स्थाली को लेकर चारवार लिए हुए घृत का हवन करे। मंत्रार्थ—(रोदसी, इरावती, धेनुमती, सूयवसनी, मनवे, दशस्या, भूतम् विष्णो, एते, व्यस्कभ्ना:, पृथिवीम् मयूखैः, अभितः, दधर्थ, स्वाहा) हे द्यावापृथिवी, इस यजमान के कल्याणार्थ अन्नजल वाली, बहुतसी धेनुओं से युक्त, बहुत से उत्तम खाने के पदार्थवाली, ज्ञानी यजमान के लिये, यज्ञसाधनों की देने वाली, हो, हे सर्वव्यापी परमात्मन् !, इन स्वर्ग पृथिवी को, स्तंभित किये हो, पृथिवी को, अपने तेजःस्वरूप सूर्यचन्द्रादि के द्वारा, सब ओर से, धारण कररहे हो, उन विष्णु को यह आहुति देते हैं ॥ १६ ॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम्प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊ-

ध्वं गृभ्णन्नयतम्मा जिन्हरतम्। स्वङ्गोष्ठमावदतन्देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टम्प्रजाम्मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः॥ १७॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, ऋषि चारों का वशिष्ठ, छन्द पहिले चौथे का याजुषी पंक्ति, २रे का निच्यृदार्षी गायत्री, तीसरे का भुरिगार्षी गा० और देवता चारों का हविर्धान है। शाला के दक्षिण द्वार से लाईहुई पत्नी बारबार लिपेहुए होम से शेषघृत को लेकर दोनों अक्ष के धुरों में इस मंत्र से लगावे। मंत्रार्थ-(देवश्रुतौ, देवेषु, आघोषतम्) हे अक्षधुरों तुम-देवसभा में प्रसिद्ध, देवताओं में, उच्च स्वर से कहो कि-यजमान यज्ञ करता है। शकट के यथास्थान में आने पर यजमान इस मंत्र को पढ़कर पूर्वमुख हो इसकी दृढ़रूप से रक्षा करे। मंत्रार्थ-(अध्वरम्, कल्पयन्ती, प्राची, प्रेतम्, यज्ञम्, ऊर्ध्वम्, नयतम्, मा-जिह्वरतम्) हे दोनो शकट-यज्ञ को, समर्थ कर लेहुए, पूर्वमुख, जाओ। यज्ञ को, ऊर्ध्वलोकवासी देवताओं के समीप, लेजाओ, कुटिल मतहोओ। तीसरे मंत्र से यजमान अक्ष को आधा तकरशब्द करे। मन्त्रार्थ-(दुर्ये, देवी, स्वम्, गोष्ठम्, आवदतम्, आयुः मा-निर्वादिष्टम्, प्रजाम्, मा-निर्वादिष्टम्) हे गृहसमान, शकटरूप देवताओं, अपने, गोठ को, सब ओर से कहो, यजमान की आयु को, पशु आदि से रहित मत उच्चारण करो, पुत्रादि प्रजा को, शाप रूप दुर्वाक्य को मत कहो। चौथे मंत्र से उत्तर वेदी के पश्चिम में ३ परिक्रमा होजाने पर दोनों शकट को मध्यफलकाधारस्थ कर के स्थापन कर इस मंत्र से अभिमन्त्रण करे। मंत्रार्थ-(पृथिव्याः, अत्र, वर्ष्मन्, रमेथाम्) पृथिवी के, इस, देवयजन रूप स्थान में, क्रीड़ा करो॥ १७॥

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरꣳसधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥ १८॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, दोनो का औतथ्य दीर्घतमा ऋ०,

छन्द १ ले, का स्वराडार्षी त्रि०, २ रे का यजु और देवता दोनो का विष्णु है। अध्वर्यु दोनो हविर्धान को उत्तर २ ओर से परिक्रमण कर दक्षिण हविर्धान को इस मंत्र से स्तम्भ पर खडा करे। मंत्रार्थ-(विष्णोः, नुकम्, वीर्याणि, प्रवोचम्, यः, पार्थिवानि, रजांसि, विममे, यः, त्रेधा, विचक्रमाणः, उरुगायः, उत्तरम्, सधस्थम्, अस्कभायत) सर्वव्यापी विष्णुभगवान् के किन २ कर्मों को, कहूँ, अर्थात् परमात्मा की क्या स्तुति करूं उनकी महिमा असीम है, जिस परमात्मा ने, भूमि अन्तरिक्ष स्वर्गसम्बन्धी ज्योतिषियों को, रचा है, जो परमात्मा, तीन लोक में अग्नि वायु सूर्यरूप से, तीन पद धारण करताहुआ, महात्माओं से गायागया है, ऊपरके देवताओं के स्थानरूप द्युलोक को, स्तम्भित किया है। दूसरे मंत्र से अग्निकोण में स्थूण गाड़े। मंत्रार्थ-(विष्णवे, त्वा)हे स्थूणकाष्ठ, विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए, तुझको गाड़ता हूं॥ १८॥

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा॥ १९॥

इस कण्डिका के मंत्र का औत० दीर्घ० ऋ०, निच्यदार्षी जग० छ० और विष्णुदेवता है। इस मंत्र से प्रतिप्रस्थाता उत्तर शकटको खड़ा करता हुआ भूमि में पूर्ववत् स्तम्भको खननकर गाड़े। मंत्रार्थ (विष्णो, विष्णो, दिवः, वा, पृथिव्याः, उत वा, महः, उरोः, अन्तरिक्षात्, वा, वसुना, उभा, हि, हस्ता, पृणस्व, दक्षिणात्, उत, सव्यात्, आप्रयच्छ, विष्णवे, त्वा) हे सर्वव्यापिन्, परमात्मन्, स्वर्गलोक से, वा, पृथिवीलोक से, भी, और, बड़े, विस्तीर्ण, अन्तरिक्ष से, भी, धन से, दोनो, ही, हाथ, पूर्णकरो, तब धनपूर्ण-दहिने, वा, वामहस्तसे, अनेक प्रकार के धनरत्न हमको दो, हे काष्ठस्तम्भ, विष्णुदेव की प्रीति के लिए, तुझको गाड़ता हूँ॥ १९॥

प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुव-

नानि विश्वा ॥ २० ॥

इस मंत्रको औ० दी० ऋ०, विरा० त्रि० छन्द और विष्णुदेवता है। मध्यम छदी को स्पर्शकर इस मन्त्र को पढ़े। मन्त्रार्थ—(तत्, भीमः, कुचरः, मृगः—न, गिरिष्ठाः, विष्णुः, वीर्येण, मस्तवते, यस्य, उरुपु, त्रिपु, विक्रमणेपु, विश्वा, भुवनानि, अधिक्षियन्ति) वह, जिससे चराचर भयमानते हैं, सिंहकी—समान, पृथिवीपर मत्स्यादिरूप से विचरनेवाला, देह में अन्तर्यामीरूप से स्थित, सर्व व्यापी परमात्मा, असुरवध तथा भक्त और धर्मकी रक्षारूप पराक्रम से, स्तुति को प्राप्तहोता है, जिस परमात्मा के, महान्, तीन, पादमक्षेपण स्थान तीनों लोकों में, सब, लोक, निवास करते हैं ॥ २० ॥

विष्णो॒रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णो॒स्यूर॑सि विष्णोर्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, ऋषि चारों का औ० दी०, छन्द १ले का याजु० उ०, २। ३। ४ का दै० पंक्ति, ५ वें का याजु० बृह०। देवता चारों का विष्णु है। दोनो हविर्धान शकट को दक्षिणोत्तर स्थापन करके उनके ढकने को मण्डप बनावे और विष्णुदेवता होने से मण्डप को भी विष्णु कहते हैं और विष्णु के सब अवयव होने से जैसे ललाट उच्च अवयव है उसी प्रकार हविर्धान मण्डप के पूर्व द्वारवर्ती स्तम्भ के मध्य में एक कुशों की माला गूंथीजाती है उस माला वा उसके बन्धनाधार तिरछे बाँसका सम्बोधन करते हैं उसका मंत्र। मन्त्रार्थ—(विष्णोः, रराटम्, असि) हे दर्भमालाधार वंश तुम—यज्ञरूप विष्णु के, ललाट स्थानीय, हो। दूसरे मंत्र से उरूछाई ललाट के प्रान्तों को स्पर्श करे। मन्त्रार्थ—(विष्णोः, श्नप्त्रे, स्थः) हे ललाट के प्रान्त तुम दोनो—यज्ञरूप विष्णु के, ओष्ठसन्धिरूप, हो। तीसरे मंत्र से अध्वर्यु सूए में सुतली पिरोकर उस से रराटी के चारों पूर्ण द्वारशाखाओं की सींवै। मन्त्रार्थ—(विष्णोः, स्यूः, असि) हे बृहत्सूची तुम—यज्ञीयमण्डप की, सूची, हो। चौथे मंत्र से सींवन के आरम्भ में रस्सी की जड़ में गाँठदेय। मन्त्रार्थ—

(विष्णोः, ध्रुवः, असि) हे ग्रन्थि तुम-यज्ञीय विष्णुरूप मण्डप की, अतिदृढ़ ग्रन्थि, हो । पाँचवें मंत्रसे पूर्वाग्र बाँसों के मण्डपको बनाकर स्पर्श करै। मन्त्रार्थ-(वैष्णवम्, असि, विष्णवे, त्वा) हे हविर्धान तुम-विष्णु सम्बन्धी, हो, इस कारण विष्णु की प्रीति के अर्थ, तुझको स्पर्श करता हूँ ॥ २१ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, चारों का औ० दीर्घ० ऋ०; छंद १ ले का प्राजा० बृह०,२ रे का याजु० गाय०,३रे का आसु० उष्णिक्,४ थे का आर्षीपंक्ति। देवता पहिले और दूसरे का अभ्रि, ३रे का रक्षोघ्न और ४ थेका उपरव है। १ ले मंत्र से काठका कुदाल लेकर यूपवाटकी समान चार गढ़ोंका चिन्ह करै। मन्त्रार्थ-(सवितुः देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम्, त्वा, आददे) हे अभ्रि-सविता, देवता की, प्रेरणा होनेपर, अश्विनीकुमार की, बाहुभावको प्राप्त अपनी भुजाओं से, पूषादेवता के, हस्तभाव को प्राप्त अपने हाथों से, तुझको, उपरवकार्य में ग्रहण करता हूँ । इस अभ्रि को खननोन्मुख करके दूसरे मंत्र से दृढमुष्टि करै । मंत्रार्थ (नारी, असि) हे अभ्रि तुम हमारा उपकार करनेवाली, हो । तीसरा मंत्र पढ़कर अभ्रिद्वारा अग्निकोण आदि चारों कोनों में चार गढ़हे खोदने को प्रादेश भर गोल आकार में कुरेदै । मंत्रार्थ-(इदम्, अहम्, रक्षसाम्, ग्रीवा, अपि, कृन्तामि) यह, मैं अध्वर्यु, यज्ञविनाशक राक्षसों की, गर्दनों को, भी, काटता हूँ । चौथे मंत्र से परकण्डिका के प्रथम मन्त्रतक चारों ओर लिखनेके अनुसार बाहु भर के चार गढ़हे खोदै । मंत्रार्थ-बृहन्, बृहद्रवाः, असि, इन्द्राय, बृहतीम्, वाचम्, वद) हे घोरतर शब्दकारी उपरव तुम-महान्, महाशब्द करते, हो, इन्द्रदेवता की प्रीति के लिए, ऐसी उच्चध्वनि

वाली, वाणी को, बोलो ॥ २२॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, पाँचों का औत० दी० ऋ०, छंद-१ले का निच्यृ० गाय०, २।३।४ थे का भुरि० गाय०, ५वें का यायुषीगा० । देवता सबका लिङ्गोक्त है । पूर्वमंत्र का शेष-(रक्षोहणम्, वलगहनम्, वैष्णवीम्) राक्षसवधविषयक, कृत्यानाशक, और यज्ञरक्षक विष्णु से सम्बन्ध रखनेवाला है. यह इन्द्र से कहो । १ले मंत्र से अग्निकोण के गढ़े में से मट्टी निकाले। मन्त्रार्थ-(निष्ट्यः, यम्, अमात्यः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, वलगम्, उत्किरामि) अत्यन्त संघातरूप से वर्धमान चाण्डाल आदि या शरीर के सम्बन्धी आदि ने, जिसका, घर के कृत्यज्ञाता सम्मतिदाता ने, जिसका, मेरे अनिष्ट के लिये, प्रयोग किया, मैं, उस, इस, अभिचार को, दूर करता हूँ। दूसरे मंत्र से नैर्ऋत्यकोण के गढ़े से मट्टी निकालकर फेंके। मंत्रार्थ-(समानः, यम्, असमानः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, वलगम्, उत्किरामि) धनकुल आदि समान ने, जिस कृत्यको, तथा जिसको, धनकुल आदि में न्यून वा अधिकने, मेरे वधके निमित्त, प्रयोग किया है, मैं, उस, इस, कृत्या को, उत्खात सहित निकालकर फेंकता हूँ। तीसरे मंत्र से वायुकोण की मृत्तिका निकाले। मंत्रार्थ-(सबन्धुः, यम्, असबन्धुः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, वलगम्, उत्किरामि) मातुलादि समान कुलवाले ने, जिसकृत्या को, तथा असम्बन्धीने, जिसको, मेरे निमित्त, प्रयोग किया, मैं, उस, इस कृत्याको, दूर फेंकता हूँ। ४ थे मंत्र से ईशानकोण के की

ऋषि सब का औतथ्य दीर्घतमा है। छन्द ४ का आसुरी उष्णिक्, ५ का याजुषी जगती, ६ का याजुषी पंक्ति और ७ का दैवी जगती है। देवता ४। ५।६ का यव, ७ का औदुम्बरी, ८।९ का पितर है। २२ वीं कण्डिका में प्रथम ३ मंत्रों का विनियोग और व्याख्या होचुकी है। चौथे मंत्र से इस गर्त्त के चारों ओर जल छिड़ककर गीली भूमि में जौ बोवै। मंत्रार्थ—(यवः, असि, द्वेषः, अस्मत्, यवय, अरातीः, यवय) हे शस्य ! तुम यवहो, हमारे, शत्रु वा दुर्भाग्य को हमसे दूर करो, हमारे वैरियों को, दूर करो। ५वें मंत्र से गूलड़ की शाखा के अग्र, मध्य और मूल में, जलपात्र में जोबालकर प्रोक्षण करे। मंत्रार्थ—(देवि, त्वा, अन्तरिक्षाय, त्वा, पृथिव्यै, त्वा) हे गूलड की शाखा के अग्रभाग ! द्युलोक की प्रीति के अर्थ, तुझको प्रोक्षण करता हूं, हे मध्यभाग ! अन्तरिक्ष की प्रीति के अर्थ, तुझको प्रोक्षण करता हूँ, हेमूलभाग ! पृथिवी की प्रीति के अर्थ, तुझको प्रोक्षण करता हूँ। छठे मंत्र से बचेहुए जल को उस गर्त्त में डाले। मंत्रार्थ—(पितृषदनाः, लोकाः, शुन्धन्ताम्) पितरों के निवासस्थान, लोक, शुद्धहों। ७ वें मंत्र से गर्त्त के चारों ओर उत्तराग्र कुशा बिछावे। मंत्रार्थ–(पितृषदनम् असि) हे कुशाओं ! तुम पितरों के बैठने का आसन, हो॥२६॥

उद्दिवंᳪस्तभानान्तरिक्षम्पृण दृᳪहस्व पृथिव्यान्द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनिस्त्वा क्षत्रवनिं रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दृᳪह क्षत्रं दृᳪहायुर्दृᳪह प्रजान्दृᳪह ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, ऋषि चारों का औतथ्य दीर्घतमा। छन्द पहिले का भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप्, दूसरे का आर्ष्युष्णिक्, तीसरे का भुरिक्साम्नीबृहती और चौथे का आसुरी गायत्री है। देवता चारों का औदुम्बरी है। प्रथम मंत्र से औदुम्बरी को खड़ा करे। मंत्रार्थ–(दिवम्, उत्तभान, अन्तरिक्षम्, पृण, पृथिवीम्, आदृंहस्व) हे औदुम्बरी देवता ! द्युलोक को, स्तम्भित करो।

अन्तरिक्ष को, पूरित करो। पृथिवी को, दृढ करो। दूसरे मंत्र से गूलर की शाखा को गढे में डाले। मंत्रार्थ-(मित्रावरुणौ, त्वा, द्युतानः, मारुतः, ध्रुवेण, धर्मणा, त्वा मिनोतु) हे गूलरकी शाखे मित्रावरुण नामक दोनों देवता, दीप्तिमान, वायुदेवता, स्थिर, धर्म से, तुझको, गढे में डाले। तीसरे मंत्र से यूप की समान मट्टी डालकर जल से पूरित करे। मंत्रार्थ-(ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, रायस्पोषवनि, त्वा, पर्यूहामि) हे गूलर की शाखे ! ब्राह्मणों से सेवनीय, क्षत्रियों से सेवनीय, धनपुष्टि के लिये सेवनीय। तुझ को, इस गढे में मट्टी डालकर दृढ करता हूँ। चौथे मंत्र से अध्वर्यु उस मट्टी से भरेहुए गढे को मैत्रावरुण दण्ड से कूटे और मट्टी को गढे में डाले। मंत्रार्थ-(ब्रह्म, दृंह। क्षत्रम्, दृंह। आयुः, दृंह। प्रजाम्, दृंह) हे शाखा ! ब्राह्मणजाति को, दृढ कर। क्षत्रियजाति को, दृढकर। जीवन को, दृढकर। पुत्र आदि प्रजा को, दृढ कर ॥ २७ ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं। ऋषि तीनों का औतथ्यदी०, छन्द-१ ले का निचृदार्षी गायत्री, २ रे का याजुषी त्रिष्टुप् और ३ रे का साम्न्युष्णिक् है। देवता-१ले का औदुम्बरी, २रे का द्यावापृथिवी और ३ रे का इन्द्र है। १ ले मंत्र को पढ़कर औदुम्बरी को स्पर्श करे। मंत्रार्थ-(ध्रुवा, असि। अयम्, यजमानः, अस्मिन्, आयतने, प्रजया, पशुभिः, ध्रुवः, भूयात्) हे शाखा ! तू स्थिर, है। यह, यजमान, इस, अपने स्थान में, सन्तान सहित, पशुओं सहित, स्थिर, हो। दूसरे मंत्र से अध्वर्यु औदुम्बरी के, जहाँ से दो शाखा उत्पन्न हुई हों उस प्रदेश में स्रुवे से घृत का होम करे। मंत्रार्थ-(घृतेन, द्यावापृथिवी, पूर्येथाम्) होमेहुए घृत से, पृथिवी और स्वर्ग, पूरित हो। तीसरे मंत्र से औदुम्बरी को गाड़कर सदः नाम मण्डप को बनाकर उसको छाने के लिये तृणों की चटाई को लगावै। मंत्रार्थ

(इन्द्रस्य, छदिः, विश्वजनस्य, छाया, असि) हे तृणकी चटाई तू, ऐश्वर्यवान् यजमान के, इसमण्डप को छानेवाली, सबजनों की छायारूप, हो ॥ २८ ॥

परि॑त्वा गिर्वणो॒ गिर॑ इ॒मा भ॑वन्तु वि॒श्वतः॑ ।
वृ॒द्धायु॒मनु॒वृद्ध॑यो॒ जुष्टा॑ भवन्तु॒ जुष्ट॑यः ॥ २९ ॥

इस का मधुच्छन्दा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है। इस मंत्र से छाने के परिवारकों से छतको चारों ओर से आच्छादन करै। मंत्रार्थ-(गिर्वणः, इमाः, अनुवृद्धयः, गिरः, त्वा, विश्वतः, परिभवन्तु । वृद्धायुम्, जुष्टयः,जुष्टाः, भवन्तु) हे स्तुतियोग्य सभा के अधिष्ठात्री इन्द्रदेव !, यह, सवनक्रम से वृद्धियुक्त, स्तोत्र शास्त्र रूप वाणी, तुमको, सब ओर से,ग्रहण करो,वड़े अग्रवान् तुमको हमारी सेवा, प्रिय, हों ॥ २९ ॥

इन्द्र॑स्य॒स्यूर॑सी॒न्द्र॑स्य ध्रु॒वो॑ऽसि । ऐ॒न्द्रम॑सि वैश्वदे॒वम॑सि ३०

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं । ऋषि—४ रों का मधुच्छन्दा । छन्द-१ । २ । ४ का याजुषी गायत्री और ३ रे का दैवी वृहती है देवता १ । २ । ३ का इन्द्र और ४ थे का विश्वेदेवा है। १ ले मंत्र को पढ़कर पूर्व द्वार के दक्षिण स्थूण आदि के प्रदक्षिण क्रम से चारों द्वारों का परिषीवण करै अर्थात् रस्सी को मिलावै। मंत्रार्थ-(इन्द्रस्य,स्यूः,असि) हे रस्सी तू सभा के अधिष्ठात्री इन्द्रदेवता के सम्बन्ध की, सीवन, है । दूसरे मंत्र से गाँठ देय । मंत्रार्थ-(इन्द्रस्य, ध्रुवः, असि) हे गाँठ तू इन्द्र के सम्बन्धवाली, स्थिर, है ३ रे मंत्र से सभा को सम्बोधन करै । मंत्रार्थ—(ऐन्द्रम्, असि) हे सभा तू इन्द्रदेवता की प्रसन्नता के लिये निर्मित, है । ४ थे मंत्र से हविर्धान मण्डप के वायव्य कोण के उत्तरभाग में आग्नीध्र नामक अग्निस्थान बनाकर उसको स्पर्श करै । मंत्रार्थ-(वैश्वदेवम्,असि) हेआग्नीध्र तुम सब देवताओं के आवाहनस्थान,हो।

वि॒भूर॑सि प्र॒वाह॑णो॒ वह्नि॑रसि हव्य॒वाह॑नः ।
श्वा॒त्रो॑ऽसि॒ प्रचे॑तास्तु॒थो॑ऽसि वि॒श्ववे॑दाः ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र है। ऋषि-सबका मधुच्छन्दा। छन्द-१ ले का प्राजापत्या गायत्री, दूसरे तीसरेका याजुषी गायत्री और चौथे का दैवी जगती है। देवता चारों का अग्नि है, अध्वर्यु उत्तरमुख बैठकर अग्नियों की आश्रय छोटी वेदीरूप धिष्ण्यों को मट्टी से बनावे, उस में पाहिले आग्नीध्र की वेदी को प्रथम मंत्र पढ़कर सम्हाले। मंत्रार्थ-(विभूः, प्रवाहणः, असि) हे आग्नीध्रीय धिष्ण्य के अग्नि तुम नानारूपधारक, हवि के पहुँचानेवाले, हो। तदनन्तर पश्चिममुख अध्वर्यु पूर्व में सद के द्वार को, उसके उत्तर में होता के धिष्ण्य को दूसरे मंत्र से सम्हाले। मंत्रार्थ-(वह्निः, हव्यवाहनः, असि) हे होतृधिष्ण्य के अग्नि तुम यज्ञकर्म के निर्वाहक, देवताओं को हव्य प्राप्त करानेवाले, हो। फिर उत्तरमुख अध्वर्यु औदुम्बरी के अग्निकोण और होतृधिष्ण्य के दक्षिण में मैत्रावरुण के धिष्ण्य को तीसरे मंत्र से सम्हाले। मंत्रार्थ-(श्वात्रः प्रचेताः, असि) हे मैत्रावरुण धिष्ण्य के अग्नितुम शीघ्रगामी मित्ररूप, श्रेष्ठ ज्ञानवाले वरुणरूप, हो। होतृधिष्ण्य के उत्तर ब्राह्मणाच्छंसि, पोता, नेष्टा, अच्छावाक् चारों ऋत्विजों के धिष्ण्यों को समानान्तर चौथे मंत्र से सम्हाले। मंत्रार्थ-(तुथः, विश्ववेदाः, असि) हे ब्राह्मणाच्छंसि धिष्ण्य के अग्नितुम ब्रह्मरूप अथवा देवताओं में दक्षिणा विभाग करनेवाले, सर्वज्ञ, हो॥ ३१॥

उ॒शिग॑सि क॒विरङ्घा॑रिरसि॒ बम्भा॑रिरव॒स्यूर॑सि॒ दुव॑स्वाञ्छु॒न्ध्यूर॑सि मार्जा॒लीयः॑ स॒म्राड॑सि कृ॒शानुः॑ परि॒षद्यो॑ऽसि॒ पव॑मानो॒ नभो॑ऽसि प्र॒तक्वा॑ मृ॒ष्टो॑ऽसि, हव्य॒सूद॑न ऋ॒तधा॑मासि॒ स्व॒र्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका में ९ मंत्र हैं। ऋषि-सबका मधुच्छन्दा, छन्द-१। ६। ७ का याजुषी गायत्री, २। ३। ४। ८। ९ वें का याजुष्यनुष्टुप् और ५ वें का याजुष्युष्णिक् है। देवता-१। २। ३। ४ का अग्नि, ५ वें का आहवनीय, ६ ठे का बहिष्पवमान, ७ वें का चत्वाल, ८ वें का शामित्र और ९ वें का औदुम्बरि है। ब्राह्मणाच्छंसि धिष्ण्य

के कुछ उत्तर में पोतृधिष्ण्य बनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का प्रथम मंत्र से नामकरण करे। मंत्रार्थ (उशिक्, कविः, असि) हे पोतृधिष्ण्याग्ने! तुम कमनीय, और क्रान्तदर्शी होने से कविनाम वाले, हो। पोतृधिष्ण्यके कुछ दूर नेष्टृधिष्ण्य बनाकरउसपर अधिष्ठित अग्नि का दूसरे मंत्र से नामकरण करे। मंत्रार्थ-(अंघारिः, वम्भारिः, असि) हे नेष्टृधिष्ण्य के अग्नि! तुम पापनाशक होने से अंघारि, पोषक होने से बंभारि, हो। ३ रे मंत्र से नेष्टृधिष्ण्य के कुछ दूर मण्डप के मध्यगत आग्नीध्र से कुछ दक्षिण में अच्छावाक् धिष्ण्य बनाकर उसपर स्थित अग्नि का नामकरण करे। मंत्रार्थ-(अवस्यूः, दुवस्वान, असि) हे अच्छावाक् धिष्ण्य के अग्नि तुम अन्न चाहनेवाले, हविष्मान हो। चौथे मंत्र से मार्जालीयधिष्ण्य बनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का नामकरण करे। मंत्रार्थ-(शुन्ध्यूः,मार्जालीयः,असि) हे मार्जालीय धिष्ण्य के अग्नि तुम पवित्र करनेवाले,मार्जन करनेवाले हो।५वें मंत्रसे सभामण्डप के पूर्वभाग की उत्तरवेदी में स्थित आहवनीय अग्नि का नामकरण करे मंत्रार्थ-(सम्राड्,कृशानुः, असि) हे उत्तरवेदी के आहवनीय अग्ने तुम बहुतप्रकार की आहुति धारण करने से भलेप्रकार शोभायमान, और पयोव्रत आदि से कृश यजमान के अनुगामी, हो।६ठे मंत्र से पश्चिम में ऐष्टिक वेदी के उत्तर बहिष्पवमान धिष्ण्य बना कर उसका नामकरण करे। मंत्रार्थ-(परिषद्यः, पवमानः, असि) हे बहिष्पवमान देश तुम स्तुतिकारक ऋत्विजों की सभा के योग्य और:पवित्र करनेवाले, हो। ७ वें मंत्र से सभामण्डप के पूर्वद्वार में चत्वाल का नामकरण करे। मंत्रार्थ-नभः, प्रतक्वा, असि.) हे चत्वाल तुम छिद्रयुक्त होने से आकाशस्वरूप, और ऋत्विजों के प्रदक्षिण चलने से प्रतक्वा नामवाले, हो। ८ वें मंत्र से चत्वाल के दक्षिण में शामित्रधिष्ण्य का नामकरण करे। मंत्रार्थ-(मृष्टः, हव्यसूदनः, असि) हे शामित्रतुम पवित्र, और हविपाक के कारण, हो। ९ वें मंत्र से सदोमण्डप के मध्य पश्चिम प्रान्त की औदुम्बरी

का नामकरण करै। मंत्रार्थ-(ऋतधामा, स्वर्ज्योतिः, असि) हे औदुम्बरि तुम उद्गाता की प्रधानकार्यस्थान, और स्वर्गप्रकाशक, हो।

समुद्रोसि विश्वव्यचा अजोस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्रमातिरस्वस्ति मेस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका में ६ मंत्र हैं। ऋषि सब का मधुच्छन्दा, छन्द १ ले का प्राजा० गाय०, २।३ का दै० पंक्ति, ४ का याजुपीवृ० ५ वें का याजुषी० प०, ६ ठे का निच्यृदार्पीगा० है, देवता १ ले का ब्रह्मासन, २ रे का अग्नि, ३ रे का गार्हपत्याग्नि, ४ थे का सदः, ५ वें का द्वारशाखे, ६ ठे का सूर्य है १।२।३ मंत्र से सदोमण्डप के पूर्वद्वार के पूर्वभाग में स्थित होता, ब्रह्मासन शालाद्वार और प्राजहित को देखै मंत्रार्थ-(१ समुद्रः, विश्वव्यचाः, असि) हे ब्रह्मासन तुम सब देवताओं के सन्मुख आने के स्थान अथवा समुद्र तुल्य ज्ञान से गम्भीर ब्रह्मा के आसन, यज्ञ में कृत अकृत देखने के स्थान हो। (२ अजः, एकपात्, असि) हे शालाद्वार के अग्ने तुम आहवनीय रूप से यज्ञ में जानेवाले वा अजन्मा, अद्वितीय रक्षक वा सब प्राणी जिस के एक चरण में हैं ऐसे, हो। (३ अहिः, बुध्न्यः असि) हे प्राजहितनाम गार्हपत्य अग्ने! तुम शालाद्वार के नए गार्हपत्य के उत्पन्न होने परभी अक्षयरूप, और आधानकाल में प्रथम स्थापित होने के कारण मूलरूप, हो। ४ थे मंत्र से सदोमण्डप का मार्जन करै। मंत्रार्थ-(४ वाक्, असि। ऐन्द्रम्, असि, सदः, असि) हे सभामण्डप तुम अपने मध्यवाक् से कर्म होने के कारण वाणीरूप, हो, इन्द्र को देवता रखनेवाले, हो। बैठने के स्थान, हो। ५ वें मंत्र से द्वार के दोनों ओर स्थापित केले के खंभ आदि का मार्जन करै। मंत्रार्थ (५ ऋतस्य, द्वारौ, मा, मा सन्ताप्तम्) हे यज्ञ के द्वार के शाखाओं तुम, मुझ को, मत सन्तप्त करो। ६ ठे मंत्र से यजमान देवयानमार्ग के

संस्कार के लिये सूर्य का अभिमंत्रण करे । मंत्रार्थ-(हे अध्वपते, अध्वनाम्, मा, मतिर । अस्मिन्, देवयाने, पथि, मे, स्वस्ति भूयात्) हे मार्ग के रक्षक सूर्य, मार्गों में वर्त्तमान, मुझको बढ़ाओ । इस, देवयान, मार्ग में, मेरा, कल्याण, हो ॥ ३३ ॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नयः पिपृत मांग्नयो गोपायत नमो वोऽस्तु मा मा हिंᳪसिष्ट ३४

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं । ऋषि दोनों का मधु०, छन्द -१ ले का याजुषीबृहती और २ रे का निचृद्ब्राह्मी अनु० है । देवता १ले का ऋत्विज् और दूसरे का धिष्ण्य है । १ ले मंत्र से यजमान सब ऋत्विजों का अभिमन्त्रण करे । मंत्रार्थ-(मित्रस्य, चक्षुषा, मा, ईक्षध्वम्) हे ऋत्विजों ! मित्र की, दृष्टि से, मुझको, देखो । दूसरे मंत्र से अध्वर्यु आठों धिष्ण्यों को देखता हुआ प्रार्थना करे । मंत्रार्थ (सगराः, अग्नयः, सगरेण, नाम्ना, सगराः, स्थ । अग्नयः, रौद्रेण अनीकेन, मा, पातम् । अग्नयः, मा, पिपृत । मा, गो पायत । वः, नमः, अस्तु । मा, मा, हिंसिष्ट) हे स्तुतियुक्त, धिष्ण्यों की अग्नियों ! स्तुतियुक्त नामधिष्ण्य से, स्तुति कीहुई, हो । हे अग्नियों ! उग्र सेना वा मुख से मुझको, रक्षा करो । हे अग्नियों, मुझको, धनादि से, पूर्ण करो । मुझको रक्षा करो । तुम्हारे अर्थ, प्रणाम हो । मुझको मत मारना अर्थात् यज्ञ में कोई विघ्न न हो ॥ ३४॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानांᳪ समित् । त्वᳪ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथᳪ स्वाहा । जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥३५॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि-१ले का मधु०, २ । ३ का भृगु सुत क्रतु । छन्द-१ले का साम्नी अनुष्टुप्,२ का अनवसानागाय०, ३रे का एकपदा विराट् है । देवता १ले का विश्वेदेवा, २ । ३ का सोम । १ले मंत्र से ध्रुवे में से ५वार दधि मिला पृषदाज्य लेय । मंत्रार्थ-(विश्वरूपम्, ज्योतिः, असि । विश्वेषाम्, देवानाम्, समित्) हे

आज्य। तुमरूप देने से विश्व के रूप और दीप्ति देने से ज्योति, हो। सब देवताओं के, प्रकाशक हो। २ मंत्र से प्रज्वलित समिधा के ऊपर एकवार लियेहुए घी का जुहू से होम करे। मंत्रार्थ-(सोम, त्वम्, अन्यकृतेभ्यः, द्वेषोभ्यः,तनूकृद्भ्यः, यन्ता,उरु, वरूथम्, असि स्वाहा) हे सोम ! तुम हमारे विरोधियों से प्रेरित, शत्रुओं और शरीरछेदक राक्षसों के लिये, दण्डदाता, और बड़े बलरूप, हो, ऐसे के निमित्त यह होम हो। ३ मंत्र से फिर भी जुहू में एकवार लियेहुए घृतको प्रदीप्त समिधा पर आहुति देय। मंत्रार्थ-(जुषाणः अप्तुः, आज्यस्य, वेतु, स्वाहा) प्रसन्न सोम, मेरे दियेहुए घृत का, पान करो, हमारी दीहुई आहुति सुन्दररूप से ग्रहण कीजाय ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

इसका अगस्त्य ऋ०, त्रिष्टुप्छन्द और अग्नि देवता है। इस मंत्र को पढ़ताहुआ अध्वर्यु आग्नीध्र के समीप जाने को प्रवृत्त होनेपर यजमान से कहे। मंत्रार्थ-(अग्ने, देव,विश्वानि, वयुनानि,विद्वान् अस्मान्, राये, सुपथा, नय। अस्मत्, जुहुराणम्, एनः, युयोधि, ते, भूयिष्ठाम्, नम उक्तिम्, विधेम) हे अग्नि, देव, सब, ज्ञानों को जानने वाले तुम, हमको, धन और यज्ञफल के लिये, श्रेष्ठमार्ग से प्राप्त करो। हमारी, इच्छित क्रिया के प्रतिबन्धक, पाप को, दूर करो। तुम्हारे अर्थ, बहुत, नमस्कार वचन को, हम, उच्चारण करते हैं ॥ ३६ ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्। अयम्वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

इसका अगस्त्य ऋ०,आ० त्रि० छन्द और अग्नि देव० है। इसको पढ़ताहुआ सत्र को मण्डप के उत्तर भाग में लेजाकर, आग्नीध्रीय धिष्ण्य में अग्नि को स्थापित करे,मंत्रार्थ-(अयम्,

नः, वरिवः, कृणोतु) यह, अग्नि, हमारे, धनको, करै। (अयम् मृधः, अभिन्दन्, पुरः, एतु) यह अग्नि, संग्राम में, शत्रुसेनाओं को, छिन्नभिन्न करताहुआ, आगे आवै। (अयम्, वाजसातौ, वाजान्, जयतु) यह अग्नि, अन्नविभाग करने में अन्नों को, हमें देने के निमित्त जीते। (जर्हृषाणः, अयम्, जयतु, स्वाहा) अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ, यह अग्नि, शत्रुओं को, जीतो, वह हमारी आहुति को सुन्दर रूप से ग्रहण करै॥ ३७॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि घृतङ्घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा॥ ३८॥

इसका अग० ऋ०, भुरिग् आ० अनु०छन्द, विष्णुदेव० है। इस को पढ़कर उत्तरवेदी के आहवनीय अग्निकुण्ड में आहुति देय मंत्रार्थ—(विष्णो, उरु, विक्रमस्व) व्यापक आहवनीय, अग्निरूप परमात्मन्, बहुत पराक्रम करो, (क्षयाय, नः, उरु, कृधि) ग्रह में निवास के निमित्त, हमको, अधिकता, करो। (घृतयोने, घृतम्, प्रपिब) हेघृत से बढनेवाले, घृतको, पियो। (यज्ञपतिम्, प्रतिर, स्वाहा) यजमान को, बढाओ, तुमको यह आहुतिं देते हैं॥ ३८॥

देव सवितरेष सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् एतत्त्वं देव सोम देवो देवानाꣳ उपागा इदमहम्मनुष्यान् सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये॥ ३९॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं। ऋषि तीनों का अगस्त्य, छन्द-१ का आ०गाय०, २ का मा०त्रि०, ३ का याजु० त्रि० है। देवता—१ का सविता २का सोम, ३ का लिङ्गोक्त है। जुहूआदि आज्यस्थालिपर्यन्त स्थापन करके, यजमान से सोम लेकर हविर्धान में प्रवेश करै फिर दक्षिण हविर्धान में मृगचर्म बिछाकर उसपर सोम रखता हुआ पहिला मंत्र पढ़े। दूसरे मंत्र से सोम का उपस्थान करै। तीसरे मंत्र से हविर्धानमण्डप से निकले। मंत्रार्थ—(१ सवितः, देव, एष, सोमः, तं। तम्, रक्षस्व। त्वा, मा, दभन्) हे सब के प्रेरक दे-

वता यह सोम आप के अर्पण है। उसको रक्षा करो। तुम सोम के रक्षक को कोई उद्रपव प्राप्त न हो। (२ सोम, देव, त्वम्, देवः देवान्, एतत्, उपागाः। इदम्,अहम्,रायस्पोषेण,सह, मनुष्यान्) हे सोमदेव तुम देवता हो, अतः देवताओं को इस समय प्राप्त हो जाओ। यह मैं यजमान धन और पुष्टि के साथ अपने मनुष्यों को प्राप्त हूँ। (३ स्वाहा, वरुणस्य, पाशात्,निर्मुच्ये) सोमरूप अन्न देवताओं को पहुँचे, उस सोमदान के प्रभाव से मैं वरुण की पाश से छूटूँ ॥ ३९ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा
सा त्वयि या मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि।
यथायथन्नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षाप-
तिरमꣳस्तानुतपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

इस का अगस्त्य ऋ०, नि० ब्रा० त्रि० छन्द और अग्नि देवता है, इस मंत्र से आहवनीय में समिध् रखकर मदन्ती का स्पर्शकर गाढ़तर मुष्टि मेखला को करै। मंत्रार्थ —(अग्ने, व्रतपाः, त्वे,व्रतपाः,तव,या,तनूः, मयि,अभूत,सा,एषा,त्वयि) हे अग्निदेव! तुम स्वभाव से सब व्रतोंके रक्षक हो,अतः तुम मेरे व्रत के पालक होओ। आपका जो शरीर मुझ में स्थितहुआथा,सो यह तुम्हारा शरीर तुम्हारा ही हो। (या, उ, मम, तनूः त्वयि, अभूत्, सा,इदम्, मयि) और जो यह मेरा शरीर तुम में स्थित था, वह यह मेरा शरीर मुझ में स्थित हो। (व्रतपते, नौ, व्रतानि, यथायथम्) हे व्रतके पालक हम तुम दोनों के कर्म सम्बन्ध को न तोड़ैं। (दीक्षापतिः, मे, दीक्षाम्, अन्वमंस्त) दीक्षा के स्वामी तुमने, मेरी दीक्षाको अंगीकार किया है। (तपस्पतिः तपः अनु) उपसद् तप के पालक अग्नि ने,मेरा व्रतपालन उपसदरूप तप स्वीकार किया४०

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतङ्
घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

यूप काटने के लिये वनको जाताहुआ,सफलता के लिये चार बार

स्रुवे में घी लेकर इस मंत्र से आहवनीय कुण्ड में हवन करे। इस की व्याख्या ३८ वें मंत्र में होचुकी ॥ ४१ ॥

अत्यन्याँ२ऽअगान्नान्याँ२ऽउपागामर्वाक्त्वा परे भ्योऽविदम्परोऽवरेभ्यः। तन्त्वा जुषामहे देववनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिᳪं सीः ॥४२॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं। ऋ० सब का अग०, छन्द-१। २ का भु० ब्रा० बृ०, ३ का याजु० गा०, ४ का दैवीज० है। हुतशेष घृत लेकर तक्षा (बढ़ई) के साथ वनमें जानेपर १- मंत्र से यूप के योग्य एक वृक्षको पूर्वाभिमुख हो अभिमर्शन वा अभिमन्त्रण करे। २ मंत्र से स्रुवे में जो हुतशेष घी हो उससे वृक्ष को स्पर्श करे। ३ मंत्र से कुशतरुण को रखकर उसके ऊपर कुठार का प्रहार करे। ४ मंत्र से यूप के योग्य वृक्ष को काटे। मंत्रार्थ-(१ अन्यान्, अत्यगाम्, अन्यान्, न, उपागाम्। त्वा, परेभ्यः, अर्वाक्, अवरेभ्यः, परः, अविदम्, वनस्पते, देव, देवयज्यायै, तम्, त्वा, जुषामहे, देवाः, देवयज्यायै, त्वा, जुषन्ताम्) हे आगे वर्त्तमान यूपवृक्ष में तुमसे अन्य वृक्षों को छोड़कर आया हूँ। यूप के योग्य अन्यवृक्षों के समीप नहीं गया। तुझको दूर के वृक्षों से निकट और निकटों से श्रेष्ठ पाकर आया हूँ। हे वन के पालक देव! देवयज्ञ के लिये ऐसे तुमको हम सेवन करते हैं। देवताभी देवयजन के कार्य के लिये तुमको सेवन करें। (२ त्वा, विष्णवे) हे यूपवृक्ष तुमको परमात्मा की प्रीति के लिये स्पर्श करता हूँ। (३ ओषधे, त्रायस्व) हे औषध तुम वज्रभय से मेरी रक्षा करो। (४ स्वधिते, एनम्, मा, हिंसीः) हे कुठार इस यूप के अन्य स्थान का मत व्याघात करो ॥ ४२ ॥

द्यामा लेखीरन्तरिक्षम्मा हिᳪं सीः पृथिव्या सम्भव। अयᳪं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वन्देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयᳪं रुहेम ॥४३॥

इस कण्डिकामें ३ मंत्र हैं। ऋषि सबका अगस्त्य है। छन्द-१का नि० साम्नीट्टु०, २ का साम्नीत्रि०, ३ का आर्षीत्रु० है। देवता तीनों का वृहस्पति है। १ मंत्र से यूप के निमित्त कटकर गिरतीहुई शाखा का अभिमन्त्रण करे। २ से उस शाखा के पत्ते आदि दूर करे। ३से आज्यस्थाली में से एकबार लियेघृत को जुहू में लेकर, काटने के स्थान में आहुति देय, मंत्रार्थ-(१ द्याम्,मा,लेखीः। अन्तरिक्षम्, मा, हिंसीः। पृथिव्याः, सम्भव) हे यूप वृक्ष तुम द्युलोक को मत विगाडो। अन्तरिक्ष को पीडा मत दो। पृथिवी के साथ मिलो, अर्थात् तीनों लोकों में शान्ति हो। (२ हि, तेतिजानः, अयम्, स्वधितिः, महते, सौभगाय, त्वा, प्रणिनाय) क्योंकि-यह अति तीक्ष्ण कुठार, वडाभारी ऐश्वर्य पाने के लिये तुमको यूप बनाता है। (३ वनस्पते, देव, अतः, त्वम्, शतवल्शः, विरोह। वयम्, सहस्रवल्शः, विरुहेम) हे वृक्षदेवता इस स्थाणु से तुम बहुत अङ्कुरवाले होतेहुए उपजो। हम पुत्रपौत्र आदि बहुतसी शाखा वाले हों॥४३॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिता का सानुवाद पञ्चम अध्याय समाप्त.

अथ षष्ठोऽध्यायः

जिसमें सोम की वेदी प्रधान है ऐसे पञ्चम अध्याय में आतिथ्य से लेकर यूपनिर्माणपर्यंत मन्त्र कहे। अब छठे अध्याय में यूपसंस्कार से लेकर सोमाभिषव उद्योगपर्यन्त मन्त्र कहेजायँगे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि। यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः। पितृषदनमसि॥ १॥

पीछे पाँचवें अध्याय की २६ वीं कण्डिका में इस मंत्र की व्याख्या करचुके हैं। वहाँ लिङ्गशरीर का संस्कार था यहाँ स्थूलशरीर के संस्कार का वर्णन है।

अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः। द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षम्मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृ ꣳ हीः॥ २॥

इस क० में ४ मंत्र हैं। सबका साकल्य ऋ०, छन्द-१।४का नि० गाय०, २ का याजु० प०, ३ का याजु० त्रि०। देवता १ का शकल १। ४ का यूप, ३ का चषाल है। १ से यूप के गड्ढे में पहिले यूप के मूलभाग का खंभ डाले। २ से उसके ऊपर के भाग में घृत लेपे ३ से ऊपर घृत से लिप्त चषाल को यूप के अग्रभाग पर स्थापन करे। ४ से ऊँचा करे। मंत्रार्थ-(१ उन्नेतृणाम्, स्वावेशः, अग्रेणीः, असि। एतस्य, वित्तात्, त्वा, अधि, स्थास्यति) हे यूपखण्ड उठाने वाले ऋत्विजों को, हलकी होने से सुख से प्रवेश करने योग्य अग्रसर हो, तुम इस कर्मको जानो जो कि-तुम्हारे ऊपर दूसरा और खण्ड स्थापित होगा (२ सविता, देवः, मध्वा, त्वा, अनक्तु) सब के प्रेरक देव मधुर घृत से तुम को सींचें (३ सुपिप्पलाभ्यः, ओषधीभ्यः, त्वा) हे चषाल! शुभफलयुक्त औषधियों के निमित्त तुम को यूपखण्ड पर स्थापित करता हूँ (४ अग्रेण, द्याम्, अस्पृक्षः, मध्येन, अन्तरिक्षम्, आ अप्राः, उपरेण, पृथ्वीम् अदृंहीः) हे यूप तुमने अग्रभाग से द्युलोक को स्पर्श किया है, मध्यभाग से अन्तरिक्ष को पूर्ण किया है, अधोभाग से पृथिवी को दृढ़ किया॥ २॥

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्पदमवभारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रन्दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजान्दृꣳह ॥ ३॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं। ऋषि सबका दीर्घत०, छन्द-१ले का त्रि०, २ का साम्नयु०, ३ का नि० मा० बृ०। देवता तीनों यूप हैं। १ से गड्ढे के मध्य में यूपकी जड़ को प्रविष्ट करे।

२ से उस गड्ढे को मट्टी से भरे। ३ से भरेहुए गड्ढे को चारोंओर दण्डे से कूटे। मंत्रार्थ-(१ या, ते; धामानि, गमध्यै, उश्मसि, यत्र भूरिशृङ्गाः, गावः, अयासः, अत्र, उरुगायस्य, विष्णोः, परमम्, पदम्, आह, तत्, भूरि, अवभाति) हे यूप ! जो तेरे स्थान परगमन करने को हम कामना करैं, जहाँ सूर्यदेवता की अति प्रकाशवान् किरणें विस्तृत होती हैं, इस स्थान में महात्माओं से स्तुति किये हुए व्यापक परमात्मा के उत्तम स्थान को कहते हैं, वह बहुत प्रकार से प्रकाश करता है। (ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, रायस्पोषवनि, त्वा, पर्यूहामि) हे यूप ! ब्राह्मणों से स्वीकारयोग्य, क्षत्रियों से चाहनेयोग्य धन पुष्टि के निमित्त स्वीकृत तुझपर चारोंओर से मट्टी डालता हूँ (ब्रह्म, दृंह, क्षत्रम्, दृंह, आयुः, दृंह, प्रजाम्, दृंह) हे यूप ब्राह्मण जाति को दृढ़कर, क्षत्रिय जाति को दृढ़कर, आयु को दृढ़कर, सन्तान को दृढ़कर॥ ३॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ४॥

इस का मेधा तिथिऋ०, निचृद्गा०गा० छन्द और विष्णु देवता है। अध्वर्यु यूप का मध्यभाग यजमान को छुवाकर इस मंत्रको पढ़वावै मंत्रार्थ- (विष्णोः, कर्माणि, पश्यत, यतः, इन्द्रस्य, युज्यः, सखा, व्रतानि, पस्पशे) हे ऋत्विजो परमात्मा के, सृष्टि संहार आदि कर्मों को देखो, क्योंकि—वह इन्द्रका अनुरूप मित्र है, उसने लौकिक वैदिक कर्मों को रचा है॥ ४॥

तद्विष्णोः परमम्पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥ ५॥

इस का मेधा० ऋ०, नि० आ० गा०, छन्द और विष्णु देवता है। अध्वर्यु यजमान को चषाल दिखाताहुआ यह मंत्र पढ़वावै। मंत्रार्थ—(सूरयः, विष्णोः, तत्, पदम्, सदा, पश्यन्ति, दिवि, चक्षुः, इव, आततम्) वेदान्त के वेत्ता योगी सर्वव्यापक परमात्मा के उस मोक्ष स्वरूप परम पदको सदा देखते

हैं, निरावरण आकाश में चक्षु की समान व्याप्त है ॥ ५ ॥

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳरायो मनुष्याणाम्। दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ॥ ६॥

इस क० में ३ मंत्र हैं। सवका दीर्घ० ऋ०, छन्द-१ का मा- जा० त्रि०, २ का दै० त्रि०, ३ का साम्न्यु० है। देवता-१। ३ का यूप, २ का स्वरु है। १ मंत्र से तीन लडवाली कुशा की रस्सी बनाकर यूप की नाभि में लपेटे। २ से अग्निष्ट के उत्तरभाग में स्वरु का अवगूहन करे ३ से वाँपष्ट यूप के दक्षिण में बिना छिले १२ यूप स्थापन करे। मंत्रार्थ-(१ परिवीः, असि, दैवीः, विशः, त्वा,परिव्ययन्ताम्। मनुष्याणाम् रायः, इमम्, यजमानम्,परि) हे यूप तुम चारों ओर रस्सी से वेष्टित वा हम से घिरे हो, देवता ओं की मरुद्गण आदि प्रजा अथवा पशु तुमको चारों ओर से घेरें, मनुष्य सम्बन्धी धन इस यजमान को चारों ओर से घेरें (२ दिवः, सूनुः, असि) हे स्वरु ! तुम स्वर्ग के पुत्र हो। अ- र्थात् द्युलोक से वर्षा से वृक्ष, उस से यूप और यूप से स्वरु होताहै,इस कारण पुत्र कहा है। (पृथिव्याम्, एषः, ते, लोकः, आरण्यः, पशुः, ते) हे यूप पृथिवी पर यह तेरा आश्रयस्थान है, वनस- म्बन्धी पशु तेराही है ॥ ६ ॥

अग्निषोमीय पशुप्रयोग

मीमांसादर्शन में बताई हुई परिसंख्याविधि के अनुसार, जो क्षत्रियजाति आखेट में अत्यन्त प्रवृत्त होकर तामसप्रवृत्ति में को झुकती चलीजारही है, उसको निवृत्ति मार्ग में लाने के लिये वेद में अग्निषोमीय पशुप्रयोग देखने में आता है। यह अग्नि- षोमीय यज्ञ सोमयाग का अङ्गभूत है, इस में पशु का संस्का कियाजाता है। तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद काण्ड ६ प्रपाठक १ अ- नुवाक् ९ में लिखा है—"आसोमं वहन्त्यग्निना प्रतिष्ठते तौ सम्भवन्तौ यजमानमभिसम्भवतः। यदग्निषोमीयं

पशुमालभते, आत्मनिष्क्रय एव सः।" जिस समय ऋत्विक् यज्ञशालामें अग्निके पास सोमको लाते हैं उस समय यज्ञ क्रियामें दीक्षितहुआ यजमान अपने शरीरको यज्ञकेनिमित्त समर्पित मानता है, उससमयजो अग्निषोम देवताके निमित्त पशु दियाजाता है सो मानो यजमान अपने शरीरका मूल्य देताहै, इसप्रकारके पशुप्रयोगके द्वारा, स्वाभाविक हिंसा करनेवालोंके कामाचारका संकोच कियाहै, अर्थात् राज्यरक्षाकेनिमित्त आखेटआदि करनेपर स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार पशुमें अत्यन्त प्रीतिवाला क्षत्रिय यदि स्वच्छ सुख चाहै तो इन हिंसाप्रधान कर्मोंको सर्वथा त्यागदेय और यदि एकसाथ इन्द्रियोंको रोकनेमें असमर्थ होतो उनके रोकनेकी शास्त्रमें यह युक्ति कही है कि-यज्ञमें ही ऐसा करे और वह भी केवल सोमादि में ही और वह भी क्षत्रिय ही, इससे यह नहीं समझलेना कि-वेद मांसभक्षणके लिये पशुयागकी आज्ञा देताहै, किन्तु इसका भी एकप्रकारसे हिंसाके निषेधमें ही तात्पर्य है, जैसे-यदि कोई बालक अत्यन्त खेलकूदमें लगाहो और खेलमें गुथीहुई उसके मनकी प्रवृत्ति यदि एकसाथ न रोकीजासके, तो कुछ नियम कर दियाजाता है कि—हेबालक ! यदि तुझसे खेलविना रहाही नहीं जाता तो अपने पढ़ेहुएको शुद्धस्थ करलेनेके अनन्तर खेललियाकर और वह भी अच्छे लड़कों के साथ तथा थोड़े ही समय, इस प्रकार खेलनेका सङ्कोच करते २ विद्या और संगति के प्रभावसे वह स्वयं ही खेलको, अमूल्य समय और भविष्य जीवनका विनाशक समझकर त्यागदेगा, इसीप्रकार यदि उपकारक शास्त्रभी अनेकोंप्रकारकी प्रवृत्तियोंमें आसक्त पुरुषों को उन हानिकारक प्रवृत्तियों से एक साथ निवृत्त करें तो कुछ भी परिणाम न निकले, इसकारण कुछ नियम लिखकर संकोच किया है। इसप्रकार जैसे बालकके खेलनेका नियम बाँधनेसे उसकी माताका तात्पर्य खिलानेमें नहीं होताहै, किन्तु खेलनेका स्वभाव छुटानेमें होता है। तैसे ही आखेटासक्त क्षत्रियोंके लिये

पशुयाग आदिके नियम, धीरे २ हिंसामें अरुचि कराकर उस अनर्थकारी स्वभावसे सर्वथा बचाने के ही लिये हैं। इसीकारण पशुयाग आदिका वेदमें विधानसा दीखनेपर भी वास्तवमें वह निवृत्तिमार्गमें ही पहुंचानेका उपाय है, क्योंकि-यहांतक संकोच कियाहै कि—यज्ञ करनेवाला भी उसको सूंघकर ही छोड़देय। और सच्चा सुखतो सर्वथा अहिंसा आदि नियमोंके पालनमें ही है, यज्ञ के निमित्त कीहुई हिंसाका भी शास्त्रमें दुःखरूप फल ही कहा है। इसकारण पशुयाग आदि विषयके वाक्य विधि नहींहैं, किन्तु अनाशिकगाती हैं, कि-जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य न होसके वह ऋतुकालमें स्वभार्यागमन करनेके लिये वेदविधिसे विवाह करलेय जिसको मांसविना न सरे वह हुतशेषको स्वीकार करे, और जिस को मद्यविना न सरे वह यज्ञ करके ऋत्विजोंके निमित्त महौषधियों के रसका सेवन करे, वास्तवमें तो जहांतक होसके तहाँतक मधुरता के साथ इनके त्यागमें ही वेदका तात्पर्य है, वेद यह नहीं कहता कि-सबको ऐसा करना ही चाहिये, इसकारण जो हिंसादियुक्त कर्मोंसे स्वयं निवृत्त हैं, वह तो यज्ञादि करनेवालोंसे उच्चकोटिके जीव हैं, उनको ऐसे यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहींहै, क्योंकि-इस कर्मकी वेद भी प्रशंसा नहीं करता, किन्तु २० वीं कण्डिका में कहाहै यजमान कहै कि-मैंने जो पशुके साथ बुरा व्यवहार कियाहै वह मेरा पाप दूर हो तथा मेरे घर पशु आदि बहुत बढ़ें इससे सिद्ध है कि-इसप्रकारके उपदेशसे यज्ञकर्त्ता मांसप्रेमी भी सचेत होकर अवश्य ही हिंसाप्रधान कर्मों को त्यागदेगा, क्योंकि-उस प्रवृत्तिमें परममग्न यजमानको निवृत्तिमार्गमेंको लेजाने के लिये यह यागादिकर्म सोपानरूप हैं, इससे आगे उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें को बढ़नेपर तो इसका सर्वथा ही निषेध है, देखो राजा जो अफीम भांग आदि मादक वस्तुओंपर कर लगाता है, और उनके बेचनेके नियम बनाता है, तो इसका तात्पर्य मादकवस्तुओंके प्रचारके लिये नहीं होता किन्तु रोकनेके लिये होताहै यदि

ऐसा न होतो उनके प्रचारका कुछ ठिकाना न रहे, यह ही अभिप्राय यागादिके विषयमें है, बहुत सूक्ष्म रीतिके साथ विचार करने पर विद्वानोंने यह ही तत्त्व निकाला है। धर्म अधर्मका ज्ञान हमको वेदसे ही होताहै, इसकारण वेदमें जो कर्त्तव्य लिखा है वह धर्म है जिसका निषेध कियाहै वह अधर्म है, उसमें अल्पज्ञ मनुष्यको ननु नच करनेका अधिकार नहीं है।

वेदमें जो कर्त्तव्य है वह, सांसारिक अल्पज्ञ पुरुषों की दृष्टिमें अशुद्ध प्रतीत होता हो तब भी वह शुद्ध है, उससे अन्य संस्कार-शून्य होनेके कारण अशुद्ध है जैसे ज्वरकी औषध रोगीकी दृष्टिमें घृणास्पद होनेपर भी शास्त्र की दृष्टिसे वह ज्वर को दूर करनेवाली है, परन्तु वह ही औषध संग्रहणीके लिये अनुपयोगी है, इसीप्रकार वेद जिसकर्मको कल्याणकारक बताता है, वह वेदविधिसे प्रतिकूल कियाजाय तो शुभदायक न होकर उलटा हानिकारक होजायगा।

अथवा इस पशुयागके विषयमें एक प्रकार का तत्त्व और भी है, वह यह कि–इस संसारक्षेत्रमें तिसमें भी भारतवर्षमें मनुष्य शरीरको पाकर तिसपर भी मोक्षसाधन मार्गके द्वारपर्यन्त पहुँचे हुए द्विजशरीरको पाकर अपने उद्धारका उपाय करतेहुए, अतिदूर अन्धकारमें पड़कर कष्ट पानेवाले पशु आदिका भी उद्धार करके उनको भी निरतिशय सुखका भागी बनाना चाहिये, अन्यथा पशुओंसे स्वयं तो अपनी उस योनिमेंके दुःखसे उद्धारका उपाय बन नहीं सकता, अतः महात्माओंका कर्त्तव्य है कि-वह कृपाकर उनके उद्धारका उपाय करें। तुरीयावस्थामें पहुँचने पर ही प्राणीको निरतिशय सुख वा मुक्तिकी प्राप्ति होती है, जो तुरीया मनुष्योंके परमसाधन करनेपर प्रकट होतीहै वह पशु शरीरोंमें नादसे ही प्रकट होनेलगतीहै, इसीकारण सर्प मृग आदि वीनके नादको सुनतेही अपने शारीरिक भानको भूलजाते हैं, उससमय सांसारिक सुख दुःखका भान दूर होकर एक अनिर्वचनीय सुखका प्रवाह बहने लगताहै, जिससमय यज्ञमें सामवेदका नाद होनेपर पशु तुरीया-

वस्थामें आते थे उसीसमय ब्रह्मा ऋत्विक् आदि यथोचित मन्त्र प्रयोगसे उसके परलोकगमन का विधान करतेथे, यह मानो पशुके संसाररोगकी चिकित्सा है चिकित्साके निमित्त शरीरका खण्डन होनेमें चिकित्सकको कुछ दोषनहोकर उसको दुःखसे छुटानेकेकारण कुछ पुण्यही होताहै और रोगीभी रोगमुक्त होनेपर अनेकों आशीर्वाद देताहै, इसीप्रकार यज्ञीयपशु,पशुशरीरसे छूटनेके अनन्तर मन्त्र के प्रभावसे दिव्यशरीरको पाकर स्वर्गादि सुखप्रधान लोकोंमें गमन करतेथे; परन्तु तुरीयाको प्रकट करनेकी योग्यता और तपका प्रभाव न रहनेसे कलियुगमें पशुयागोंके करनेका स्मृतियोंमें निषेध कर दियाहै तथा उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें पहुँचनेपर एवं ब्राह्मण,वैश्योंके निमित्त तो इन पशुयागादिका विधान हैही नहीं इसकारण आगेके पशुयागविषयक मंत्रोंका पशुयागविषयक विनियोगोंके अनुसार अर्थ लिखकर हम निवृत्तिमार्गोन्मुख धार्मिकों के चित्तको प्रवृत्तिमार्गकी उलझनमें नहीं डालना चाहते। किन्तु, वेदकी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनप्रकारकी व्याख्याओंमें से आध्यात्मिक व्याख्या लिखना सङ्गत समझतेहैं। और प्रसङ्गवश पशुयाग के विषयपर जो यह इतना आन्दोलन किया इसका कारण यहहै कि–संस्कृत तथा भाषा आदिमें जो अन्य व्याख्याएं पशुयागविषयक विनियोगोंके अनुसार लिखीजाचुकीहैं, उनको पढ़नेपर वास्तविक तत्त्वके न जानने से या वैदिक नामधारी प्रच्छन्न वेदशत्रुओंके बहकानेसे धार्मिकों के चित्तमें उत्पन्न हुए सन्देहाभास दूर होजायँ।

यजुर्वेद अ० २३ । ११ में लिखा है, कि–'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।' अर्थात् वेदी ही पृथ्वीका अन्त है जहाँ सर्वत्र यज्ञ क्रिया होरही है, यह यज्ञ भुवनकी नाभि है, जिसमें सब क्रियाएं सूक्ष्मरूप में होतीहैं। ऐसे प्राकृतिक यज्ञमें दीक्षितहुए पुरुषको उचितहै कि–योगाग्नि ज्ञानाग्निमें प्राणरूप पशुका बलिदेय क्योंकि–'अग्नि -

पोमात्मकं जगत्।' अर्थात् यह जगत् अग्निपोमात्मक है और ऐसा जगत् जिसका देवता है वह पशु अभिमान एवं प्राण ही है, उसी का बलिदान करनेपर आध्यात्मिक उन्नति होसकती है, अतएव आगे के पशुयागविषयक मन्त्रोंका आध्यात्मिक अर्थ ही लिखते हैं—

उपावीरस्युपदेवान्दैवीर्विशः प्रागुंरुशिजो वह्नितमान्। देव त्वष्टर्वसुरम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

(उपावीः, असि) हे सुषुम्नाके अधिष्ठातृदेव ! तुम प्राणपशुके निकटमें रहकर उसके रक्षक सखा हो (दैवीर्विशः, उशिजः, वह्नितमान् देवान्, उप, प्रागुः) योगसाधना करनेवाले के प्राण, योगयुक्तों को चाहनेवाले, श्रेष्ठ अग्निकी समान प्रकाशस्वरूप नर नारायण को प्राप्त हों (देव, त्वष्टः, वसु, रम) हे दिव्यस्वरूप भगवन् ! योगीके आत्मप्रतिबिम्ब वा प्राणरूप धनमें रमण कीजिये (ते, हव्या, स्वदन्ताम्) हे भूतात्मन् ! तुम्हारी प्राणरूप हवि तुमको रुचै ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वम्बृहस्पते धा रया वसूनि। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

(रेवतीः, रमध्वम्) क्षीर आदि धनवाली गौओंकी समान शम दम आदि धन से युक्त इन्द्रियरूप पशु आत्मस्वरूप यजमानके शरीरमें क्रीडा करें (बृहस्पते, वसूनि, रया, धाः) हे परमात्मन् ! प्राण और इन्द्रियोंको योगलक्ष्मी के द्वारा पुष्ट करो (देवहविः, ऋतस्य, पाशेन, त्वा, प्रतिमुञ्चामि) हे भूतात्मन् ! योगयज्ञके पाशसे तुझको बांधता हूं और कर्मबन्धनके पाशसे तुझको योगयज्ञकेद्वारा मुक्त करता हूं (मानुषः, धर्षा) विष्णुरूप प्राणाभिमानी देवता तुझको शमन करनेमें समर्थ है ॥ ८ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्याञ्जुष्टन्नियुनज्मि।

अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

प्रतिविम्बके हवनसे पहिले भूतात्माके हवनको कहतेहैं, कि-हे भूतात्मन् (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अग्नीषोमाभ्याम्, जुष्टम्, त्वा, अश्विनोः, बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम्, नियुनज्मि) आत्मविचारकी ओरको प्रेरणा करनेवाले गुरु देवकी प्रेरणा करने पर मैं प्रकृति पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको मन हृदयकी ग्रहण करनेकी शक्तिरूप बाहुओंसे और मानससूर्यकी ग्रहण करनेकी शक्तिरूप हाथोंसे, निश्चल करताहूं (अग्नीषोमाभ्याम्, जुष्टम्, त्वा, अद्भ्यः, ओषधीभ्यः, प्रोक्षामि) हे भूतात्मन् ! प्रकृति पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको ज्योति रसरूप जल और जन्म-रूप रोग का नाश करनेवाली ज्ञानस्वरूप औषधियों से प्रोक्षण करताहूं (त्वा, माता, अनुमन्यताम्) ऐसे प्रोक्षित तुझको प्रकृति आज्ञा देय (पिता, अनु) पुरुष आज्ञा देय (भ्राता, अनु) सहोदर भ्रातासमान जीवात्मा अनुमति देयं (सयूथ्यः, सखा, अनु) समान यूथवाला ईशरूप मित्र आज्ञा देय ॥ ९ ॥

अपाम्पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः । सन्ते प्राणो वातेन गच्छताᳬसमङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥ १० ॥

हे भूतात्मन् ! तू (अपाम्, पेरुः, असि) ब्रह्मज्योतिके रसरूप अमृतका पान करनेवाला है (देवीः, आपः, स्वदन्तु) ब्रह्मज्योतिके रसरूप जल तुझको स्वीकार करें (देवहविः, स्वात्तम्, सत्, चित्) क्योंकि-ईशका हवि भलीप्रकार भक्षित होताहुआ ब्रह्मरूप होजाताहै (ते, प्राणः, वातेन, सङ्गच्छताम्) हे भूतात्मन् ! तेरा प्राण समष्टिप्राणसे संयुक्त हो (अङ्गानि, यजत्रैः, सम्) तेरे अङ्ग योगयज्ञकी साधनामें लगें (यज्ञपतिः, आशिषा, सम्) आत्मा-रूप यजमान योगयज्ञके फलरूप आशीर्वादसे युक्त हो ॥ १० ॥

घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथां रेवति यजमाने प्रियन्धा आविश उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव। वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिन्धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

(घृतेन, अक्तौ, पशून्, त्रायेथाम्) हे बुद्धि मन, तुम दोनों अग्निकी समीपतासे घृतकी समान विषयोंकी समीपतासे चिकने वाली इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंसे लिप्त हो, भूतात्माके अङ्गप्राण आदिकी रक्षा करो (रेवति, यजमाने, प्रियम्, धाः) हे महावाणी! आत्मरूप यजमानमें इसके इच्छित मोक्षको धारण करो (देवेन वातेन, सजूः, उरोः, अन्तरिक्षात्, आविश) प्रकाशवान् प्राणके साथ प्रीतिवाली होकर गुरुके हृदयाकाशसे ज्ञानदानके द्वारा यजमानमें प्रवेशकर (अस्य, हविषस्त्मना, यज) इस भूतात्माके हविरूप शरीरका हवन कर (अस्य, तन्वा, सम्भव) इस भूतात्माके शरीरसे 'अहं ब्रह्मास्मि' इस आकारसे प्रकट हो (वर्षो, वर्षीयसि, यज्ञे, यज्ञपतिम्, धाः) हे विस्तारवाली सुषुम्ना! अति विस्तारवाले विष्णुपरमात्मामें योगयज्ञके कर्त्ताको स्थापन कर (देवेभ्यः, स्वाहा) कर्मेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओंके अर्थ कर्मेन्द्रियोंका हवन हो (देवेभ्यः, स्वाहा) ज्ञानेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओंके अर्थ ज्ञानेन्द्रियोंका होम हो ॥ ११ ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त आतानानर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु ॥ १२ ॥

(अहिः, पृदाकुः, मा, भूः) हे सुषुम्ना! तू सर्पकी समान कुटिल चाल चलनेवाली और बीछूके समान मर्मस्थान को पीड़ा देनेवाली मत हो (आतान, ते, नमः) हे योगयज्ञ! तुम्हारे लिये भूतात्मारूप अन्न है (अनर्वा, प्रेहि) हे योगयज्ञके साधक!

तुम काम आदि शत्रुओं से रहित होतेहुए सुषुम्नाके द्वारा गमन करो (ऋतस्य, पथ्याः, घृतस्य कुल्याः, अनु उपप्रेहि) ब्रह्ममार्गमें हितकारी इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंके प्रवाहरूप नदियोंको देख कर त्रिदेवरूपधारी महाविष्णुको प्राप्त करो ॥ १२ ॥

देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सु-
परिविष्टा वयम्परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

(देवीः, आपः, शुद्धाः, सुपरिविष्टाः, देवेषु, वोढ्वम्) हे इन्द्रियसम्बन्धी गोलकरूप अन्तरिक्षो) सांसारिक सुख और शयनका दाता जो सुख है उसके धारण करनेवाले, देहमें प्रविष्ट हुए तुम भूतात्माको देवताओंमें पहुंचाओ अर्थात् उसकी ज्ञान-दशाकी प्राप्तिके साधन बनो (सुपरिविष्टाः, वयम्, परिवेष्टारः, भूयास्म) और तुम्हारे प्रसादसे सबप्रकार योगयज्ञ में प्रविष्ट होकर रहतेहुए हम वाक् आदि ऋत्विज् देवताओंको ही कर्मका फल अर्पण करनेवाले हों ॥ १३ ॥

वाचन्ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शु-
न्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि । नाभिन्ते शुन्धामि
मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्राँस्ते
शुन्धामि ॥ १४ ॥

शुद्धि कहतीहै कि–हे भूतात्मन् (ते, वाचम्, शुन्धामि) मैं तेरी वाक् इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, प्राणम्, शुन्धामि) तेरे प्राण को शुद्ध करती हूँ (ते, चक्षुः, शुन्धामि) तेरी चक्षु इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, श्रोत्रम्, शुन्धामि) तेरी श्रोत्रेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, नाभिम्, शुन्धामि) तेरी नाभिको शुद्ध करती हूँ (ते, मेढ्रम्, शुन्धामि) तेरी लिङ्गेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, पायुम्, शुन्धामि) तेरी गुदेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते चरित्राः शुन्धामि) तेरे चरणोंको शुद्ध करती हूँ ॥ १४ ॥

मनस्त आप्यायतां वाक्त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां चक्षुस्त आप्यायतां श्रोत्रन्त आप्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितन्तत्त आप्यायतान्निष्ट्यायतान्तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥१५॥

हे भूतात्मन् (ते, मनः, आप्यायताम्) तेरा मन सारूप्य मोक्ष को पानेके लिये समष्टिमनके भावको पानारूप वृद्धिको पावै (ते, वाक्, आप्यायताम्) तेरी वाक् इन्द्रिय समष्टिभावको पावै (ते, प्राणः, आप्यायताम्) तेरा प्राण समष्टिभावको पावै (ते, चक्षुः, आप्यायताम्) तेरा चक्षु समष्टिभावको पावै (ते, श्रोत्रम्, आप्यायताम्) तेरी श्रोत्रेन्द्रिय समष्टिभावको पावै (ते, यत्, क्रूरम्, आस्थितम्, ते, तत्, आप्यायताम्) तेरा जो कष्टदायक संसार बन्धन है वह तेरा शान्त हो (निष्ट्यायताम्) द्वैतभावरहित होकर एकीभावरूप महत्भावको पावै (ते, तत्, शुद्ध्यतु) तेरा वह, सब शुद्ध हो (अहोभ्यः, शम्) देवयानके सम्बन्धी दिनोंके निमित्त कल्याण हो (ओषधे, त्रायस्व) हे इन्द्रियोंकी शक्तियों! रक्षा करो उन्मार्गमेंको न जाओ (स्वधिते, एनम्, मा हिंसीः) हे मन इस भूतात्माको संसारबन्धनसे नष्ट न करो ॥ १५॥

रक्षसाम्भागोसि निरस्तꣳ रक्ष इदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोवबाध इदमहꣳ रक्षोधमन्तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेस्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसम्मारुतङ्गच्छतम् ॥१६॥

हे क्रोध आदिके समूह तुम (रक्षसाम्, भागः, असि) राक्षस समान काम आदिके भाग हो (रक्षः, निरस्तम्) योगयज्ञमें विघ्न करनेवाले अज्ञानका त्याग कियागया (अहम्, इदम्, रक्षः अभितिष्ठामि) मैं इस राक्षसरूप अज्ञानको पाँव से दबाकर स्थित होताहूं (अहम्, इदम्, रक्षः, अववाधे) मैं इस अज्ञानको नष्ट

करताहूँ (अहम्, इदम्, रक्षः, अधमम्, तमः, नयामि) मैं इस अज्ञानको अतिनिकृष्ट उसके उत्पत्तिस्थान तमोगुणमें पहुँचाताहूँ (द्यावापृथिवी घृतेन ओर्णुवाथाम्) मेरे हृदय मन तुम दोनो इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहसे अपने आत्माको आच्छादनकरो (वायो, स्तोकानाम्, वेः) हे माणवायो ! ब्रह्मरन्ध्रसे टपकनेवाले अमृतरसकी बूँदोंका ज्ञान पाकर उसको पियो (अग्निः, आज्यस्य, वेतु स्वाहा) आत्माग्नि इन्द्रियोंकी शक्तियों के समूहको पिये और भलीप्रकार स्वीकार करे (स्वाहाकृते, ऊर्ध्वनभसम्, मारुतम्, गच्छतम्) ब्रह्मज्ञानका उपदेश होनेपर तुम दोनो व्यष्टि और समष्टिप्रतिबिम्ब ब्रह्मरन्ध्राकाशमें ऊपर वर्तमान समष्टिवायुको पाओ।

इदमापः प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

(आपः, इदम्, प्रवहत) हे ज्योतिरसामृतरूप जलो इस कामनाओंके दाता अज्ञानको दूर करो (च, यत्, अवद्यम्, च, मलम्, च, यत्, अनृतम्, अभिदुद्रोह) और जो निन्दित विषय भोगहैं और जो ज्ञानका आवरण मल है तथा जो अहंकार ममता युक्त मिथ्यामोह है उसको मारदिया (च, यत्, अभीरुणम्, शेपे, आपः, च, पवमानः, तस्मात्, एनसः, मा, मुञ्चतु) और जो अद्वैत आत्माको ब्रह्मसे पृथक् जानकर उसकी अवहेलनाकी ब्रह्मामृतरूप जल और समष्टिवायु उस पापसे मुझे छुड़ाओ ॥ १७ ॥

सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम्। रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रंह्या ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतन्द्वेषः ॥ १८ ॥

हे मृतात्माके हृदय (ते, मनः, मनसा, संगच्छताम्) तेरा मन समष्टि मनसे संयुक्त हो (प्राणः, प्राणेन, सम्) प्राण समष्टिप्राणसे संयोगको पावे (रेट्, असि) हे मालसमूर्य ! तुम परिच्छिन्न

होनेसे नष्ट से हो (अग्निः, त्वा, श्रीणातु) ब्रह्माग्नि तुझको स्वीकार करके बढ़ावे (आपः, त्वा, समीरणन्) ज्योतिरसामृत तुझको भलेप्रकार बढ़ावे (वातस्य, ध्राज्यै, पूष्णः, रंह्यै, त्वा) प्राणको दहराकाशमें पहुँचानेके लिये और मानससूर्यकी भृकुटी में गतिके लिये तुझको स्वीकार करता हूँ (ऊष्मणः, व्यथिषत्) ब्रह्माग्निकी क्षुधारूप व्यथा प्रकट हो (द्वेषः, प्रयुतम्) कामनारूप राक्षस दूर हुआ ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

(घृतपावानः, घृतम्, पिबत) हे इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहको पीनेवाले समष्टिरूप मन-बुद्धि-प्राण ! इन्द्रियोंकी सकल शक्तियों-के समूहको पियो (वसापावानः, वसाम्, पिबत) हे मानससूर्यका पान करनेवाले ब्रह्मपरा नारायण नामक देवताओ ! मानससूर्य को पियो (अन्तरिक्षस्य, हविः, असि, स्वाहा) हे मानससूर्य ! तुम हार्दान्तरिक्षके हवि हो तुम्हारा श्रेष्ठ होम होय (दिशः, विदिशः प्रदिशः, आदिशः, उद्दिशः, दिग्भ्यः, स्वाहा) विशेषरूपसे शास्त्र का उपदेष्टा ब्रह्मपराका उपदेष्टा तीन प्रकारका है-सावित्रीका उप-देष्टा, निर्गुण और सगुणका उपदेष्टा एवं उत्तम योगमार्गका उप-देष्टा, इन ब्रह्मा विष्णु महेशरूप गुरुओंसे उपदेश कियागयाहै ॥१९॥

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः। देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति। देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

(ऐन्द्रः, प्राणः, अङ्गे, अङ्गे निदीध्यत्) भूतात्माका प्राण ईश्वरके अङ्ग २ में स्थित हुआ (ऐन्द्रः, उदानः, अंगे, अंगे, निधीतः) भूतात्माका उदान ईश्वरके अंगोंमें धारित हुआ (देव, त्वष्टः, ते, सम्, भूरि) हे ज्योतिःस्वरूप ईश्वर! तुम्हारा विष्णु

रूप परिपूर्ण है (अ, यत्, नः, इपुरूपम, भवासि, सलक्ष्मा, सम, एतु) हे सर्वव्यापिन् ! क्योंकि-निवृत्तात्मा वाणरूप होताहै, अतः अंगुष्ठस्वरूप आत्मा विष्णुको प्राप्त हो (देव, अवसे, अ, आयन्तम्, त्वा, सखायः, माता, पितरः, अनुमदन्तु) हे सायुज्य के योग्य आत्मन् ! संसारसे रक्षा पानेके निमित्त विष्णुरूप अग्निमें जाने वाले तुझको प्राण आदि भक्तोंसे और देवता आह्लादें ॥ २० ॥

समुद्रङ्गच्छ स्वाहान्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहा देवर्ठ० स-
वितारङ्गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा-
होरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दार्ठ०सि गच्छ स्वाहा
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञङ्गच्छ स्वाहा
सोमङ्गच्छ स्वाहा दिव्यन्नभो गच्छ स्वाहाग्निं
वैश्वानरङ्गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दि-
वन्ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मना
पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

देहके अवयवोंमें हरएक अवयवको उपदेश करताहै कि-(समुद्रम्, गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्माओंके जल ! तुम अपनी समष्टिरूप समुद्रमें लीन होजाओ, श्रेष्ठ होम हो (अन्तरिक्षम्, गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्माओंके वायु ! तुम अन्तरिक्षमें जाओ, श्रेष्ठ होम हो (देवम्, सवितारम्, गच्छ, स्वाहा) हे आत्मप्रतिबिम्ब ! तुम सूर्य देवताको पहुँचो, श्रेष्ठ होम हो (मित्रावरुणौ, गच्छ, स्वाहा) हे जीवात्मा तुम नर नारायणको पहुँचो, श्रेष्ठ हवन हो (अहो-रात्रे, गच्छ, स्वाहा) हे जन्म मरणकाल ! अहोरात्रिको पहुँचो श्रेष्ठ हवन हो (छन्दांसि, गच्छ, स्वाहा) हे शरीरके अवयवों ! तुम समष्टि शरीरके अङ्गोंको पहुँचो सुन्दर हवन हो (द्यावापृथिवी गच्छ, स्वाहा) हे मन, हृदय आदिके कमलों ! तुम पृथिवी और स्वर्गके अधिष्ठातृदेवोंको पहुँचो, श्रेष्ठ होम हो (यज्ञम्, गच्छ, स्वाहा) हे यज्ञक्रियाओ ! तुम यज्ञ पुरुष विष्णु को पहुँचो, श्रेष्ठ होम हो (सोमम्, गच्छ, स्वाहा) हे अन्न पान

आदि भोगके समूह तुम सोमदेवताको पहुँचो, उत्तम होम हो (दिव्यम्,नभः,गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मामें के आकाश ! तुम दिव्य आकाशमें जामिलो, श्रेष्ठ होम हो (वैश्वानरम्, अग्निम्, गच्छ, स्वाहा) हे जठराग्ने ! तुम वैश्वानर अग्नि देवताको प्राप्त होओ श्रेष्ठ होम हो (मे, हार्दि, मनः, यच्छ) हे योगशक्ते ! मेरे हृदय-सम्बन्धी मनको रोको (ते, धूमः, दिवम्, गच्छतु) हे भूतात्मन् ! तेरा धूम्र स्वर्ग को जाय (ज्योतिः, स्वः) आत्मज्योति सूर्यको प्राप्त हो (भस्मना, पृथिवीम्, आपृण, स्वाहा) भस्मके द्वारा पृथिवीको पूर्ण कर, इसप्रकारका प्राकृतिक होम हो ॥ २१ ॥

मापो मौषधीर्हिᳬसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

वाणीसे भूतात्मा का हवन करके अब प्रारब्ध समाप्तिपर्यन्त फिर प्रार्थना करताहै कि-हे मन ! तू (आपः, मा, हिंसीः,) इन्द्राग्नियों के अन्तरिक्षों को मत नष्ट करो (ओषधीः मा) इन्द्रियोंकी शक्तियोंको मत नष्ट करो (राजन् वरुण, ततः, धाम्नः, धाम्नः, नः, मुञ्च) हे राजन् मन अपने पाशरूप प्रत्येक इन्द्रिय से हमको छोड़ो (अघ्न्याः, इति, यत्, आहुः, वरुण, इति, शपामहे, वरुण, ततः, नः, मुंच) ईश्वरके पूजक देहके अवयव अवध्य हैं, ऐसा जो शास्त्र कहतेहैं, हे मन हमतो इस योगकी विधिसे इनका वधकरते हैं, हे मन उस पापसे हमको मुक्त कर (आपः, ओषधयः, नः, सुमित्रियाः, सन्तु) इन्द्रियों के अन्तरिक्ष और इन्द्रियें हमारे श्रेष्ठ मित्र हों (यः, अस्मान्, द्वेष्टि, च, वयम्, यम्, द्विष्मः, तस्मै, दुर्मित्रियाः, सन्तु) जो काम हमारे प्रतिकूल होता है और हम योगी जिस काम को शत्रुदृष्टि से देखते हैं उस कामके लिये इन्द्रियान्तरिक्ष और इन्द्रियें शत्रुरूप

हों अर्थात् हमारी इन्द्रियों में किसीप्रकारकी विषयवासना उत्पन्न न हो ॥ २२ ॥

इति अग्निषोमीय पशुप्रयोगकी आध्यात्मिक व्याख्या समाप्त

प्रथम प्रयोग अ० ५ की क० ७ तक पूर्ण किया, अवशेष कहते लिखतेहैं कि-सूर्योदयसे पहिले नदी आदिमें [redacted] बहतेहुए वसतीवरी नाम जलको ग्रहण करे तिसका मंत्र—

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान् आविवासति ।
हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्मान् अस्तु सूर्यः ॥२३॥

(हविष्मान्, इमाः, हविष्मतीः, आपः, आविवासति) हविसे युक्त यजमान इन हविसे युक्त वसतीवरी नाम जलोंकी परिचर्या करताहै अर्थात् जलके समूहमें से पृथक् करके लेताहै (देवः अध्वरः हविष्मान्, अस्तु) प्रकाशवान् यज्ञ हविसे युक्त हो (सूर्यः, हविष्मान्) सूर्य भी हविष्मान् हो । क्योंकि-सूर्य जलको अन्य सब देवताओंके लिये ग्रहण करताहै, सब देवता इस विराडात्मा सूर्य की किरणें हैं ॥ २३ ॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्यो-
र्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ वि-
श्वेषान्देवानां भागधेयीस्थ अमूर्या उपसूर्ये
याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

इस कण्डिकामें ५ मंत्र हैं । सबका मेधातिथि ऋ० । छं० १ आसुरीगा० २ प्राजापत्या गा० ३ याजुषी त्रि० ४ या० त्रि० ५ आर्च्युष्णिक् और देवता, सबका आप है । मंत्रार्थ-(वः अपन्नगृहस्य अग्नेः सदसि सादयामि) हे वसतीवरी जलों ! तुमको अविनश्वर घरवाले अग्निके निकट स्थापन करता हूँ (इन्द्राग्न्योः भागधेयी, स्थ) तुम इन्द्र और अग्निदेवता के भाग हो । (विश्वेषां देवानां भागधेयी, [redacted]) तुम सम्पूर्ण देवताओंके भागरूप हो (अमूर्याः, उपसूर्ये, वा, सूर्यः, याभिः, सह, ताः, नः अध्वरम् हिन्वन्तु) जो सम्पूर्ण जल बहुत कालतक रहनेके कारण सूर्यकी किरणोंसे

अदृश्य सूर्यके समीप स्थित हैं अथवा जिनके साथ सूर्य गमन करते हैं वे जल हमारे यज्ञको परितृप्त करो ॥ २४ ॥

हृदेत्वा मनसे त्वा दिवेत्वा सूर्याय त्वा ऊर्ध्वमिममध्वरन्दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

इसका मेधाति० ऋ० विराडनुष्टुप्छन्द, सोमो दे०। मंत्रार्थ-(मनसे, त्वा, हृदे, त्वा, दिवे, त्वा, सूर्याय, त्वा, होत्रा, इमम्, अध्वरम्, ऊर्ध्वम्, दिवि, देवेषु, यच्छ) हे सोम ! हृदयवान मनुष्योंके निमित्त, संकल्प विकल्पात्मक मनके निमित्त, तुमको द्युलोककी प्राप्तिके निमित्त सूर्यदेवताके निमित्त उपाहरण करता हूँ इस यज्ञ को उन्नत करके यज्ञके वषट्कर्ता सात होताओं को देवलोकमें देवताओंके मध्य देवत्व प्रदान करो ॥ २५ ॥

सोमराजन्विश्वास्त्वम्प्रजा उपावरोह विश्वास्त्वाम्प्रजा उपावरोहन्तु। शृणोत्वग्निः समिधा हवम्मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवम्मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इस कं० ३ मंत्र हैं। सबका मेधातिथि ऋ०। छं० १ का साम्नयुष्णिक्, २ याजुषी त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टु० मंत्रार्थ-(सोमराजन्, त्वं विश्वाः, प्रजाः उपावरोह, विश्वाः प्रजाः त्वां, उपावरोहन्तु) हे राजा सोम तुम इन सम्पूर्ण ऋत्विग् गणोंको अपनी प्रजा जानकर कृपा करो, हे सोम सम्पूर्ण प्रजा तुमको प्रणामद्वारा प्राप्त हो (अग्निः, समिधा, मे, हवं, आपः, च, धिषणा, देवी, च, ग्रावाणः, विदुषः, नः, यज्ञम्, आश्रोत, सविता, देवः, मे, हवं, शृणोतु) अग्निदेवता समिधापूर्वक मेरी इस आहुतिसे मेरे आह्वानको सुनें। हे ग्रावासमूह अभिषवके निमित्त प्राप्त हुए तुम विद्वानों की समान एकाग्र चित्तसे मेरे यज्ञ के आह्वान को सब प्रकार सुनो, सबका प्रेरक परमात्मा देवता मेरे आह्वानको श्रवण करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २६ ॥

देवीरापो अपान्नपाद्यो व ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः । तन्देवेभ्यो देवत्रा शुक्रपेभ्यो येषां भागस्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । सबका मेधातिथि ऋ० । छं० १ भुरिगार्षी पं० २ दैव्युष्णिक् और देवता १, २ का आप् । मंत्रार्थ-(आपो, देवीः, वः, अपाम्, नपात्, हविषः, इन्द्रियावान्, मदिन्तमः, ऊर्मिः) हे जलदेवियो तुम्हारे जलों के, अपत्यरूप, हवियोग्य, वीर्यवान्, तृप्त करनेवाली, लहर है (देवत्रा, तम्, शुक्रपेभ्यः, देवेभ्यः, दत्त) देवताओंके प्रति जानेवाली, उस ऊर्मिको शुक्रादि सोम ग्रह पीनेवाले देवताओंको प्रदान करो (येषां, देवानां, भागः, स्थ) जिन देवताओं के तुम भाग हो इन सबके उद्देश्य से तुमको हवि देते हैं (स्वाहा) यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥२७॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि ।
समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥२८॥

इस कण्डिका में ३ मं० । सबका मेधा० ऋ० । छं० १ दैवी बृ० २ याजु० त्रि० ३ साम्न्यनु० और देवता १ का आज्य २, ३ का आप् । मंत्रार्थ–हे घृत तुम (कार्षिः असि) देव लौकिक पापके दूर करनेवाले हो (समुद्रस्य, अक्षित्यै, त्वा, उन्नयामि) हे जलो वसतीवरी लक्षणवाले सागररूप जलके अक्षीणताके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं (आपः, अद्भिः, समग्मत, ओषधीः, ओषधीभिः, सम्) हे मित्रावरुण चमसमें स्थित जलो तुम इस वसतीवरी के जलके संग भलीप्रकार मिश्रित हो, सम्पूर्ण ओषधी ओषधियों के साथ भलीप्रकारसे मिश्रित हों ॥ २८ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यञ्जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगार्षी गायत्री छं० अग्निर्देवता है मंत्रार्थ-(अग्ने, पृत्सु यम्, मर्त्यम्, अवाः, वाजेषु, यम् जुनाः, सः शश्वतीः इषः, यन्ता, स्वाहा) हे अग्निदेव, बड़े संग्राममें जिस

मनुष्यको तुम रक्षा करते हो, किंच हविलक्षणवाले अन्नों में अन्न के निमित्त जिस मनुष्यके निकट तुम हविग्रहण करनेको उपस्थित होतेहो वह मनुष्य तुम्हारे प्रसादसे निरन्तर अक्षय अन्नों तथा धनोंको पाताहै, हमारी यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो. २९.

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूत्तमम्। उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तम्मधुमन्तम्पयस्वन्तन्निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

इस कण्डिकामें २ मंत्र हैं। सबका मधु० ऋ०। छं० १ ब्रा० पं० २ आ० अ० और देवता १ अद्रि २ आप। मंत्रार्थ--हे उपांशु सवन (सवितुः देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम् त्वा, आददे) सविता देवताकी प्रेरणासे अश्विनीकुमार की बाहु, पूषा देवता के हाथों से तुमको ग्रहण करताहूं (रावा, असि) अभीष्ट फल के देनेवाले हो (इमम्, अध्वरम्, गभीरम्, कृधि, उत्तमेन, पविना, इन्द्राय, सुषूतमम्, ऊर्जस्वन्तम्, मधुमन्तम्, पयस्वन्तम्) इस हमारे यज्ञको महान् करो उत्कृष्ट श्रेष्ठ वज्रसदृश तुम्हारे द्वारा इन्द्रदेवता के निमित्त प्रीतिवर्द्धक बलयुक्त स्वादिष्ट मधुर रसयुक्त दुग्ध के स्वादुरससे युक्त सोमको अभिषुततम करताहूं (निग्राभ्यः, स्थ, देवश्रुतः, मा, तर्पयत) हे जलो तुम हमसे सम्यक्प्रकार से ग्रहण किये हो देवताओंके मध्यमें चिरप्रसिद्ध हो इसप्रकार बहुत मानसे युक्त तुम इस समय इस यज्ञमें मुझको तृप्त करो ॥ ३० ॥

मनो मे तर्प्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणम्मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

इसका मधु छं० ऋ० याजुषी ब्रा० ज० छं०, आप देवता है।

मंत्रार्थ–हे निग्राभ्य (मे, मनः, तर्पयत, मे, वाचं, तर्पयत, मे, प्राणं, तर्पयत, मे, चक्षुः, तर्पयत, मे, श्रोत्रं, तर्पयत, मे, आत्मानं, तर्पयत, मे, प्रजां, तर्पयत,) मेरे मनको तृप्त करो, मेरे प्राणको तृप्त करो, मेरी नेत्रइन्द्रियको तृप्तकरो, मेरे कर्णों को तृप्त करो, मेरी आत्माको तृप्त करो, मेरी प्रजाको तृप्त करो, (मे, पशून्, तर्पयत, मे, गणान्, तर्पयत, मे, गणाः, मा, वितृपन्,) मेरे पशुओंको तृप्त करो, मेरे मनुष्यसमूहों को तृप्त करो, मेरे आत्मीयजन किसीप्रकारसे तृष्णासे कातर नहों॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवत इन्द्रायत्वाभिमातिघ्ने। श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे॥ ३२॥

इस कं० में ९ मंत्र हैं। सबका मधुच्छन्दा ऋ०। छं० १ सा० गा०, २,३,४ प्रा० गा०, ५ या० त्रि०, और दे० सबका सोम है। मंत्रार्थ–हे सोम! (वसुमते, रुद्रवते, इन्द्राय, त्वा, आदित्यवते, इन्द्राय, त्वा, अभिमातिघ्ने, इन्द्राय, त्वा, सोमभृते, श्येनाय, रायस्पोषदे, अग्नये, त्वा) वसुनाम देवता से युक्त माध्यन्दिन सवनके रुद्रदेवतासे युक्त इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम तीसरे सवनके आदित्य देवताके सहित वर्त्तमान इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूं, हे सोम शत्रुघाती इन्द्र देवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूं, हे सोम धन और पुष्टि देनेवाले अग्निदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूं॥ ३२॥

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधिदात्रे वोचः॥ ३३॥

इस मंत्र का मधुच्छं० ऋ०, भुरिगा० त्रि० छं० सोम देवता है। मन्त्रार्थ–(सोम, दिवि, यत्, ते, ज्योतिः, पृथिव्याम्, यत्, उरौ, अन्तरिक्षे, यत्, तेन, अस्मै, उरु, कृधि,) हे सोम! द्युलोक में जो तुम्हारी ज्योति है, पृथ्वी में जो ज्योति है, विस्तीर्ण,

अन्तरिक्षमें जो ज्योति है, उस ज्योति के प्रभावसे इस यजमानके निमित्त इन्धन विस्तार करो अथवा इसके यज्ञ में अपने शरीर को विस्तार करो) राये, उरु कृधि, दात्रे, अधिवोचः,) ऋत्विग् गणों को धनप्राप्ति के निमित्त अपने शरीरका विस्तार करो, दाता यजमानके निमित्त मैं सम्पूर्ण ज्योतिसे प्राप्त हुआ ऐसा कहो॥

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता अमृतस्य पत्नीः ।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञन्नयतोपहूताः सोमस्य
पिबत ॥ ३४ ॥

इसका मधुछं० ऋ०, सुराडार्पी प० वृ० छं०, आपो देवताहै मंत्रार्थ–हे जलो ! तुम (श्वात्राः, वृत्रतुरः, राधोगूर्तः, अमृतस्य, पत्नीः, स्थ) शीघ्रकार्यकारी, शत्रुहृदय मर्दनकारी, इष्ट कामनाके देने वाले, सोमके पालक हो (देवीः, ताः, इमम्, देवत्रा, नयत) हे सम्पूर्ण निग्राभ्यदेवता इसप्रकारके तुम इस यज्ञको देवताओंके प्रति प्राप्त करो (उपहूताः, सोमस्य, पिबत) अनुज्ञा को प्राप्त हुए तुम सोमको पियो ॥ ३४ ॥

मा भेर्मा संविक्था ऊर्जन्धत्स्व धिषणे वीड्वी
सती वीडयेथामूर्जन्दधाथाम् । पाप्मा हतो
न सोमः॥ ३५ ॥

इसमें मधुच्छन्दा ऋ० । भुरिगार्प्यनु० छं० । अर्द्धस्य द्यावा पृथिवी दे० । मंत्रार्थ–हे सोमसमूह तुम (माभेः, मासंविक्थाः ऊर्जं धत्स्व) आघातसे भय मत करना, कम्पित मत होना, रस को धारण करो (धिषणे वीड्वी सती वीडयेथाम्, ऊर्ज्जं दधाथाम्) हे द्यावापृथिवी दृढ़ताको प्राप्त हुई इस उपांशु सवनके आघात और सोम सवनको दृढ़ करो, इस सोमके रसको वृद्धिकर बलप्रदान करो इस वज्राघातसे यजमानके सम्पूर्ण (पाप्मा, हतः सोमः न) पाप नष्ट होते हैं और सोम नहीं हत होता किन्तु संस्कारयुक्त होताहै.

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश आधावन्तु ।
अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ ३६ ॥

इसका मधु० छं० ऋ० आर्च्युष्णिक् छं० सोमदेवता है मंत्रार्थ-(प्राक्, अपाक्, उदक्, अधराक्, दिशः सर्वतः त्वा आधावन्तु) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणादि सम्पूर्ण दिशा सब ओर से तुम्हारे सन्मुख धावमान हों (हे अम्ब निष्पर अरीः सम्विदाम्) हे माता अपने भागोंसे सोमको पूर्ण करो, सब प्रजा इस यज्ञ को जानें ३६ ।

त्वमङ्ग प्रशंᳪसिषो देवᳪ शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥

इसका गौतम ऋषि-पथ्या वृहती यद्वा भुरिगार्ष्यनु० छं० इन्द्र देवता । मंत्रार्थ-(अङ्ग, शविष्ठ, मघवन्, इन्द्र, देव, त्वं मर्त्यम् प्रशंसिषः) हे सर्वत्र प्राप्त, अतिशय बलवान्, सुखकारी धनवान्, परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् आप इस मनुष्य यजमान को प्रशंसा देते हो (त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति) आपके सिवाय और कोई सुख देनेवाला नहीं है (ते वचः ब्रवीमि) आपका, आपही सुखरूप हैं, यह वचन कहता हूं ॥ ३७ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सानुवाद षष्ठ अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

छठे अध्यायमें यूपसंस्कारसे सोमाभिषव तक मंत्र कहे अब सातवें अध्यायमें ग्रहग्रहणके मंत्र कहेजाते हैं ।

॥ हरिः ॐ ॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अᳪशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोसि ॥ १ ॥

इस कण्डिकामें २ मंत्र हैं । सबका गोतम ऋषि है, छन्द १ का साम्नी बृ० २ आसुर्ये० और देवता प्राण है । मंत्रार्थ-हे सोम तुम (वृष्णः, अᳪशुभ्याम, गभस्तिपूतः, वाचस्पतये पवस्व) सम्पूर्ण कामनाके फलवर्षी, अंशुद्वय तथा हमारे हाथ से पवित्र हुए तुम प्राणोंकी प्रीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, हे सोम (देवः, देवेभ्यः, पवस्व, येषाम्, भागः असि) देवतारूप तुम

देवताओंकी प्रीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, जिन देवताओं का भाग हो ॥ १ ॥

मधुमतीर्न इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका गो० ऋ०। छन्द १ या० बृ० आर्च्यु० ३ आसु० ज० और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ-- हे सोम (नः, इषः, मधुमतीः कृधि) हमारे अन्न मधुर रसयुक्त सुस्वादु करो, (सोम ते यत्, अदाभ्यम्, जागृवि, नाम, सोम, तस्मै, ते, स्वाहा) हे सोम! तुम्हारा जो हिंसा शून्य, जागरणशील नाम है, (हे सोम तस्मै ते स्वाहा, स्वाहा उरु अन्तरिक्षम् अन्वेमि) हे सोम उस तुम्हारे निमित्त यह अंशुद्रव्य फिर प्रदान करते हैं उद्देश्य देवताकी प्रीतिके निमित्त यह भलीप्रकार आहुत होताहै, इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षके मध्यमें गमन करता हूँ।

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरि प्रुता भङ्गेन हतोसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

इस कं० में ९ मंत्र हैं। सबका गो० ऋ०। छं० १ भू० प्रा० ज० २ या० बृ० ३ सा० त्रि०, ४, ९ दै० बृ० हैं और देवता १ उपांशु २ देवा ३ लिंगोक्ता ४ ग्रह ९ उपांशु हैं। मंत्रार्थ-हे प्राणरूप उपांशुग्रह (विश्वेभ्यः, इन्द्रियेभ्यः, पार्थिवेभ्यः, दिव्येभ्यः, स्वाकृतः, असि) सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण पार्थिव द्विपद चतुष्पद और दिव्य प्राणियोंसे स्वयं प्रादुर्भूत हो (मनः, त्वा, अष्टु) मन प्रजापति तुम्हारे प्रति आधिपत्य करे (सुभव, सूर्याय, त्वा, स्वाहा) हे प्रशंसितजन्मन् सूर्यरूप प्रजापतिकी प्रीतिके निमित्त तुमको आहुत करता हूँ यह आहुति सुन्दररूपसे गृहीतहो, पेहले-

पात्र (मरीचिपेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) मरीचिपालक देवगणकी तृप्तिके निमित्त तुमको मार्जन करता हूँ (देव, अंशो, यस्मै, त्वा, ईडे, तत्, सत्यं, उपरि, प्रुता, भङ्गेन, हतः, असौ, फट्) हे दीप्यमान अंशुदेव जिसके अभिचार मारणादिकी कामनाके निमित्त तुमको मार्जन वा साधन करता हूँ वह यह अमुक मेरा शत्रु सत्य ही अकस्मात् प्राप्त हुई महापीडासे निहत हुआ यह शत्रु विशीर्ण होजाय–हे उपांशुसवन (व्यानाय, त्वा) व्यान देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोमम् ।
उरुष्य राय एषो यजस्व ॥ ४ ॥

इस मंत्रका गो॰ ऋ॰। छ॰ माजा॰ वि॰ इन्द्रदेवता है। मंत्रार्थ हे अन्तर्याम ग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः, असि, मघवन्, अन्तः, यच्छ, सोमम् पाहि,) क्षुद्र कलश द्वारा गृहीत हो, हेइन्द्र ! तुम इस गृहीत सोम रसको अन्तर्ग्रह पात्रमें ग्रहण करो सोमरसको शत्रु आदि से रक्षाकरो तथा (रायः, उरुष्य, इषः, आ, यजस्व,) पशुओं को रक्षाकरो, अन्नोंको सब प्रकारसे दो ॥ ४॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन्मादयस्व ॥ ५ ॥

इस मंत्रका गो॰ ऋ॰। आर्षीपं॰ छ॰ और मघवा देवता है। मन्त्रार्थ-हे मघवन् (ते, द्यावापृथिवी, अन्तर्दधामि, उरु, अन्तरिक्षम् अन्तर्दधामि) आपके अनुग्रहसे स्वर्ग और पृथ्वी अन्तः स्थापन करताहूँ, विस्तीर्ण अन्तरिक्षको द्यावापृथिवीके मध्यमें स्थापन करताहूँ (मघवन् अवरैः परैः देवैः सजूः अन्तर्यामे मादयस्व) हेइन्द्र ! पृथ्वीके स्थानवाले द्युस्थाननिवासी देवताओं से समान प्रीतिवाले तुम अन्तर्याम ग्रहमें अपने को तृप्तकरो ।

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा । त्वा सुभव

सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा॥६॥

इस कं० में ३ मं. हैं। सबका गो० ऋ० है। छं० १ भुरिग्गा० २ या० बृ० ३ दै० पं० और देवता १ अन्तर्यामी २ देव ३ ग्रह हैं। मंत्रार्थ–प्रथम दूसरे मं० की व्याख्या इस अध्यायके ३ मंत्रमें है हे अन्तर्याम ग्रह (उदानाय त्वा) उदानं देवताकी प्रीति के निमित्त तुझको इस स्थानमें स्थापन करता हूं ॥ ६ ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रन्ते नि-
युतो विश्ववार । उपो ते अन्धो मद्यमयामि
यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥ ७ ॥

इस मंत्रका वशिष्ठ ऋषि निचृदार्षी ज० छं० वायुदेवता। मंत्रार्थ–(शुचिपाः, वायो, नः, उप, आभूष, विश्ववार, ते, सहस्रं नियुतः, मद्यम्, अन्धः, ते, उप, आयामि) हे अग्ने ! पवित्र पानकारी वायुदेवता तुम हमारे समीप आगमन करो, तृप्तिका करने वाला सोम लक्षण अन्न तुम्हारे समीपमें समर्पण करके भिज- वाता हूं (देव, यस्य, पूर्वपेयं, दधिषे) हे दीप्यमान वायो जिस सोमका प्रथम वषट्कार लक्षणवाला पूर्वपान तुम धारण कियेहो उसीको इससमय तुम्हारे निकट उपस्थित करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो
वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोसि वायव इन्द्र-
वायुभ्यान्त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यान्त्वा ॥ ८ ॥

इस कं० में २ मं० हैं सबका मधु० ऋ० । छं० १, आर्षी गा० २ सुराडा० गा० और देवता १ इन्द्रवायू २ इन्द्र। मन्त्रार्थ-(इन्द्रवायू इमे, सुताः, प्रयोभिः, उप आगतम्, हि, इन्दवः, वाम्, उशन्ति) हे इन्द्रवायू ! तुम्हारे निमित्त यह सोम प्रस्तुत किये हैं, इस सोमरसरूप अन्नपानके निमित्त हमारे समीप आइये, जिसकारण कि यह सोमरस तुम्हारे प्रिय होने की इच्छा करते हैं, हे तृतीय ग्रह सोमरस तुम (वायवे, उपयामगृहीतः, असि) वायु देवता के उद्देश्यसे उपयामपात्र द्वारा ग्रहण कियेगये हो (इन्द्रवायुभ्यां

त्वा) युगचर इन्द्रवायु देवताके संतोषके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं, इन्द्र वायु ग्रह (एषः, ते, योनिः, सजोषोभ्यांम्, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, युगचर इन्द्र वायु देवताद्वयकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूं ॥ ८ ॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतᳬं हवम् । उपयामगृहीतोसि मित्रावरुणाभ्यान्त्वा ॥ ९ ॥

इस कं०में २ मं० हैं। सबका गृत्समद ऋ० है। छं० १ आर्षी गा० २ आसुरी गा० और देवता सबका मित्रावरुण है। मंत्रार्थ-(मित्रावरुणा, ऋतावृधा, वाम, अयं, सुतः इह, ममेत् हवम्, श्रुतम्) हे मित्रावरुण, हे सत्य, तुम्हारी प्रीतिके निमित्त यह सोमरस प्रस्तुत किया है इस यज्ञ में हमारे ही इस आह्वानको श्रवण करो हे चतुर्थग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः, असि, मित्रावरुणाभ्याम्, त्वा) मित्रावरुण संज्ञक उपयामपात्रमें गृहीत हो मित्रावरुण संज्ञक देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं

राया वयᳬं ससुवाᳬंसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः । तान्धेनुम्मित्रावरुणा युवन्नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यान्त्वा ॥ १० ॥

इस कं०में२ मं० हैं। सबका त्रिसदस्यु ऋ०।छं० १ आर्षी त्रि०२ याजुषी पं० और देवता १ मित्रावरुणौ २ ग्रह है। मंत्रार्थ-जिस गौके घरमें होने से (वयं, राया, ससवाᳬंसः, मदेम, देवाः, हव्येन, गावः, यवसेन, मित्रावरुणा, युवम्, ताम्, अनपस्फुरन्तीम्, धेनुं, नः, विश्वाहा, धत्तम्) हम धनसे सम्पन्न होकर प्रसन्न होते हैं, देवगण हविपानसे जैसे प्रसन्न होतेहैं, गौ जैसे घासादि से प्रसन्न होती है, हे मित्रावरुण देवताओं तुम उस दूसरे पुरुष के निकट न जानेवाली धेनु को हमारे निमित्त सर्वदा प्रदान करो (एषः, ते, योनिः, ऋतायुभ्याम्, त्वा) हे ग्रह,यह तुम्हारा स्थान

है, मित्रावरुण देवता ! मन्त्र की संतुष्टिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूं ॥ १० ॥

या वाङ्कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती तया यज्ञम्मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥

इस कं०में १मं० हैं। सबका मेधातिथिऋषि है। छं० १भुरिगार्षीगा० २ याजुषी त्रि० और देवता १ अश्विनी २ ग्रह। मंत्रार्थ (अश्विना, वाग्, या, कशा, मधुमती, सूनृतावती, तया, यज्ञम्, मिमिक्षतम्) हे अश्विनीकुमारद्वय तुम्हारी जो प्रकाश करने वाली वाणी मधुवती ब्राह्मण उपनिषद् प्रशंसा से युक्त प्रिय और सत्यतासे युक्त है उस वाणीसे इस यज्ञ को सींचकर पूर्ण करो। हे पंचमग्रह ! तुम अश्विनी देवता की प्रीति के निमित्त इस (उपयामगृहीतः, असि, एषः, ते, योनिः, माध्वीभ्यान्त्वा) उपयाम पात्रमें ग्रहण कियेहुए हो हे अश्विग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मधुमय मंत्र ब्राह्मण पढ़नेवाले अश्विनीकुमार के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं ॥ ११ ॥

तम्प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिम्बर्हिषदश्स्वर्विदम् । प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुञ्जयन्तमनु यासु वर्द्धसे । उपयामगृहीतोसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि॥१२॥

इस कं० में ५मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋषि है। छं० १ निचृ० ज०, २ आर्च्युष्णि० ३ या० गा० ४ या० पं० ५ दै० पं० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह ३ लिंगोक्ता ४ आभिचारक ५शुक्रपा ६ वेदिश्रोणि। मंत्रार्थ—हे इन्द्र ! तुम (यासु, अनुवर्द्धसे तम्, ज्येष्ठतातिम्, बर्हिषदम्, स्वर्विदम्, धुनिं, आशुम्, जयन्तम्, वृजनम्, दोहसे) जिन यज्ञक्रियाओंमें पुनः पुनः सोमरस पान करके वृद्धिको प्राप्त होते हो तृप्त होतेहो, उस उत्कृष्ट विस्तारवान्

सर्वज्येष्ठ यज्ञ में कुशासनके सेवी स्वर्गवेत्ता शत्रुओंको कम्पित करने वाले जेतव्य वस्तुओं को शीघ्र जीतनेवाले तुम बलपूर्वक यज्ञफल को यजमानके प्रति देतेहो (प्रत्नथा, पूर्वथा, विश्वथा, इमथा, त) समस्त यज्ञके प्राचीन नियम की समान पूर्वप्रथाके अनुसार सब प्रकार इस समयके यजमानकी समान इस यज्ञका फल देते हो, ऐसे आपकी हम स्तुति करते हैं, हे पात्रग्रह ! शुक्र (उपयामगृहीत:, असि, शण्डाय, त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत हुए हो, शण्ड नामक असुरके निवासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एष:, ते योनि:, वीरतां, पाहि) यह तुम्हारा स्थान है इस स्थानमें अव-स्थान करके यजमानके वीरत्वकी रक्षा करो (शण्ड:, अपमृष्ट:, शुक्रपा:, देवा:, त्वा, नीयन्तु) असुरसेवा अपमानित हुआ है ग्रह शुक्रनामक ग्रह में स्थित सोमपान करनेवाले देवता तुमको निरापद आहवनीय स्थानमें प्राप्त करें, हे उत्तर,वेदी श्रोणी तुम (अनाधृष्टा, असि) अनुपहिंसित हो, अर्थात् तुम्हारे द्वारा इस ग्रहको हानि नहीं पहुँचसकती ॥ १२ ॥

सुवीरो वीरान्प्रजनयन्परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठा-नमसि ॥ १३ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार काश्यप ऋ० छन्द १ सा०त्रि० २ साम्न्यनु०,३ दैवी पं०४ प्रा० गा० और दे० १,२ का शुक्र ३ अभिचारक ४ सकल ॥ मंत्रार्थ—हे ग्रह तुम (सुवीर:, वीरान्, प्रजनयन्, रायस्पोषेण, यजमानम्, अभि, परीहि) सुन्दर वीरतासे युक्त हो इस यजमानके शूरतासे युक्त पुत्र भृत्यादिको उत्पन्न करते हुए, अनेक प्रकारकी धन पुष्टिद्वारा यजमानके ऊपर कृपाकर सब प्रकारसे प्राप्त करो (शुक्र:, शुक्रशोचिषा, पृथिव्या, दिवा, संजग्मान:) यह शुक्रग्रह अपनी पवित्र कान्ति के साथ पृथिवी और द्युलोकसे संगति को प्राप्त होकर दीप्तिमान होरहा

हे (शण्ड:, निरस्त:, शुक्रस्य, अधिष्ठानम, असि) शण्डनामक असुर दूर हुआ, हे यूपकाष्ठ खण्ड! तुम शुक्रग्रहके अधिष्ठान हो १३

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१४॥

इस कं० में २ मं० हैंसबका वत्सार काश्यप ऋ०छं० १प्रा० पं० १ विराडार्षी त्रि० और देवता १ सोम २ इन्द्र है। मंत्रार्थ-(सोमदेव, अच्छिन्नस्य, सुवीर्यस्य, ते, रायस्पोषस्य, ददितार:, स्याम) हे सोमदेवता खण्डरहित निरन्तर कल्याण प्रभाववाले बली, आपके प्रसादसे हम धनपुष्टिके देनेवाले हों (सा, विश्ववारा, संस्कृति:, प्रथमा, वरुण:, मित्र:, स:, अग्नि:, प्रथम:) वह सम्पूर्ण ऋत्विग्गणों से वरणीय यह संस्कार क्रिया, जिसकारण कि इन्द्रके निमित्त कीजाती है, इससे यह मुख्य है और जगतकी उत्पत्ति का कारण होने से सोमका, वरुण, मित्र और यह अग्नि देवता मुख्य भृत्य है ॥ १४॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥१५॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋ०। छं० १ प्रा०त्रि० २ दै० बृ० और सबका होत्रा देवता है मंत्रार्थ-(स:, चिकित्वान्, बृहस्पतिः, प्रथम:, तस्मै, इन्द्राय, सुतम्, स्वाहा, आजुहोत) वह अनुपम चेतनावान् महाबुद्धिसम्पन्न बृहस्पति मुख्यमंत्री है, उस इन्द्रके उद्देश से यह प्रस्तुत सोमरस आहुत होता है यह आहुति भलीप्रकार स्वीकार हो, इस प्रकार स्वाहाकार कर हवन करो(होत्रा:, तृम्पन्तु, या:, मध्व:, स्विष्टा:,या:, सुप्रीता:, यत्, स्वाहा, सुहुता:, अग्नि:, अयाट्) छन्दों के अभिमानी वे देवता तृप्त हों जो मधुस्वादवाले सोम को इष्टवाले प्रेम करने वाले जो अत्यन्त प्रसन्न हैं, जिसकारणसे स्वाहाकार द्वारा होम

के निमित्त नियुक्त हुए हैं, शुक्रग्रह सोमसम्पन्न हुआ ॥१५॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने। इममपाᳬसंगमे सूर्यस्य शिशुन्न विप्रा मतिभी रिहन्ति। उपयामगृहीतोसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। वत्सका वत्सार का० ऋ०। छं० २ निचृ०त्रि०, २ साम्नीगा० और देवता १, २ सोम है। मंत्रार्थ-(अयं, ज्योतिर्जरायुः, वेनः, रजसः, पृश्निगर्भाः, अचोदयत्) यह विद्युत् लक्षणवाली ज्योतिसे वेष्टित कान्तिमान् चंद्र जलके निर्माण करने में जलों को प्रेरणा करता है (विप्राः, सूर्यस्य, अपां संगमे, इमं, शिशुं, न, मतिभिः, रिहन्ति) बुद्धिमान् ब्राह्मण सूर्य के जलकी संगतिके समयमें इस सोम को शिशुकी समान बुद्धिपूर्वक वाणियों से स्तुति करते हैं हे ग्रहग्रह तुम (उपयामगृहीतः, असि, मर्काय, त्वा) उपयाम पात्रद्वारा ग्रहण कियेगये हो मर्क असुरके निमित्त तुमको स्थापन करता हूं ॥ १६ ॥

मनोनप्रेषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता। आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णो अस्या श्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वना धृष्टासि ॥ १७ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं। वत्सका वत्सार का० ऋ०। छं० १ आ० पं० २ या० तृ० ३ या० पं० ४ या० गा० और देवता १ सोम २ ग्रह ३ मन्थि ४ आभिचारक। मंत्रार्थ-(द्रवन्ता, विपः, शच्या, मनोनप्रेषु, हवनेषु, तिग्मं, वनुथः, यः, तुविनृम्णः, गभस्तौ अस्य, शर्याभिः, आदिशम्, अश्रीणीत) लघुहस्त, क्षिप्रकारी, बुद्धिमान् कर्मद्वारा मनके उत्साहपूर्वक जिन सोमरसके हवनोंमें मनकी समान तीक्ष्ण उत्साहसे विशेष मन लगाये रहे हैं जो बहुत धनवाला ऋत्विक्, हाथोंमें स्थित इसको अङ्गुली समूह के द्वारा

सब ओरसे सक्तुओंसे मिश्रित करता है, हे मन्थिग्रह (ते, एषः, योनिः, प्रजाः, पाहि, मर्कः, अपमृष्टः) तेरा यह स्थान है, इस स्थानमें स्थित करते यजमान की प्रजाकी रक्षा करो, मर्क असुर अपमार्जित हुआ हे मन्थीग्रह (मन्थिपाः, देवाः त्वा, प्रणयन्तु, अनाधृष्टा, असि) मन्थिग्रहके पान करनेवाले देवता तुझको यज्ञ स्थानमें प्राप्त करैं हे वेदिश्रोणी अनुपहिंसित हो ॥ १७ ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका वत्सार का० ऋ० । छं० १ सा० त्रि०, २ साम्न्यनु०, ३ दैवी पं०, ४ प्राजपत्या गा० और १, २, मन्थि दे०, ३ आभिचारिक, ४ शकल । मंत्रार्थ-हे ग्रह (सुप्रजाः,प्रजाः, प्रजनयन्, रायस्पोषेण, यजमानं, अभि परीहि) तुम सुप्रजा हो यजमानसम्बन्धिनी प्रजाको उत्पन्न करतेहुए धनकी पुष्टिके साथ यजमान के संमुख आगमन कीजिये (मन्थी, मन्थिशोचिषा, दिवा, पृथिव्या, सञ्जग्मानः) यह मन्थी नाम ग्रह अपनी दीप्तिसे द्युलोक और भूलोक के सहित संगतिको प्राप्त होकर यूपकी पालना करता है (मर्कः निरस्तः, मन्थिनः अधिष्ठानम् असि) मर्क निरस्तहुआ दूर हुआ, हे यूपकाष्ठखण्ड तुम मन्थीग्रहके अधिकरण हो ॥ १८ ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ। अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमञ्जुषध्वम् ॥ १९ ॥

इसका पक्षक्षेप ऋ० भुरिगार्षी पं० छं० विश्वेदेवा देवता है। मंत्रार्थ-(देवासः, ये, महिना, दिवि, एकादश, स्थ, पृथिव्यां, अधि, एकादश स्थ) हे देवताओ ! जो तुम अपनी महिमा के प्रभावसे द्युलोक में ग्यारह हो तथा महाभाग्य होनेसे पृथिवी के

ऊपर ग्यारह हो (अप्सुक्षितः, एकादश स्थ, देवासः, ते, इमम्, यज्ञम्, जुषध्वम् :) अंतरिक्ष में भी ग्यारह स्थित हो हे देवताओ इस यज्ञको सेवन करो ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोस्याग्रयणोसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञम्पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुन्त्वम्पाह्यभि सवनानि पाहि ॥२०॥

इसका परछेद ऋषि है, पं० निचृदार्षीग० छं० आग्रयण देवता है । मंत्रार्थ–हे ग्रहः तुम (उपयामगृहीतः, असि, आग्रयणः स्वाग्रयणः, असि, यज्ञं, पाहि, यज्ञपतिं, पाहि,) उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो आग्रयण नामवाले श्रेष्ठताके प्राप्त करनेवाले हो, इस यज्ञकी रक्षा करो यज्ञपति यजमानकी रक्षाकरो (विष्णुः, इन्द्रियेण, त्वां, पातु, त्वं, विष्णुं, पाहि, सवनानि, अभि, पाहि) यज्ञके अधिपति विष्णुदेव, अपनी सामर्थ्य से तुमको रक्षा करें तू भी यज्ञदेवको रक्षाकर प्रातरादि तीन सवनको सब ओर से रक्षा कर ॥ २० ॥

सोमः पवते सोमः पवतेस्मै ब्रह्मणेस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत इष ऊर्जे पवतेद्भ्यः ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्याम्पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः । एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

इस कं० में ३ मं० है। सबका परछेद ऋ० है। छं० १ भू० ना० प०, २ दै० ज०३ याजु०ज० और देवता १ विश्वेदेवा, २, ३, ग्रह। मंत्रार्थ-(सोमः, अस्मै, ब्रह्मणे, सोमः, अस्मै, क्षत्राय, पवते, अस्मै, सुन्वते, यजमानाय, पवते, अद्भ्यः, ओषधीभ्यः, पवते,) यह सोम, इस ब्राह्मण जाति की प्रीति के निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होताहै, सोम इस क्षत्र जातिकी तुष्टिके निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होताहै इस सोमाभिषव करनेवाले यजमान के

निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होताहै, अच्छी वर्षाके निमित्त ओषधियों से क्षरित होताहै (द्यावापृथिवीभ्याम्, पवते, सुभूताय, पवते विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) दोनो लोक की सन्तुष्टताके निमित्त क्षरित होताहै, लोकत्रय और समस्त चराचर की संतुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, समस्तके ही आनन्द के निमित्त यह सोमग्रह पात्रमें क्षरित होता है, हे ग्रह (एषः, ते, योनिः, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा,) यह तुम्हारा स्थान है सम्पूर्ण देवताओं की प्रीति के निमित्त तुझे स्थापन करता हूं ॥ २१ ॥

उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत
उक्थाव्यङ्गृह्णामि । यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा
विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा
देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

इक कं० में ३ मं० हैंसबका पदच्छेद ऋ०३० १आर्षी पं-२ दै०ज० १ आर्षी गा०और सबका लिङ्गोक्त देवता। मन्त्रार्थ–हे उक्थग्रह! (उक्थाव्यम्, त्वा, बृहद्वते, वयस्वते, इन्द्राय, गृह्णामि) उक्थके साहित्य देवताओंका तृप्तिकारक जानकर तुमको बृहत्साम सोमरूप अन्नवाले इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ (इन्द्र, यत्, ते, बृहद्, वयः, तस्मै, त्वा, विष्णवे, त्वा) हे परम भाग्यवान् इन्द्र जो तुम्हारा महान् सोमरूप अन्न है उसके पाने के निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, हे सोम यज्ञके अभिष्ठामी देवता विष्णुकी प्रीति के निमित्त तुझको ग्रहण करता हूँ हे उक्थग्रह (एषः, ते, योनिः, उक्थेभ्यः, त्वा) यह तुम्हा स्थान है, उक्थप्रियदेवताओं की प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूँ हे सोम (देवाव्यम्, देवेभ्यः, त्वा, यज्ञस्य, आयुषे, गृह्णामि) मित्रावरुणादि देवताओंके प्रीतिकारक जानकर देवताओंकी सन्तुष्टिके अर्थ तुझको ग्रहण करता हूँ, यज्ञकी समाप्ति के फल पर्यन्त ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णा-
मीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
ग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
वरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा
बृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णा-
मीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृ-
ह्णामि ॥ २३ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं । सबका परुच्छेप ऋ० । छं० १ आर्ची गा०, २ आसुरी गा०, ३ प्राजापत्यानु० ४ आर्ची गा० ५निचृद् गा० ६ भुरिग् साम्न्यनु० और सबका लिंगोक्त दे० । मंत्रार्थ (देवाव्यम्, मित्रावरुणाभ्यां, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा, देवाव्यम्, इन्द्राय, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,) देवगणों की तृप्ति कारक जानकर मित्रावरुण देवताकी प्रीतिके निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुझ अंश को ग्रहण करताहूं देवगणों की तृप्ति कारक जानकर इन्द्रदेवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ समाप्ति के निमित्त तुझको ग्रहण करता हूं (देवाव्यम्, इन्द्राग्निभ्याम्, यज्ञस्यायुषे, त्वा, देवाव्यम्, इंद्रावरुणाभ्याम्, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा, देवाव्यं, इन्द्राबृहस्पतीभ्याम्, त्वा, यज्ञस्य, आयुषे) देवसमूहोंका तृप्तिकारक जान इन्द्र अग्निदेवताके निमित्त यज्ञकी समाप्ति के निमित्त तुझको ग्रहण करता हूं, देवगणोंका तृप्तिकारक जानकर इन्द्रवरुण देवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुझको ग्रहण करता हूं, देवगणोंका तृप्तिकारक जानकर इन्द्र और बृहस्पति देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं, यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं, (देवाव्यं, इन्द्राविष्णुभ्याम्, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा) देवताओंका तृप्तिकारक जानकर इन्द्र और विष्णुदेवताकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ की निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुझ तीसरे अंशको ग्रहणकरताहूं २३

मूर्द्धानंन्दिवो अरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० आर्षी त्रि० छं० वैश्वानर दे० । मंत्रार्थ-(देवाः, दिवः, मूर्द्धानं, पृथिव्याः, अरतिम्, वैश्वानरम्, ऋते, आजातम्, कविं, सम्राजम्, जनानां, अतिथिं, अग्निं, आपात्रं, अजनयन्त) देवताओंने द्युलोकके मस्तकस्वरूप सूर्यरूपसे प्रकाशित पृथिवीके सीमास्वरूप जाठराग्निरूपसे समस्त नरलोक के हितकारी यज्ञ में अरणीद्वयसे उत्पन्न, अविचल तथा दीप्तिमान्, क्रान्तदर्शी, भक्तों के सन्मुख होनेवाले, नक्षत्रमण्डलीमें सम्राट् यजमानादि समस्तजनोंके अतिथिवत्, हविसे आदरणीय इस अग्निको मुख्यपात्र चमस करके प्रकट किया ॥ २४ ॥

उपयामगृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणान्ध्रुवतमोच्युतानामच्युतक्षित्तम एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवन्ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा न इन्द्र इद्विशो सपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ निचृदार्ष्यनु० २ या० त्रि० ३ निचृद्साम्नी वृ० ४ निचृदार्षी गा० और दे० १, २, ३, ध्रुव, ४ इन्द्र है । मंत्रार्थ-हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, ध्रुवक्षितः, ध्रुवाणां, ध्रुवतमः, अच्युतानां अच्युतक्षित्तमः, ध्रुवः, असि) उपयामपात्र में गृहीत हो स्थिर निवासवाले समस्त ग्रह नक्षत्र मण्डलकी अपेक्षा अत्यन्त अचल तथा च्युतिरहित पात्रमें निवास करनेवाले, ध्रुवनामसे प्रसिद्ध हो ध्रुवदेवके प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं । हे ध्रुवग्रह ! (एषः, ते, योनिः, वैश्वानराय, त्वा, ध्रुवेण, मनसा, वाचा, ध्रुवंसोमं, अवनयामि) यह तेरा स्थान है, समस्त नरलोक के हितकारी देवकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन

करता हूं, स्थिर मन और वाणीसे इस भुवनमें स्थित सोमको होतृमचस पात्रान्तरमें सिंचन करता हूं, (अथ, आ, इन्द्रः, इत्, मः, विशः, असपत्नाः, समनसः, करत) इसके अनन्तर इन्द्र देवता ही हमारी प्रजाको शत्रुशून्य स्थिरमन करें ॥ २५ ॥

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्ते अꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तन्ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका देवश्रवा ऋ० है । छं० १ भुरिगा० त्रि० २ दैव्यु०, ३ आसु० जग० और देवता १, सोम २ अग्नि, ३ पत्वाल मंत्रार्थ—हे सोम (ते, यः, द्रप्सः, स्कन्दति, यः ते, अंशुः, ग्रावच्युतः, धिषणयोः, उपस्थात्, वा, अध्वर्योः, वा, यः, पवित्रात्, परितं, मनसा, वषट्कृतं, स्वाहा, जुहोमि) तुम्हारा, जो, किञ्चित् रस, पात्र में करते समय भूमि में पतित होताहै, और जो तुम्हारा खण्ड अभिषवकाल में पत्थर द्वारा कण्डन करते करते ग्रावच्युत होकर इधर उधर उड़ताहै और जो तुम्हारा अंश रस अधिषवण फलक के मध्य से गिरता है या अध्वर्यु के व्यवहार समयमें जो कुछ नष्ट हुआ है, या जो पवित्रता से सकल रसविन्दु भूमिमें पतित हुई है, हे सोम तुम्हारे यह सब अंश मनसे ग्रहण कर वषट्कारपूर्वक स्वाहाकारपूर्वक आहुति प्रदान करता हूं हे पत्वाल तुम (देवानां, उत्क्रमणम्, असि) देवताओंके स्वर्गगमनके सोपान हो ॥ २६ ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतू द- क्षाभ्याम्मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्याम्मे वर्चोदसौ व- र्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

इस कं० में ७ मं० हैं। सबका देवश्रवा ऋ० छं० १ आसुर्यनु० २, आसुर्यनु० ३, आसुर्युष्णिक्, ४ साम्नी, गायत्री ५ आसुरी गा० ६ आसु० ७ आसुर्यु०। मंत्रार्थ–यह ग्रह यज्ञ के प्राण हैं इसकारण प्राणरूपसे स्तुति करते हैं, हे उपांशुग्रह! जिस कारण से कि तुम स्वभावसे (वर्चोदाः, मे, प्राणाय, वर्चसे, पवस्व) तेजके देनेवाले हो इसकारण मेरे हृदयमें स्थित प्राणवायु में तेज बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ। हे उपांशु सवन! तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, व्यानाय, वर्चसे, पवस्व) कान्ति देनेवाले हो, मेरे व्यानवायुसम्बन्धी कान्तिके बढ़ाने के निमित्त प्रवृत्त होओ, हे अन्तर्याम ग्रह जिसकारणसे कि तुम (वर्चोदाः मे, उदानाय, वर्चसे) कान्ति देनेवाले हो मेरी उदानवायुसम्बन्धी कान्तिको बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे इन्द्रवायव ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, वाचे, वर्चसे) कान्तिप्रद हो, मेरी वाणीसम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे मैत्रावरुण ग्रह तुम स्वभावसे (वर्चोदाः, मे, क्रतु, दक्षाभ्यां, वर्चसे पवस्व) कान्ति देनेवाले हो मेरे कामना और समृद्धि तथा कार्य निपुणता सम्बन्धी कान्तिके बढाने के निमित्त प्रवृत्त होओ। हे आश्विन ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, श्रोत्राय, वर्चसे, पवस्व) कान्ति देनेवाले हो मेरे श्रोत्रेन्द्रियकी कान्तिदानके निमित्त प्रवृत्त होओ हे शुक्र। और मंथिग्रह जिसकारण कि तुम (वर्चोदसौ, मे, चक्षुर्भ्याम्, वर्चसे, पवेथाम्) स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो मेरी नेत्रसम्बन्धी कान्तिको बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ २७

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं। सबका देवश्रवा ऋ० है। छं० १, २, ३ का आसुर्यनु० ४ भुरिक्साम्न्यु० और देवता सबका लिंगोक्त है। मंत्रार्थ–हे आग्रयण ग्रह! (वर्चोदा, मे, आत्मने,

पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिमद हो, मेरी आत्मसम्बन्धी कान्तिके देने को प्रवृत्त होओ हे उक्थ्यग्रह ! (वर्चोदाः,मे, ओजसे वर्चसे, पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिमद हो मेरे शरीरादिबल सम्बन्धी कान्तिकी वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ,हे ध्रुवग्रह! (वर्चोदाः मे, आयुषे, वर्चसे, पवस्व) स्वभावसे कान्ति देनेवाले हो मेरी आयुःसम्बन्धी कान्ति की वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ हे पूतभृत ! आहवनीय ग्रह ! तुम स्वभावसे (वर्चोदसौ,मे,विश्वाभ्यः,प्रजाभ्यः वर्चसे, पवस्व) कान्तिप्रद हो, मेरी सम्पूर्ण प्रजाओं को कान्ति देने को प्रवृत्त होओ ॥ २८ ॥

कोसि कतमोसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका देवश्रुवा ऋ० है । छं० आर्ची पं० २ भुरिग्सा० पं० और सबका प्रजापति देवता है । मंत्रार्थ-हे द्रोणकलश ! तुम (कः, असि, कतमः, असि, कस्य, असि, कः, नामासि, यस्य , ते,नाम, अमन्महि, यं, त्वा, सोमेन, अतीतृपाम) कौन प्रजापति हो कौनसे अतिशय या बहुतों के मध्यमें हो किस प्रजापति के हो, क्या नाम है, जिस तेरे नामको हमजानैं जिस तुमको जानकर सोमरस से तृप्त करचुके हैं, क्या तुम वही हो, तुम हमको नाम बताकर कामनासे तृप्त करो (भूर्भुवः, स्वः, प्रजाभिः, सुप्रजाः, स्याम्) हे अग्नि । वायु और सूर्य ; आपके प्रसादसे मैं प्रजाओंसे अच्छी प्रजावाला होऊँ (वीरैः, सुवीरः, पोषैः, सुपोषः) वीरतायुक्त पुत्र पौत्रादि लाभ करके सुपुत्रवान्, विख्यात होऊँ, उत्कृष्ट धन संपत्तिसे प्रसिद्ध होकर अच्छी संपत्ति वाला विख्यात होऊँ ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोसि मधवे त्वोपयामगृहीतोसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोसि शुक्राय त्वोप-

यामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥३०॥

इस कं० में १६ मं० है, सबका देवश्रवा ऋषि है। छं० १, २, ३, ४, ५, ९, ११ का साम्नी गा० ६, १०, १२,का आसुर्येनु० ७, ८ का याजुपी पं०, १३, का आसुर्युष्णिक् और सबका देवता ऋतु है। मंत्रार्थ-हे प्रथम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, असि मधवे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीतहुए हो मधु देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं-हे द्वितीय ऋतुग्रह (उपयाम गृहीतः, असि, माधवाय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो, वैशाख की सन्तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं—हे तृतीय ऋतुग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, शुक्राय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीतहुए हो ज्येष्ठके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे ऋतुग्रह(उपयामगृहीतः,शुचये,त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो,आषाढ मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं-हे पंचम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः,असि,नभसे,त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो श्रावण मासके निमित्त ग्रहण करताहूं-हे षष्ठ ऋतुग्रह ! तुम (उपयाम गृहीतः,असि, नभस्याय, त्वा,)तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो भाद्र-मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं-हे सप्तमग्रह (उपयामगृहीतः, असि,इषे, त्वा)उपयाम पात्रमें गृहीत हो आश्विन मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं-हे अष्टमग्रह (उपयामगृहीतः, ऊर्जे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो कार्त्तिकमासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे नवम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, असि, सहसे, त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो मार्गशीर्ष के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे दशम ग्रह (उपयामगृहीतः, असि, सह-

स्याय, त्वा) तुम उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो पौषमासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं—हे एकादशग्रह (उपयाम गृहीतः, असि, तपसे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो माघ मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे द्वादश ऋतुग्रह! (उपयाम गृहीतः, असि, तपस्याय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो फाल्गुन मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे त्रयोदश ग्रह उपयाम गृहीतः, असि, अंहसस्पतये, त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो पापके अधिपति मलमासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं॥ ३०॥

इन्द्राग्नी आगतᳬसुतङ्गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
अस्य पातन्धियेषिता। उपयामगृहीतोसीन्द्रा-
ग्निभ्यान्त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा॥३१॥

इस कं०में २ मं०हैं। सबका विश्वामित्र ऋ०है। छं१ निचृद्गा० गा०२ब्राह्म्यनु० और देवता १इन्द्राग्नी,२ ग्रह। मंत्रार्थ-(इन्द्राग्नी सुतम्, गीर्भिः, नभः, वरेण्यम्, आगतम्, धिया, अस्य, पातम्) हे इन्द्राग्नी देवताओ तुम अभिष्टवण ऋक् यजुःसाम के मंत्रोंसे आदित्य की समान प्रार्थनीय, सोमरस पानके निमित्त आओ, यजमान की बुद्धि से प्रार्थनीय होकर तुम इस सोमरसके स्वभाग को पान करो, (उपयामगृहीतः, असि, इन्द्राग्निभ्यान्त्वा) हे चौवीसवें ग्रह तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो इन्द्राग्नी देवता की प्रीतिके के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे इन्द्राग्नी ग्रह (एषः, ते, योनिः, इन्द्राग्निभ्यां त्वा) यह तुम्हारा स्थान है इन्द्राग्नी देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करताहूं ३१

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
येषामिन्द्रो युवा सखा। उपयामगृहीतोस्यग्नी-
न्द्राभ्यान्त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यान्त्वा॥३२॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका त्रिशोक ऋषि है। छं० १ आर्षी गा०२ आर्च्युष्णिक् और दे० १ अग्नीन्द्र २ ग्रह है।मंत्रार्थ-(ये ,अग्निम् ,आइन्धते, आनुषक्, बर्हिः, स्तृणन्ति, येषाम्,

युवा, इन्द्रः, सखा, अघा) जो यजमान अग्निको इष्टि आदि यज्ञों में प्रज्वलित करते हैं और क्रमसे कुशाओंको बिछाते हैं और जिनके सदा तरुण इन्द्रनारायण सखा हैं वह सदा निष्पाप हैं (उपयामगृहीतः, असि, अग्नीन्द्राभ्याम्, त्वा, एषः, ते, योनिः, अग्नीन्द्राभ्याम्, त्वा,) हे सोम उनके यज्ञमें तुम उपयामपात्र से गृहीत हो, अग्नि इन्द्रदेवताओंके लिये तुम्हें स्वीकार करता हूँ, हे सोम यह तेरा स्थान है अग्नि इन्द्र देवताओंके निमित्त तुम्हें स्थापन करता हूँ ॥ ३१ ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आगत ।
दाश्वाॅसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृहीतोसि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यं एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा
देवेभ्यः ॥ ३२ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका मधुच्छंदा ऋ० । छं० १ आर्षी गा० २ आर्ची वृ० और देवता १ विश्वेदे० २ ग्रह । मंत्रार्थ-(विश्वेदेवासः, ओमासः, चर्षणीधृतः, सुतम्, दाशुषः, दाश्वांसः, आगत) हे विश्वेदेवा ! तुम सब, हमारे सबप्रकार से रक्षक हो तथा मनुष्यों को पुष्ट करनेवाले हो मनुष्य तुम्हारे प्रसाद से ही पुष्ट होते हैं अभिषुतसंस्कार किये सोम को देनेवाले यजमान को फल देनेवाले तुम सोमपान के निमित्त आओ हे पंचविंशग्रह (उपयामगृहीतः, असि, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा,) तुम उपयामपात्र में गृहीत हो विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे वैश्वदेवग्रह (एषः, ते, योनिः, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) यह आपका स्थान है विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूं ३२

विश्वेदेवास आगत शृणुता म इमᳬ हवम् ।
एदम्बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्य-
स्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका गृत्समद ऋ० छं० १ आर्ची गा० २ आर्ची वृ० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह मंत्रार्थ-(विश्वे-देवासः, आगत, मे, इमं, हवं, आशृणुत) हे विश्वेदेव देवताओं ! हमारे इस यज्ञ में आओ मेरे आह्वानको सबप्रकार से श्रवण करो (इदम्, बर्हिः, आनिषीदत) इस विस्तीर्ण कुशापर स्थित होओ, शेष पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ आर्षी त्रिष्टुप् २ आर्च्युष्णिक् और देवता, १ विश्वेदेवा, २ ग्रह मंत्रार्थ-(मरुत्वः, इन्द्र, यथा, शार्याते, सुतस्य, अपिबः) मरुत देवताओंवाले हे इन्द्र ! जिसप्रकार वेदे परिश्रम करनेवाले शर्याति यज्ञमें अभिषुत सोमके अंशोंको तुमने पिया था, इसी प्रकारसे (इह, सोमं, पाहि, शूर, तव, प्रणीती, सुयज्ञाः, कवयः, तव, शर्मन् आविवासन्ति) इस हमारे यज्ञ में सोमकी रक्षा करो और पियो हे विक्रान्तवीर तुम्हारी सुनीति और अनुज्ञा से श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले दूरदर्शी, तुम्हारे सुखप्रद स्थानमें चिरकालतक तुम्हारी परिचर्या करते हैं, हे प्रथमग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, मरुत्वते, इन्द्राय त्वा) तुम इस उपयामपात्र में गृहीत हो, मरुत देवताओंसे युक्त इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं । हे प्रथम मरुत्वतीय ग्रह ! (एषः, ते योनिः, मरुत्वते, इन्द्राय, त्वा) तुम इस उपयामपात्रमें गृहीत हो मरुत् देवताओंसे युक्त इन्द्रदेवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूं ॥ ३५ ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिन्दिव्यꣳ शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳहुवेम। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतोसि मरुतान्त्वौजसे॥३६॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका विश्वामित्र ऋ० है। छं० १ विराडार्षी २ आर्च्युष्णिक् ३ साम्न्युष्णिक् और देवता १ इन्द्र २ ३ ग्रह है। मंत्रार्थ-(मरुत्वन्तं, वृषभं, वावृधानं, अकवारिम्, दिव्यम्, शासं, विश्वासाहं, सहोदां, नूतनाय, अवसे, उग्रं, तं, इन्द्रं, इह, आहुवेम) मरुद्गणोंसे युक्त उचित समय जल वर्षाने वाले, व्रीहि धान्यादिक बढ़ानेवाले, उत्कृष्ट ऐश्वर्यवान्, द्युलोक में रहनेवाले, दुष्टों के शासक, आलस्यरहित, विश्व के पालक, बल देनेवाले, नूतन यजमान का रक्षण करने के निमित्त निरन्तर उद्यत वज्रवाले उस इन्द्रको इस यज्ञमें रक्षा के निमित्त आह्वान करते हैं। हे द्वितीय ग्रह तुम (उपयामगृहीतः, असि, मरुत्वते, इन्द्राय, त्वा, एष, ते, योनिः, मरुत्वते, इन्द्राय, त्वा, उपयामगृहीतः, असि) उपयाम पात्रम गृहीतहो, शेष अर्थ पूर्ववत्। हे तृतीय मरुत्वतीय ग्रह! (मरुत्वतां, ओजसे, त्वा) मरुत देवताओं के बलसम्पादन के निमित्त तुमको इस ऋतुग्रह में ग्रहण करता हूँ॥ ३६॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमम्पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूꣳरप मृधोनुदस्वाथाभयङ्कृणुहि विश्वतो नः। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥ ३७॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका विश्वामित्र ऋ०। छं०१ निचृदार्षी त्रि० २ प्राजापत्या त्रि०, और देवता १ इन्द्र २ ग्रह। मंत्रार्थ-(शूर, इन्द्र, सजोषः, सगणः, वृत्रहा, विद्वान्,

सोमं, पिब, शत्रून्, जहि) हे विक्रान्त इन्द्र तुम हमारे यज्ञको प्रीतिसे सेवन करो वृत्र के मारने वाले सबकुछ जानने वाले मरुद्गणों के परिवारसहित सोमको पानकरो शत्रुओं को मारो (मृधः, अपनुदस्व, अथ, नः, विश्वतः, अभयम्, कृणुहि) संग्रामसे शत्रुओंको निवृत्त करो, शत्रुनाशके अनन्तर हमको सब प्रकार से अभय कीजिये (उपयामगृहीतः, इत्यादि पूर्ववत्) हेग्रह इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् ॥ ३७ ॥

मरुत्वाँ२ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधम्मदाय । आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिन्त्वध्रराजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ निचृदार्षी त्रि०, २ प्राजापत्या त्रि० । देवता १, इन्द्र, २ ग्रह मंत्रार्थ-(इन्द्र, मरुत्वान्, वृषभः, अनुष्वधम्, सोमं, मदाय, रणाय, आपिब, मध्वः, ऊर्मिम्, जठरे, आसिञ्च) हे इन्द्र मरुद्गणों से संयुक्त जलके वर्षानेवाले तुम स्वधापूर्वक पुरोडाश धान्यमन्य दधि पय लक्षणवाले सोमरसको तृप्ति के निमित्त और दैत्योंसे युद्ध के निमित्त पान कीजिये, इस मधुर रसकी कल्लोलको उदर में आसिंचन करो (त्वं, प्रतिपत्सुतानां, राजा असि) तुम प्रतिपद् प्रभृति तिथियोंमें अभिषुत हुए सोमके राजा हो, हे ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः) उपयाम पात्रमें गृहीत इत्यादि पूर्ववत् ३८

महाँ२ इन्द्रो नृवदाचर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । छं० १ भुरिग्गा०, २ साम्नी त्रि० और देवता १ माहेन्द्र २ ग्रह है । मंत्रार्थ-

राजा जिस प्रकार प्रजावर्ग की अभिलाषा पूर्ण करता है, तद्वत् (आचर्षिणाः, द्विवर्हाः, संहोभिः, अमिनः, उत, अस्मद्र्यक्, महान्, इन्द्रः, वीर्याय, वावृधे, उरुः, पृथुः, कर्तृभिः, सुकृतः, अभूत्) मनुष्योंके अभीष्ट पूर्ण करनेवाले, प्रकृति विकृतिरूप सोमयाग के बढ़ानेवाले, बलों करके उपमारहित तथा हमारे प्रति अनुकूल महा प्रभावशाली इन्द्र वीरकर्मके निमित्त वृद्धिको प्राप्त होताहै, तथा यज्ञसे विस्तीर्ण, बलसे विस्तृत इन्द्र यजमानों द्वारा सत्कारित हुआ हमारी बलवीर्य की वृद्धि करे। हे चतुर्थ ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, महेन्द्राय, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, महेन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं, हे माहेन्द्र ग्रह ! (एषः, ते, योनिः, महेन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है महेन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त तुझको इस स्थान में स्थापन करता हूँ ॥ ३९ ॥

महाँ२ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे। उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। वत्सका वत्स ऋ० है। छं० १ आर्षी गा० २ विराडार्षी गा०। देवता १ महेन्द्र २ ग्रह है मंत्रार्थ-(यः महान्, इन्द्रः, ओजसा, वृष्टिमान्, पर्जन्य, इव, वत्सस्य, स्तोमैः, वावृधे) जो महा प्रभावशाली इन्द्र तेजसे महान् वर्षावाले मेघ के समान मनसे कीहुई स्तुतियोंसे वृद्धि को प्राप्त होताहै, हे ग्रह (उपयामगृहीतः) तुम उपयाममें गृहीत हो। पूर्ववत् ॥ ४० ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यं स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसका प्रस्कण्व ऋ०, भुरिगार्षी गा० छं०, सूर्य देवता है ॥ मंत्रार्थ (केतवः, त्यम्, जातवेदसं, देवं, सूर्यम्, विश्वाय, दृशे, उ, उद्वहन्ति, स्वाहा) किरणसमूह, उस प्रसिद्ध, सब पदार्थों को जानने वाले, प्रकाशात्मक, सूर्यदेव को, इस समस्त विश्व के, प्रकाश

करने के निमित्त, वितर्क के साथ, प्रतिनियत ऊर्ध्व वहन करती हैं अर्थात् स्वर्ग में पहुँचाती हैं इन्हीं देव के उद्देश्य से दियाहुआ यह हवि भलीप्रकार गृहीत हो ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्म्मित्रस्य वरुण-
स्याग्नेः आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य्य
आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भुरिगा० त्रि० छं०, सूर्य दे० । मंत्रार्थ—(चित्रं, देवानां, अनीकं, मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः, चक्षुः, जगतः, तस्थुषः आत्मा, सूर्यः, उदगात्, द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षं, आप्राः, स्वाहा) यह कैसा आश्चर्य है कि देवताओं के जीवनाधार ब्रह्मा विष्णु महेश रूपधारक परमेश्वर के नेत्रवत् प्रकाशवान् जंगम और स्थावर जगत्के अन्तर्यामी सूर्य उदय को प्राप्तहुए, भूलोक से द्युलोक पर्यन्त अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूर्ण करता है उन सूर्यदेव के निमित्त दीहुई आहुति भलीप्रकार से स्वीकृत हो॥४२॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस मंत्र की व्याख्या ५ अ० ३६ वें मन्त्र में होगई ॥ ४३ ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु
प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसाताव्यꣳ
शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र की व्याख्या अ० ९ मं० ३७ में होगई ॥ ४४ ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो विश्ववेदा वि-
भजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः
पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० । छं० १ प्र-जाप० ज०, २ याजुष्यनुष्टुप्, ३ दैवी त्रि०, और सबका दक्षिणा देवता है । मन्त्रार्थ-(चन्द्रदक्षिणाः, रूपेण, वः, रूपं, अभ्यगां, विश्ववेदाः, तुथः, विभजतु,) सुवर्ण दक्षिणावाली हे गौओं! मैं,

यजमानकी मूर्त्ति से,तुम्हारे,रूप को,प्राप्तहुआ हूं, सर्वज्ञ,ब्रह्म तुमको यथायोग्य विभाग करके ऋत्विजों के निमित्त प्रदान करैं (ऋतस्य, पथा, मेत) यज्ञ के, मार्ग से, गमन करो। हे दक्षिणारूप संपूर्ण गौओ ! आज हम तुमको प्राप्त करके (स्वः विपश्य, अन्तारिक्षं, वि) स्वग के देवयान मार्गको देखते हैं,अन्तरिक्ष पितृयान मार्ग को देखता हूं। हे ऋत्विगण ! तुम इसप्रकार (यतस्वं, सदस्यैः) यत्न करो कि जिसप्रकार सभासदों को यथाभाग पूर्ण होकर भी कुछ गोदक्षिणा शेष रहजाय।। ४५ ॥

ब्राह्मणमुद्य विदेयम्पितृमन्तम्पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्
सुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छ
प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका आङ्गिरस ऋषि है। छं० १ आर्चीं वृ०, २ आर्चीगा० और देवता १ लिंगोक्ता, २दक्षिणा देव है। मंत्रार्थ—मैं (अद्य, पितृमन्तम्, पैतृमत्यं, ऋषिं, आर्षेयं, सुधातुदक्षिणं, ब्राह्मणं, विदेयम्) आज विख्यात विद्वान् यशस्वी पितावाले, जनमान्य पितामहवाले, मंत्रों की व्याख्या करनेवाले ऋषियों में विख्यात, जिसके निकट सम्पूर्ण सुवर्णदक्षिणा संचय कीजाय ऐसे सर्वकुलगुणसंपन्न ब्राह्मण को मैं प्राप्त करूं। हे सम्पूर्ण दक्षिणा ! तुम (अस्मद्राताः, देवत्रा, गच्छत, दातारं, माविशत,) हमारे द्वारा दीहुई देवताओं से अधिष्ठित ऋत्विगण के समीप यथाभाग उपस्थित होओ और देवताओं को तृप्तकर, इस यज्ञ का फल देने के लिये दाता यजमान में प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे । रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे । बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्र

एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमायत्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमशीय हयो दात्र एधि वयो मह्यंप्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० है । छं० १ आर्ची त्रि० २ भुरिगार्ची त्रि० ३ निचृदार्षी ज०, ४ भुरिगार्षी त्रि० और देवता १ हिरण्य, २ गौ ३ वस्त्र, ४ अश्व है । मंत्रार्थ-हे सुवर्ण ! (वरुणः, अग्नये, मह्यं त्वा, ददातु) वरुण देवता अग्निरूपको प्राप्त हुए मेरे निमित्त तुमको प्रदान करैं, इसप्रकार से ग्रहण कियेहुए सुवर्ण से (सः, अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, आयुः एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मह्यं, मयः) वह मैं आरोग्यता प्राप्त करूं, हे सुवर्ण तुम दाताकी परमायुकी वृद्धि करो, प्रतिग्रह करने वाले मुझको सुखकी प्राप्ति हो हे गौः ! (वरुणः, रुद्राय, मह्यं, त्वा, ददातु सः, अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, प्राणः, एधि मह्यं प्रतिगृहीत्रे वयः) वरुण देवता रुद्ररूप मुझे तुमको प्रदान करता है, वह मैं आरोग्यता को प्राप्त हूं तुम दाता के बल प्राणकी वृद्धि करो मुझ प्रतिगृहीता के अन्नपशुकी वृद्धि करनेवाले हो, हे वस्त्र ! (वरुणः, बृहस्पतये, मह्यं, त्वा, ददातु, सः, अमृतत्वम्, अशीय, दात्रे, त्वक् एधि, प्रतिगृहीत्रे, मयः) वरुण देवता बृहस्पतिरूप मेरे निमित्त तुमको देताहै, वह मैं तुमको प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त करूं, तुम दाता की त्वगिन्द्रियशक्तिकी वृद्धि करो, प्रतिग्रहीता मेरे सुख की वृद्धि करो। हे अश्व ! (वरुणः, यमाय, मह्यं, त्वा, ददातु, सः अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, हयः, एधि, प्रतिगृहीत्रे, मह्यं, वयः) वरुण देवता यमरूप धर्मरूप मेरे निमित्त तुझको देता है वह मैं तुमको प्राप्तकर आरोग्यताको प्राप्त करूं दाता के यहां घोड़ोंकी वृद्धिकरो प्रतिग्रह करनेवाले मेरी पशुसम्पत्ति की वृद्धि करो ॥ ४७ ॥

कोदात्कस्मा अदात्कामोदात्कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

इसका आङ्गिरस ऋषि प्राजापत्या त्रिष्टुप् छं० कामो देवता ।

मन्त्रार्थ (कः, अदात्, कस्मै, अदात्, कामाय, अदात्, कामः, दाता, कामः, प्रतिग्रहीता, काम, एतत्, ते,) कौन महात्मा ने दान किया किसके निमित्त प्रदान किया। यज्ञफल कामना ही के निमित्त दान किया कामना ही देनेवाली है, अभिलाषा ही प्रतिग्रह करनेवाली है, हे अभिलाष अभिलाषा करनेयोग्य यह समस्त वस्तु तुम्हारी ही है ॥ ४८ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सानुवाद सप्तम अध्याय समाप्त.

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

जिसमें उपांशुग्रहआदि प्रधानहैं ऐसे सप्तम अध्याय में दक्षिणादान तक मन्त्र कहे । अब आठवें अध्यायमें तीसरे सवन के आदित्य ग्रह आदि सम्बन्धी मंत्र कहेजायंगे॥

उपयामगृहीतोस्यादित्येभ्यस्त्वा । विष्णऽउरुगायैष ते सोमस्तꣳरक्षस्व मा त्वा दभन् ॥१॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० है । छं० १ याजुष्यनु०, २ दैवीपं० ३ साम्नीत्रि० और देवता १, २, सोम, ३ विष्णु है । मंत्रार्थ–हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, असि) उपयाम पात्र में गृहीत, हो। हे सोम ! (आदित्येभ्यः, त्वा) आदित्यगणों की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ (विष्णो, उरुगाय, एषः, सोम, रक्षस्व, मा, दभन्) हे यज्ञस्वरूप यज्ञपुरुष हे बड़ी स्तुतिको प्राप्त होने वाले यह सोम,तुम्हारे निमित्त अर्पित है उस सोमको रक्षा करो रक्षाकरने में तुमको असुरदल पीडा न, देय ॥ १ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० है । छं० १

दार्षी त्रि०, २ विराड् ब्राह्मयजु० और देवता सबका सविता है। मंत्रार्थ (सवितः, अद्य, अस्मभ्यम्, वामं सावीः श्वः, उ, वामम्, उ,) हे जगत् के उत्पन्न करनेवाले ! आज, हमारे निमित्त, वरणीय यज्ञफल को, प्रेरणा करो, अगले दिन भी, यज्ञफल को दीजिये (दिवे, दिवे, वामम्, वामस्य, भूरे, क्षयस्य, हि, देव, अया, धिया, वामभाजः स्याम) प्रतिदिन यज्ञफल को दीजिये संभजनीय विस्तीर्ण स्वर्गलोकनिवास की, सिद्धि के निमित्त, जिस से, हे देव, हम इस यथायुक्त बुद्धि से यज्ञफल के भोगनेवाले होवें ॥ ६ ॥

उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञञ्जिन्व यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, विराड् ब्राह्मयजुष्छं०, सविता देवता है। मंत्रार्थ–हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, सावित्रः, असि, चनोधाः चनोधाः चनः, मयि धेहि) उपयाम पात्र में गृहीत हो, हे सोमग्रह तुम सवितादेवतासम्बन्धी हो, अन्न के धारण करनेवाले अधिकतर अन्न के धारण करनेवाले हो इस कारण अन्न मुझको दो (यज्ञं, जिन्व, यज्ञपतिं, जिन्व, भगाय, सवित्रे, देवाय, त्वा) यज्ञ को प्रीति करो यजमान को प्रीति करो ऐश्वर्यादि गुणयुक्त, सब के उत्पादक सविता देवता के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका भरद्वाज ऋ० है। छं० १ निचृद् प्राजाप० ज०,२ याजु० ज० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह है। मंत्रार्थ-हे महावैश्वदेव ग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः, नमः असि) उपयामपात्र में गृहीतहो, श्रेष्ठ कल्याण

की खान भलेमकार पात्र में स्थित यह अन्न है (विश्वेभ्यः दे. वेभ्यः त्वा) विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुमको उपयामपात्र में ग्रहण करता हूं । हे महावैश्वदेव ग्रह ! (एषः, ते, योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (विश्वेभ्यः, देवेभ्यः त्वा) विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुम को इस स्थान में स्थापन करता हूं ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ २ ऋध्यासम् । अहम्परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षन्तदु मे पिताभूत् अहꣳसूर्यमुभयतो ददर्शाहन्देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है। छं० १ साम्नी गा० २, ३, आर्च्युष्णिक् और देवता १ सोम २, ३ का प्रजापति रूपात्मा है । मंत्रार्थ-(देवसोम, उपयामगृहीतः, असि, बृहस्पति, सुतस्य, ते, इन्दोः, इन्द्रियावतः, पत्नीवतः, ग्रहान् आऋध्यासम्) हे दीप्यमान देव सोम तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, इसकारण यज्ञकर्मवाले यजमानसे अभिषुत तुम्हारे सम्बन्धी रसयुक्त वीर्यवान्, पत्नीसंयुक्त तुम्हारे अनुग्रहसे, अन्यान्य उपांशु प्रभृति ग्रहों को पूर्ण करता हूं । (अहं, परस्तात्, अहं, अधस्तात्, यत्, अन्तरिक्षं, तत्, उ, मे, पिता, अहं, उभयतः, सूर्यं, ददर्श) मैंही नीचे भूलोकादि में स्थित हूँ, जो मध्यवर्ती लोक हैं वह ही मुझ देह धारी का पितृवत् पालक होताहै, मैं परमरूप हुआ ऊपर नीचे स्थित होकर, सूर्य को देखता हूँ (देवानां, यत्, परमं, गुहा, अहं) देवताओं का जो अत्यन्त गोप्य हृदय है सो मैं हूँ ॥ ९ ॥

अग्ना३ इ पत्नीवत्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमम्पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय १०

इस कं० में २ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ भुरि-

तुम मुझ यजमानमें धन पुष्टिको धारणकरो हम ऋत्विगादिको सुन्दर सामर्थ्य से युक्त ब्रह्मतेज दो । हे प्रथम अतिग्राह्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, वर्चसे, अग्नये, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो कान्तिमद अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं । हे प्रथम अतिग्राह्यग्रह!(एषः ते, योनिः, वर्चस्विने, अग्नये त्वा) यह तुम्हारा स्थानहै तेजःमद अग्निदेवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूं (वर्चस्विन्, अग्ने, त्वं, देवेषु, वर्चस्वान्, असि, अहं, मनुष्येषु, वर्चस्वान्, भूयासम्) हे विशिष्ट तेजोयुक्त अग्निदेव तुम देवताओं में अति दीप्तिमान् हो इस कारण तुम्हारे प्रसादसे मैं मनुष्यों में कान्ति युक्त अतितेजस्वी होजाऊं ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमूसुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वन्देवेष्वस्योजिष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ १९ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । सबका कुरुस्तुति ऋ० । छ० १ आर्षी गा०, १ आसुर्यनुष्टु० ३ याजुषीत्रि० ४ आर्च्युष्णिक् और देवता १ इन्द्र, २, ३ सोम०, ४ इन्द्र है । मंत्रार्थ (इन्द्र, ओजसा, सह, उत्तिष्ठन्, चमूसुतम्, सोमं, पीत्वी, शिप्रे, अवेपयः) हे इन्द्र ! तुम अपने बलके साथ उठते हुए अधिषवण में अभिषुत हुए सोमको पान करकेअपनी ठोढी और नासिकाको कम्पित करो हे द्वितीय अतिग्राह्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, ओजसे, इन्द्राय, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो बलवान् इन्द्र देवकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं—हे द्वितीय अतिग्राह्य ग्रह ! (एषः, ते, योनिः, ओजसे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है बलवान् इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको आसादन करताहूं (ओजिष्ठ, इन्द्र, त्वं, देवेषु ओजिष्ठः, असि,

मनुष्येषु, अहं, ओजिष्ठः, भूयासम्,) हे बलवत्तम। इन्द्र देव ! तुम सब देवताओं में बलवान् हो तुम्हारे प्रसाद से मनुष्यों में मैं अति बलवान् होऊं ॥ ३९ ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ अनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं। सबका प्रस्कण्व ऋ०। छं० १ आर्षी गा०, २ आसुरी गा०, ३ साम्नीगा०, ४ आर्षीगा० और देवता १ सूर्य, २, ३, सोम, ४ ग्रह है (अस्य, केतवः, रश्मयः, जनान्, अनु, वि, अदृश्रम्, यथा, भ्राजन्तः अग्नयः) इस सूर्य की, प्रज्ञाके हेतु सम्पूर्णपदार्थका ज्ञान करानेवाली संपूर्ण किरणें प्राणियों के अनुगत विशेष कर दीखती हैं जिसप्रकार प्रज्वलित अग्नि सर्वत्र भासती है। हे तृतीय अतिग्राह्यग्रह। (उपयाम गृहीतः, असि, भ्राजाय, सूर्याय, त्वा) उपयामपात्र में गृहीतहो दीप्तिमान् सूर्य की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं। हे तृतीय अतिग्राह्यग्रह (एषः, ते, योनिः, भ्राजाय, सूर्याय, त्वा) यह तुम्हारा स्थानहै दीप्तिमान् सूर्यदेवकी तुष्टिके निमित्त तुमको इस स्थानमें आसादन करताहूं (भ्राजिष्ठ, सूर्य, त्वं, देवेषु, भ्राजिष्ठः, असि, मनुष्येषु, अहम्, भ्राजिष्ठः, भूयासम्) हे प्रदीप्त सूर्य तुम सब देवताओंमें अतिदीप्तिमान् हो तुम्हारे प्रसाद से मनुष्यों में मैं अतिशय दीप्तिमान् होऊं ॥ ४० ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्। उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका प्रस्कण्व ऋ०। छं० १ निचृदार्षी गा०, २ आसुरी गा०, ३ साम्नी गा० और देवता

१सूर्य, २,३सोम हैं । मंत्रार्थ-(केतवः, त्यं, जातवेदसं, यं, देवं सूर्यम् विश्वाय, दृशा, उद्वहन्ति) महाकी हेतु किरणें, उस, सबके देखनेवाले, जिस देव, सूर्यको समस्तजगतकी दृष्टिदेने के निमित्त उद्वहन करतीहैं (उपयामगृहीतः) पूर्ववत् व्याख्या जाननी ॥४१॥

आजिघ्र कलशम्मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ ४२ ॥

इसका कुसुरुविन्दु ऋ० है । स्वराड् माह्युष्णिक् छ० । गौ देवता है । मंत्रार्थ (महि, कलशं, आजिघ्र, इन्दवः, त्वा, आविशन्तु, सा, ऊर्जा, पुनः, निवर्त्तस्व, नः, सहस्रं, धुक्ष्व) हे पूजनीय गौ ! तुम इस द्रोण कलश को सूंघो, यह सोम के सार तुम्हारी नासारन्ध्र में प्रवेश करैं, वह तुम श्रेष्ठरस दुग्ध के साथ फिर हमारे प्रति निवृत्त हो, इसप्रकार से स्तुति को प्राप्त हुई तुम, हम को सहस्र संख्या के धन से पूर्ण करो,(उरुधारा, पयस्वती, रयिः, पुनः, मा, आविशतात्) बहुत दूध की धारावाली दुधारी गायें तथा धन सम्पत्ति, फिर हमारे घरको, प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम्ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

इसका कुरुविन्दु ऋ० । आर्षी पं० छं० और गौ देवता है । मंत्रार्थ (इडे, रन्ते, हव्ये,काम्ये, चन्द्रे, ज्योते, अदिते, सरस्वति, महि, विश्रुति, अघ्न्ये, ते, एता, नामानि, देवेभ्यः, सुकृतम्, मा, ब्रूतात्) हे सबसे स्तुति को पानेवाली, सबकी दृष्टि में रमणीय, यज्ञ में सब मनुष्य जिसका आह्वान करते हैं, देव मनुष्य जिसकी कामना करते हैं, जिसको देख आल्हाद होता है, प्रकाशमान पूर्ण अवयववाली अदीन दुग्धवती महामान्य अनेक प्रकार की स्तुतिवाली अवध्य मारने के अयोग्य हे धेनु तुम्हारे यह अतिशय गुणयुक्त नाम हैं इन नामों से आह्वान कीहुई तुम

देवताओं के निमित्त इस हमारे सुन्दर कर्म को और इस कर्म करनेवाले मुझको देवताओं से कथन करो देवता हमारे इस कार्य को जानें ॥ ४३ ॥

यि नं इन्द्र मृधों जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
यो अस्माँ२॥ अभिदासत्यधरङ्गमया तमः। उपया-
मगृहीतोसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते योनि-
रिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका भरद्वाजशास ऋ०। छं० १ भुरिगनु०, २ आसुर्युष्णिक्, ३ याजुषीज० और देवता १ इन्द्र, २ ३ ग्रह है। मंत्रार्थ-(इन्द्र, नः, मृधः, विजहि, पृतन्यतः, नीचा, यच्छ, यः, अभिदासति, अधरं, तमः, आगमय) हे इन्द्र! हमारे संग्राम में शत्रुओं को विशेषकर जीतो, संग्राम की इच्छा कर सेना संग्रह करनेवाले शत्रुओंको नीचोंकी समान निग्रह करो, जो हमको क्लेश देताहै उसको निकृष्ट अन्धकाररूप नरक को प्राप्त करो। हे महाव्रतीय इन्द्र ग्रह! तुम (उपयामगृहीतः, असि, विमृधे इन्द्राय त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवता की सन्तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं हे महाव्रतीय इन्द्र ग्रह! (एषः, ते, योनिः, विमृधे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको आसादन करताहूं ॥ ४४ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे
अद्याहुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोष-
द्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा। उपयामगृहीतो-
सीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय
त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४५ ॥

इस कण्डि० में ३ मंत्र हैं। सबका शासऋ०। छ०१का भुरि० त्रि०, २ का सा० उ०, ३ का सा० गा० देवता १ का इन्द्र, २ का ग्रह ३ का लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ—(अद्य, वाजे, वाचस्प-

शिप्, मनोजुवं, विश्वकर्माणं, ऊतये, हुवेम, सः, विश्वशम्भूः, साधुकर्मा नः, विश्वानि, हवनानि, अवसे, जोषत्) आज हम महासमीय अन्न के विषयमें वाणियोंके पालक मनकी समान वेग वाले सृष्टिकर्त्ता को रक्षाके निमित्त पुकारते हैं,वह संसारका कल्याणकर्त्ता, सुन्दर कर्म करने वाला हमारे सकल हवनों को रक्षा के निमित्त सेवन करे (उपयामगृहीतः, असि, विश्वकर्मणे, इन्द्राय, त्वा) हे इन्द्रग्रह तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, विश्वकर्मा इन्द्र की तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूं (एषः, ते, योनिः, विश्वकर्मणे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, विश्वकर्मा इन्द्रके निमित्त तुमको आसादन करताहूं ॥ ४५ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका शास ऋ० । छं० १ भुरिगा० त्रि०, २ साम्न्युष्णिक् ३ साम्नी गा० और देवता १ इन्द्र, २ ३ ग्रहहै । मंत्रार्थ (विश्वकर्मन्, वर्धनेन, हविषा, इन्द्रम्, त्रातारं, अवध्यम्, अकृणोः, तस्मै, पूर्वीः, विशः, समनमन्त, यथा, अयं उग्रः, विहव्यः, असत्) हे विश्वकर्मन् परमात्मन् । वर्धमान हविप्रदान द्वारा वर्द्धन के वाक्यों से प्रीति करने वाले तुमने इन्द्र को जगत् का रक्षक, जिसको कोई न मारसके ऐसा किया, इस प्रकार इन्द्रके निमित्त पूर्वकाल की प्रजा महर्षि आदि प्रणाम करते हुए, जिस प्रकारसे यह इन्द्र वज्र उठाये अनेक कार्योंमें आव्हान योग्य हुआहै इस कारण सब प्रणाम करतेहैं हे परमात्मन् आपके हविसामर्थ्य से इन्द्रका यह प्रभाव है (उपयामगृहीतः,) हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसंगृह्णा-

मीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसंगृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा
देवेभ्यो जगच्छन्दसंगृह्णाम्यनुष्टुप् तेभिगरः ॥४७॥

इस कं०में४मं० हैंसबका देवा ऋ० । छं० १ स्वराडार्षी गा०, २सा० गा०३ आ०गा०, ४दैवी जग०और सबका अदाभ्य देवता है । मंत्रार्थ–हे प्रथम अदाभ्यग्रह सोम ! (उपयामगृहीतः, असि, गायत्रच्छन्दसं, त्वा, अग्नये, गृह्णामि) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत, हो गायत्री छन्दके वरणीय तुमको अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त ग्रहण करताहूं (त्रिष्टुप्छन्दसं, त्वा, इन्द्राय गृह्णामि) उपयाम पात्रमें गृहीत त्रिष्टुप्छन्द से वरणीय तुमको इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त ग्रहण करताहूं, हे तृतीय अदाभ्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो (जगच्छन्दसं, त्वा,, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, गृह्णामि) जगतीछन्दसे वरणीय तुमको सम्पूर्ण विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त ग्रहण करताहूं । हे अदाभ्य नाम से गृहीत सोम ! (अनुष्टुप्, ते, अभिगरः,) अनुष्टुप्छन्द तुम्हारी स्तुतिके निमित्त है ॥ ४७ ॥

प्रेषीनान्त्वा परमन्नाधूनोमि कुकूननानान्त्वा
परमन्नाधूनोमि भन्दनानान्त्वा परमन्नाधूनोमि
मदिन्तमानान्त्वा परमन्नाधूनोमि मधुन्तमा-
नान्त्वा परमन्नाधूनोमि शुक्रन्त्वा शुक्र आधू-
नोम्यन्हो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका देवा ऋ० । छं० १ याजुषीपं०, २ याजुषीज०, ३ याजु० त्रि०, ४, ५, याजु०ज०, ६ भुरिक्साम्नी त्रि० है । मंत्रार्थ–हे सोम (प्रेषीनां, परमन, त्वा, आधूनोमि, कुकूननानाम्, परमन, त्वा, आधूनोमि, भन्दनानां, परमन्, त्वा, आधूनोमि) इधर उधर धावमान मेघों के उदर में वर्त्तमान जो जल के समूह हैं उन सबके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ—हे सोम ! शब्द करतेहुए जगत् के कल्याणकारी मेघों के उदर में जो जल है उसके वर्षण के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ, हे सोम ! हमको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाले जो

मेघों के उदर में जल हैं उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूं, हे सोम! (मदिन्तमानां, पत्मन्, त्वा, धूनोमि) अत्यन्त तृप्तिकारी जो मेघों के उदर में जल हैं उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूं (मधुन्तमानां, पत्मन्, त्वा, आधूनोमि) अमृतस्वरूप जो मेघोदक हैं तिनके भूमिपर वर्षण के निमित्त तुझको कम्पित करता हूं—हे सोम (शुक्रं, त्वा, शुक्रे, आधूनोमि, अन्हः, रूपे, सूर्यस्य, रश्मिषु) अक्लिष्टकर्मा शुद्ध तुझको शुद्ध अक्लिष्ट कर्मवाले निराभ्य लक्षणवाले जल में कम्पित करता हूं दिन के रूप सूर्य की किरणों से कम्पित करता हूं ॥ ४८ ॥

ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः। यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं। सबका देवा ऋ०। छ० १ निचृदार्षी ज०, २ याजुषी पं० है और देवता सबका सोम है ॥ मन्त्रार्थ—हे सोम! (वृषभस्य, ककुभं, रूपं, रोचते, बृहत् शुक्रः, शुक्रस्य, पुरोगाः, सोमः, सोमस्य, पुरोगाः) श्रेष्ठ वर्षणकारी तुम्हारा, ककुद् महत् आदित्य लक्षण, रूप प्रदीप्त होता है, महान्, शुद्ध आदित्य, शुद्ध सोमका पुरोगामी है, सोमही सोम का पुरोगामी है (ते, अदाभ्यं, जागृवि, यत्, नाम, तस्मै, त्वा, गृह्णामि) तुम्हारा अनुपहिंसित जागरणशील जो नाम है उस तुमको ग्रहण करता हूं (सोम, तस्मै, ते, सोमाय, स्वाहा) हे सोम! उस आप सोमरूप के निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ४९ ॥

उशिक्त्वन्देव सोमाग्नेः प्रियम्पाथोपीहि वशी त्वन्देव सोमेन्द्रस्य प्रियम्पाथोपीह्यस्मत्सखा त्वन्देव सोम विश्वेषान्देवानाम्प्रियम्पाथोपीहि ॥ ५० ॥

इस कं०में ३ हैं। सबका देवा ऋषि है। छं० १ आसुर्युष्णिक्,

२ आसुरी गा०, ३ आर्च्युष्णिक् और देवता सबका सोम है। मंत्रार्थ-(देव, सोम, उशिक्, त्वं, अग्नेः, प्रियम्, पाथः, अपीहि) हे सोम देवता! तुमको पानेकी सब कामना करते हैं इस कारण तुम अग्निके प्रियखाद्य भावको प्राप्त होओ (देव, सोम, वशी, त्वं, इन्द्रस्य, प्रियं, पाथः, अपीहि) देदीप्यमान सोम! कान्तिमान् तुम इन्द्रके प्रिय अन्नको प्राप्तहोओ (देव, सोम, अस्मत्, सखा, त्वं, विश्वेषां, देवानां, प्रियं, पाथः, अपीहि) हे देवसोम हमारेबन्धु तुम सम्पूर्ण विश्वे देवाओंके प्रिय अन्नको प्राप्तहोओ ५०

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरन्धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत्स्वाहा ॥ ५१ ॥

इस कं० में २ मंत्रहैं। सबका देवाश्रपि है। छं० १ प्राजापत्या बृ०, २ भुरिगार्च्युष्णिक् और देवता १ पशु, २ अग्नि है। मंत्रार्थ—हे गोविन्द तुम्हारी (रतिः, इह, रमध्वम्, इह, धृतिः, स्वधृतिः, स्वाहा,) रति इस यजमानमें हो, इस यजमानमें तुम रमण करो इस यजमानमें तुम्हारा संतोषहो इसी के स्थान में स्वकीयों का संतोष हो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो (धरुणः, मात्रे, धरुणम्, उपसृजन्, मातरं, धयन्, अस्मासु रायः, पोषं, दीधरत्, स्वाहा) धारण करनेवाला अग्नि पृथ्वीके धारण करनेवाले अग्निको समीपमें प्राप्त करताहुआ पृथ्वीको पीता हुआ हमको धन पशु पुत्र सुवर्णादि की पुष्टि प्रदान करे यह आहुति भलीप्रकार स्वीकृत हो ॥ ५१ ॥

सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्मज्योतिरमृता अभूम।
दिवं पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः॥

इसका देवा ऋषि, भुरिगार्षी उ० छं० सोम देवता है। मंत्रार्थ उत्तर हविर्द्धान! तुम (सत्रस्य, ऋद्धिः, असि, ज्योतिः, अगन्म, अमृता, अभूम, पृथिव्याः दिवम्, अध्यारुहाम, देवान, अविदाम, ज्योतिः, स्वः) यज्ञ की समृद्धिरूप हो तुम्हारे प्रसादसे ही हम

यजमान आदित्य लक्षणवाली ज्योति को प्राप्त होकर मरणधर्म से रहित होने की आशा करते हैं, पृथ्वी से द्युलोक को आरूढ हुए देवगण इन्द्रादि जानें, ज्योतिरूप स्वर्ग के देखने जानने की आशा करते हैं ॥ ५२ ॥

युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्या-
दपतन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे च-
त्ताय च्छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् अस्माकᳬ शत्रून्प-
रि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः
स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः
सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका परमेष्ठी ऋ० । छं० १ आर्च्यनु०, २ विराडार्षी बृ०, ३ विरा० गा० पं० और देवता १ इन्द्र पर्वत, २ इन्द्र, ३ विराड् पु० । मन्त्रार्थ–(पुरोयुधा, इन्द्रापर्वता, युवं, तं, तं, तम्, इत्, अपहतं, वज्रेण, ततम्, इत्, हतं, यः, नः, पृतन्यात्, शूर, यत्, गहनं, दूरे, चत्ताय, छन्त्सत्, इनक्षत्) आगे युद्ध करने वाले, शत्रुओं के सन्मुख युद्ध करनेवाले इन्द्र और पर्वत, तुम दोनों, उस उस शत्रुको और विशेषकर ही उस शत्रुका विनाश करो, वज्र नामक अपने तीक्ष्ण आयुध से, उसी शत्रुका विशेष करके, विनाश करो, जो शत्रु, हमसे, सेना द्वारा युद्ध करे, हे शूर हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, जब अत्यन्त गम्भीर वन में, दूर वर्तमान दूरगये शत्रुके निमित्त, कामना करे जब उस दूर गए हुएको प्राप्त करले (दर्मा, अस्माकं, विश्वतः, शत्रून्, परिदर्षीष्ट) विदारण करने वाला वज्र, हमारे, सब ओर स्थित, सम्पूर्ण शत्रुओं को, सब ओर से विदीर्ण करो (भूर्भुवः, स्वः प्रजाभिः, सुप्रजा, वीरैः, सुवीरा, पोषैः, सुपोषाः, स्याम) हे अग्नि वायु सूर्यादि आपके प्रसाद से हम, प्रजाओं द्वारा अच्छी प्रजावाले वीर पुत्रोंसे, सुपुत्रवान, उत्कृष्टसम्पत्ति लाभ करके तुम्हारे प्रसाद से सुसम्पत्तिवान, विख्यातहों ॥ ५३ ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायाम्-
न्धो अच्छेतः सविता सन्यां विश्वकर्मा दी-
क्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ ५४ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं। सबका वशिष्ठ ऋ० है। छं० १,५,६, दैवी जगती २ याजुषी पं०, ३, ४ दैवीपं० है। देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ–जिससमय यजमान सोमयाग करने को प्रवृत्त हो मन मनमें (अभिधीतः, परमेष्ठी, वाचि, व्याहृतायां, प्रजापतिः, अच्छः, इतः, अन्धः) सोम चिन्ता कियाहुआ, परमेष्ठी होता है, वाणी के, उच्चारण करने में, सोम प्रजापति नामक होता है। जिस काल में यजमान के अभिमुख, प्राप्तहुआ तब, अन्ध नाम वाला होता है। सोम के (सन्यां, सविता, दीक्षायां, विश्वकर्मा, सोमक्रयण्याम, पूषा) यथाभाग रक्षित होनेपर सविता नाम होता है, दीक्षा में, सोम का, विश्वकर्मा नाम होता है, सोमक्रयणी गौ को लाने में सोम, पूषा नामवाला होता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितो सुरः पण्य-
मानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऊरावा-
सन्नो विष्णुर्नरन्धिषः प्रोह्यमाणः ॥ ५५ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं। सबका वशिष्ठ ऋ० है। छं० १ आर्च्युष्णि०, २ दैवीज०, ३ दैवी बृ०, ४ याजुषी त्रिष्टुप्, ५ याजुषी पं० है और सबका देवता लिंगोक्त है। मन्त्रार्थ(क्रयाय, उपोत्थितः, इन्द्रः, च, मरुतः च) सोम के क्रयार्थ उपस्थित होने में सोम इन्द्र, और, मरुत नामवाला भी होता है (पण्यमानः, असुरः, क्रीतः, मित्रः, उरौ, आसन्नः, शिपिविष्टः, विष्णुः, प्रोह्यमाणः, नरन्धिषः, विष्णुः) क्रय करने के समय सोम, असुर संज्ञक है, मोल लियाहुआ सोम, मित्र संज्ञक होता है, यजमान की गोदी में स्थित सोम, प्राणियों में प्रविष्ट विष्णु नामवाला होता है, शकट में वहन करतेसमय सोम, जगत्संहर्त्ता वा जगत्पालक, विष्णु नामवाला होता है ॥ ५५ ॥

विष्णुवरुणा, अगन्)जिन विष्णु और वरुणके, प्रभावसे, लोकठहरे हैं, जो विष्णुवरुण, अपने बलोंसे, अत्यन्तवीर, अत्यन्त बलवान् हैं जो अपने बलोंसे अप्रतिम हैं, लोकत्रयका आधिपत्य करते हैं, उन यज्ञमें प्रथमही आव्हान किए, विष्णु और वरुणके प्रति, यह सोम गया ॥ ५९ ॥

दे॒वान्दिव॑मगन्य॒ज्ञस्ततो॑ मा॒ द्रवि॑णमष्टु मनु॒ष्या॒
न्न्तरि॑क्षमगन्य॒ज्ञस्ततो॑ मा॒ द्रवि॑णमष्टु पि॒तॄन्
पृ॑थि॒वीम॑गन् य॒ज्ञस्ततो॑ मा॒ द्रवि॑णमष्टु यङ्कञ्च
लो॒कमग॑न्य॒ज्ञस्ततो॑ मे भ॒द्रम॑भूत् ॥ ६० ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि अत्यष्टि छ० और यज्ञदेवताहै । मंत्रार्थ (यज्ञः, दिवम्, देवान्, अगन्, ततः, द्रविणं, मा, अष्टु) यह, यज्ञ, द्युलोक में, देवताओंको पहुंचा उस स्वर्ग में स्थित यज्ञ से विशिष्ट भोगका साधन धनरूप यज्ञका फल मुझको प्राप्तहो (यज्ञः, मनुष्यान्, अन्तरिक्षं, अगन् ततः द्रविणं, मा, अष्टु) स्वर्गसे उतरते समय यह यज्ञ मनुष्यलोक में आता हुआ वृष्टिरूपसे अन्तरिक्ष लोकमें प्राप्तहुआ, वहां स्थित यज्ञके फल से अनेक प्रकार के धनकी प्राप्ति मुझको हो, (यज्ञः, पितॄन्, पृथ्वीं, अगन्, ततः, द्रविणं, मा अष्टु,) यह यज्ञ धूमादि मार्गसे पितरों के प्राप्तहो कर, भूलोकको, आया उसस्थानमें स्थित यज्ञके फलसे, धनादि मुझको प्राप्तहो (यज्ञः, यं, कंच, लोकं, अगन्, ततः, मे भद्रं अभूत) यह यज्ञ, जिस, किसी भी, लोकको, गया हो, इसके फलसे, मेरा, कल्याण हो ॥ ६० ॥

चतु॑स्त्रिꣳशत्तन्त॑वो ये वि॑तत्नि॒रे य इ॒मं य॒ज्ञꣳ
स्व॒धया॒ दद॑न्ते । तेषा॑ञ्छि॒न्नꣳ सम्वे॒तद्द॑धामि
स्वाहा॒ घ॒र्म्मो अप्ये॑तु दे॒वान् ॥ ६१ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि याजुषपिणक् छ० और घर्म देवताहै । मंत्रार्थ (ये, चतुस्त्रिंशत्, तन्तवः, इमं, यज्ञं, वितत्निरे, ये, स्वधया,

ददन्ते,तेषां, छिन्नं, उ एतत्, सन्दधामि,स्वाहा) जो, चौंतिस यज्ञ का विस्तार करनेवाले प्रजापति आदि देवता, इस यज्ञको विस्तार देतेहैं जो, अन्नादि द्वारा पुष्ट करते हैं उन यज्ञके विस्तार करने वाले देवताओंका जो, अंश छिन्न हुआ है, उसको इस धर्मपात्र में संग्रह करताहूं यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो, इस घृतसे महावीर संहितहो (घर्मः, देवान, अप्येतु) महावीर देवताओं को प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

यज्ञस्य दोहो वितंतः पुरुत्रासो अष्टधा दिवं-मन्वाततान। स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाᳪ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि स्वराडार्षी त्रि० छ० और यज्ञ देवताहै मंत्रार्थ-(यज्ञस्य,दोहः, सः पुरुत्रा, विततः, अष्टधा, दिवं, अन्वाततान) यज्ञका जो, आहुतिपरिणाम हुआ, वह बहुत प्रकार से विस्तारको प्राप्त होताहुआ आठों दिशाओंमें फैलताहुआ द्युलोक में व्याप्तहुआ है (सः, यज्ञः,मे,प्रजायां, महि,धुक्ष्व, रायः, पोषं, विश्वं, आयुः, अशीय, स्वाहा) वह यज्ञ, मुझको सन्तातिमें, महिमाको प्रदानकरे, धनकी पुष्टि, सम्पूर्ण अवस्थारूप आयु को पाऊं यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६२ ॥

आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् वाजं-गोमन्तमाभर स्वाहा ॥ ६३ ॥

इसका कश्यप ऋषि, स्वराडार्षी गा०छ० और सोम देवताहै। मंत्रार्थ (सोम, आपवस्व, हिरण्यवत्, अश्ववत्, वीरवत्,गोमन्तम्, वाजं, आभर, स्वाहा) हे सोम ! तुम, आकर इस यूपस्तम्भको पवित्र करो, सुवर्णयुक्त, अश्वयुक्त, वीरयुक्त, होकर, धेनुयुक्त अन्न, हमको सब प्रकार से प्रदान करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६३ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिता का सानुवाद

अष्टम अध्याय समाप्त

अथ नवमोऽध्यायः ।

जिसमें अग्निष्टोम और प्रासंगिक मंत्र हैं ऐसे अष्टम अध्याय में आदित्य ग्रहादि सम्बन्धी मंत्र कहे । अब नवम अध्याय में चौंतीसवीं कण्डिकातक वाजपेय यज्ञ के मंत्र कहते हैं ॥

॥ हरिः ॐ ॥ देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञम्प्रसु॑व य॒ज्ञप॑ति॒म्भगा॑य । दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑न्नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाज॑न्नः स्वदतु॒ स्वाहा॑ ॥१॥

इसका बृहस्पति ऋ०, स्वराडार्षी त्रि० छ० और सविता देवता है । मंत्रार्थ-(देव, सवितः, यज्ञं, प्रसुव, यज्ञपतिं, भगाय, प्रसुव) हे दीप्यमान सब के प्रेरक परमात्मन् ! वाजपेय यज्ञ को, प्रवृत्त करो, यजमान को, अनुष्ठानरूप ऐश्वर्य के निमित्त, प्रेरणा करो, (दिव्यः, केतपूः, गन्धर्वः, नः, केतं, पुनातु) दीप्यमान, अन्न के पवित्र करनेवाले, रश्मियों के धारण करनेवाले सूर्यमण्डल में वर्त्तमान नारायण, हमारे, अन्न को, पवित्र करें (वाचस्पतिः, नः, वाजं, स्वदतु, स्वाहा) वाक्यके अधिपति प्रजापति, हमारे, हवि रूप अन्नको, आस्वादन करें, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो॥१॥

ध्रु॒व॒सद॑न्त्वा नृ॒षद॑म्मनः॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा जु॒ष्टं॑ङ्गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा जु॒ष्टत॑मम् । अ॒प्सु॒षद॑न्त्वा घृत॒सदं॑ व्योम॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा जु॒ष्टं॑ङ्गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा जु॒ष्टत॑मम् । पृ॒थि॒वी॒सद॑न्त्वान्तरिक्ष॒सद॑न्दिवि॒सद॑न्देव॒सद॑न्नाक॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा जु॒ष्टं॑ङ्गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा जु॒ष्टत॑मम् ॥ २ ॥

इस कं० में ९ मंत्र हैं । सबका बृहस्पति ऋ० । छ० १ याजुषी, २, ५, ८, साम्न्यनु० ३, ४, ६, ९, आसुर्यनु० ७ निचृ० गा० और देवता सबका इन्द्र है । मंत्रार्थ हे प्रथम ग्रह ! तुम इन्द्र देवताकी

प्रीतिके निमित्त (उपयामगृहीतः, असि, ध्रुवसदं, नृषदं, मनः, सदं, त्वा, इन्द्राय, जुष्टं त्वा गृह्णामि, एषः ते, योनिः, इन्द्राय जुष्टतमम्, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, स्थिर इस लोकमें स्थित मनुष्यों में स्थित मनमें स्थित, तुमको, इन्द्र देवताके, प्रिय तुमको, ग्रहण करताहूं, यह तुम्हारा, स्थानहै, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूं। हे द्वितीयग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, अप्सुषदम्, घृतसदम्, व्योमसदम्, त्वा इन्द्राय, जुष्टं, त्वा, गृह्णामि, एषः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमम्, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो जलमें स्थित, घृतमें स्थित, आकाशमें स्थित तुमको, इन्द्र देवताके, प्रिय, तुमको, ग्रहण करताहूं, यह तुम्हारा, स्थान है, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय, तुमको, इस स्थानमें स्थापन करताहूं। हे तृतीय ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, पृथिवीसदम्, अन्तरिक्षसदं, दिविसदं, देवसदम्,नाकसदं,इन्द्राय, जुष्टं, त्वा, गृह्णामि,एषः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमं,त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, पृथिवीमें स्थित अन्तरिक्षमें स्थित, द्युलोक में स्थित देवताओंमें स्थित दुःख रहित देवस्थानमें स्थित तुमको इन्द्रके प्रिय तुमको ग्रहण करताहूं यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्रके,अत्यन्त प्रिय, तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूं। २॥

अपाᳬ रसमुद्वयसᳬ सूर्य्येसन्तᳬ समाहितम्। अपाᳬ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तम-मुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥ ३॥

इसका बृहस्पति ऋ०, निचृदा० अ० छं० और रस देवता है। हे चतुर्थ ग्रह! (सूर्ये, समाहितं,सन्तं, उद्वयसं, रसं, अपां, रसस्य, यः,रसः, तं, उत्तमं, वः, गृह्णामि) सूर्य में, स्थापित, विद्यमान, समस्त अन्न के उत्पादक, जलों के, सार का, जो, सार है, हे देवताओं, उस, श्रेष्ठ उत्कृष्ट प्रजापति को, ग्रहण। करता हूँ शेष

पूर्व मन्त्र के समान है ॥ ३ ॥

ग्रहा ऊर्ज्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोहमिषमूर्ज्जंᳫं समग्रभ- मुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् सम्पृचौ स्थः सम्मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥४॥

इस कं० में ५ मं० हैं। सबका बृहस्पति ऋ० है। छं० १ निचृद्दार्ष्यनु०, २, ३, आसु० अनु० ४, ५, विराडासुर्यनु० और देवता १,२,४,५, का ग्रह ३ इन्द्र है। मंत्रार्थ-(ग्रहाः, ऊर्ज्जाहुतयः, विप्राय, मतिं, व्यन्तः, तेषां, विशिप्रियाणां, वः इषम्, ऊर्ज्जं, अहं, समग्रभम् गृह्णामि) हे सम्पूर्णग्रहो ! अन्नरसका आव्हान करनेवाले तुम, बुद्धिमान् यजमान के निमित्त, विशिष्ट बुद्धि को प्राप्त करानेवाले हो, उन, यजमानों के प्रिय, तुम्हारे, सम्बन्धी अन्न, रस को, मैं सम्यक् प्रकार से ग्रहण करता हूं। हे पञ्चम ग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, इन्द्राय, जुष्टं त्वा, एषः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमं, त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत, हो इन्द्र देवताके, प्रिय, तुमको ग्रहण करताहूं—हे पञ्चम ग्रह यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्र देवताके, अतिप्रिय जानकर तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूं। हे सोम सुराग्रह जो कि तुम दोनों (सम्पृचौ, स्थः मा, भद्रेण, सम्पृङ्क्तम्) मिले हुए हो, सो तुम दोनो, मुझको, कल्याण से, संयुक्त, करो, हे सोम सुराग्रह तुम दोनों (विपृचौ स्थः,) वियुक्त,हो, (मा पाप्मा विपृङ्क्तम्) मुझको पापाचरणसे पृथक् करो ॥ ४ ॥

इन्द्रस्य वज्रोसि वाजसास्त्वयायं वाजᳫं सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वम्भुवनमाविवेश तस्यान्नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका बृहस्पति ऋ०। छं० १ आस०

गां० २ विराडति ऋ० और देवता १का रथ २ पृथिवी सविता हैं मंत्रार्थ–हे रथ ! तुम (वाजसाः, इन्द्रस्य, वज्रः, असि, अयं, त्वया, वाजं, सेत्) अन्न देनेवाले हो, इन्द्रके वज्रहो यह यजमान तुम्हारी वज्रतुल्य सहायता से अन्नको प्राप्त हो। (वाजस्य, प्रसवे, नु, मातरं, अदितिं, महीं, नाम, वचसा, करामहे) अन्न के अनुग्रह में वर्तमान हम जिस माता, जगत् की निर्माण करनेवाली अदीन पूजनीय प्रसिद्ध भूमिको वेदवाक्यों द्वारा अनुकूल करते हैं (यस्यां इदं, विश्वं, भुवनं, आविवेश, देवः, सविता, तस्यां, न, धर्मं, साविषत्) जिसमें यह सम्पूर्ण संसार प्रविष्ट है, प्रकाशात्मक सब के प्रेरक परमात्मा तिस भूमिमें हमारी दृढ़ धारणाकी प्रेरणा करें ५

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्व-
श्वा भवत वाजिनः। देवीरापो यो वऽऊर्मिः
प्रतूर्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजꣳसेत्॥६॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका बृहस्पति ऋ०, छं० १ विराडार्ष्यु० २ निचृ० गा०पं० है और देवता १ अश्व, २ आप हैं। मंत्रार्थ–(अप्सु, अन्तः, अमृतं, उत, अप्सु, भेषजं, अश्वाः, वाजिनः, भवत, अपां, प्रशस्तिषु) जलोंके मध्यमें अमृत स्थितहै और जलों के मध्यमें आरोग्य और पुष्टिकारक औषधि स्थित है, हे अश्वो इस प्रकार से अमृत भेषज युक्त जलोंमें वेगवान् होओ, तथा जलोंके प्रशस्त भागोंमें स्नानके निमित्त प्रवेश करो। (देवीः, आपः, वः, यः, प्रतूर्तिः, ककुन्मान्, वाजसाः, ऊर्मिः, तेन, अयम्, वाजम्, सेत्) हे दीप्यमान जलो! तुम्हारी जो शीघ्र चलने वाली ककुद्के समान ऊंची अन्नकी देनेवाली, तरंग हैं उनसे सिक्तहुआ यह अश्व, यजमानके इच्छितानुरूप अन्नको देने में समर्थ हो॥६॥

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः। ते
अग्रे ऽश्वमयुञ्जꣳस्ते ऽअस्मिञ्जवमादधुः॥७॥

इसका बृहस्पति ऋ०, भुरिगार्ष्यु० छं० अश्व देवताहै। मंत्रार्थ (वातः, वा, मनः, वा, सप्तविंशतिः, गन्धर्वाः, ते, अग्ने, अश्व,

अयुञ्जन्, ते, अस्मिन्, जवं, आदधुः) वायु या मन या सत्ताईस गंधर्व भूमिके धारण करनेवाले नक्षत्र ने सब वातादि के प्रथम अश्वको रथमें युक्त करते हुए वेही इस अश्वमें अपने २ वेगके अंशको धारण करते हुए ॥ ७ ॥

वातरंꣳहा भव वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवन्दधातु ॥ ८ ॥

इसका बृहस्पति ऋ०, पुरिगार्षी त्रि० छं०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ–(वाजिन्, युज्यमानः, वातरंहाः, भव, दक्षिणः, इन्द्रस्य, इव, श्रिया, एधि, विश्ववेदसः, मरुतः, त्वा, युञ्जन्तु, त्वष्टा, ते, पत्सु, जवं, आदधातु) हे वेगवान् अश्व ! जुतेहुए तुम वायुके समान वेगवान् हूजिये, दक्षिण भागमें स्थित हुए इन्द्रके अश्वकी समान शोभासे युक्त होओ, सर्वज्ञ मरुत देवता, तुमको रथ में नियुक्त करें त्वष्टा देवता तुम्हारे चरणों में वेगको स्थापनकरें ८

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते। तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः। वाजिनो वाजजितो वाजꣳसरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका बृ० ऋ० है। छं १ आ०ज०, २ आर्षी गायत्री और सबका देवता अश्व है मंत्रार्थ–(वाजिन्, यः, ते, जवः, गुहानिहितः, यः, श्येने, परीतः, च, वाते अचरत्, वाजिन्,तेन,बलेन, बलवान, नः,वाजजित, च,समने, पारयिष्णुः) हे अश्व ! जो तेरा वेग हृदयमें स्थापित है, जो श्येन पक्षीमें तुम्हारा दिया वेग है, और वातमें जो वेग स्थित है। हे अश्व उस बल करके बलवान् होतेहुए हमारे निमित्त अन्नके जीतनेवाले होओ और संग्राम में शत्रुके सेनानिवेश का पराभव करके हमारे निमित्त प्रचुर अन्न जीतो (वाजजित, वाजं, सरिष्यन्तः, वाजिनः, बृह-

स्पतेः, भांग, अवजिघ्रत) अन्नके जीतनेवाले अन्नके प्रति जाते हुए हे अश्वो ! बृहस्पति के भाग चरुको सूँघो ॥ ९ ॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पते-रुत्तमन्नाकꣳ रुहेयम् । देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकꣳ रुहेयम् । देव-स्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पते-रुत्तमन्नाकमरुहम् । देवस्याहं सवितुः सवे सत्य-प्रसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकमरुहम् ॥ १० ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका बृह० ऋ० छंद—१ निचृ० ऋ, २ साम्नीज०, ३ आर्ची त्रु०, ४ भुरिग्सा० ज० और सबका लिङ्गोक्त देवता है । मंत्रार्थ—(सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, बृहस्पतेः, उत्तमम्, नाकं, रुहेयम्) सत्यप्रेरक सविता देव की,अनुज्ञामें वर्त्तमान मैं बृहस्पति सम्बन्धी श्रेष्ठ स्वर्गमें आरोहण करूं । सत्यसवसः, सवितुः,देवस्य,इन्द्रस्य,उत्तमं, नाकं, रुहेयम्) अनुल्लंघनीय प्रेरणावाले सवितादेवकी अनुज्ञा में वर्त्तमान मैं इन्द्रसम्बन्धी उत्कृष्ट स्वर्ग कामनासे चक्रपर आरोहण करता हूं । (सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अयं, बृहस्पतेः, उत्तमं, नाकं, अरुहम्) अनुल्लंघनीय प्रेरणावाले सविता देवकी प्रेरणा-वश मैं बृहस्पति के उत्कृष्ट स्वर्गकी कामनासे इस रथचक्र पर आरूढ हुआ (सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, इन्द्रस्य, उत्तमं, नाकं, अरुहम्) अनुल्लंघनीय सविता देवताकी आज्ञामें वर्त्तमानमें इन्द्रके उत्कृष्ट स्वर्गलाभकी कामना से इस चक्र में चढा हूँ ॥ १० ॥

बृहस्पते वाजञ्जय बृहस्पतये वाचं वदत बृह-स्पतिं वाजञ्जापयत । इन्द्र वाजञ्जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजञ्जापयत ॥ ११ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका बृहस्पति ऋ० छं०—१ प्राजा० त्रि० २ प्राजा० वृ० और देवता—१ बृह०,२ इन्द्र है । मंत्रार्थ—हे

दुन्दुभियो ! तुम (बृहस्पतये, वाचं, वदत, बृहस्पते, वाजं, जय, बृहस्पतिं, वाजम्, जापयत) बृहस्पतिके निमित्त इस प्रकार वचन को कहो हे बृहस्पते ! तुम अन्नको जयकरो हे दुन्दुभियो ! तुम बृहस्पति को अन्न जय कराओ। हे दुन्दुभियो तुम (इन्द्राय, वाचं, वदत, इन्द्र, वाजं, जय, इन्द्रं, वाजं, जापयत) इन्द्रके निमित्त इस प्रकार वाणीको कहो हे इन्द्र अन्नको जीतो तुम भी इन्द्रको अन्न जय कराओ ॥ ११ ॥

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका बृह० ऋ० छं० १ आर्ष्यु० २ ब्राह्मी० गायत्री और देवता सबका दुन्दुभि है । मंत्रार्थ—हे दुन्दुभियो ! (वः, एषा, सा, वाक्, सत्या, समभूत्, यया, बृहस्पतिं, वाजं, अजीजपत, बृहस्पतिं, वाजं, अजीजपत, वनस्पतयः विमुच्यध्वम्) तुम्हारी यह वह वाणी सत्य हुई, जिससे बृहस्पति को अन्न जय कराया, हे वनस्पति काष्ठनिर्मित दुन्दुभियो अब कृतकृत्य होकर अनुमति दो, बृहस्पति का रथ धावमान हो । हे दुन्दुभियो ! (वः, एषा, सा, वाक्, सत्या, समभूत्) तुम्हारा दियाहुआ वह आशीर्वादरूप वचन सत्य हुआ (यया, इन्द्रं, वाजं अजीजपत) जिससे इन्द्रको अन्न जय कराया (इन्द्रं, वाजम्, अजीजपत, वनस्पतयः, विमुच्यध्वम्) इन्द्रको अन्नजय कराया, हे काष्ठनिर्मित वनस्पतियो अब कृतकृत्य होकर अनुमति दो यजमान का रथ धावमान हो ॥ १२ ॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वनस्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥ १३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका दद० ऋ० है। छं०—१ आर्षी वृ०, २ साम्नी जग० और देवता १ लिङ्गोक्त, २ अश्व है। मंत्रार्थ—सत्यसवस:, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, वाजजितः, बृहस्पतेः, वाजं, जेषम्) सत्य आज्ञावाले सब के प्रेरक सविता देव के अनुज्ञा में वर्तमान मैं, अन्न जीतनेवाले बृहस्पति सम्बंधी अन्न को जय करूँ (वाजिनः, वाजजितः, अध्वनः, स्कभ्नुवन्तः, योजनाः, मिमानाः, काष्ठाम्, गच्छत) हे घोड़ो! अन्नके जीतने वाले तुम, मार्गों को सुभित करते, योजनों को अति शीघ्रता से गमन करतेहुए अठारह निमेष में प्राप्त होते हो ॥ १३ ॥

एषस्य वाजी क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायांबद्धो अपि कक्ष आसनि। क्रतुन्दधिक्रा अनु सथ्ठसनिष्यदत्पथामङ्काथ्ठस्यन्वापनीफणत्स्वाहा ॥१४॥

इसका दधिक्रावा ऋ० है। आर्षीज० छं०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ-(एषः, वाजी, यः, ग्रीवायां, कक्षे, आसनि, अपि, बद्धः, सः, दधिक्राः, क्रतुं, अनु, संसनिष्यदत्) यह घोड़ा जो ग्रीवामें कक्ष में मुख में बँधाहुआ है, वह यह अश्ववार को लेकर मार्ग अवरोधक पाषाण गर्त कण्टकादि का भी आक्रमण करनेवाला रथी के अभिप्राय को जानकर उसके अनुसार सम्यक् अनुसन्धान करताहुआ (पथां, अङ्कांसि, अन्वापनीफणत्, क्षिपणिम्, तुरण्यति, स्वाहा) मार्गों के ऊँचे नीचे चिन्हों को, अति शीघ्रगति से सम करता, चाबुक के आघातकी अपेक्षा न करके भी किंचित् इंगित से, शीघ्र धावमान होता है, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ १४ ॥

उतस्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णन्न वेरनु वाति प्रगर्द्धिनः। श्येनस्येवध्रजतो अङ्कसम्परि दधिक्राव्णः सहोर्जातरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

इसका दधिक्राव्ण ऋ०, आर्षीज० छं०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ (अस्य, दधिक्राव्णः, द्रवतः, तुरण्यतः, प्रगर्द्धिनः, श्येनस्य,

इव, प्रजतः, ऊर्जा, सह, तरिभ्रतः, उतरम, अङ्कसं, परि, अनुयाति, नः, वेः, पर्णम्) इस, आद्रिपाषाणगर्त कण्टकादि का अतिक्रमण करेहुए गमन करनेवाले शीघ्रता से, अबाधे को प्राप्त होनेवाले श्येन पक्षी की समान वेग से गमन करते मन के साथ, अतिशय मार्ग को लांघते, भी, इस अश्व के शृंगार चिन्ह वस्त्र चामरादि, संपूर्ण देह में वर्त्तमान होते, जातेहुए में लक्षित होते हैं, जिस प्रकार, पक्षी के, पंख दिखाई देते हैं ॥ १५ ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोहिं वृकथं रक्षांथंसि सने-म्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० भुरिगार्षी पं०छं० अश्व देवता है मंत्रार्थ—(देवताता, हवेषु, मितद्रवः, स्वर्काः, अहिं, वृकं, रक्षांसि, जम्भयन्तः, वाजिनः, नः, शं, भवन्तु, अस्मत्, सनेमि, अमीवाः, युयुवन्) देवताओं के कार्यके निमित्त यज्ञ में आह्वान करनेपर परिमित धावमान होनेवाले, श्रेष्ठ प्रकाशवाले सर्प भेडिये राक्षसोंको नाश करतेहुए घोड़े हमारे कल्याणको करनेवाले हों, हमसे सब प्रकार की दीर्घकाल की व्याधियों को पृथक् करें ॥ १६ ॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनथं समिथेषु जभ्रिरे ॥ १७ ॥

इसका नाभा नेदिष्ठ ऋ०, आर्षी ज०, छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ–(ते, विश्वे, मितद्रवः, हवनश्रुतः, अर्वन्तः, सहस्रसाः, मेधसाता, सनिष्यवः, वाजिनः, नः, हवम्, शृण्वन्तु, ये, समिथेषु, महः, धनं, जभ्रिरे) वे सम्पूर्ण यजमानके चित्तके अनुसार मितगामी, हमारे आह्वानको सुनने वाले, कुटिल गति वाले, अनेक जनोंको तृप्त करनेवाले, यज्ञशालाके पूरक घोड़े हमारे आह्वानोंको श्रवण करें, जो संग्रामों में बड़े धनको ले आते हैं ॥ १७ ॥

वाजे वाजे वत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता

ऋतज्ञाः ऽअस्य मद्ध्वः पिबत मादयध्वन्तृप्ता
यात पथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, निचृदार्षी त्रि० छ०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ-(वाजिनः, विप्राः, अमृताः, ऋतज्ञाः वाजे, वाजे, धनेषु, नः, अवत, अस्य, मध्वः, पिबत, मादयध्वम्, देवयानैः, पथिभिः, यात) हे अश्वो ! तुम बुद्धिमान्, दीर्घजीवी, सत्य, सम्पूर्ण अन्न और, धनों में, हमारी, पालना करो, इस धावमान होने से पहिले, नीवार सूँघेहुए मधुर लक्षण हवि को, पान करके, तृप्त होजाओ और तृप्त होकर, देवयान में अधिष्ठित मार्गों से, गमन करो ॥ १८ ॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी
विश्वरूपे। आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा
सोमोऽअमृतत्वेन गम्यात्। वाजिनो वाज-
जितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमव-
जिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

इस क० में २ मन्त्र हैं। सबका वसिष्ठ ऋ० है। छं० १ नि० चृदार्षी त्रि०, २ प्राजापत्या त्रि०, और देवता—१ प्रजापति, २ अश्व है। मन्त्रार्थ-(वाजस्य, प्रसवः, मा, आजगम्यात्, इमे, विश्वरूपे, द्यावा पृथिव्यौ, आ, पितरामातरा, मा, आगन्ताम्, च, सोमः, अमृतत्वेन, मा, आगम्यात्) अन्न की उत्पत्ति हमारे घर में आगमन करे, यह, सर्वरूपात्मक स्वर्ग और पृथ्वी सब प्रकार, हमारे माता पितारूप हमारे रक्षण और प्रतिपालन को आवेँ और सोम अमृतभाव से हमारे प्रति प्राप्तहो (वाजिनः, वाजजितः, वाजं, सरिष्यन्तः, निमृजानाः, बृहस्पतेः, भागं, अवजिघ्रत) हे अश्वो ! अन्नके जीतने वाले अन्न के जीतने को प्रतिक्षण गमन करनेवाले इस चरु या यजमान को शोधन करते हुए बृहस्पति सम्बन्धी हमारे भागको सूँघो ॥ १९ ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा

क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहा हर्पतये स्वाहान्हे मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनशिनाय स्वाहा विनशिने आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं में १२ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १, २ ४,५ दैवीपं० ३ या०गा० ६,७,१२ याजुष्युष्णिक्= याजुषीपं० ९याजुषी त्रि० १०,११ याजुषी बृहतीहै । और सबका प्रजापति देवताहै । मंत्रार्थ–(आपये,स्वाहा,स्वापये,स्वाहा,अपिजाय,स्वाहा, क्रतवे स्वाहा, वसवे स्वाहा, अहर्पतये, स्वाहा, मुग्धाय अन्हे स्वाहा, वैनशिनाय, मुग्धाय स्वाहा) व्यापक, सम्वत्सर, कालात्मक आदित्य प्रजापति देवता के प्रीति के निमित्त यह आहुति दीजाती है यह भली प्रकार गृहीत हो, सर्वव्यापी प्रजापति के निमित्त, आहुति पुनःपुनः प्रगट होनेवाले के निमित्त आहु० संकल्प भोगादि विषय के निमित्त आहु० जगत्के स्थिति कारणके निमित्त आहु० दिवसके निमित्त आहु० विनाशशील मुग्धनामकके निमित्त श्रेष्ठ होम० । आन्त्यायनाय, विन शिने स्वाहा, भौवनाय,अन्त्याय, स्वाहा, भुवनस्य, पतये, स्वाहा, अधिपतये, स्वाहा) सीमावान् विनाश शील नामकके निमित्त श्रेष्ठ हो०, त्रिभुवनकी सीमावान् के निमित्त, आहुति सम्पूर्ण भुवनके पति के निमित्त आहुति, समस्त प्राणि सर्गकी उत्पत्ति स्थित विनाशमें समर्थ के निमित्त यह आहुति भली प्रकार दीजातीहै सम्यक् स्वीकार हो ॥ १० ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्प्राणो यज्ञेन कल्पताञ्चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम ॥ २१ ॥

इस कं० में ९ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १ से ६ का प्राजा० गा०, ७ याजु० बृ० ८ दैवी त्रि० ९ या० गा०

और देवता १-६ का प्रजापति ७ यजमान ८ यज्ञ०, ९ यज्ञ है। मंत्रार्थ (यज्ञेन, आयुः, कल्पताम्, यज्ञेन, प्राणः, कल्पताम्, यज्ञेन, चक्षुः, कल्पताम्, यज्ञेन, श्रोत्रं, कल्पताम्, यज्ञेन, पृष्ठं, कल्पतां, यज्ञेन, यज्ञं, कल्पताम्) इस वाजपेय यज्ञके फलसे हमारी, आयु, वृद्धिको प्राप्तहो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे पांचोप्राण वृद्धिबल को प्राप्तहों, इस यज्ञके फलसे चक्षुरिन्द्रिय, सामर्थ्य को प्राप्तहो इस यज्ञके फलसे श्रोत्र इन्द्रिय का बलवृद्धि को प्राप्तहो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे हमारा पृष्ठवंश, वृद्धिको प्राप्तहो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे, यज्ञके अधिष्ठातृ देवता विष्णु तथा यज्ञ करनेकी क्षमता, वृद्धिको प्राप्तहो। हम (प्रजापतेः, प्रजा, अभूम,) प्रजापति की सन्तति, हुए। हे ऋत्विगण (स्वः, अगन्म, अमृता; अभूम) हमने स्वर्गलाभ, प्राप्त कियाहै हम दीर्घायु अमर चिर-कीर्तिवाले हुए ॥ २१ ॥

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाᳬसि सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयन्ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोसि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका वसिष्ठ ऋ० है। छं०-१ निचृद् दार्षी गा०, २ साम्नीउष्णिक्, ३ दैवी बृहती, ४ निचृदार्षी छ० है है और देवता—१ दिशा, २ पृथिवी, ३ आसंदी, ४ यजमान है। मंत्रार्थ-हे दिक् चतुष्टय (वः, इन्द्रियं, अस्मे, अस्तु, नृम्णं, अस्मे, उत, वः, क्रतुः, वर्चांसि, अस्मे, सन्तु) तुम्हारे सम्बन्धी, वीर्य हमारे विषय में हों, तुम्हारा सम्बन्धी धन हमको प्राप्तहो, और तुम सम्बन्धी, यज्ञ कर्म, तथा तुम्हारे सम्बन्धी तेज हमारे विषय हों अर्थात् इस जगत में हम सब से अग्रगण्य हों। (मात्रे, पृथिव्यै नमः नमो मात्रे) मातारूप, पृथिवी के निमित्त, नमस्कार है, पृथिवी माताको नमस्कार है। हे आसन्दी (इयं ते

राष्ट्र) यह तुम्हारा राज्य है। हे यजमान! तुम (यन्ता, असि, यमनः, ध्रुवः, धरुणः, असि, कृष्यै, त्वा, क्षेमाय, त्वा, रय्यै, त्वा, पोषाय, त्वा) सबके नियमन करने वाले, हो, स्वयं संयमन करता स्थिर धारक हो कृषिकार्य्य की उन्नति निमित्त, तुमको, राज्यकी शान्ति पूर्णताके निमित्त, तुमको, धन सम्पत्तिके वर्धनार्थ, तुमको प्रजा पालनके निमित्त, तुमको, इस स्थानमें उपवेशन कराते हैं २२

वाजस्येमम्प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमᳬराजानमोषधीष्वप्सु। ताऽअस्मभ्यम्मधुमतीर्भवन्तु वयᳬराष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, स्वराडार्षी त्रि० छं०, प्रजापति देवता है। मंत्रार्थ-(वाजस्य, प्रसवः, अग्रे, ओषधीषु, अप्सु, इमं, सोमं, राजानं, सुषुवे) अन्नके, उत्पन्न करने वाले प्रजापतिने, सबसे प्रथम आदि सृष्टिमें, औषधी, और जलोंके मध्यमें, इस सोमवल्ली रूप दीप्तिमान् पदार्थ को उत्पन्न किया है (ताः, अस्मभ्यं, मधुमतीः, भवन्तु, पुरोहिताः, वयं, राष्ट्रे, जागृयाम) वे सोम उत्पादक, ओषधीजल, हमारे निमित्त, रसवाली माधुर्य्यसे युक्त हों, याग अनुष्ठानादि में प्रधान, हम उनसे अभिषिक्त होकर, अपने राज्यमें सर्व साधारणके हितकारी होकर, अप्रमत्त होकर कालयापन करें ॥ २३ ॥

वाजस्येमाम्प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्। अदित्सन्तन्दापयति प्रजानन्त्स नो रयिᳬसर्ववीरन्नियच्छतु स्वाहा॥२४॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, आर्षीजगती छं० प्रजापति देवता है। मंत्रार्थ (वाजस्य, प्रसवः, इमां, दिवं, इमा, विश्वा, भुवनानि, शिश्रिये) इस समस्त अन्नके, उत्पन्न करने वाले परमात्माने, इस द्युलोक को इन सम्पूर्ण भुवनोंको सृजन कियाहै (सः, सम्राट्, अदित्सन्तम्, प्रजानन्, दापयति, नः, सर्ववीरम्, रयिं, नियच्छतु, स्वाहा) वह सबका अधिपति हविदेने की अनिच्छा वाले सुभ

को जानताहुआ मेरी बुद्धिमें प्रेरणा कर मुझसे आहुति दिवाताहै हमारे निमित्त सब पुत्रभृत्यादिसे युक्त धनको हमें प्रदान करे, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २४ ॥

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा-
भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति-
विद्वान्प्रजां पुष्टिं वर्द्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० स्वराडार्षी त्रि० छं० और प्रजापति देवता है । मंत्रार्थ-(नु, वाजस्य, प्रसवः, इमा, विश्वाभुवनानि, सर्वतः, आवभूव, च, सनेमि, विद्वान्, राजा, अस्मे, प्रजां, पुष्टिं, वर्धयमानः स्वाहा) कैसे विस्मयकी बातहै, अन्नके सृजनेवाले प्रजापति ने इन सम्पूर्ण भुवनोंको सब ओर से ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त उत्पन्न कियाहै और पुरातन सब कुछ जानने वाला दीप्तिमान् हमारे निमित्त सन्तति धन पुष्टिको वृद्धिको प्राप्त होता हुआहै, उसके निमित्त यह आहुति दीजातीहै ॥ २५ ॥

सोमꣳराजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदि-
त्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥२६॥

इसका तापस० ऋ०, आर्ष्यनुष्टुप् छं०, सोमादय देवता हैं। मंत्रार्थ-जो सम्पूर्ण अन्न के उत्पादक हैं जिन प्रजापति ने हमारे, (अवसे, राजानं, सोमं, अग्निं, आदित्यान्, सूर्यं, बृहस्पतिं, च अन्वारभामहे, स्वाहा) प्रतिपालनार्थ राजा सोम को वैश्वानर अग्नि को बारह आदित्यों को ब्रह्मा को बृहस्पति को भी नियुक्त किया है, आव्हान करते हैं, उसके उद्देश्य से दीहुई आहुति सम्यक् गृहीत हो ॥ २६ ॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं
विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा २७

इसका तापस ऋ० । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छं०, अर्यमाद्या देवता हैं । मंत्रार्थ—हे परमात्मन ! तुम (अर्यमणं, बृहस्पतिं, इन्द्रं, वाचं, सरस्वतीं, विष्णुं, वाजिनम्, दानाय, चोदय, स्वाहा)

अर्यमा देवता को बृहस्पति को इन्द्र को वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती को सबके प्रसवकर्त्ता सूर्य को. जो कि यह सब देवता अन्न के देनेवाले तुमने सृजे हैं इनको धनप्रदान के निमित्त प्रेरणा करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो जो तुम्हारी प्रीति के उद्देश्य से देते हैं ॥ २७ ॥

अग्ने अच्छावदेह नः प्रति नः सुमना भव। प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदा असि स्वाहा ॥ २८ ॥

इसका तापस ऋ०, भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(हे अग्ने, इह, नः, अच्छावद, नः, सुमनाः, भव, सहस्रजित्, हि, त्वं, धनदाः, असि, नः, प्रयच्छ, स्वाहा) हे अग्नि में अधिष्ठित देव ! इस यज्ञ में, हमारे हित को सन्मुख आकर कहो हमारे प्रति करुणार्द्रचित्त हो, हे सबके जीतनेवाले, जिस कारण से तुम स्वभाव से धन के देनेवाले हो, इसकारण हम को धन दीजिये तुम्हीं एकमात्र प्रार्थना पूर्ण करने में समर्थ हो, इसकारण इस आहुति से हमारी प्रार्थना स्वीकार करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २८ ॥

प्र नो यच्छत्वर्य्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः। प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका तापस ऋ०, भुरिगार्षी गा० छं०, वागाद्य देवता है। मंत्रार्थ—हे परमात्मन् ! आपके प्रसाद से (अर्यमा, नः, प्रयच्छतु, पूषा, प्र, बृहस्पतिः, प्र, देवीवाक्, नः, ददातु) अर्यमा देवता हमारे निमित्त अभीष्ट प्रदान करें, पूषा देवता अभीष्ट प्रदान करें, बृहस्पति अभीष्ट प्रदान करें, सरस्वती वाणी की अधिष्ठात्री हमारे निमित्त अभीष्ट दान करें ॥ २९ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रियै दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ३०

इसका तापस ऋ०, आर्षी जग० छं० सम्राट् देवता है।

मंत्रार्थ-(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, त्वा, अश्विनोः, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, बृहस्पतेः, साम्राज्येन, अभिषिञ्चामि) सविता देवता की प्रेरणावश होकर तुमको अश्वनीद्वयकी भुजयुगल पूषा देवताके हाथोंसे बृहस्पतिके साम्राज्यभावसे अभिषेक करता हूं, हे यजमान ! (त्वा, सरस्वत्यै, यन्त्रियै, दधामि, वाचः, यन्तु, असौ) तुमको सरस्वतीके ऐश्वर्य में स्थापन करता हूँ, तुम को वाणी वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती नियमन करै, अमुक नाम यजमानको अभिषेक करताहूं यहां यजमानका नाम उच्चारण करै ३०

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदंजयत्तमुज्जेंषमुश्विनौ
द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदंजयन्तानुज्जेंषं
विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदंजयत्तानुज्जेंषथं
सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदंजयत्तानुज्जेंषम् ३१

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका तापस ऋ० है। छं० १, २, निचृदार्षी गा० वा साम्नी बृ० ३ ४ साम्नी त्रि० और सबका दे० लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ-(अग्निः, एकाक्षरेण, प्राणं, उदजयत्, तं, उज्जेषं, अश्विनौ, द्व्यक्षरेण, द्विपद, मनुष्यान्, उदजयताम्, तान्, उज्जेषं) अग्नि देवताने एकाक्षरके प्रभाव से उत्कृष्टरूप प्राण को जय किया है मैं भी उस प्राण को एकाक्षरके प्रभाव से जय करूँ, अश्विनीकुमारने दो अक्षरवाले छन्दके प्रभावसे दो पदवाले मनुष्यों को उत्कृष्ट रूपसे जय कियाहै, मैं भी दो अक्षरके प्रभाव से उन मनुष्योंको जय करसकूँ। (विष्णुः, त्र्यक्षरेण, त्रीन, लोकान् मुदजयत्, तान्, उज्जेषम्, सोमः, चतुरक्षरेण, चतुष्पदः, पशून्, उदजयत्, तान्, उज्जेषम्) विष्णुदेव ने तीन अक्षरके छन्द से तीन लोकोंको जय किया, मैं भी उनके प्रभाव से उन तीन लोकों को जय करूँ, सोम देवता ने चतुरक्षर मंत्र के प्रभाव से पादचतुष्टयात्मक पशुओं को जय कियाहै, मैं भी उसके प्रभाव से उनको जय करूँ ॥ ३१ ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदंजयत्ता उज्जें-

पथ्ठं सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्ता उज्जेष-
म्मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान्पशूनुदजयथ्ठं
स्तानुज्जेषम्बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजय-
त्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं। सबका तापस ऋ० है। छं०-१, २ निचृत्साम्नी पं०, ३ साम्नी त्रि०, ४ साम्नी पं०, और सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ (पूषा, पंचाक्षरेण, पञ्च दिशः, उदजयत्, ताः, उज्जेषं) पूषा देवता ने पंचाक्षर छंद के प्रभाव से, पांचदिशा (एक ऊपर की,)उत्कृष्टरूप से जय कीं उसी के प्रभाव से मैं, उन दिशाओं को जय करूँ (सविता, षडक्षरेण, षट् ऋतून, उदजयत्, तान्, उज्जेषं) सविता देवता ने षडक्षर छन्द के प्रभाव से, छः ऋतुओं को उत्कृष्टरूप से जय किया, उसी के प्रभाव से उन छः ऋतुओं को मैं जय करूँ (मरुतः, सप्ताक्षरेण, सप्तग्राम्यान, उदजयन्, तान्, उज्जेषम्, बृहस्पतिः, अष्टाक्षरेण, गायत्रीं, उदजयत्, तां, उज्जेषम्) मरुत् देवता ने सप्ताक्षर मंत्र के प्रभाव से, सात ग्राम्य गवादि पशुओं को जय किया, मैं भी उनको जीतूं। बृहस्पति ने अष्टाक्षर मंत्र के प्रभाव से, गायत्री छन्द के अभिमानी देवता को वशीभूत किया मैं भी उसके प्रभाव से, उसको वशीभूत करसकूं ॥ ३२ ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतथ्ठं स्तोममुदजयत्तमुज्जे-
षथ्ठं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जे-
षमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्ता-
मुज्जेषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुद-
जयथ्ठंस्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका तापस ऋ० है। छं०-१ भा० बृ० २ निचृ० सा० बृ०, ३ सा० पं०, ४ आर्ष्यु० और सबका देवता लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ (मित्रः, नवाक्षरेण, त्रिवृतं, उदजयत्, तम्, उज्जेषम्, वरुणः, दशाक्षरेण, विराजं, उदजयत्, ताम्,

उज्जेषम्) मित्र देवताने नवाक्षर छन्दसे त्रिवृत् स्तोमको, जय किया इसी प्रकार मैं भी उसको जयकरूं वरुण देवने दशाक्षर छन्दसे दशाक्षरा विराट के अभिमानी देवता को जयकिया मैं भी इसी प्रकार उसको जयकरूं (इन्द्रः, एकादशाक्षरेण, त्रिष्टुभ्, उदजयत्, तां, उज्जेषम्) इन्द्रने एकादश अक्षरसे एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्दके अभिमानी देवता को जयकिया उसको मैं जयकरूं (विश्वेदेवाः, द्वादशाक्षरेण, जगतीम्, उदजयन्, तां, उज्जेषम्) विश्वेदेवाओंने बारह अक्षर से जगती छन्दके अभिमानी देवता को जयकिया है मैं भी उसको वशीभूत करसकूं ॥ ३३ ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳस्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषꣳरुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳस्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पंचदशꣳस्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषम्प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳस्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥३४॥

इस कं० ९ मं० हैं । सबका तापस ऋषि है । छं०—१, २, आर्च्यनु० २ भूरि० त्रि०, ४ साम्नी त्रि० ५, भूरिगार्षी गा०, और देवता सबका लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ (वसवः, त्रयोदशाक्षरेण, त्रयोदशम् स्तोमं, उदजयत्, तं, उज्जेषम) वसुओंने तेरह अक्षर वाले छंदसे त्रयोदशस्तोम को उत्कृष्ट रूपसे वशीभूत किया उसीको मैं जयकरूं (रुद्राः, चतुर्दशाक्षरेण, चतुर्दशं, स्तोमं, उदजयत् तम् उज्जेषम) रुद्रों ने चौदह अक्षर छन्दसे चौदहवें स्तोम को उत्कृष्ट रूपसे जयकिया उसको मैं जयकरूं (आदित्याः, पंचदशाक्षरेण, पंचदशं, स्तोमं, उदजयन्, तं, उज्जेषम) आदित्योंने पंचदश अक्षरके छन्दसे पन्द्रहवें स्तोमको, उत्कृष्ट रूपसे जयकिया उसको मैं सम्यक्प्रकार से जयकरूं (प्रजापतिः, सप्तदशाक्षरेण, सप्तदश ꣳ स्तोमं, उदजयत्, तं, उज्जेषम्) प्रजापति ने सप्तदशाक्षर छन्दसे सप्तदशाख्य स्तोमको जयकिया उसको मैं वशीभूत करूं ॥ ३४ ॥

एष ते निर्ऋते भागस्तञ्जुषस्व स्वाहाग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छ० १, २, साम्न्युष्णिक् ३ आ० गा० ४ साम्न्यनु० ५ भुरिगा० गा० ६ भुरिक् सा० त्रि० और सबका देवता वरुण है । मंत्रार्थ-(निर्ऋते, एषः, ते, भागः, तं, जुषस्व, स्वाहा) हे पृथिवी ! यह तुम्हारा भाग है, इसको प्रीतिपूर्वक सेवन करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (अग्निनेत्रेभ्यः, पुरःसद्भ्यः, देवेभ्यः स्वाहा) जिसका अग्नि नेता है, पूर्व दिशामें बसनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, भलीप्रकार गृहीत हो । (यमनेत्रेभ्यः, दक्षिणासद्भ्यः, स्वाहा) यम जिनका नेता है, उन दक्षिणदिशा वासी देवताओं की प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं, भली प्रकार गृहीत हो, (विश्वदेवनेत्रेभ्यः, पश्चात्सद्भ्यः, देवेभ्यः, स्वाहा) विश्वेदेवा जिनके नेता हैं उन पश्चिम दिशा में निवास करनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजातीहै भली प्रकार गृहीतहो (वा ,मित्रवरुण नेत्रेभ्यः, वा, मरुन्नेत्रेभ्यः, उत्तरा सद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) या जिनके नेता मित्रावरुण हैं, या जिनके नेता मरुत देवता हैं, उत्तर दिशा में निवास करनेवाले देवताओं की प्रीति के निमित्त, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, (सोमनेत्रेभ्यः, दुवस्वद्भ्यः, उपरिसद्भ्यः, देवेभ्यः, स्वाहा) जिनका नेता सोम है ऐसे परिचर्यावाले, ऊपरभाग अन्तरिक्ष, देवताओं की प्रीति के निमित्त यहआहुति दीजातीहै सम्यक् गृहीतहो ३५

ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये

देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा
विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये
देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्ते-
भ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राः उपरिसदो
दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका ग्रहण ऋ०, आसुरी, गायत्री, प्राजापत्यानुष्टुप् भुरिक्प्राजापत्यानुष्टुप् आर्च्यनुष्टुप् प्राजापत्या छ० छं० है । सबका देवा दे० है । मंत्रार्थ (ये, देवाः, अग्निनेत्राः, पुरःसदः, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता अग्निनेता संयुक्त हैं, पूर्व में निवास करते हैं, उन देवताओंके निमित्त यह आहुति दीजाती है (ये, देवाः, यमनेत्राः, दक्षिणासदः, तेभ्यः, स्वाहा) यम जिनका नेता वे देवता दक्षिण दिशानिवासी हैं । उनके निमित्त यह आहुति० (ये, देवाः, विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदः, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता विश्वदेवा नेतावाले पश्चिमनिवासी हैं, उनके निमित्त यह आहुति दीजाती है (ये, देवाः, मित्रावरुण नेत्राः, वा, मरुन्नेत्राः वा, उत्तरासदः, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता मित्रावरुण नेतावाले अथवा मरुत् नेतावाले और उत्तर दिशा निवासी हैं, उनके निमित्त आहुति दीजाती है (ये, देवाः, सोमनेत्राः, दुवस्वन्तः, उपरिसदः तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता सोमके नेतावाले, हवि के स्वीकार करनेवाले द्युलोकवासी हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ आहुति प्राप्तहो ३६

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्ट-
रस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

इसका देवश्रवा देववात ऋ० भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छं० अग्निदेवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने, पृतनाः, सहस्व, अभिमातीः, अपास्य, दुष्टरः, अरातीः, तरन्, यज्ञवाहसि, वर्चः, धेहि) हे अग्निदेव ! तुम शत्रु सेनाओंको पराभव करो, शत्रुओं को विदारित करो, हे दुर्निवार तुम शत्रुओं को तिरस्कार करतेहुए यज्ञनिर्वाहकारी इस यजमान को अन्नप्रदान करो ॥ ३७ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपाᳪशोर्वीर्येण जुहोमि हतᳪ रक्षः स्वाहा रक्षसान्त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका देववात ऋ० है। छं० १ निचृ० गा० २ याजुष्युष्णिक् ३ साम्न्युष्णिक् और देवता सबका रक्षोघ्न है। मंत्रार्थ-जिस देवता ने इस समस्त जगत् को निज २ कर्म करने में प्रेरित किया है उस (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः, हस्ताभ्यां, त्वा, उपांशोः, वीर्येण, जुहोमि, रक्षः, हतं, स्वाहा) सविता देवकी आज्ञामें वर्तमान अश्विनीकुमारके बाहु युगलसे पूषा देवताके दोनों हाथों से तुझको उपांशुनाम प्रथम ग्रहके पराक्रमसे आहुति प्रदान करता हूँ राक्षसकुल इस आहुति के प्रभावसे निहत हुआ, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, हे स्रुवः, (रक्षसां, वधाय, त्वा) राक्षसों के वध के निमित्त तुमको प्रक्षेप करता हूँ (रक्षः, अवधिष्म, अमुं, अवधिष्म, असौ, हतः) राक्षस कुलको विनष्ट किया, अमुक शत्रुको [इस स्थलमें जो प्रधान शत्रु है उसका नामलेय] मारा, यह शत्रु मारागया ॥ ३८ ॥

सविता त्वा सवानाᳪ सुवतामग्निर्गृहपतीनाᳪ सोमो वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

इसका देववात ऋ०। अतिजगती छं० यजमान देवता है। मंत्रार्थ-हे यजमान! (सविता, सवानां, त्वा, सुवताम्, अग्निः गृहपतीनाम्, सोमः, वनस्पतीनाम्, बृहस्पतिः, वाचे, इन्द्रः ज्येष्ठ्याय रुद्रः, पशुभ्यः, मित्रः, सत्यः, वरुणः, धर्मपतीनाम्) जगत् का नियन्ता परमात्मा आज्ञाओं के आधिपत्य, तुझको प्रेरण करे। अग्निदेवता गृहस्थ गणके उपास्यदेव गृहस्थोंके आधिपत्यमें तुम को प्रेरणा करे। वनस्पतिप्रधान सोम देवता तुमको वनस्पति

विषय के आधिपत्य प्रदान करें । वाक्यप्रकाशक बृहस्पति देवता वाग्विषयक आधिपत्य में इन्द्रदेवता ज्येष्ठ आधिपत्यमें पशुगण के जीवोंके रक्षक रुद्र देवता पशुदल के आधिपत्य में सत्यस्वरूप मित्रदेवता सत्व्यवहारके आधिपत्य में धर्मरक्षक वरुणदेवता तुम को धर्म के आधिपत्य में प्रेरणा करें ॥ ३९ ॥

इमन्देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममसुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकम्ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ ४० ॥

इसका देवयात ऋ० है । अत्यष्टि छं० है और यजमान देवता है। मंत्रार्थ-(देवाः, अमुष्य,पुत्रं, अमुष्यै, पुत्रं, इमं, महते, क्षत्राय, महते, ज्यैष्ठ्याय, महते,जानराज्याय, इन्द्रस्य, वीर्याय, असपत्नम् सुवध्वम्, इमम, अस्यै, विशे, अमी, वः,एषः राजा, सोमः) हे मुहविदेवगण ! तुम अमुक महाशयके पुत्र [यहाँ यजमानके पिता का नाम लेना] अमुकी देवी के पुत्र [यहाँ यजमान की माताका नाम लेना] इस यजमानको महत् क्षत्रधर्म के निमित्त महत् ज्येष्ठता के निमित्त, महान् जनोंके आधिपत्यमें आत्मा के ज्ञानमें सामर्थ्यके निमित्त, शत्रुशून्य करके प्रेरण करो अपने प्रसाद से इस यजमानको इस अमुक जातिका राजा करो, हे अमुकजाति प्रजागण ! तुम्हारा यह अमुकनाम राजा हो और हम ब्राह्मणों का राजा सोम चन्द्रमा हो ॥ ४० ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सानुवाद नवम अध्याय समाप्त.

अथ दशमोऽध्यायः



जिस में वाजपेय यज्ञ और राजसूयसम्बन्धी कर्म प्रधान है ऐसे नवम अध्याय में राजसूयान्त मंत्र कहे । अब दशम अध्याय में अभिषेकार्थ जलदानादि राजसूयके शेष कर्म और चरक सौत्रामणि यज्ञमंत्र कहेजायँगे—

॥ हरिः ओं ॥ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ १ ॥

इसका वरुण ऋ०, निचृदार्षी त्रि० छं० है, आप देवता है । मंत्रार्थ-(देवाः मधुमतीः ऊर्जस्वतीः, राजस्वः, चितानाः, अपः, अगृभ्णन्, याभिः, मित्रावरुणौ, अभ्यषिञ्चन् याभिः अरातीः, अति, इन्द्रम्, अनयन) इन्द्रादि देवताओंने मधुरस्वाद से युक्त विशिष्ट अन्नरसयुक्त राज्याभिषेक करनेवाले, चेतयमान ज्ञानके सम्पादन करनेवाले जलोंको ग्रहण किया जिन जलोंसे, मित्रावरुण देवताओंने शत्रुओं की तिरस्कार कर इन्द्रको राज्याभिषेक किया उनजलों को ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहा
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।
वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहा
वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं०—१, २ प्राजापत्यानु०, ३, ४, और देवता सबका लिंगोक्त है । मन्त्रार्थ—हे कल्लोल ! तुम (कृष्णः, ऊर्मिः, असि, राष्ट्रदाः, राष्ट्रं, मे, देहि, स्वाहा) सेचनकरनेवाले मनुष्यसम्बन्धी तरंग हो स्वभाव से ही राष्ट्र देनेवाली हो राज्यको मेरे निमित्त दो तुम्हारी दीयमाण यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । हे कल्लोल ! तुम (वृष्णः, रा०, ऊर्मिः, असि, अमुष्मै, रा० देहि) सेचनसम्बन्धी नर, स्वभासे रा०दाता तरंग हो अमुक यजमानको [इस स्थल में यजमानका नामले] राज्य प्रदान करो । हे वृषसेन ! तुम (वृषसेनः रा०दाः, असि, राष्ट्रं मे देहि, स्वाहा) सेचन समर्थ जलराशि रा० दाता हो मुझे रा० प्रदान करो, यह आहुति गृहीत हो (वृषसेनः रा०दाः, असि, राष्ट्रं, अमुष्मै, देहि) हे वृषसेन ! तुम रा० दाता हो, रा० अमुक यजमान को प्रदान करो ॥ २ ॥

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपाङ्गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापाङ्गर्भो राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

इस कं० में १० मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। छं०, १, २ साम्न्युष्णिक् ३, ४, ९, आ० गा० ५, ६, १० साम्नी बृ० ७, ८ साम्न्यनुष्टुप् और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ-(अर्थेतः, रा०दाः, स्थ, राष्ट्रं, मे, दत्त, स्वाहा) नदी आदि के प्रवाह में स्थित जलों ! तुम स्वभावसे ही रा० के देनेवाले हो, रा० को मुझ यजमानके निमित्त प्रदान करो। तुम्हारे प्रीति के निमित्त दीहुई यह आहुति भलीप्रकार स्वीकार हो, (अर्थेतः, रा०दाः, स्थ, अमुष्मै, राष्ट्रं, दत्त) हे जलों ! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले हो मुझे रा० प्रदान करो (ओजस्वतीः, रा०दाः, स्थ, मे, राष्ट्रं दत्त, स्वाहा) हे बलयुक्त जलों तुम ! तुम स्वभावसे रा० देने वाले हो, रा० को इस यजमानके निमित्त प्रदान करो। (परिवाहिणीः, आपः, रा०दाः, स्थ, मे, राष्ट्रं, दत्त, स्वाहा) हे परिवाही जलों ! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० को इस यजमानके निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (परिवाहिणीः, आपः, रा०दाः, स्थ, रा०, अमुष्मै, दत्त) हे परिवाही जलों तुम स्वभावसे जलदेनेवालेहो, रा० अमुक यजमानको प्रदान करो। (अपांपतिः, रा० दाः, असि, रा० मे, दत्त, स्वाहा) हे सागर के जलों तुम रा०दाता हो, रा० को मेरे निमित्त करो। यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (अपांपतिः,

असि, राष्ट्रं, अमुष्मै, दत्त) अपांपति तुम स्वभावसे राज्यदाता हो, रा० अमुक यजमान के निमित्त प्रदान करो (अपांगर्भः, रा० दाः, असि, मे, राष्ट्रं, देहि, स्वाहा) भंवरके जलों ! तुम स्वभाव से रा०के देनेवाले हो मुझे रा० दो, यह आहुति तुम्हारी प्रीति के निमित्त दीजाती है (अपांगर्भः, रा०दाः, असि, रा० अमुष्मै देहि) हे अपांगर्भ जलों ! स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० अमुक यजमानके निमित्त प्रदान करो ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रङ्क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रङ्क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

इस कं० में २१ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है छं० १, २,

३, ४ साम्न्यनु० ५, ६, ९, १०, आर्षुयनु० ७, ८, १५, १६ १७, १८ आर्षु० गा० ११, १२ आर्षुर्युष्णिक्, १३, १४, १९ २० निचृद्गा० ११ साम्नी त्रि० और सबका लिङ्गोक्त देवता है। मन्त्रार्थ-(सूर्यत्वचसः, स्थ, रा०दाः, रा० मे दत्त, स्वाहा) हे जलो तुम सूर्यत्वच हो स्वभावसे हो रा० देनेवाले हो, रा० मेरे निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (सूर्यत्वचसः, स्थ, रा०दाः, अमुष्मै, राष्ट्रं दत्त) हे सूर्यत्वक्रूप जलो! स्वभावसे ही रा० देनेवाले तुम अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो। हे जलो! (सूर्यवर्चसः, स्थ, रा०दाः, मे, रा० दत्त स्वाहा) सूर्य की कान्तिमें स्थित हो, स्वभावसे रा० देनेवाले हो मुझे रा० प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (सूर्यवर्चसः, स्थ रा०दाः, अमुष्मै, राष्ट्रं, दत्त) हे सूर्यवर्चस जलो! तुम सूर्यकी वर्चस में स्थितहो स्वभावसे रा० देनेवाले हो अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो। हे मान्दजलो तुम (रा०दाः रा० मे, दत्त, स्वाहा) स्वभावसे ही रा० देनेवाले हो रा० मेरे निमित्त प्रदान करो। यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (मान्दाः स्थ रा०दाः, रा० अमुष्मै दत्त) हे मान्द । तुम स्वभावसे ही राज्यप्रद हो, रा० अमुक यजमान के निमित्त दो, हे जलो तुम (व्रजक्षितः, स्थ, रा०दाः मे, रा०, दत्त, स्वाहा) तुम व्रजक्षित् रूपस्थित् हो, स्वभावसे ही रा० देने वाले हमारे यजमान के निमित्त रा० प्रदान करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो। हे जलो तुम (व्रजक्षितः, स्थ, रा०, अमुष्मै, रा०, दत्त) व्रजक्षित हो, स्वभाव से राज्य देनेवाले, इस यजमान के निमित्त राज्य दो। हे जलो तुम (वाशाः, स्थ, रा० अमुष्मै, रा०, दत्त) वाशामें स्थित जलो स्वभावसे राज्यदेनेवाले इस यजमान को रा० दो। हे जलो (शविष्ठाः, स्थ, रा०, मे, राष्ट्रं, दत्त, स्वाहा) मधुर रूप तुम त्रिदोषशमन कारणसे बल देनेवाले स्वभावसे रा० देनेवाले मुझे रा० प्रदान करो। यह आहुति भलीप्रकार प्राप्त हो

(शविष्ठाः,-स्थ, रा०दाः०, अमुष्मै, रा० दत्त) हे शविष्ठ ! तुम स्वभाव से ही राज्य देनेवाले अमुक यजमान को रा० दो। हे जलो तुम (शक्वरीः, स्थ, रा०दाः, मे, रा०, दत्त, स्वाहा) बाह दोहादि से जगत् का उद्धार करनेवाली गोसम्बन्धी हो स्वभाव से राज्यदाता हो मुझे राज्य दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो। (शक्वरीः, स्थ, रा०दाः, अमुष्मै, रा०म्, दत्त,)शक्वरी जलो तुम रा० देनेवाले इस यजमान के निमित्त रा० दो,। हे जलो तुम (जनभृतः, स्थ, रा०दाः०,रा०म्, मे, दत्त, स्वाहा) बालभाव में मनुष्यों को पुष्ट करनेवाले हो स्वभावसे ही राज्यके देनेवाले हो राज्य मेरे निमित्त दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो। (जनभृतः, स्थ, रा०दाः,अमुष्मै, रा०म्, दत्त)हे जनभृत् जल तुम स्वाभाव से ही रा० देनेवाले हो इस अमुक यजमान के निमित्त रा० प्रदान करो,। हे जलो तुम (विश्वभृतः, स्थ,रा०दाः, मे, रा०म्, दत्त, स्वाहा) मनुष्योंसे देवताओं पर्यन्त घृत द्वारा जगत् को धारण करनेवाले हो स्वभावसे राज्यदेनेवाले हो मेरे निमित्त रा० को प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो। हे घृतरूप जलो (विश्वभृतः,स्थ, अमुष्मै रा०म्, दत्त)तुम विश्वभृत अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो। (आपः, स्वराजः, स्थ, रा०दाः, रा०, अमुष्मै, दत्त) हे मरीचिरूप जलो ! तुम अपने प्रकाशमें अनन्याश्रित हो, स्वभावसे राज्य के देनेवाले हो राज्य अमुक यजमान को दो। (मधुमतीः, मधुमतीभिः, महि, क्षत्रं, क्षत्रियाय, वन्वानाः, पृच्यन्ताम्) हे मधुर रसयुक्त सम्पूर्ण जलो ! उस सब मधुररस जलोंके सहित बड़े बलवाले को राजा यजमानके निमित्त सम्पादन करतेहुए अपने रसोंसे सींचो, सम्पर्क करो। हे जलो ! तुम (अनाधृष्टाः, महौजसः, महि, क्षत्रम्, क्षत्रियाय, दधतीः, सीदत) असुरों से अनाधृष्ट पराभव न पानेवाले, बलके सहित बड़े बलको इस क्षत्रिय राजा में स्थापन करतेहुए, इस स्थानमें अवस्थान करो ॥ ४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् ।
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा
सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहे-
न्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाꣳ-
शाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

इस कं० में १३ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है कं० १ आसु० गा० १, ३, ४, ८, ९, १०, ११, १२, १३, दैवी पं० ५ दैवी त्रि० ६ दैवी बृ०; ७ दै० ज०, और देवता १ चर्म, अन्य सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ–हे चर्म ! तुम (सोमस्य, त्विषिः, असि, तव, त्विषिः, मे, भूयात्) सोमदेवकी कान्तिरूप हो, आपकी कान्ति मुझमें होजाय (अग्नये, स्वाहा, सोमाय, स्वाहा, सवित्रे स्वाहा, सरस्वत्यै, स्वाहा, पूष्णे स्वाहा, बृहस्पतये, स्वाहा) अग्नि देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति दीजाती है, भलीप्रकार गृहीत हो, प्रेरक सोमदेवता के निमित्त आहुति० सविता देवता के निमित्त श्रेष्ठ आहुति० प्रवाहरूप सरस्वतीके निमित्त आहुति० पोषक पूषादेवता के निमित्त यह आहुति०, बृहस्पति के निमित्त यह आहुति दीजाती है स्वीकार हो। (इन्द्राय, स्वाहा, घोषाय, स्वाहा, श्लोकाय स्वाहा, अंशाय, स्वाहा, भगाय, स्वाहा, अर्यम्णे स्वाहा) इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त यह आहुति० शब्द करने वाले देवता के निमित्त यह आहुति० जनोंसे कीर्तित परस्पर आन्दोलन रूपके निमित्त यह आहुति० पुण्य पापके विभाग करने वाले के निमित्त यह आहुति० ऐश्वर्य के निमित्त यह आहुति० विश्व को व्याप्त करनेवाले अर्यमा देवताके निमित्त यह आहुति दीजाती है ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुना-
म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य
दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। छं० १ दैवी ज० २ प्राजा० पं० ३ भुरिक्प्राजापत्या पं० और देवता १ पवित्र २ आप ३ आप हैं। मंत्रार्थ-(पवित्रे, वैष्णव्यौ, स्थः) हे पवित्र कुशद्वय, तुम यज्ञकार्य में नियुक्त हो, (सवितुः, प्रसवे, अच्छिद्रेण पवित्रेण, सूर्यस्य, रश्मिभिः, वः, उत्पुनामि) जगत्के एकमात्र नियन्ता इस परम देवता के नियोग से नियुक्त होकर छिद्रशून्य, पवित्रद्वारा सूर्यकी किरणों से तुमको उत्पवन सिंचन करता हूं। हे जलों! तुम (अनिभृष्टम्, वाचः, बन्धुः) राक्षसों से अपराभूत वाक्यके प्रकृतबन्धु हो (तपोजाः, सोमस्य, दात्रम्, असि, स्वाहा राजस्वः) तेजसे समुत्पन्न सोमके उत्पादक हो, तथा स्वाहाकारसे पवित्र हुए, इस यजमानको राजश्री सम्पादन करो ॥ ६ ॥

सधमादो द्युम्निनीराप एता अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः। पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाᳬ शिशुर्मातृतमास्वन्तः॥ ७ ॥

इसका वरुण ऋ०, विरा० त्रि० छं० और वरुण देवता है। मंत्रार्थ-(एताः सधमादः, द्युम्निनीः, अनाधृष्टाः, अपस्यः वसानाः आपः, पस्त्यासु, मातृतमासु, अन्तः, अपांशिशुः, वरुणः, सधस्थं, चक्रे) जो यह एकत्र चार पात्रमें स्थित, प्रसन्न होनेवाले वीर्यवान्, अपराभूत पात्रोंका आच्छादन करनेवाले यह जल इस समय अभिषेक कार्यमें नियुक्त हुए हैं, इसप्रकार सबके धारण करने में गृहरूप जगन्निर्माता मातृरूप इन जल देवियों के भीतर में जलों के शिशु वरुण यजमानने सादर स्थिति की है ॥ ७ ॥

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृवासि रुजासि क्षुमासि पातैनम्प्राञ्चम्पातैनं प्रत्यञ्चम्पातैनन्तिर्य्यञ्चन्दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

इस कं० में ११ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। छं० १

याजुषी गा० २, ३, ४, याजुष्युष्णिक् ५ गा० गा० ६ दैवी बृ० ७ दैवी पं० ८, ९, १० दैव्यनु० ११ आर्च्युष्णिक् और देवता १ तार्प्य २, ३, ४ पाण्ड्वादय ५, धनु ६, धनुःको०७वामको ८, ९, १० इषु ११, इषव देवता है। मंत्रार्थ–हे तार्प्य वस्त्र तुम ! (क्षत्रस्य, उल्बम्, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी इस यजमानकी गर्भधार भूत जलरूप हो। हे पाण्डुरक्त कम्बल! तुम (क्षत्रस्य, जरायुः) क्षत्रिय यजमान की गर्भवेष्टन चर्मरूप हो। हे अधिवास ! तुम (क्षत्रस्य, योनिः, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी यजमानकी योनिरूप हो। हे उष्णीष ! तुम (क्षत्रस्य, नाभिः, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी यजमानकी गर्भबन्धनस्थान हो। हे धनुष ! तुम (इन्द्रस्य, वार्त्रघ्नं असि) इस इन्द्ररूप यजमानके वृत्रनाशक धनुःसम्बन्धी हो। हे दक्षिणकोटि ! तू (मित्रस्य, असि, वरुणस्य, असि) मित्र सम्बन्धिनी है। हे वामकोटि ! तू वरुण सम्बन्धिनी है। हे धनुष ! (अयं, त्वया, वृत्रं, वधेत्) यह यजमान तुम्हारे द्वारा सम्पूर्ण शत्रुओं का नाश करै। हे बाणो ! तुम (दृवा, असि) शत्रुओं के विदीर्ण करनेवाले हो। हे बाणों ! तुम (रुजा, असि) शत्रुओंके भंग करनेवाले हो। हे बाणों तुम (क्षमा, असि) शत्रुओं के कम्पित करनेवाले हो। हे बाणों ! तुम (एनम्, प्राञ्चम्, पात) इस यजमानको पूर्व दिशाकी ओरसे रक्षा करो। हे बाणों ! तुम (एनं, प्रत्यञ्चं, पात) इस यजमानको पश्चिम ओरसे रक्षाकरो। हे बाणों तुम (एनं, तिर्यञ्चं, पात, दिग्भ्यः, पात) इस यजमान को उत्तर दक्षिण की ओर से रक्षा करो, बहुत क्या सम्पूर्ण दिशाओं से रक्षा करो ॥ ८ ॥

आविर्मर्य्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा ॥ ९ ॥

इसकं० में ७ मंत्र हैं। सबका वरुण ऋ० है। छं० १ दै० बृ०

२, ३, ५, ७, या० छ० ४, आनु० छ० ६ आनु० और देवता १ प्रजा० २, ३, ५, ७ लिङ्गोक्त ४, ६ लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ-(मर्त्याः, आभिः, गृहपतिः, अग्निः, आयिचः, धृतव्रतौ, मित्रावरुणौ, आविचौ, विश्ववेदाः, पूषा, आविचः) भूमण्डलवासी मनुष्यमण्डली इस यजमान को जाने, गृहपालक अग्नि, इस यजमानको जाने, विख्यातकीर्ति इन्द्र इस यजमानको जानें, नियम में तत्पर मित्रावरुण सूर्यचन्द्र इसको जानें, सब कुछ जाननेवाले पूषा देवता इसको जाने । (विश्वशम्भुवौ, द्यावापृथिवी, आविचे, उरुशर्मा, अदितिः, आविचा) संसारके कल्याण की विधात्री पृथ्वी और द्युलोक के अभिमानी देवता जाने, बड़े सुविस्तीर्ण, सुख के आश्रयरूप देवमाता काल इसको जाने ॥ ९ ॥

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरथ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १ दै० ज० २ निचृदा० पं० और देवता १ मृ० ना० २ यजमान है, मंत्रार्थ-(दन्दशूकाः, अवेष्टाः) काटने के स्वभाववाले मृत्यु के कारण सर्पादि विनष्ट हुए । हे यजमान ! तुम (प्राचीम्, आरोह) पूर्वदिशा को आरोहण करो, (गायत्री, त्वा, अवतु) गायत्री छन्द तुमको रक्षा करै सोमों के मध्यमें (रथंतरम्, साम, त्रिवृत्स्तोमः, वसन्त ऋतुः, ब्रह्म, द्रविणम्) रथंतर साम स्तोमके मध्यमें त्रिवृत्स्तोम ऋतुओंमें वसन्त ऋतु परमात्मा का ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे १०

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रन्द्रविणम् ॥ ११ ॥

इसका वरुण ऋ० आ० पं० छं यजमान देवता है । मंत्रार्थ-हे यजमान ! तुम (दक्षिणां, आरोह) दक्षिण दिशाको आक्रमण करो (त्रिष्टुप् बृहत्साम पंचदशस्तोम, ग्रीष्मऋतुः, क्षत्रं, द्रविणं, त्वा, अवतु) त्रिष्टुप्छन्द बृहत्साम् पंचदशस्तोम ग्रीष्मऋतु

क्षत्रियजाति सम्बन्धी ऐश्वर्य तुझको रक्षाकरै ॥ ११ ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपᳶसाम सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥१२॥

इसका वरुण ऋ०, निचृदार्ष्यनुष्टुप् छं० यजमान देवता है। मंत्रार्थ-हे यजमान तुम (प्रतीचीं, आरोह, जगती, वैरूपं साम, सप्तदशस्तोमः, वर्षाऋतुः, विड्, द्रविणं, त्वा, अवतु) पश्चिमदिशा को आक्रमण करो, जगती छन्द, वैरूपसाम, वर्षाऋतु, वैश्य सम्बन्धी ऐश्वर्य, तुम्हारी रक्षाकरै ॥ १२ ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप्त्वावतु वैराजᳶसामैकविᳶशस्तोमः शरदृतुः फलन्द्रविणम् ॥ १३ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका वरुण ऋ० है। छं० १ निचृद्ब्राह्म्युष्णिक् २ भा० भा० और देवता १ यजमान २ असुर है मन्त्रार्थ-हे यजमान तुम (उदीचीम्, आरोह, अनुष्टुप्, वैराजᳶ साम, एकविंशस्तोमः, शरदृतुः, फलं, द्रविणं, त्वा, अवतु) उत्तर दिशाको आक्रमण करो, अनुष्टुप्छन्द, उत्पन्न वैराजसाम एकविंश स्तोम, शरदृतु, यज्ञफलरूप ऐश्वर्य तुमको रक्षाकरै १३

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिᳶशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणम्प्रत्यस्तन्नमुचेः शिरः १४

इसका वरुण ऋ० है। भुरिग् जगती छं० और यजमान देवता है। मन्त्रार्थ-हे यजमान तुम (ऊर्द्ध्वाम्, आरोह, पंक्तिः, शाक्वर रैवते, सामनी, त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ, स्तोमौ, हेमन्तशिशिरौ, ऋतू, वर्चः, द्रविणं, त्वा, अवतु) ऊपर भागको आक्रमण करो पंक्तिछन्द, शक्वरसाम और रैवत, साम, त्रिनव और त्रयस्त्रिंश, स्तोम, हेमन्त और शिशिर, दोनो ऋतु, तेजोभिमानी देवका ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करै (नमुचेः, शिरः, प्रत्यस्तम्) नमुचि असुरका शिर दूर फेकागया ॥ १४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवैव मे त्विषिर्भूयात्

अनुदीयमाणाः, अधराक्, आवव्रत्रन) स्वयं ही विश्वको सींचने वाले गमनशील, स्तुतियोंको प्राप्त होनेवाले वर्षा करनेवाले पर्वतके पृष्ठसे आदित्य मण्डलकी ओर गमन करते हैं। वे आहुतिके परिणामभूत जल ऊपर प्राप्त हुए अन्तरिक्षमें होनेवाले, मेघोंको अनुसरण करतेहुए नीचे भूमिको प्राप्त होते हैं॥ १९॥

प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता वयᳬ स्याम पतयो रयीणाᳬ स्वाहा। रुद्र यत्ते क्रिवि परन्नाम तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा॥ २०॥

इस कं० में ३ मं० हैं। इसका देवयात ऋ० है। कं० १ त्रिष्टु० २ आर्षी गा० ३ साम्नी त्रि० हैं और देवता १ प्रजापति २ आशीः ३ रुद्र है। मंत्रार्थ-हे प्रजापते (त्वत्, अन्यः, एतानि, विश्वा, रूपाणि, न, परिता, बभूव) हे परमात्मन्, आपसे और कोई भी इन सम्पूर्ण प्रजापालनादि कार्य तथा नाना जातीय वर्तमान भूत, भविष्यत्, कालमें के प्राणियोंके सृजन पालन संहारमें नहीं समर्थ है इसकारण तुम्हीं हमारी प्रार्थना पूर्ण करने में समर्थ हो (यत्कामाः, ते, जुहुमः, तत्, नः, अस्तु, अयं, अमुष्य, पिता, असौ, अस्य, वयं, रयीणां, पतयः, स्याम, स्वाहा) जिस कामना से आपके निमित्त हवन करतेहैं, वह कामना हमारी पूर्ण हो, यह अमुक का पिताहै, यह इसका पिता चिरस्थायी रहै, हम अपरिमित ऐश्वर्य के स्वामी हों, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, (रुद्र, यत्, ते, क्रिवि, परं, नाम, तस्मिन्, हुतं, असि, अमेष्टं, असि, स्वाहा) हे रुद्रदेव। जो तुम्हारा भयकारी, दुष्टनाशक, उत्कृष्ट नाम है, हे हवि उस रुद्रनाममें तुम हुत होओ, तुम हमारे घरमें आहुत होती हो, इस कारण सबप्रकार हमारी उपकारी होओ, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो॥ २०॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः

मृशिषा युनज्मि । अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वा रिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं । सबका देवयात ऋ०, कं० १ दैवी त्रि० २ साम्न्य० ३ साम्न्युष्णिक् ४ या० बृ० ५ दै० त्रि और देवता १, २, ३, रथ, ४ युर्य, ५ यजमान है । मंत्रार्थ-हे रथ ! तुम (इन्द्रस्य, वज्रः, असि) इन्द्रके वज्रकी समान अतिदुश्छेद्य काष्ठसे निर्मित हो । (मत्रावरुणयोः, मशिषा, त्वा, युनज्मि) शासनकारी मित्रावरुण देवताके प्रशासनसे तुमको इस रथ में युक्त करता हूं । (अरिष्टः, अर्जुनः, अव्यथायै, त्वा, स्वधायै त्वा) अनुपहिंसित, अर्जुनतुल्य इन्द्र, देशका भय दूर करने के निमित्त अचलताके निमित्त, तुझमें तथा देशमें सुभिक्ष सम्पादन करने के निमित्त तुमपर आरोहण करता हूं । हे रथधुरवाहक अश्व ! (मरुतां, प्रसवेन, जय) मरुद्गणों की आज्ञासे वेगवान् होकर शत्रुओंको जीतो हमने जो कार्य आरम्भ कियाहै उसको (मनसा, अपाम) मनके अनुसार सम्पन्न किया । हम (इन्द्रियेण, सम्) वीर्यसे संगत हुए ॥ २१ ॥

मा त इन्द्र ते वयन्तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम । तिष्ठारथमधि यं वज्रहस्तारश्मीन्देव यमसेस्वश्वान् ॥ २२ ॥

इसका संवरण ऋ० निचृ० त्रि० छ० और इन्द्र देवता है मंत्रार्थ-(तुराषाट्, वज्रहस्त, इन्द्र, देव, यं, रथं, अधितिष्ठ, स्वश्वान, रश्मीन, आयमसे; ते, वयं, ते, अयुक्ताः, मा, विदसाम अब्रह्मता) शीघ्र शत्रुओंका तिरस्कार करने में लघुहस्त हाथमें वज्रधारण करनेवाले हे ऐश्वर्ययुक्त, हे दीप्यमान ! तुम जिस रथ में स्थित होकर अच्छे सुशिक्षित घोड़ोंकी लगामों को थामते हो हम तुम्हारे तिस रथसे भिन्न हुए हानि को प्राप्त न करें, ब्रह्म नहीं है इसप्रकार अज्ञानसे अन्य वस्तु न जाने ॥ २२ ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्म्मा माहिꣳसीर्मो अहन्त्वाम् ॥ २३ ॥

इस क० में ५ म० हैं। सबका संवरण ऋ०। छं० १, २, याजुषी प० ३, ४, याजुष्य० ५ आसु० और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मन्त्रार्थ-(गृहपतये, अग्नये, स्वाहा, वनस्पतये सोमाय स्वाहा, मरुतां, ओजसे स्वाहा, इन्द्रस्य, इन्द्रियाय, स्वाहा) गृह पालक अग्निदेवताके निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो,। वनस्पति रूपी, सोमकी प्रीति के निमित्त श्रेष्ठ होम हो. मरुद्गणों के बल के निमित्त हवि देतेहैं, इन्द्रके वीर्यके निमित्त हवि देतेहैं। (मात, पृथिवि, मा माहिंसीः, अहं त्वा, मा०) हे जगत् की निर्माता पृथ्वी! तुम मुझको मतहिंसा करो मैं तुमको क्लेश न दूं ॥२३॥

हꣳस शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ २४ ॥

इसका वामदेव ऋ०। अति ज० छं० और सूर्य देवता है। मंत्रार्थ-(शुचिषत्, हंस, अन्तरिक्षसत्, वसु, वेदिषत्, होता, दुरोणसत्, अतिथि, नृषत्, वरसत्, ऋतसत्, व्योमसत्, उ, अब्जा, गोजाः, ऋतजा, अद्रिजा, ऋतम्, बृहत्) पवित्रस्थान दीप्ति में आदित्यरूप से स्थित अहंकारका दूर करनेवाला आत्मा वायुरूपसे अन्तरिक्षमें स्थित मनुष्योंका प्रवर्त्तक अग्निरूपसे वेदी में स्थित होकर देवताओं का आह्वान करनेवाला आहवनीय रूप से यज्ञमें स्थित सबका पूजनीय मनुष्यों में प्राणभाव से स्थित, उत्कृष्ट स्थानों क्षेत्रों में स्थित, यज्ञ में स्थित आकाश में मण्डल रूपसे स्थित इसप्रकार सर्व स्थितिसे प्रार्थना करके सबके उत्पत्ति द्वारसे प्रार्थना करते हैं, और जो मत्स्यादिरूप से जलोंमें होता चतुर्विध भूतग्राम रूपसे भूमिमें होनेवाला, सत्यमें होनेवाले पाषाण अग्निरूपसे होनेवाले, मेघमें जलरूपसे होनेवाले, सर्वगत

अपर्यन्त परब्रह्मरूप परमात्मा का स्मरणकर रथसे उतरता हूं २४

इयदस्यायुरस्यायुर्म्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि
वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जम्मयि धेहि। इन्द्रस्य वां
वीर्य्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका वामदेव ऋ० छं० १ साम्नी ज०२ प्राजा० गा० ३, नि० गा०, तु० और देवता १ हिरण्य, २ शाखा ३ बाहू है। मंत्रार्थ-हे शतमान! तुम (इयत्, असि आयुः, असि, मयि, आयुः, धेहि) सौ रत्तीके इतने परिमाणवाले हो। जीवन हो, सुवर्णदानसे दीर्घायु होती है, मुझमें जीव धारण करो। हे शतमान! तुम (युङ्, असि, वर्चः, असि, मे, वर्चः, [illegible] दो दानसे पहरने से तेजकी [illegible] धारण कराओ। हे उद- [illegible] धेहि, वीर्यकृतौ, इन्द्रस्य, बाहू, वां, अभ्युपावहरामि), अन्नवृद्धि के कारण हो, शकट में होकर अन्न आता है अन्न को मुझ में स्थापत करो, वीर्य के करने वाली परमऐश्वर्यवान यजमान की, हे दोनो भुजाओं! मैं, तुम दोनों को मित्रावारुणी पयस्या के प्रति नीची करता हूँ॥ २५ ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्यो-
नामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥२६॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका वामदेव ऋ० है, छं० १, २ दैवीज०, ३ भुरिगार्षी गा०, और देवता १, २ आसन्दिवस्त्र, ३ यजमान है। मंत्रार्थ—हे स्यूत आसन्दि! तुम (स्योना, असि, सुखदा, असि) सुखरूप हो तथा सुखसे बैठनेयोग्य हो। हे अधोवास! तुम (क्षत्रस्य, योनिः, असि) क्षत्रधर्माश्रित इस यजमान के, आधार के उपयुक्त स्थान हो। हे यजमान! (स्योनां आसीद, सुखदां आसीद, क्षत्रस्य, योनिं, आसीद) सुख की करनेवाली आसन्दी में आरोहणकर सुख से उपवेशन के योग्य में बैठो, यह अधिवास और आसन्दी तुम्हारी समान राजपुरुष

के उपवेशन योग्य आधार है, इसपर बैठो ॥ २६ ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पुस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

इसका शुनःशेप ऋ० है । वर्द्धमाना गा० छं० वरुण देवता है । मंत्रार्थ-(धृतव्रतः, सुक्रतुः, वरुणः, साम्राज्याय, पस्त्यासु, आनिषसाद) यज्ञलक्षण व्रत के धारण करनेवाले श्रेष्ठ संकल्प अनिष्टके निवारण करनेवाले इस यजमानने सम्राट्भाव के निमित्त प्रजाओंमें आधिपत्यरूपसे स्थिति की ॥ २७ ॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यौजा इन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः । बहुंकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥

इस कं० में ८ मं० हैं । सबका शुनःशेप ऋषि है । छं० १ साम्न्युष्णिक् २ याजुषी गा० ३ या० बृ० ४ याजुष्युष्णिक्, ५ ६ या० गा० ७ याजु० ज० ८ याजु० त्रि० और देवता १ अक्षा यज्ञ० २, ४, ५, ६ ब्रह्म दे० ७ लिङ्गो० ८ स्फ्य है । मंत्रार्थ-हे यजमान ! तुम (अभिभूः, असि, एताः, पञ्चदिशः, ते कल्पन्ताम्) इन पासे के द्वारा सकल जगत् के पराभव करनेवाले हो, यह पांच पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्द्ध दिशा इसके द्वारा तुम्हारे हस्तगत प्राप्त हों । (ब्रह्मन्, ब्रह्मा, असि, ब्रह्मा सत्यप्रसवः, सविता, असि) हे ब्रह्मन् ! तुम ब्रह्माकी महिमावाले हो, हे यजमान ! तुम महा महिमावाले अनुल्लंघ्य उपदेश देने में समर्थ प्रजावर्ग के नियन्ता होने से सविता हो, (ब्रह्मा, त्वं, ब्रह्मा, असि, सत्यौजाः, वरुणः, असि) हे यजमान ! महा महिमावाले तुम अमोघवीर्य प्रजावर्ग के अनिष्ट निवारण करने से वरुण हो, (ब्रह्मन्, विशौजाः, इन्द्रः, असि, ब्रह्मन्, सुशेवः रुद्रः, असि, ब्रह्मन्, ब्रह्मा, असि) हे महिमावाले, यजमान ! तुम

ऐश्वर्यवान् देशकी शान्ति की रक्षा करने से इन्द्र हो, हे महा-महिमा वाले यजमान! तुम आश्रित जनोंके सुख देनेवाले पुनः देवनीय तथा शत्रुगणों की स्त्रियोंके रुलानेवाले रुद्र हो, हे यजमान तुम ब्रह्मा अर्थात् महा महिमावाले हो, इसकारण ब्रह्मा हो। (बहुकार, श्रेयस्कर, भूयस्कर) हे सम्पूर्ण कार्यमें निपुण प्रत्येक श्रेष्ठकार्यप्रवर्त्तक बहुत कार्यकारी, इस स्थानमें आगमन करो। हे स्फ्य! तुम (इन्द्रस्य, वज्रः, असि, तेन, मे, रध्य) इन्द्र का वज्र हो, इसकारण मेरे यजमान के वशवर्ती होकर, कार्य साधन करो॥ २८॥

अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॑र्जुषा॒णो अ॒ग्निः पृ॒थु-र्धर्म॑ण॒स्पति॒राज्य॑स्य वेतु॒ स्वाहा॑ स्वाहा॑कृताः सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑र्यतध्वꣳ सजा॒तानां॑ मध्यमे॒ष्ठ्या॑य॥ २९॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका शुनःशेप ऋ०। छं०,१ मा० त्रि०, २ साम्नी त्रि० और दे०–१ अग्नि, २ अश्व है। मंत्रार्थ–(अग्निः, पृथुः, धर्मणः, पतिः, जुषाणः, पृथुः धर्मणः, पतिः, अग्निः आज्यस्य वेतु, स्वाहा) महान अग्निदेवता, देवताओं में प्रथम होने से विशाल, जगत् के धारण करनेवाले धर्मका स्वामी प्रीयमाण हवि का सेवन करनेवाला, जो देखते २ अति महत् होता है जो गृहस्थियों के गृहधर्म का प्रधान साक्षी है वह अति विपुल धर्मस्वरूप, अग्निदेवता हमारी दीहुई घृत की हवि प्रीति पूर्वक भक्षण करे; यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो। हे अश्वगण! (स्वाहाकृताः, सूर्यस्य, रश्मिभिः, सजातानां, मध्यमेष्ठ्याय, यतध्वम्) आहुति प्रदानपूर्वक गृहीत तुम, अतिप्रचण्ड सूर्य की किरणों से सम्मिलित हुए स्पर्धा करो, समानजन्म क्षत्रिय भाइयों के मध्य में सब से श्रेष्ठ करने को यत्न करो॥ २९॥

स॒वि॒त्रा प्र॑सवि॒त्रा सर॑स्वत्या वा॒चा त्वष्ट्रा॑ रू॒पैः पू॒ष्णा प॒शुभि॒रिन्द्रे॑णा॒स्मे बृह॒स्पति॑ना

ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन
राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्प्पामि ॥ ३० ॥

इसका शुनःशेप ऋ० निचृदत्यष्टि छं० सवितादया देवता हैं, मंत्रार्थ-(प्रसवित्रा, सवित्रा, वाचा, सरस्वत्या, रूपैः, त्वष्ट्रा, पशुभिः, पूष्णा, अस्मे, इन्द्रेण, ब्रह्मणा, बृहस्पतिना, ओजसा, वरुणेन, तेजसा, अग्निना, राज्ञा, चन्द्रेण, दशम्या, देवतया, विष्णुना, प्रसूतः, प्रसर्पामि) समस्त जीवोंके प्रेरणा करनेवाले सविता सूर्य, वाक्रूपा सरस्वती, रूपके अधिष्ठात्री त्वष्टा देवता पशुओंसे उपलक्षित पूषा देवता स्वयं, इन्द्र, देवयाग में महत्वको प्राप्तहुए बृहस्पति बड़े तेजसेयुक्त वरुण तेजसेयुक्त अग्नि औषधि ब्राह्मणोंके अधिप दीप्यमान चन्द्रमा दशासंख्या के पूर्ण करनेवाले यज्ञ के अधिष्ठात्री देव परमात्मा, नारायण के द्वारा, अनुज्ञा कियाहुआ, मैं प्रसर्पण करता हूं ॥ ३० ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय
सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्
सोमो अतिसुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । ऋ० १ अश्विना वृ० २, ३, ४, शुनःशेप ऋ० हैं । छं० १ या० गा० २ याजुष्यु० ३ या० बृ० ४ निचृद्गा गा० छं० देवता १, २, ३, लिङ्गोक्त ४ सोम है । मंत्रार्थ-हे सुरांके योग्य ब्रीहि ! (अश्विभ्यां, पच्यस्व, सरस्वत्यै, पच्यस्व सुत्राम्णे, इन्द्राय, पच्यस्व) अश्विनीकुमार देवताओं की प्रीति के निमित्त, रसरूपसे परिणत हो, सरस्वती देवी की प्रीतिके निमित्त पचकर रूपान्तर को परिणत हो, भलीप्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र देवता की प्रीति के निमित्त पाकको प्राप्त हो (इन्द्रस्य युज्यः, सखा, पवित्रेण, पूतः, वायुः, सोमः, प्रत्यङ्, अतिसुतः) इन्द्र का योग्य मित्रभूत, पवित्रद्वारा शुद्ध किया, तथा वायु द्वारा पवित्र हुआ, सोम इस पवित्रद्वारा अधोमुख क्षरित होताहुआ, अतिक्रमण करगया ॥ ३१ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषाङ्कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

इसका काक्षीवतसुकीर्त्ति ऋ०, निचृद्ब्राह्मी त्रि० छं०, सोमदेवता है। मंत्रार्थ-हे सोम (यथा, इह, यवमन्तः, कुवित, यवं, चित्, अनुपूर्वम्, वियूय, अङ्ग, दान्ति) जिसप्रकार इस लोक में बहुत यव से संपन्न एकमात्र किसान, बहुतसे यवसे पूर्ण शस्य को, विचार करके क्रम से पृथक् करके शीघ्र कर्त्तन करते हैं, इसीप्रकार अति अल्पमात्र तुम देवगणों के प्रियहो (एषां, भोजनानि, इह, कृणुहि, ये, बर्हिषि, नमः, उक्तिं, यजन्ति) इन यजमानों के सम्बन्धी, विविध प्रकार के भोजन, इस यजमान में सम्पादन करो, जो कुशासन पर बैठेहुए ऋत्विग्गण, हविर्लक्षणवाले अन्न को लेकर याज्य का नाम लेकर याग करते हैं। हे सोम! तुम (उपयामगृहीतः, असि) उपयामपात्र में गृहीत हो (अश्विभ्यां, त्वा) अश्विनीकुमार की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूं। हे सोम! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (सरस्वत्यै, त्वा) सरस्वती देवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं। हे सोम! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (सुत्राम्णे, इन्द्राय, त्वा) पालक इन्द्रदेवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं ३२

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रङ्कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

इसका काक्षीवत सुकीर्त्ति ऋ०, निचृदार्ष्यनुष्टुप् छं०, अश्वि सरस्वतीन्द्रा देवता है। मंत्रार्थ (अश्विना, नमुचौ, आसुरे, सुरामम्, सचा, विपिपाना, शुभः, पती, युवम्, कर्मसु, इन्द्रं, आवतम्) हे सर्वजनहितकारी अश्विनीकुमार! नमुचिसंज्ञक दैत्य में स्थित अधिक रमणीय सोम को, साथ विविधप्रकार से पीतेहुए शुभकर्म के पालक तुमने उन उन कार्यों में इन्द्र का

पालन किया ॥ ३३ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दृᳬ-
सनाभिः। यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती
त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

इसका कासीवत सुकीर्त्ति ऋ० शुरिगार्ची पं० छं० अश्विसरस्वतीन्द्रा देवता है । मंत्रार्थ-(इन्द्र, उभा, अश्विना, काव्यैः, दंसनाभिः, त्वा, आवथुः, इव, पितरौ, पुत्रं, यत, मघवन्, शचीभिः सुरामम्, व्यपिबः, सरस्वती, अभिष्णक्) हे इन्द्र ! दोनों हितकारी अश्विनीकुमार मन्त्र देखनेवाले महर्षियों के काव्य और कर्मों से प्रयोगोंसे असुर सहवाससे अशुद्ध सोमरस पानकर विपत्ति को प्राप्त हुए तुमको रक्षा करतेहुए जैसे माता पिता पुत्रकी रक्षा करते हैं, जिसप्रकार हे इन्द्र ! तुमने नमुचि वधादिकर्म करके पान करते हो प्रसन्न करनेवाले रमणीय सोम को विशेषकर पान किया सरस्वती वाणी तुम्हारी अनुगत है, सेवा करती है ॥ ३४ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का भाषानुवाद दसम अध्याय समाप्त.

अथ एकादशोऽध्यायः

जिसमें अभिषेक के लिये जल लाना आदि राजसूय यज्ञ प्रधान है ऐसे दशम अध्याय में अभिषेक से लेकर राजसूय पर्यंत मन्त्र कहे । अब ग्यारह से लेकर अठारहवें अध्याय तक अग्निचयन के मन्त्र कहेजायँगे ॥

युञ्जानः प्रथमम्मनस्तत्वाय सविता धियम् ।
अग्नेर्ज्योतिर्न्निचाय्य पृथिव्या अद्ध्याभरत् ॥ १ ॥

प्रजापति ऋ०, विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्द और सविता देवता है। मंत्रार्थ-(सविता, मनः, प्रथमं, युञ्जानः, अग्निः, ज्योतिः, धियम्, तत्वाय, निचाय्य, पृथिव्यै, अध्याभरत) सबके प्रेरणा करने वाले प्रजापति अग्निके आरम्भ में मनको पहले एकाग्रकर अग्नि

के तेज को, बुद्धिपूर्वक इष्टिकादि ग्राम को पंच पशुओं में प्रविष्ट जानकर मानसभूमि के लिये धारण किया ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयन्देवस्य सवितुः सवे । स्व-
र्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

प्रजापति ऋ०, शंकुमती गा० छ० और सविता देवता है । मंत्रार्थ-(सवितुः, देवस्य, सवे, वयं, युक्तेन, मनसा, स्वर्ग्याय, शक्त्या) संसार को अपने २ कर्म में प्रेरणा करनेवाले सविता देव की आज्ञा में वर्त्तमान हम एकाग्र मनसे स्वर्ग के साधन करनेवाले कर्म में, अपनी सामर्थ्य से प्रयत्न करते हैं ॥ २ ॥

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् । बृह-
ज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, त्रिष्टुप् छं० सविता दे० है । मंत्रार्थ-जिसकारण से जगत्प्रेरक देवता (सविता, तान्, धिया, दिवं, स्वः, यतः, बृहत्, ज्योतिः, करिष्यतः, देवान्, युक्त्वाय, प्रसुवाति) सब देवताओं को स्वर्ग में प्रेरणा करनेवाला तथा इन्द्रिय गणों को दमन करनेवाला है, वह, बुद्धिपूर्वक कर्मानुष्ठान से प्रकाशमान स्वर्ग को जानेवाले, महान् आदित्य नामक आत्मज्योति को संस्कार करनेवाले, प्रसिद्ध देवताओं को अग्नि कर्म में संयुक्त कर प्रेरणा करता है ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य
बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, जगतीछन्द, सविता देवता है । मंत्रार्थ-(बृहतः, विपश्चितः, विप्रस्य, होत्राः, विप्राः, मनः, युञ्जते, उत, धियः, युञ्जते, एकः, इत्, वयुनावित्, विदधे, सवितुः, देवस्य, परिष्टुतिः, मही) अतिमहान् महापण्डित ब्राह्मण यजमान का, होत्र कार्य करनेवाले अध्वर्यु आदि, इस अग्निचयन कार्य में मन नियुक्त करते हैं, और बुद्धि नियुक्त करते हैं, एक, अद्वितीय ही

ब्रह्मा तथा ऋत्विक् यजमान के अभिप्राय के ज्ञाता ने, यह सब जगत् निर्माण किया है, सब के प्रेरक सविता देव की, सब वेदों में सुनीहुई स्तुति महान है ॥ ४ ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोकं एतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, विराडार्षी त्रि० छ०, सविता दे० है । मंत्रार्थ--(वाम, नमोभिः, पूर्व्यं, ब्रह्म, युजे, ब्रह्म, सूरेः, श्लोकः, व्येतु, इव, पथ्या, अमृतस्य, पुत्राः, विश्वे, शृण्वन्तु, ये, दिव्यानि, धामानि, आतस्थुः) हे पत्नी और यजमान ! तुम्हारे निमित्त, नम उक्ति सहित, पुरातन महर्षियों से अनुष्ठित, अग्निचयनाख्य आत्म-ज्योतिवर्द्धक कर्म सम्पादन करता हूं, ब्राह्मणजाति को अन्नों से युक्त करता हूं, पण्डित यजमान की कीर्ति लोकद्वय में प्राप्त हो, जैसे यज्ञमान में प्रवृत्त हुई आहुति लोकद्वय को प्राप्त होती है, मरणधर्मरहित प्रजापति के पुत्र सम्पूर्ण देवता यजमान की कीर्ति को सुनें, जो दिव्य स्वर्ग के स्थानों में स्थित हैं ॥ ५ ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निचृदार्षी ज० छं० सविता देवता है । मंत्रार्थ—(अन्ये, देवाः, यस्य, देवस्य, प्रयाणं, महिमानं, इत्, ओजसा, अनुययुः, यः, सविता, रजांसि, विममे, सः, देवः, महित्वना, एतशः) और देवता जिस सविता देवता की मर्यादा को, महिमा को, अवश्य तपोबल से वर्तते हैं, जिस परमात्मा ने सम्पूर्ण लोक निर्माण किए हैं वह परमात्मा अपनी महाभाग्य महिमा के प्रभाव से इस स्थावर जंगम लोक में प्राणरूप से प्रविष्ट हुआ व्याप्त है ॥ ६ ॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।

हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिर-
स्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदा-
भर त्रैष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, भुरिगति शक्वरी छं० सवितृश्री देवता है। मंत्रार्थ-हे अभ्रि (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, गायत्रेण, छंदसा आश्विनोः, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, त्वा, अङ्गिरस्वत्, आददे, अङ्गिरस्वत्, त्रैष्टुभेन छन्दसा, पृथिव्याः, सधस्थात्, पुरीष्यम्, अग्निं, अङ्गिरस्वत्, आभर) सबके प्रेरक सविता, देवकी प्रेरणा से गायत्री छन्दके प्रभावसे, अश्विनीकुमार की भुजासे, पूषा देवताके हाथोंसे तुझ को अङ्गिरा वंशी ऋषियों के समान ग्रहण करता हूं, अङ्गिरा वंशियों की समान त्रिष्टुप् छन्दके प्रभावसे पृथिवीके उत्सङ्ग भीतरसे पशुओंकी हितकारिणी अग्निको अङ्गिरा की समान आहरण कर ॥ ९ ॥

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम
खनितुꣳ सधस्थ आ। जागतेनच्छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥

इसका प्रजापति ऋ० भुरिगनुष्टुप् छं० अभ्रि दे० है। मंत्रार्थ-हे वैणवी तुम (अभ्रिः, असि, नारी, असि, त्वया, वयं, अङ्गिरस्वत्, जागतेन, छन्दसा, सधस्थे, अग्निं, खनितुं, शकेम) उखा निर्माण करने को मृत्खननका कारण आयु विशेष अभ्रि नामवाली हो, स्त्रीरूपा हो, तुम्हारे द्वारा हम अङ्गिरा की समान जगती छंद के प्रभावसे पृथ्वी के उत्सङ्ग में वर्तमान अग्नि को खनन करने को समर्थ हों ॥ १० ॥

हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम्
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदा-
नुष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥

इसका प्रजापति ऋ० भुरिगार्षी पं० छं० सविता देवता है। मंत्रार्थ-(सविता, हस्ते, अङ्गिरस्वत्, हिरण्ययीम्, अभ्रिम्, आधाय बिभ्रत्, अग्नेः, ज्योतिः, निचाय्य, पृथिव्याः, अधि, आनुष्टुभेन

छन्दसा, आभरत्) प्रेरक सविता देवताने, हाथमें अङ्गिरा की समान सुवर्ण की अभ्रिको लेकर उसको धारण करतेहुए अग्नि की ज्योतिको निश्चय करके भूमिके सकाश से अनुष्टुप्छन्दके प्रभाव से आहरण किया ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम्। दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

इसका नाभा नेदिष्ट ऋ०, आस्तार पं० छं०, वाजी देवता है। मंत्रार्थ—(वाजिन्, वरिष्ठाम्, सम्वतम्, अनु, प्रतूर्त्तम्, आद्रव, ते, दिवि, परमं, जन्म, अन्तरिक्षे, तव, नाभिः, पृथिव्यां, अधि, तव, योनिः, इत्) हे अश्व ! हे शीघ्रगामी ! श्रेष्ठ यज्ञभूमि को, लक्ष्य करके, फिर शीघ्र आओ, तेरा द्युलोक में, आदित्यरूप से उत्कृष्ट, जन्म है, अन्तरिक्ष में तेरी नाभि है, पृथिवी के ऊपर तुम्हारा स्थान है, अर्थात् भूमि में तुम्हारा निवासस्थान प्रत्यक्ष दीखता है विराट्रूप से अश्व की स्तुति कीजाती है ॥ १२ ॥

युञ्जाथाᳫं रासभं युवमस्मिन्यामे वृषण्वसू। अग्निम्भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

इसका कुश्रि ऋषि है, गायत्री छं०, रासभ देवता है। मंत्रार्थ—(वृषण्वसू, युवम्, अस्मिन्, यामे, अस्मयुम्, अग्निम्भरन्तं, रासभम्) हे अध्वर्यु ! और यजमान, तुम दोनों इस अग्निकर्म में अपने हितकारी अग्निरूप मृत्तिका को वहन करनेवाले, रासभ को नियुक्त करो ॥ १३ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, गायत्री छं० अज देवता है। मंत्रार्थ—(सखायः, योगे योगे, तवस्तरम्, इन्द्रम्, ऊतये, वाजे वाजे, हवामहे) परस्पर मित्रताको प्राप्त हुए, हम ऋत्विज् यजमान् सब प्रत्येक कर्म में उत्साहवान्,बलवान् अजको, रक्षाके निमित्त

और पितरोंके तृप्त होनेयोग्य अन्नप्राप्तिके कर्ममें आह्वान करते हैं ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यम्मयो भूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन्पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका शुनःशेप ऋ० छं० १ निचृ० गा० २ भुरिगा० गा० और देवता १ अश्व, २ रासभ है। मंत्रार्थ-(प्रतूर्वन्, अशस्तीः, अवक्रामन्, एहि, मयोभूः, रुद्रस्य, गाणपत्यम्, एहि) हे अश्व ! तुम शत्रुगण को वध करते शत्रुओंकी कीहुई निन्दाको निवारण करते हमारे निकट आवो, हमारे सुख के कारण होतेहुए रुद्र देवताके गणपतित्वको प्राप्त हो, हे रासभ ! (स्वस्ति, गव्यूतिः, अभयानि, कृण्वन्, सयुजा, पूष्णा, उरु, अन्तरिक्षं, वीहि) मंगलसहित गमनवाले तुम हमको अभय करते ऋत्विज यजमानादि का रोग दूर करते समान योगी पृथ्वीके साथ विस्तीर्ण अन्तरिक्षको विशेषकर प्राप्त हो ॥ १५ ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ १६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका शुनःशेप ऋ० छं० १ आ० गा० २ सा० गा० ३ आसु० अनु० और देवता १ अग्नि २ अश्वाद्या ३ अग्नि है। मंत्रार्थ-हे अश्व ! (पृथिव्याः, सधस्थात्, पुरीष्यम्, अग्निं, अंगिरस्वत्, आभर) भूमिके स्थानसे पशु सम्बन्धी अग्नि को अङ्गिराकी समान आहरण कर (पुरीष्यम्, अग्निं, अंगिरस्वत्, अच्छ, इमः) पशु सम्बन्धी अग्निको अंगिराकी समान प्राप्त होनेको अभिमुख प्राप्त होते हैं (पुरीष्यं, अग्निं, अंगिरस्वत् भरिष्यामः) पशु सम्बन्धी अग्नि को अंगिरा की समान सम्पादन करेंगे ॥ १६ ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावा-

पृथिवी आततन्थ ॥ १७ ॥

इसका पुरोधा ऋ०, निचृदार्षी त्रि० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्निः, उषसां, अग्रम्, अन्वख्यत्, जातवेदाः, प्रथमः, अहानि, अनु, सूर्यस्य, रश्मीन्, पुरुत्रा, अनु, च, द्यावापृथिवी, अनु, आततन्थ) जो अग्नि उषाकाल से पहले अग्निरूप से अनुक्रम से प्रकाशित रहा, सबका जाननेवाला यह अग्नि मुख्य रूप से दिनों को प्रकाश करताहुआ, सूर्य की किरणों को बहुत प्रकार से प्रकाश करताहुआ और स्वर्ग पृथ्वी को क्रम से सब प्रकार प्रकाशित करताहुआ, उस सर्वप्रकाशक लोकस्रष्टा अग्नि को हम देखते हैं ॥ १७ ॥

आगत्यं वाज्यध्वानॅठ सर्वामृधो विधूनुते ।
अग्निॅठ सुधस्थे महुति चक्षुषा निचिकीषते ॥१८॥

इसका मयोभू ऋषि है, निचृदनु० छं०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ—(वाजी, अध्वानं, आगत्य, सर्वाः, मृधः, विधूनुते, महति, सधस्थे, चक्षुषा, अग्निं, निचिकीषते) यह वेगवान् अश्व मार्ग को आकर सब संग्रामों को कम्पितकरता है, उत्कृष्ट पृथ्वी के स्थान में वर्त्तमान, स्थिर चक्षु से अग्नि को देखता है ॥ १८ ॥

आक्रम्य वाजिन्पृथिवीमुग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

इसका मयोभू ऋ० निचृदनु० छं० अश्व देवता है मंत्रार्थ—(वाजिन् त्वं, पृथिवीम्, आक्रम्य, रुचा, अग्निं, इच्छ, भूम्याः, वृत्वाय, नः, ब्रूहि, यतः वयं, तम्, खनेम) हे अश्व ! तू भूमिको आक्रमण करके दीप्ति आदि के द्वारा अग्निको, अन्वेषण कर भूमिके प्रदेशको छूकर हमसे यह कहो कि यह देश अग्नि हेतु के मृत्तिकाके योग्य है इसप्रकार कथन करो कि जिस देशसे हम उस अग्निको खनन करें ॥ १९ ॥

द्यौस्ते पृष्ठम्पृथिवी सुधस्थमात्मान्तरिक्षॅठ स-
मुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वामभितिष्ठ

पृतन्यतः ॥ २० ॥

इसका मयोभूर्ऋषि, निचृदार्षी त्रि० छं०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ–हे अश्व ! (द्यौः, ते, पृष्ठम्, पृथिवी, सधस्थम्, अन्तरिक्षं, आत्मा, समुद्रः, योनिः, त्वं, चक्षुषा, विख्याय, पृतन्यतः अभितिष्ठ) स्वर्ग तुम्हारा पृष्ठ है, भूमि पात्र है, अन्तरिक्ष जीवात्मा है समुद्र के जल तुम्हारी उत्पत्ति का कारण है तुम नेत्रों से उखाने योग्य मृत्तिका को देखकर संग्राम करने की इच्छा करनेवाले शत्रु राक्षसादि को मृत्तिका में गूढ़ स्थित जानकर, चरणों से आक्रमण कर नष्ट करो ॥ २० ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद्द्रविणोदा वाजिन् । वयᳪ स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

इसका मयोभू ऋ०, विराडार्षी पं० छं०, अश्वदे० है। मंत्रार्थ–(वाजिन् द्रविणोदाः महते, सौभगाय, अस्मात्, आस्थानात्, उत्क्राम, अस्याः, पृथिव्याः, उपस्थे, अग्निं, खनन्तः, वयं, सुमतौ स्याम) हे अश्व ! धनके देनेवाले तुम बड़े महाभाग्य की वृद्धि के निमित्त, इस स्थान से उत्क्रमण करो इस पृथ्वीके उपरीभाग में अग्नि को खनन करनेका उद्योग करतेहुए हम सानुग्रह श्रेष्ठ बुद्धि में स्थित होवें ॥ २१ ॥

उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकᳪ सुकृतम्पृथिव्याम् । ततः खनेम सुप्रतीकमग्निᳪ स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

इसका मयोभूः ऋषि, निचृदार्षी त्रि० छं०, अश्व दे० है। मंत्रार्थ–(अर्वा, द्रविणोदाः वाजी, पृथिव्यां, उदक्रमीत्, सुलोकं, सुकृतं, अकः, ततः, नाकम्, उत्तमम् स्वः, अधिरुहाणाः, सुप्रतीकम्, अग्निं, खनेम) चञ्चल धनप्रद अश्व पृथिवी में मृत्पिण्ड से उतर आया सुन्दरलोक को पुण्यवान् किया उस देशसे दुःख रहित श्रेष्ठ स्वर्ग को आरोहण करने की इच्छा करनेवाले हम

सुन्दर सुखदेनेवाले पुरीष्य अग्निको मृत्पिण्ड से खनन करनेका उद्योग करते हैं ॥ २२ ॥

आ त्वा जिघर्म्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तम्भुवनानि विश्वा । पृथुन्तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

इसका गृत्समद ऋषि, आर्षी त्रि० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—हे अग्ने ! (विश्वानि, भुवनानि, प्रतिक्षियन्तं, तिरश्चा, पृथुम्, वयसा, बृहन्तं, व्यचिष्ठं, अन्नैः, रभसम्, दृशानं, त्वा, मनसा, घृतेन, आजिघर्मि) सम्पूर्ण भुवनों में निवास करतेहुए तिर्यक् प्रमाण, ज्योति से विस्तीर्ण, धूम से महान्, अवकाशवान्, विविध अन्नों करके परिपूर्ण, उत्साहसम्पन्न, प्रत्यक्ष गोचर, तुम को श्रद्धायुक्त चित्त से, घृतद्वारा प्रदीप्त करता हूं ॥ २३ ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चञ्जिघर्म्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत । मर्य्यश्री स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, आर्षी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मन्त्रार्थ–हे अग्ने ! (विश्वतः, प्रत्यञ्चम्, आजिघर्मि, अरक्षसा, मनसा, तत्, जुषेत, मर्य्यश्रीः, स्पृहयद्वर्णः, तन्वा, जर्भुराणः, अग्निः, अभिमृशे, न) सब ओर प्रत्यगात्मा रूपसे व्याप्त हो घृत द्वारा निष्कपट मन से सिञ्चन करता हूं, क्रोधरहित चित्त से उस घृत को सेवन करो, मनुष्यों से सेवन करनेयोग्य दर्शनीय कान्तिमान् स्वरूप वाले शरीर से इधर उधर गमन करने वाली अग्नि अभिमर्शन के योग्य नहीं है ॥ २४ ॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

इसका सोमक ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ–(वाजपतिः, कविः, अग्निः, दाशुषे, रत्नानि, दधत्, हव्यानि, पर्यक्रमीत्) अन्न का पति, क्रान्तदर्शी अग्नि हवि

वाले यजमान के निमित्त, मनोहर विविध रत्न प्रदानपूर्वक हवियों को स्वीकार करताहुआ ॥ २५ ॥

परि॑त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्र॑ꣳ सहस्य धीमहि ।
धृ॒षद्व॑र्णन्दि॒वे दि॑वे ह॒न्तारम्भङ्गु॒राव॑ताम् ॥२६॥

इसका पायु ऋषि है, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (सहस्य, अग्ने, पुरं, विप्रं, धृषद्वर्णं, दिवे, दिवे, भङ्गुरावताम्, हन्तारं, त्वा, वयं, परिधीमहि) बलसे मथनकर उत्पन्न होनेवाले हे अग्नि ! पुर रूपसे सबके शरीर में स्थित, पालन करने वाले बुद्धिसम्पन्न, असह्यरूप प्रतिदिन राक्षस दल को मारनेवाले, तुमको हम सब ओरसे ध्यान करते हैं ॥ २६ ॥

त्वम॑ग्ने॒ द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वम॒श्म॑न॒स्परि॑ । त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वन्नृ॒णान्नृ॑पते जायसे॒ शुचिः॑ ॥ २७ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, पंक्ति छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(नृपते, अग्ने, शुचिः, आशुशुक्षणिः, त्वं, द्युभिः, जायसे, त्वम् अद्भ्यः, त्वं, अश्मनः, परि त्वम्, वनेभ्यः, त्वम्, ओषधीभ्यः, त्वम्, नृणाम्) मनुष्योंके पालक अग्नि परमपवित्र आर्द्र भूमिको कान्तिसे शोषकर कान्तिसे अन्धकारके दूर करनेवाले हो। तुम प्रतिदिन मथन करने से उत्पन्न होते हो । तुम जलों से बिजलीरूप करके उत्पन्न होते हो, तुम पाषाणसे दूसरा पाषाण लगने से उत्पन्न होतेहो तुम वनोंमें अरणि काष्ठ से तुम ओषधियोंसे वंशादिसे तुम अग्नि होत्र करनेवाले मनुष्यों के घर में होते हो ॥ २७ ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳖श्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑म्पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निम्पु॑री॒ष्यम॑ङ्गि॒र॒स्वत्ख॑नामि । ज्योति॑ष्मन्तन्त्वाग्ने सु॒प्रती॑कम॒जस्रे॑ण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम् । शि॒वम्प्र॒जाभ्यो॒ऽहि॑ꣳसन्तम्पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निम्पु॑री॒ष्यम॑ङ्गि॒र॒स्वत्ख॑नामः ॥ २८ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका गृत्समद ऋ० छन्द १ भाजा प० वृ० २ भार्ची गा० ३ भुराडा० त्रि० है। और दे० १ अश्वि २, ३ अग्नि है। मंत्रार्थ–हे अग्नि (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, पुरीष्यं, अग्निम्, पृथिव्याः सधस्थात्, अङ्गिरस्वत्, खनामि) सबके प्रेरक सविता देवके आज्ञा में वर्त्तमान अश्विनीकुमार की भुजाओं से पूषा देवताके हाथोंसे पशु सम्बन्धी अग्निको भूमि के ऊपर मेदेशसे अंगिराकी समान खनन करता हूँ। (अग्ने ज्योतिष्मन्तं, सुप्रतीकं, अजस्रेण, भानुना दीद्यतम्, प्रजाभ्यः, शिवम्, अहिंसन्तं, त्वा, पुरीष्यं, अग्निं, पृथिव्याः, सधस्थात्, अङ्गिरस्वत्, खनामः) हे अग्ने ! ज्वालायुक्त सुमुख निरन्तर वर्धमान, रश्मियों से दीप्तिमान, प्रजाके उपकार के निमित्त, शान्तरूप हिंसा न करनेवाले शुभ पुरीष्य अग्निको भूमिके गर्भ से अंगिरा की समान खनन करते हैं॥ २८ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्। वर्द्धमानो महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका गृत्समद ऋषि है छं० १ भुरि गा० पं० २, आ० पं० और देवता पुष्करपर्ण है, मंत्रार्थ–हे पद्म तुम (अपां, पृष्ठं, अग्नेः, योनिः, असि, पिन्वमानं, समुद्रं, अभितः वर्द्धमानः, महान, पुष्करे, आ) जलोंके ऊपर रहने से पृष्ठरूप हो अग्निके निमित्त पिण्ड के कारण हो, सींचतेहुए जल समुद्रको सब ओरसे वृद्धिको प्राप्त, बड़े जलमें सबप्रकार स्थित हो। हे पद्म (दिवः, मात्रया, वरिम्णा, प्रथस्व) द्युलोकके परिमाण की दीर्घता से विस्तारको प्राप्त हो ॥ २९ ॥

शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽच्छिद्रे बहुले उभे। व्यचस्वती संवसाथाम्भृतमग्निम्पुरीष्यम् ॥३०॥

इसका गृत्समद ऋ०, विराडानुष्टु० छं० कृष्णाजिन पुष्कर पर्ण देवता है। मंत्रार्थ–हे कृष्णाजिन ! हे पुष्कर पर्ण (अच्छिद्रे

बहुले, व्यचस्वती, उभे, शं, स्यः, च, वर्म, स्यः, पुरीष्यं, अग्निं संवसाथां, च, भृतम्) छिद्रशून्य बहुलविस्तारवाले अवकाशवाले तुम दोनों अग्निके सुखकारी हो, और कवचकी समान रक्षा करने वाले हो, पुरीष्य अग्निको आच्छादन करो, और धारण करो २०

संवसाथार्थं स्वर्विदा समीची उरसात्मना ।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ २१ ॥

इसका गृत्समद ऋ० निचृदनु० छं० कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवता है। मंत्रार्थ--हे कृष्णाजिन। हे पुष्करपर्ण ! (स्वर्विदा, समीची, अजस्रमित्, ज्योतिष्मन्तम्, अग्निं, अन्तः, उदरे, भरिष्यन्ती, उरसात्मना, अग्निं, सम्वसाथाम्) स्वर्गलाभके साधन एकचित्त मिले हुए, निरन्तर तेजवान अग्निको भीतर उदरमें धारण करतेहुए, हृदयरूप अपने शरीर से अग्नि को चिरकाल धारण करते आच्छादित रक्खो ॥ २१ ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका भर० ऋ० है। छं० १ आर्च्युष्णिक् १ निचृदार्षी गा० और सबका अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--(अग्ने, पुरीष्यः, विश्वभरा, असि, प्रथमः, अथर्वा, त्वा, निरमन्थत्) हे अग्ने ! तुम पशुओंके हितकारी समस्त चराचर के पालन करनेवाले हो, सबसे प्रथम प्राणने तुमको प्रकाशित किया था। हे अग्नि ! (अथर्वा, पुष्करात्, अधि, त्वां, निरमन्थत्, विश्वस्य, वाघतः, मूर्ध्नः) प्राण ने जलके सकाशसे तुमको मथित किया, सम्पूर्ण संसारके सम्बन्धी ऋत्विजोंने आदरसे तुमको मथित किया

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणम्पुरन्दरम् ॥ २३ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० निचृद् गा० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ (- अथर्वणः, पुत्रः, दध्यङ्, तमु, वृत्रहणम्, पुरन्दरम्, त्वा, ईधे)·

अथर्व के पुत्र दध्यङ् नामक ऋषि ने उस पापनाशक रुद्ररूपसे पुर सम्बन्धी तीन आवरणों के भेदक तुमको प्रज्वलित किया ।३३।

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयꣳ रणे रणे ॥ ३४ ॥

भरद्वाज ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(पाथ्यः, वृषा, तम्, दस्युहन्तमम्, रणे, रणे, धनञ्जयं, त्वा, इधे). सन्मार्गमें वर्त्तमान मनके सिञ्चन करनेवाले हे अग्ने ! उस अति-शय शत्रुओं का नाश करनेवाले उन उन संग्रामोंमें धनके जीतने वाले तुमको सन्दीप्त करता हूँ ॥ ३४ ॥

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया
यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्हविषा
यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥

इसका देवश्रव और देववात ऋ० नि० त्रि० छं और अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(होतः, अग्ने, चिकित्वान्, स्वे उ, लोके, सीद सुकृतस्य, योनौ, यज्ञं, आसादय, अग्ने, देवावीः, हविषा, देवान् आयजासि, यजमाने, बृहत्, वयः, धाः) आह्वान कार्य में नियुक्त हे अग्ने ! चेतनवान् अपने अधिकारको जानने वाले अपने स्थान कृष्णा जिनपर स्थापित किए पुष्कर पर्णपर स्थित हो, श्रेष्ठकर्म के स्थानवाले यज्ञको स्थापनकर हे अग्ने ! देवताओं के प्रसन्न करने वाले तुम हविद्वारा देवताओं को पूजनकर तृप्त करते हो इसकारण यजमानमें बड़ी आयु धारणकर इसमें बड़ा यश स्थापित करो ३५

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाꣳ
असदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सह-
स्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३६ ॥

इसका गृत्समद ऋ० है । त्रिष्टुप् छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-(होता, विदानः, त्वेषः, दीदिवान्, सुदक्षः, अदब्धव्रतप्रमतिः, वसिष्ठः, सहस्रम्भरः, शुचिजिह्वः, अग्निः, होतृषदने, न्यसीदत्) देवताओंका आह्वान करनेवाले अपने अधिकार को जाननेवाले

रक्षाके निमित्त सबके प्रेरक सूर्य देवता की समान ऊंचे होते ऊर्ध्व स्थित हो ऊंचे होते तुम अन्न के देने वाले हो जिसकारण कि मंत्र के उच्चारण करने वाले हव्यवाहक ऋत्विजों द्वारा आव्हान करते हैं ॥ ४२ ॥

सजातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्रमातृभ्यो अधिकनिक्रदद्गाः ॥ ४३ ॥

इसका त्रित ऋ०, विराट् त्रि० छं० अग्न देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने सः, चारु, ओषधीषु, विभृतः, चित्रः, शिशुः रोदस्योः, जातः, गर्भः, असि, अक्तून, तमांसि, परि, मातृभ्यः, अधिक-निक्रदत्, प्रगाः) हे अग्ने ! वह तुम शोभनपूजनीय पुरोडाशादि लक्षण वाली ओषधियों में पुष्ट करने को स्थित अनेक वर्ण की ज्वालाओं से विचित्ररूप इस समय उत्पन्न होने के कारण शिशु रूप द्यावा पृथिवी के मध्य में उत्पन्नहुए गर्भरूप रात्रि लक्षण वाले अन्धकारों को दूर करते हुए ओषधि वनस्पतियों के प्रकाश से अत्यन्त शब्द करते हुए शीघ्रता सेचलो ॥ ४३ ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

इस का त्रित ऋ० विराडनुष्टु० छं० रासभ देव० है । मंत्रार्थ-(अर्वन्, स्थिरः, वीड्वङ्गः भव, आशुः, वाजी, भव, पुरीषवाहणः त्वं, पृथुः, अग्नेः, सुषदः भव) हे गमन में कुशल रासभ ! स्थिर होकर स्थिर कायावाले हो, वेगवान होकर अन्न के हेतु हो, पुरीष्य अग्नि तुम पृष्ठ को विस्तीर्ण करते अग्नि देहरूप मृत्तिका के सुख से स्थिति के योग्य हो ॥ ४४ ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवी अभिशोचीर्मान्तरिक्षम्मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

इसका त्रित ऋ० विराट् पथ्या बृ० छं० अज दे० है । मंत्रार्थ

(अङ्गिरः, त्वं, मानुषीभ्यः, प्रजाभ्यः, शिवः, भवः द्यावा पृथिवी मा, अभिशोचीः अन्तरिक्षम्, मा वनस्पतीन्, मा) हे अग्निरूप अग्नि के प्रियशिशु अज ! तुम मनुष्यसम्बन्धी प्रजाओं के निमित्त कल्याणकारी शान्त हो, द्यावा पृथिवी को मत सन्तप्त करो अन्तरिक्ष को मत सन्तापित करो वनस्पतियों को मत सन्तापित करो ॥ ४५ ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निम्पुरीष्यम्मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणम्भरन्नपाङ्गर्भᳬसमुद्रियम् । अग्न आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका त्रित ऋ०, छं० १ पंक्ति २, साम्यनु० ३ एकपदा गा० और देवता १ अश्व, २ रासभ, ३ अग्नि है । मन्त्रार्थ-(वाजी, कनिक्रदत्, प्रैतु, पत्वा, रासभः, नानदत्, पुरीष्यं, अग्निं, भरन्, आयुषः, पुरा, मा, पादि) वेगवान् अश्व अतिहेषित शब्द करताहुआ, वेगसे गमन करो, पतनशील गर्दभ दिशाओं को शब्दायमान करताहुआ, पवसवाहनके निमित्त पीछे चले यह अश्व पशुसम्बन्धी अग्निको धारण करताहुआ कर्म से पहले मत विनाशको प्राप्त हो, कर्मसमाप्तिपर्यन्त जीवन को प्राप्त हो (वृषा, वृषणम्, अपां, गर्भ, समुद्रियम्, अग्निं, भरन्) सिंचनमें समर्थ रासभ, आहुतिपरिणाम से फलदान में समर्थ जलों के मध्य मेघों में विद्युत रूपसे होनेवाले सागरमें वड़वारूप से होनेवाले अग्नि को धारण करता आगमन कर (अग्ने, वीतये आयाहि) हे अग्निदेव ! हवि भक्षणके निमित्त आगमन करो ४६

ऋतᳬ सत्यमृतᳬ सत्यमग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतᳬ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन्विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नोअपदुर्म्मतिञ्जहि ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका त्रित ऋ०, छं० १ प्राजाप०

गा० २ सा० गा० ३ निचृ० नु- ४ नि० सा० त्रि० और दे० १, २, ४ अग्नि ३ ओषधी है । मंत्रार्थ-(ऋतम्, सत्यम्, सत्यम्, ऋतम्) आदित्यरूप, अग्निरूप व्यष्टि समष्टिरूप, अग्नि है, ऐसी ऋत और सत्यरूप अग्निको अजापर स्थित करते हैं (पुरीष्यं, अग्निं, अङ्गिरस्वत्, भरामः, पशु सम्बन्धी अग्निको अंगिरा की समान संग्रह करते हैं (ओषधयः, एतम्, शिवं, अत्र, युष्मा, अभि आयन्तं, अग्निं, प्रति, मोदध्वम्, निषीदन्, नः, विश्वाः, अनिराः, अमीवाः, व्यस्यन्, दुर्मतिं, अपजहि) हे सम्पूर्ण औषधियो ! तुम इस शान्त कल्याणकारक और इस स्थल में तुम्हारे सन्मुख आते हुए अग्नि के सन्मुख प्रत्युत्थानादि से आमोदित करो । हे अग्ने तुम यहां स्थित होते हमारे सम्पूर्ण दुर्भिक्षपीड़ा ईति व्याधियोंको दूर करतेहुए हमारी, हवनदान से पराङ्मुख दुर्मतिको नाश करो ४७

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नथं सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

इसका भिन्न ऋ० भुरिगार्च्यनु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(ओषधयः, पुष्पवतीः, सुपिप्पलाः, प्रतिगृभ्णीत, वः, गर्भः, ऋत्वियः, अयं, प्रत्नं, सधस्थं, आसदत्) हे सम्पूर्ण ओषधियो ! तुम फूलोंवाली, अच्छे फलवाली तुम इस अग्नि को स्वीकार करो, तुम्हारे गर्भरूप ऋतुकाल को प्राप्त यह अग्नि पुरातन स्थान को स्थित हुआ ॥ ४८ ॥

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहथं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

इसका उत्कील ऋ० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(पृथुना, पाजसा, शोशुचानः, द्विषः, रक्षसः, अमीवाः, विबाधस्व, सुशर्मणः, बृहतः, सुहवस्य, अग्नेः, प्रणीतौ, अहं, शर्मणि स्याम्) बड़े विस्तारवाले बलसे दीप्तिमान् हे अग्नि ! तुम शत्रुओं को, राक्षसों को समस्त व्याधियों को विशेष दूर करो अच्छे

सुख के कारण मोद महान सुखसे बुलानेकोशक्य अग्निकेप्रसन्न करने के कार्यमें नियुक्त मैं सुखमें प्राप्त हूं ॥ ४९ ॥

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्ज्जे द॑धातन।
म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से ॥ ५० ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गा० छं० आप देवता है। मंत्रार्थ—(आपः, मयोभुवः, स्थ नः, महे रणाय, चक्षसे, हि, ऊर्जे, आदधातन) हे जलसमूह! तुम सुखके करनेवाले सुखकी भावना करनेवाले स्नानपानादिसे सुखके उत्पादक हो, हमारे बड़े रमणीय, दर्शन के निमित्त, और निश्चय ही रसानुभव के निमित्त स्थापन करो ॥ ५० ॥

यो वः॑ शि॒वत॑मो॒ रस॒स्तस्य॑ भाजयते॒ह नः॑।
उ॒श॒तीरि॑व मा॒तरः॑ ॥ ५१ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गायत्री छं० आप देवता है। मंत्रार्थ—हे जलो! (वः, यः, शिवतमः, रसः, इह, नः, तस्य, भाजयत, उशतीः, मातरः, इव) तुम्हारा जो शान्तरूप सुख का एक ही कारण रस इस कर्म में है, हमको उस रसका भागी करो प्रीतियुक्त माता जैसे कि अपने स्तनको बालकों को पिलाती हैं ॥५१॥

तस्मा॒ अरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ।
आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ ५२ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गायत्री छं० आप देवता है। मंत्रार्थ-(आपः, वः, तस्मै, अरं, गमाम, यस्य, क्षयाय, जिन्वथ, च, नः जनयथ) हे जलो! तुम्हारे सम्बन्धी उस रसके निमित्त, शीघ्र चलें, जिसके निवास जगत के आधारभूत तृप्त करते हो और उसके भोगसे हमको उत्पन्न करते हो ॥ ५२ ॥

मि॒त्रः स॒ꣳसृज्य॑ पृथि॒वीम्भूमिं॑ च॒ ज्योति॑षा
स॒ह। सुजा॑तञ्जा॒तवे॑दसमय॒क्ष्माय॑ त्वा॒ सꣳ
सृ॑जामि प्र॒जाभ्यः॑ ॥ ५३ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० उपरिष्टा बृ० छं० मित्र देवता है मंत्रार्थ-

(मित्रः, पृथिवीं, च, भूमिं, ज्योतिषा, सह, सᳬंसृज्य, सुजातं, जातवेदसं, त्वा, प्रजाभ्यः, अयक्ष्माय, सᳬंसृजामि) मित्रदेवता आदित्य द्युलोक और इस पिण्डरूप भूमिको ज्योतिरूप अजलोमके साथ एकत्र करके मुझ अध्वर्यु को देताहै, और मैं भी सुन्दर जन्मवाले प्रज्ञासंयुक्त अजलोम नामक तुझ अग्नि को प्रजाओं के रोगनिवृत्ति के निमित्त पिण्डसे युक्त करता हूं ॥५३॥

रुद्राः सᳬंसृज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।
तेषांम्भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥५४॥

इसका सिंधुद्वीप ऋ०, अनुष्टु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ-(रुद्राः, पृथिवीं, संसृज्य, बृहज्ज्योतिः, समीधिरे, तेषां, शुक्रः, भानुः, देवेषु, अजस्रः, इव, रोचते) जिन रुद्रों ने पार्थिवपिण्ड को, बालु लोहकिट्ट और पाषाण चूर्ण से संयुक्त करके मौढ़ अग्नि को प्रदीप्त किया, उन रुद्रों की शुद्ध प्रदीप्त ज्योति देवताओं के मध्य में परिपूर्ण भलीप्रकार प्रकाशित होती है ॥ ५४ ॥

सᳬंसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ५५

इसका सिंधुद्वीप ऋ०, विराडनुष्टुप् छं०, सिनीवाली देवता है । मंत्रार्थ—(सिनीवाली, धीरैः, वसुभिः, रुद्रैः, संसृष्टाम्, मृदं, हस्ताभ्यां, मृद्वीं, कृत्वा, तां, कर्मण्यां, कृणोतु) चन्द्रकलायुक्त अमावस्याभिमानी देवता, बुद्धिमान् वसुगण, रुद्रगणों द्वारा, शर्करादि से संयोजित मृत्तिका को हाथों से कोमल करके उसको ऊखा कर्म के योग्य करें ॥ ५५ ॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा ।
सा तुभ्यंमदिते मह्योखान्दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ०, विराडनु० छं०, अदिति देवता है । मंत्रार्थ—(अदिते, महि, सा, सुकपर्दा, सुकुरीरा, स्वौपशा, सिनीवाली, तुभ्यं, हस्तयोः, उखां, दधातु) हे दीनतारहित देवमाता, हे पूजित, वह सुन्दर केश और धनवाली, सुन्दर मस्तक

के चन्द्रिका वाली, विलास में चतुर अवयववाली, चन्द्रकलायुक्त अमावास्याभिमानिनी देवी, तुम्हारे हाथों में पाकपात्र उखा को स्थापित करो ॥ ५६ ॥

उखाङ्कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ ।
मुखस्य शिरोसि ॥ ५७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं०–१ निचृ० नु०, २ याजुपी गा०, और दे० १ अदिति, २ मृत्पिण्ड हैं। मंत्रार्थ–(अदितिः, शक्त्या, धिया, बाहुभ्यां, उखाम्, कृणोतु, सा, गर्भे, आ, अग्निं, बिभर्तु, यथा, माता, उपस्थे, पुत्रम्) अदिति देवता अपनी सामर्थ्य से, बुद्धि द्वारा, हाथों से उत्कर्ष विधानपूर्वक पाकपात्र करै, वह उखा अपने मध्य में सब प्रकार से अग्नि को धारण करै, जैसे जननी गोदी में पुत्र को धारण करती है ॥ ५७ ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानायादित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं, सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं० १

ह्ययनु०, २ आर्षनु, ३ प्राह्ययनु०. ४ ब्राह्मी त्रि०, और सबका उखा देवता है। मंत्रार्थ—हे उखे ! वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, कृण्वन्तु, ध्रुवा, असि, पृथिवी, असि, मयि, यजमानाय, भर्त्ता, रायः, पोषम्, गौपत्यं, सुवीर्यम्, सजातान्, आधारय) वसुगण गायत्री छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुझको करें, उनकी कीहुई तुम दृढ हो, पृथ्वीरूप हो, मुझ यजमान के निमित्त, सन्तान, धन, पुष्टि, गोपालित्व, सुन्दर पराक्रम, सहोदरगण के सहित हमको यथोचित सौहार्द धारण कराओ। हे उखे! (रुद्राः, त्रैष्टुभेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, कृण्वन्तु, ध्रुवा, असि, अन्तरिक्षं, असि) रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुझको निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि अन्तरिक्षरूपा हो, शेष पूर्ववत्। हे उखे! (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, कृण्वन्तु, ध्रुवा, असि, द्यौः असि) बारह आदित्य जगती छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा की समान तुझको निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि द्युलोकरूप हो शेष पूर्ववत् । (वैश्वानराः, विश्वेदेवाः, आनुष्टुभेन, छन्दसा, त्वा, अंगिरस्वत्, कृण्वन्तु, ध्रुवा, असि, दिशः, असि) सब मनुष्यों से प्राप्त होनेयोग्य विश्वेदेवा देवता अनुष्टुभ् छन्द के प्रभाव से हे उखे ! तुझको अंगिरा की समान निर्माण करें, तुम दृढ़ हो कारण कि दिशास्वरूप हो, शेष पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

अदि॑त्यै रास्ना॒स्यदि॑तिष्टे॒ बिलं॑ गृभ्णातु कृ॒त्वा
य सा म॒हीमु॒खाम्मृ॒न्मयीं॒ योनि॑म॒ग्नये॑। पु॒त्रेभ्यः॒
प्राय॑च्छ॒ददि॑तिः श्र॒पया॒निति॑ ॥ ५९ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं० १, या० गा०, २ या० त्रि०, ३ उष्णिगनु० और दे० १ रास्ना, २ उखा, ३ अदिति है। मंत्रार्थ—हे मृत्तिकानिर्मितरेखा ! तुम (अदित्यै रास्ना असि) अदितिरूप उखा की कांचीगुण के स्थानवाली हो। हे उखे ! (अदितिः, ते, बिलं, गृभ्णातु) देवमाता तुम्हारे मध्य

को ग्रहण करे (सा, अदितिः, मही, मृण्मयीं, अग्नये, योनिं, उखा, कृत्वाय, अग्निः, पुत्रेभ्यः, प्रायच्छत्, इति) देवमाता अदिति यह बड़ी मृत्तिका की अग्नि की स्थानभूत उखा निर्माण कर पाककार्य सम्पादन के निमित्त इसप्रकार कहकर कि हे पुत्रो ! तुम इसको पाक करो प्रदान करतीहुई ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

इस कं० में ७ मंत्र हैं। सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं० १ आर्ची गा०, २ निचृदार्षी गा०, ३ आर्ची गा०, ४ नि० गा०, ५, ७ याजु०, ६ प्राजापत्या गा० है और सबका उखा दे० है। मंत्रार्थ हे उखे ! (वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) वसु गायत्री छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुझको धूपित करें (रुद्राः, त्रैष्टुभेन, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) रुद्र त्रिष्टुप छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुझको धूपित करें (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) आदित्य जगतीछन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुमको धूपित करें (वैश्वानराः, विश्वदेवाः, आनुष्टुभेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा) सब के हितकारक विश्वेदेवा देवता अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुझको धूपित करें । (इन्द्रः, त्वा, धूपयतु, वरुणः, त्वा, धूपयतु, विष्णुः, त्वा, धूपयतु) इन्द्र तुझको धूप दे, वरुणदेव तुझको धूप दे, विष्णुदेवता तुझको धूप दे ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्खनत्ववट देवानान्त्वा पत्नी-

से, परिददामि, एषा, मा भेदि) हे मित्र देवता ! प्राणियों के हित करनेवाले, इस उखा को खण्डित न होने के लिये, आपके निमित्त देता हूँ, यह तुम्हें सौंपी हुई उखा किसीप्रकार विदीर्ण न हो यथावत् रहे ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वा छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रा-स्त्वा छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्या-स्त्वा छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे-त्वा देवा वैश्वानरा आछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा-ङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ०, छं० १, २ भुरिगार्ची ३ प्राजा० नु० ४ नि० सा०, ज०, और सबका उखा देवता है । मंत्रार्थ–हे उखे ! (वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गि-रस्वत्, त्वा, आछृन्दन्तु) वसु गायत्री छन्दके प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुझको अजादुग्ध से सिंचित करें । हे उखे ! (रुद्राः, त्रैष्टुभेन, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, आछृन्दन्तु) रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुझको सिञ्चन करें । हे उखे ! (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, आछृ-न्दन्तु) आदित्यगण जगती छन्दकी सामर्थ्यसे अङ्गिराकी समान तुझको सिंचन करें । हे उखे ! (वैश्वानराः, विश्वेदेवाः, आनुष्टु-भेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, आछृन्दन्तु) विश्वके हितकारी विश्वेदेवा, अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुझको सिञ्चन करें ॥ ६५ ॥

आकूतिमग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १ या० पं०, २, ३, ४ या० त्रि०, ५ या० पं०, ६ आ० त्रि०, और

देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ—(आकूतिं, अग्निं, प्रयुजं, स्वाहा) यज्ञ संकल्प के प्रेरक अग्नि को इस यज्ञकर्म में प्रयुक्त किया उसके निमित्त यह आहुति प्रदान कीजाती है। (मनः, मेधां, प्रयुजम्, अग्निं, स्वाहा) मन और मेधा मंत्रधारणशक्ति को प्रेरणा करनेवाले अग्नि को आहुति देते हैं। (चित्तं, विज्ञातं, प्रयुजम्, अग्निं, स्वाहा) चित्त अविज्ञात अनुष्ठान के ज्ञानसाधन विज्ञान के प्रेरक अग्नि को आहुति देते हैं। (वाचः, विधृतिं, प्रयुजम्, अग्निं, स्वाहा) मंत्रपाठरूप वाणी और विशेष धारणा के प्रेरक अग्नि को आहुति देते हैं। (मनवे, प्रजापतये, स्वाहा, वैश्वानराय, अग्नये, स्वाहा) मन्वन्तर को प्रवृत्त करने वाले प्रजापति के निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो, विश्व के हितकारी अग्नि देवता के निमित्त श्रेष्ठ होम हो॥ ६६॥

विश्वो॑ देवस्य॑ नेतुर्मर्त्तो॑ वुरीत सुख्यम्। विश्वो॑ राय इ॑षुध्यति द्युम्नं वृ॑णीत पुष्यसे॒ स्वाहा॑॥ ६७॥

इसका स्वस्त्यात्रेय ऋ०, आर्प्यनुष्टुप् छं०, सविता देवता है। मंत्रार्थ—(विश्वः, मर्तः, नेतुः, देवस्य, सख्यं, वुरीत, पुष्यसे, द्युम्नं, वृणीत, राये, विश्वः, इषुध्यति, स्वाहा) सम्पूर्ण मनुष्य फल को प्राप्त करानेवाले परमात्मा के सख्यभाव को प्रार्थना करें, कर्म उपासना ज्ञान की पुष्टि के निमित्त यश वा अन्न की इच्छा करो, धनप्राप्ति के निमित्त सब मनुष्य उनसे प्रार्थना करते हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो॥ ६७॥

मा सु भि॑त्था मा सु रि॑षोम्ब॑ धृष्णु वी॒रय॑स्व सु अ॒ग्निश्चे॒दं क॑रिष्यथः॥ ६८॥

इसका आत्रेय ऋ०, आर्षी गा० छं०, उखाग्नी दे० हैं। मंत्रार्थ (अम्ब, सु, मा, भित्थाः, सु, मा, रिषः, धृष्णुः, सु, वीरयस्व, अग्निः, च, इदम्, करिष्यथः) हे माता उखे! तुम अवश्य ही मत विदीर्ण हो, अवश्य ही मत विनाश को प्राप्त हो, किन्तु प्रगल्भतापूर्वक भलीप्रकार वीरकर्म करो, अग्नि और तुम समाप्ति

पर्यन्त इस हमारे कार्य को करोगे ॥ ६८ ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽअस्मिन् ॥ ६९ ॥

इसका आत्रेय ऋ०, त्रिष्टुप छन्द, उखा देवता है । मंत्रार्थ—(देवि, पृथिवि, स्वस्तये, दृꣳहस्व, स्वधया, आसुरी, माया, कृता-असि, इदं, हव्यं, देवेभ्यः, जुष्टं, अस्तु, त्वं, अरिष्टा, अस्मिन्, यज्ञे, उदिहि) हे देवी ! पृथिवि उखे ! यजमान के कल्याण के निमित्त दृढ़ हो, अन्न के निमित्त प्राणसम्बन्धिनी प्रज्ञा की गई हो, यह हविर्योग्य अन्न देवताओं के निमित्त प्रिय हो कार्य शेष पर्यन्त तुम अभग्नरूप से इस यज्ञ में अवस्थिति करो ॥ ६९ ॥

द्रन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥

इसका सोमाहुति ऋ०, विराड् गा० छं०, अग्नि० देवता है । मंत्रार्थ—(द्रन्नः, सर्पिरासुतिः, प्रत्नः, होता, वरेण्यः, सहसः, पुत्रः, अद्भुतः) जिसका प्रधानभक्ष्य पलाशकाष्ठ है, जिसका प्रधान पानी घृत है, जो पुरातन, देवगणों का आव्हान करनेवाला, वरणीय, बल से मथन करनेपर उत्पन्न होनेवाला आश्चर्यरूप है वह अग्नि देवता कार्मुकी समिद् को भक्षण करै ॥ ७० ॥

परस्या अधि संवतोऽवराँ२ ऽअभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँ२ ऽअव ॥ ७१ ॥

इसका विरूप ऋ०, विराड् गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (परस्याः, सम्वतः, अवरान्, अभ्यातर, यत्र, अहं, अधि, अस्मि, तां, अव) शत्रुसम्बन्धी संग्राम से हमारे जनों को दुख से तारने को सन्मुख आओ और जिस स्थान में मैं सम्यक् स्थित हूं उस स्थान की रक्षा करो ॥ ७१ ॥

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वन्तरा मृधः ॥ ७२ ॥

इसका वारुणि ऋषि है, भुरिगनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(अग्ने, रोहिदश्वः, पुरीष्यः, पुरुप्रियः, त्वं, परमस्याः, परावतः, इह, आगहि, मृधः, आतुर) हे अग्निदेव ! रोहित नाम अश्व रखनेवाले, पशुओं के हितकारी, बहुजनप्रिय, तुम अत्यन्त दूर देश से इस यज्ञकर्म में आगमन करो, संग्राम में शत्रुओं का विनाशकर उत्तीर्ण होओ ॥ ७२ ॥

यद॑ग्ने॒ कानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑।
सर्व॒न्तद॑स्तु ते घृ॒तं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ६३ ॥

इसका जमदग्नि ऋ०, निचृ० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(यविष्ठ्य, अग्ने, यत् कानिचित् दारूणि ते, ते, आदध्मसि तत् सर्वं, ते, घृतं, अस्तु, तत्, जुषस्व) हे युवश्रेष्ठ ! अग्नि ! जो कोई भी काष्ठ तुम्हारे निमित्त अर्पण करें वह सब तुमको घृतकी समान प्रिय हो, उसको प्रीति सहित सेवन करो ॥ ७३ ॥

यदत्त्यु॑पजि॒ह्विका॒ यद्व॒म्रो अ॑ति॒ सर्प॑ति। स-
र्व॒न्तद॑स्तु ते घृ॒तन्तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥

इसका जमदग्नि ऋ०, विराडनुष्टुप्छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ हे अग्ने ! (उपजिह्विका, यत्, अत्ति, वम्रः, यत्, अतिसर्पति, यविष्ठ्य, तत् ते, घृतं, अस्तु, तत्, जुषस्व) दीमकगण जो काष्ठ भक्षण करते हैं वल्मीक जिस काष्ठ के पार हो निकलती है हे तरुण अग्ने ! वह समिध तुमको घृतवत् प्रिय हो, उसको प्रीति से सेवन करो ॥ ७४ ॥

अह॑रह॒रप्र॑याव॒म्भर॑न्तो॒ऽश्वा॑येव॒ तिष्ठ॑ते घा॒स-
म॑स्मै। रा॒यस्पोषे॑ण॒ समि॒षा मद॑न्तो॒ऽग्ने॒ मा ते॒
प्रति॑वेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, विराट् त्रिष्टुप् छं०, अग्निदेवता है। मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, प्रतिवेशाः अहरहः, अप्रयावम्, अस्मै, घासं, भरन्तः, तिष्ठते, अश्वाय, इव, रायः, पोषेण, इषा सम्मदन्तः, मा रिषाम) हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रयवाले हम निरन्तर अप्रमत्तको

समान इस अग्निदेव के निमित्त जैसे वाजिशाला में स्थित घोड़े को प्रतिदिन घास दीजाती है तैसे समिधारूप धन की पुष्टि और अन्न से हर्ष को सम्पादन करते नाशको प्राप्त नहो॥ ७५ ॥

नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे। इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्द है, अग्निदेवता है। मंत्रार्थ-(पृथिव्याः, नाभा, समिधाने अग्नौ इरम्मदम् बृहदुक्थम्, यजत्रम्, पृतनासु, जेतारं, सासहिं, अग्निं, बृहते, राय स्पोषाय, हवामहे) पृथ्वी के नाभिस्वरूप वक्षा के मध्यमें दीप्यमान आहवनीयनाम अग्नि के प्रज्वलित होनेपर अन्न से तृप्त होने वाले बड़े शास्त्रस्तोत्रवाले यजनपूजन के योग्य संग्रामों में जीतनेवाले शत्रुओं का निरादर करने वाले अग्नि के अधिष्ठात्री देवताको बहुत से धनकी पुष्टि के निमित्त आह्वान करते हैं ॥ ७६ ॥

याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत। ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्ते अग्नेऽपिदधाम्यास्ये ७७

इसका नाभा नेदिष्ट ऋ०, भुरिगनुष्टुप्छन्द, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(याः, सेनाः, अभीत्वरीः, उत, आव्याधिनीः, उगणाः ये, स्तेनाः, च, ये, तस्कराः, अग्ने, तान, ते, आस्ये, अपिदधामि) जो शत्रुकी सेना हमारे सन्मुख आनेवाली है, और जो सेना हमारी सब प्रकार से ताड़न करने वाली है, और जो शस्त्रधारी हैं, जो डाकू हैं, हे अग्ने! उनको तुम्हारे प्रज्वलित मुख में आहुति करता हूं ॥ ७७ ॥

दंष्ट्राभ्याम्मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ२ उत। हनुभ्याँ स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, भुरिगार्ष्युष्णिक्छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(भगवः, त्वं, मलिम्लून, दंष्ट्राभ्यां, तस्करान्, जम्भ्यैः, उत, स्तेनान्, हनुभ्यां, तान्, सुखादितान्, खाद) हे परमऐश्वर्य

सम्पन्न परात्पर परमेश्वर हे अग्निस्वरूप! जो गांव में प्रकटभाव से चोरी करते हैं उनको केवल डाढ़ों से, तस्करों को जो निर्जन स्थान में दस्युवृत्ति करते हैं उनको आगे के दांतों से और चोरों को ठोढ़ी से पीड़ित करो उन अच्छेप्रकार नष्ट करनेयोग्यों को जीवितरहित करके भक्षण करो ॥ ७८ ॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने। ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, निचृद० छं०, अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(ये, जनेषु, मलिम्लवः, स्तेनासः, वने, तस्कराः, ये, कक्षेषु, अघायवः, तान्, ते, जम्भयोः, दधामि) जो ग्रामवर्ती मनुष्यों के स्थान में पूर्वोक्त मलिम्लुच और स्तेन नाम से प्रसिद्ध गुप्त चोर हैं, जो वन में निर्जन प्रदेश में गमन करते हैं तस्कर नाम से प्रसिद्ध चोर हैं, जो नदी पर्वत गहन स्थानों में पापाभिलाषी लोभ से मनुष्यों के प्राण हरनेवाले हैं, हे अग्ने! उन सबको तुम्हारी डाढ़ों के अन्तर में खाने को स्थापन करता हूं ॥ ७९ ॥

सᳬशितम्मे ब्रह्म सᳬशितं वीर्य्यम्बलम्। सᳬशितङ्क्षत्रञ्जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥८०॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० अनुष्टुप् छं०, अग्नि दे०। मंत्रार्थ-(यः, जनः, अस्मभ्यं, अरातीयात्, च, यः, नः, द्वेषते, यः, निन्दात्, च, अस्मान्, धिप्सात्, तं, सर्वम्, भस्मसा, कुरु) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करै जो हमारे देयधनको हमें न दे और जो हमसे द्वेषकर हमारे कार्य को नष्ट करै जो हमारी निन्दा करै गुण में दोष करै और जो हमारे प्राणवध का यत्न करै उन चारप्रकार के अराती द्वेषी निन्दक जिघांसु सबको भस्म करो ॥ ८० ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वन्तम्भस्मसा कुरु ८१

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, निचृ० पं० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-हे अग्ने वा हे परमात्मन्! आपके प्रसाद से (मे, ब्रह्म

संशितम्, वीर्यं, बलं, संशितं, यस्य, अहं, पुरोहितः, अस्मि, क्षत्रं, जिष्णुः, संशितम्) मेरा ब्रह्मतेज तीक्ष्ण हुआ इन्द्रिय शक्ति शरीर शक्ति, स्वकार्यमें समर्थ हुई जिसका मैं पुरोहित हूं उसके क्षत्रतेज जयशील को तीक्ष्ण किया ॥ ८१

उदेषाम्बाहू अतिरमुद्वर्च्चो अथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणा मित्रानुन्नयामि स्वाँ२ अहम् ॥८२॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० विराडनु० छं० अग्नि दे० है। (एषाम्, बाहू, उदितरम्, वर्चः, बलम्, अहम्, ब्रह्मणा, अमित्रान्, क्षिणोमि, स्वान्, उन्नयामि) मंत्रार्थ—इन परमात्मा अग्नि के प्रसाद से इन अपने ब्राह्मण राजाओंके बीच में अपनी भुजा ऊंची की यह लोकोक्ति भी है कि जब कोई औरों से उत्कृष्ट होता है तब लोक कहते हैं इसने अपना हाथ ऊपर किया तेजने सबकी कान्ति को अतिक्रमण किया बलने शरीरशक्ति ने सबके बलको अभिभूत किया मैं मंत्रकी सामर्थ्य से अमित्र शत्रुओं को नष्ट करता हूं, अपने पुत्र पौत्रादिको उत्कृष्टता को प्राप्त करता हूं इस प्रकार तेरह समिधा के मंत्र कहे ॥ ८२ ॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारन्तारिष ऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, उपरिष्टा० बृ० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(अन्नपते, नः, अनमीवस्य, शुष्मिणः, अन्नस्य, देहि, प्रदातारं, प्रतारिषः, नः, द्विपदे, चतुष्पदे, ऊर्ज्जं, धेहि) हे अन्न के पालक अग्ने ! हमारे व्याधिरहित बलदायक अन्न को प्रदान करो, अन्न के देनेवाले हमारी अतिवृद्धि करो और हमारे मनुष्य पुत्रादि गौ आदिकों [redacted] अन्न को धारण करो ॥ ८३ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सानुवाद ग्यारहवां अध्याय समाप्त

—o—

द्वादशोऽध्यायः

जिसमें अग्निचयन प्रधान है ऐसे ग्यारहवें अध्याय में उखा सम्भरणादि समिदधानान्त के मन्त्र कहे। अब बारहवें अध्यायमें उखाधारण के मन्त्र कहेजायंगे ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, भुरिक् पंक्ति छं० रुक्म देवता है मंत्रार्थ— (दृशानः, श्रिये, रुचानः, दुर्मर्षम्, आयुः, रुक्मः, उर्व्या व्यद्यौत् अग्निः, वयोभिः, अमृतः, अभवत्, यत्, सुरेताः, द्यौः, एनं, अजनयत्) प्रत्यक्ष प्राप्त मनुष्यों को लक्ष्मी प्रदान करने के निमित्त अभिलषित अबाधित आयुवाला सुवर्णाभरण बड़ी दीप्तिसे प्रकाशित होताहै, सो यह अग्नि अन्नादि के पुरोडाशादि से चिरस्थायी हुआ क्योंकि सुन्दर अग्निरूप द्युलोकवासी देवगणों ने इस अग्निको प्रकट कियाहै ॥ १ ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची। द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका कुत्स ऋ०, छं०, १ साम्नी त्रि० २, ३, याजुषी त्रि० और देवता सबका अग्नि है। मंत्रार्थ हे उखे! (समनसा, विरूपे, समीची, नक्तोषा, एकं, शिशुं, धापयेते) समान मनवाले, कृष्ण शुक्ल भेदसे विलक्षण रूप, परस्पर मिलेहुए रात्रिदिन, एक बालकरूप अग्नि को सायं प्रातः अग्निहोत्रादि कर्म से तृप्त करतेहैं, (द्यावाक्षामा, अन्तः, रुक्मः, विभाति) ऊपर द्युलोक और नीचे भूलोक के मध्यमें जो रोचमान अग्नि विशेष शोभित होताहै, उसको उठाता हूं। (द्रविणोदाः, देवाः अग्निं) यज्ञद्वारा धनरूप फलके दाता देवगणों ने अग्नि को

धारण किया ॥ २ ॥

विश्वा॑ रूपाणि॒ प्रति॑मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे । वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्यो॒ऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥ ३ ॥

इसका श्यावाश्व ऋ०, विराड्जगती छं०, सविता दे० है। मंत्रार्थ (वरेण्यः, कविः, सविता, विश्वा, रूपाणि, प्रतिमुञ्चते द्विपदे, चतुष्पदे, भद्रं, प्रासावीत्, नाकं, व्यख्यत्, उषसः, प्रयाणम्, अनु, विराजति) श्रेष्ठ विद्वान् जगत् के प्रेरक सविता के प्रभाव से, सम्पूर्ण जगत् की वस्तुएं विविधप्रकार के रूपों को धारण करती हैं, द्विपाये मनुष्यादि चौपाये गौ आदि सब प्रकार के प्राणियों को स्वस्वव्यवहार प्रकाशनरूप श्रेय को प्रेरणा करता है (नाकं, व्यख्यत्, उषसः, प्रयाणं, अनु, विराजति) स्वर्ग को प्रकाश करता है और जो उषाकाल के गमन के पीछे विराजमान होता है ३

सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रुत्माँ॑स्त्रि॒वृत्ते॒ शिरो॑ गाय॒त्रं चक्षु॑र्बृहद्रथन्त॒रे प॒क्षौ । स्तोम॑ आ॒त्मा छन्दा॒ᳪंस्यङ्गा॑नि॒ यजू॑ᳪंषि॒ नाम॑ । साम॑ ते त॒नूर्वा॑मदे॒व्यं य॑ज्ञाय॒ज्ञियं॒ पुच्छं॒ धिष्ण्याः॑ श॒फाः । सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रुत्मा॒न्दिवं॑ गच्छ॒ स्वः॑ पत ॥ ४ ॥

इसका श्यावाश्व ऋ०, भुरिग्धृति छं०, सुपर्ण दे० है। मंत्रार्थ हे उखाग्ने ! जिसकारण कि तुम ऊर्ध्वगामी होने में समर्थ हो और महान् हो इसकारण तुम (सुपर्णः, गरुत्मान्, असि, त्रिवृत्, ते, शिरः, गायत्रम्, ते, चक्षुः, बृहद्रथन्तरे, पक्षौ, स्तोमः, आत्मा, छन्दांसि, अङ्गानि, यजूंषि, नाम, वामदेव्यं, साम, ते, तनूः, यज्ञायज्ञियं, पुच्छम्, धिष्ण्याः, शफाः, गरुत्मान् सुपर्णः, असि, दिवं, गच्छ, स्वः, पत) सुन्दर पङ्खवाले वेगगामी गरुड़ की समान हो, त्रिवृत स्तोम तुम्हारा शिर है, गायत्री तुम्हारे नेत्र हैं, बृहत् और रथन्तर साम तुम्हारे दोनों पंख हैं, पंचदशस्तोम तुम्हारा अन्तःकरण है, गायत्री आदि इक्कीस छन्द तुम्हारे हृद-

यादि अङ्ग हैं, इषेत्या आदि यजुः, तुम्हारे नाम हैं, वामदेव्य नामक साम तुम्हारा शरीर है, यज्ञायज्ञिय नामक साम तुम्हारी पुच्छ है, होतृ आदि धिष्ण्यमें स्थित अग्नि तुम्हारे खुरोंके नख हैं, इस प्रकार हे अग्ने! तुम वेगवान गरुड़की समान पक्षिरूप हो। इस कारण आकाशको गमन करो स्वर्गलोकको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रञ्छन्द आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभञ्छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतञ्छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभञ्छन्द आरोह दिशोनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका श्यावाश्व ऋ० कं० १, २, ४ निचृदार्षी छ० ३ आर्षी छ० और देवता सबका उखाग्नि है। मंत्रार्थ–हे प्रथम पादविन्यास! तुम (विष्णोः, सपत्नहा, क्रमः, असि, गायत्रः, छन्दः, आरोह, पृथिवीम्, अनु, विक्रमस्व) यज्ञाग्नि के शत्रुघाती क्रम हो, इसकारण गायत्री छन्दको अनुग्रह कर स्वीकार करो, फिर भूदेवता रूप इस भूमिके प्रदेशको विशेषकर प्राप्त करो। हे द्वितीय पादविन्यास! तुम (विष्णोः, अभिमातिहा, क्रमः, असि, त्रैष्टुभम्, छन्दः, आरोह, अन्तरिक्षम्, अनु, विक्रमस्व) उखाग्निके पापनाशक क्रम हो, त्रिष्टुभ छन्दको अनुग्रह कर स्वीकार करो, पश्चात् अन्तरिक्ष स्थान को प्राप्तकरो। हे तृतीय पाद विन्यास! तुम (विष्णोः, क्रमः, अरातीयतः, हन्ता, असि, जागतं छन्दः, आरोह, दिवं, अनु, विक्रमस्व) उखाग्निके क्रम धन ले कर न देनेवालों के नाशक हो, जगती छन्दको आरोहण करो, द्युलोकको गमन के पीछे स्थानको प्राप्त करो। हे चतुर्थपाद विन्यास! (विष्णोः, क्रमः, शत्रूयतः, हन्ता, असि, १५५ छन्दः, आरोह) तुम उखाग्निके क्रम शत्रुता करने वा-

हो, अनुष्टुभ् छन्दको आरोहण करो। हे अग्ने ! तुम (दिशः अनु विक्रमस्व) सब दिशा विदिशाओं में परिव्याप्त होओ ॥ ५ ॥

अक्रन्ददुग्निस्तनयन्निव द्यौःक्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, त्रिष्टु० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (द्यौः, इव, स्तनयन, क्षामा, रेरिहत्, वीरुधः समञ्जन्, अग्निः अक्रन्दत्, हि, जज्ञानः, सद्यः, इद्धः, ईम्, व्यख्यत्, रोदसी, अन्तः भानुना, आभाति) स्वर्गकी समान अर्थात् मेघकी समान गर्जना करते पृथ्वीको आस्वादन करो, वृक्षोंको अंकुरित करताहुआ अग्नि प्रदीप्त होता है, जिसकारण से कि प्रकट होताहुआ शीघ्रही दीप्त हो, इस सबको विख्यात अर्थात् प्रकाश करता है, द्यावापृथिवी के मध्यमें रश्मिद्वारा प्रकाशित होताहै ॥ ६ ॥

अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्न्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, भुरिगार्ष्यनु०, छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(अभ्यावर्तिन्, अग्ने, आयुषा, वर्चसा, प्रजया, सन्न्या, मेधया, रय्या, पोषेण, मा, अभि, निवर्त्तस्व) हमारे सन्मुख आने के स्वभाववाले, गमनागमन में समर्थ, हे अग्निदेव परमात्मन् ! आयु, तेजकान्ति, सन्तान, इष्टलाभ, धारणावती बुद्धि, सुवर्णादि अलङ्कार, आयु आदि की पुष्टि के साथ मेरे सन्मुख प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

अग्ने अङ्गिरः शतन्ते सन्त्वावृतः सहस्रन्त उपावृतः । अधा पोषस्य पोषेण पुनर्न्नो नष्टमाकृधि पुनर्न्नो रयिमाकृधि ॥ ८ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, आर्षी त्रि० छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—(अङ्गिरः, अग्ने, ते, आवृतः, शतम्, ते, उपावृतः, सहस्रं, सन्तु, अध, पोषस्य, पोषेण, नः, नष्टं, पुनः, आकृधि, पुनः, नः, रयिम्,

धाकृधि) हे प्रभु अंगवाले ! हे अग्निदेवता ! आपकी गमनागमन शक्ति सैकड़ों हैं, आपकी निवृत्ति शक्ति सहस्रों हैं, इस कारण प्रार्थना करते हैं कि शतसंख्यक आवृत्ति शक्तियों की समृद्धि की लक्षसंख्यादि वृद्धि द्वारा हमारे व्ययहुए धन को फिर सबप्रकार सम्पादन करो, फिर भी हमारे पूर्वसम्पादित धन को सबप्रकार सम्पादन करो अर्थात् आवृत्ति शक्ति के प्रभाव से हम को असंख्य धन का अधिकारी करो और उपावृत्ति शक्ति के प्रभाव से नष्टधन पुनः प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ९ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, निचृदार्षी गा० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने, ऊर्जा, पुनः, निवर्त्तस्व, इषा, आयुषा, पुनः पुनः, अꣳहसः, पाहि) हे अग्निदेवता ! तुम क्षीरादि रस के सहित फिर आगमन करो, अन्न, जीवन के साथ, फिर आगमन कर आयेहुए तुम हमको फिर पापों से रक्षा करो ॥ ९ ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, निचृदार्षी गा० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(अग्ने, रय्या, सह, निवर्त्तस्व, विश्वप्स्न्या, धारया, विश्वतः, परि, पिन्वस्व) हे अग्निदेव ! धन के सहित लौटो, सब संसार के उपभोग योग्य वृष्टिरूप जलधारा से सम्पूर्ण जगत् के तृण धान्य लता वृक्षों के ऊपर सिंचन करो ॥ १० ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ११

इसका ध्रुव ऋ०, आर्च्यनु० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—हे अग्नि ! (त्वा, अहार्षम्, अविचाचलिः, ध्रुवः, अन्तरभूः, तिष्ठ, सर्वाः, विशः, त्वा, वाञ्छन्तु) तुमको मैंने आहरण किया है, अत्यन्त अचल होकर तुम स्थिरतायुक्त प्रजा के मध्य में स्थित

हो हमारी सम्पूर्ण प्रजा तुम्हारी इच्छा करें (राष्ट्रं, त्वत्, मा, अधिभ्रशत्) हमारा राज्य तुमसे नहीं शून्य हो ॥ ११ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳪ श्रथाय अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १२ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, विराडार्षी छं०, वरुणदे० है। मंत्रार्थ (वरुण, उत्तमम्, पाशं, अस्मत् उत्, श्रथाय, अधमम्, अव मध्यमं, अथ, आदित्य, अनागसः, तव, व्रते, वयम्, अदितये, स्याम) हे सकलपापशापनिवारक देव ! हमारे उत्तम अंग शिर में स्थापित अपनी पाशको हम से निकालकर दूर करो तथा अधमअङ्ग पाददेश में स्थित अपनी पाशको सबप्रकार विपरीत दूरकरो मध्यमप्रदेश में स्थित अपनी पाशको विच्छेद करो तीनों पाशके विनाश के अनन्तर हे अदितिपुत्र ! अखण्डित शक्तिमान् वरुण ! अपराध रहित, तुम्हारे कर्म में वर्त्तमान हम दीनतारहित अखण्डित तत्त्व के योग्य हों ॥ १२ ॥

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात्। अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १३ ॥

इसका त्रित ऋ०, भुरिगा० प० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (बृहत्, अग्निः, उषसाम्, अग्रे, ऊर्ध्वः, अस्थात्, तमसः, निः जगन्वान, ज्योतिषा, आ–अगात्, रुशता, भानुना, स्वङ्गः जातः, विश्वा, सद्मानि, आ, अप्राः) सबसे महान् अग्नि, उषःकाल के आगे ऊंचा स्थितहुआ रात्रिरूप अन्धकार से निकले दिनरूप ज्योति के संग यहां प्राप्त हुआ अन्धकार को दूर करता हुआ किरणजाल से शोभनशरीर वाला हुआ उत्पन्नमात्र ही संपूर्ण स्थान अर्थात् सब लोकों को सबप्रकार अपने तेज से पूर्ण करता हुआ ॥ १३ ॥

हᳪसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् -

धिंदुरोणमत् । नृपद्दंरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ १४ ॥

इस के० में २ मंत्र हैं। सबका त्रित ऋ०, छं० १–निचृत् ज०, २ दैव्युष्णिक्, और देवता सबका अग्नि है। दशवें अध्याय के २४ वें मंत्र में इसकी व्याख्या होगई ॥ १४ ॥

सीद त्वम्मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्। मैनान्तपसा मार्चिषाभिशोचीरन्तरस्याᳪ शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥ १५ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराट् त्रि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने, विश्वानि, वयुनानि, विद्वान, त्वं, अस्याः, मातुः, उपस्थे, सीद, एनाम, तपसा, मा, अभिशोचीः, अर्चिषा, मा, अस्यां, अन्तः, शुक्रज्योतिः, विभाहि) हे अग्निदेवता ! सम्पूर्ण ज्ञान के उपायों को जाननेवाले तुम, इस माता की समान उखा की गोद में स्थित हो, इसको सन्ताप से मत सन्तापित करना, ज्वाला से मत दीप्त करना, इस उखा के मध्य में निर्मल प्रकाश से विशेष प्रदीप्तिमान् हो ॥ १५ ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे। तस्यास्त्वᳬहरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराडनु० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ– अग्ने, त्वं, रुचा, उखायाः, अन्तः, स्वे, सदने, जातवेदः, त्वं, हरसा, तपन, तस्याः, शिवः, भव) हे अग्ने ! तुम अपनी दीप्ति से, इस उखा के मध्य में, अपने घर में दीप्त होकर स्थित हो, हे सबके जाननेवाले तुम ज्योति से तपतेहुए उस उखा के कल्याणकारी हूजिये ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम्। शिवाः कृत्वा दिशः सर्व्वाः स्वयोनिमिहासदः ॥१७॥

इसका त्रित ऋ० विराडनु० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ– (अग्ने, त्वं, मह्यं, शिवः, भूत्वा, अथो, शिवः, सीद, सर्वाः, दिशः

शिवाः, इह, योनिं, आसद) हे अग्निदेवता ! तुम मेरे निमित्त कल्याणकारी होकर और इसके अनन्तर सर्वात्मा से शान्तस्वरूप होकर स्थित होओ, सम्पूर्ण दिशाओं को कल्याणरूप करके इस चखारूप अपने स्थानमें स्थित हूजिये ॥ १७ ॥

दिवस्परि प्रथमञ्जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयम्परि जातवेदाः । तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनञ्जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, निचृ० त्रि० छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ (जातवेदाः, अग्निः, प्रथमम् दिवः, परिजज्ञे, द्वितीयं, अस्मत्परि) सबके ज्ञाता अग्नि, प्रथम द्युलोक में सूर्यरूप से प्रकट हुए दूसरा जातवेदा अग्नि, हम ब्राह्मणों के सकाश से प्रादुर्भूत हुआ (नृमणा, तृतीयं, अजस्रं, अप्सु) प्रजापति ने तीसरीबार निरन्तर जलों के भीतर स्थित अग्नि को सृजन किया (स्वाधीः, एनं, इन्धानः, जरते) सुन्दर बुद्धिवाला यजमान, इस अग्निको प्रदीप्त करताहुआ प्रकट करता है ॥ १८ ॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ १९ ॥

इसका वत्सप्री ऋ० निचृ० त्रि० छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, त्रेधा, त्रयाणि, ते, आविद्म, पुरुत्र, विभृता, ते, धाम, आविद्म, यत् ते, परमं, गुहा, नाम आविद्म, तं, उत्सम्, आविद्म यतः, आजगन्थ) हे अग्निदेव ! जो पूर्व मंत्र में कहे तीनिस्वरूप आदित्य अग्नि वडवानल रूप हैं, तीनों उन तुम्हारे रूपोंको हम जानते हैं और आपके सम्बन्धी गार्हपत्य आहवनीय अन्वाहार्य पचन आग्नीध्रीयादि स्थानों में तुम धारण करनेवाले के स्थानों को भी हम जानते हैं, औरजो तुम्हारा अत्यन्त गुप्त मंत्र में परिगणित प्रसिद्ध नाम है उसको भी जानते हैं और उस उत्स्यन्दन जलरूप स्थानको भी जानते हैं, जिस जलरूप स्थानसे विद्युद्रूप

े तुम से प्राप्त हुए हों ॥ १९ ॥

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्। तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्द्धन् ॥ २० ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, निचृ० त्रि० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(अग्ने, नृमणाः, समुद्रे, ईधे, नृचक्षाः, अप्सु, अन्तः, दिवः, ऊधन्, तृतीये, रजसि, तस्थिवांसं, त्वा, महिषाः, अपां, उपस्थे, अवर्धन्) हे अग्ने! मनुष्यों के हितकारी प्रजापति ने समुद्र में वडवानल रूप से वर्तमान तुमको प्रदीप्त किया पहले हुए पुरुषों म स्पष्ट मंत्र के कहनेवाले प्रजापति ने दृष्टिरूपजलों के भीतर विद्युतरूप से प्रकाशित किया द्युलोक के उत्कृष्ट तीसरे रंजन करने वाले, तेजोमण्डल आदित्यरूप से स्थित होते हुए तुमको प्रजापति ने दीप्त किया महान प्राणों ने जलोंके उत्सङ्ग में स्थित तुमको प्रदीप्त किया ॥ २० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्। सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

इसकी व्याख्या छठे अध्याय में होचुकी है। भावार्थ-अग्नि देवता मेघकी समान गर्जन करते, पृथ्वी को आस्वादन करते, औषधि वृक्षादि को अंकुरित करते शीघ्र प्रकट होकर द्यावापृथ्वी में परिव्याप्त होकर प्रभावसहित देदीप्यमान होते हैं ॥ २१ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्मनीषाणाम्प्रार्पणः सोमगोपाः। वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ॥ २२ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, निचृदा० त्रि० छं०, अग्निदे० है मंत्रार्थ (श्रीणां, उदारः, रयीणाम्, धरुणः, मनीषाणाम्, प्रार्पणः सोमगोपाः, वसुः, सहसः, सूनुः, अप्सु, राजा, उषसाम्, अग्रे, इधानः, विभाति) गौ घोड़े आदि सम्पत्तिका अतिशय देनेवाला

धर्मोंका धारण करनेवाला, मनके अभिलापोंका प्राप्त करानेवाला यजमान के किये सोमयाग का रक्षक सबका निवासहेतु मन्थन के वेगरूप बल से प्रकट होने से पुत्ररूप जल में स्थित वरुणरूप से राजा प्रभात के प्रथम आदित्यरूप से दीप्यमान अग्नि विशेष कर प्रकाशित होता है कारण कि प्रभातकाल में अग्नि होमादि से प्रकट होता है ॥ २२ ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसी अपृणा-
ञ्जायमानः । वीडुञ्चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना
यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, आर्ची त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ यह अग्नि (विश्वस्य केतुः भुवनस्य, जायमानः, रोदसी, आ, अपृणात्) सम्पूर्ण जगत् का विज्ञानस्वरूप आत्माग्नि, सब प्राणिमात्रों के अन्तरमें वायु आत्मा से प्रकट होने वाला द्यावापृथिवी को सब प्रकार तेजसे पूर्ण करता है (परायन, वीडुम्, चित्, अद्रिं, अभिनत्) चन्द्ररूप से सब ओर गमन करता अतिदृढ़ भी मेघको विदीर्ण करता है अर्थात् जो प्रतिदिन उदित होकर अतिदृढ़ पर्वतका भी रन्ध्रभेद कर भूलोक से द्युलोक पर्यन्त को अपनी ज्योति से पूर्णकरता है(पञ्चजनाः अग्निं, आ, अयजन्त) मनुष्यगण उस अग्नि का सबप्रकार यजन करते हैं २३

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निर-
मृतो निधायि । इयर्त्ति धूममरुषम्भरिभ्र-
दुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, निचृ० त्रि० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(उशिक्, पावकः, अरतिः सुमेधाः अमृतः, अग्निः, मर्त्येषु, निधायि, अरुषम्, धूमम्, उदियर्त्ति, भरिभ्रत, शुक्रेण, शोचिषा, द्याम्, इनक्षन्) लोकों का काम्य कान्तिमान्, शोधक, दुष्टों से प्रीतिरहित श्रेष्ठ बुद्धिमान्, मरणधर्मरहित अग्नि मरणधर्मा मनुष्यों में देवताओं द्वारा स्थापन कियागया, उपद्रवरहित धूम

को वृष्टि के निमित्त आकाश में प्राप्त करता है, जगत् को धारण करताहुआ निर्मल प्रभावयुक्त कान्तिसे द्युलोक को व्याप्त किया २४

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः॥ २५॥

इसकी व्याख्या अध्याय १३ के मंत्र १ में होचुकी है॥ २५॥

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपन्देव घृतवन्तमग्ने। प्र तन्नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नन्देवभक्तं यविष्ठ॥ २६॥

इसका वत्सप्री ऋ० विराड़ा० त्रि० छं० अग्नि देवता है।मंत्रार्थ-(भद्रशोचे, देव, अग्ने, अद्य, यः, ते, घृतवन्तं, अपूपं, कृणवत्, यविष्ठ, तं, प्रतरम्, वस्यः, प्रणय, देवभक्तम्, सुम्नं, अभि) हे कल्याणदीप्ति! हे दिव्यगुणसंयुक्त अग्ने! इस समय आज प्रतिपदा में जो यजमान तुम्हारे निमित्त घृतसिक्त पुरोडाशको करता है, हे अतियुवा! उस यजमानको अतिश्रेष्ठ स्थान दो देवताओंके भोगयोग्य सुख सब प्रकारसे प्राप्त कराओ॥ २६॥

आ तम्भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनदुदुज्जनित्वैः॥ २७॥

इसका वत्सप्री ऋ०, विराड़ा० त्रि० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने, तम्, सौश्रवसेषु, आभज, उक्थे, उक्थे, शस्यमाने आभज, सूर्ये, प्रियः, अग्ना, प्रियः, भवाति, जातेन, उद्भिनदत्, जनित्वैः, उत्) हे अग्ने! उस यजमानको कीर्ति बढ़ानेवाले यज्ञ कर्म में सर्वप्रकार सेवन करो, प्रति उक्थकाण्ड में स्तोत्र शस्त्रादि द्वारा सम्पन्न कर तुम उसको अपना प्रीतिपात्र करो, और सूर्यका प्रियपात्र करो, अग्निका प्रिय हो उत्पन्नहुए पुत्रसे वृद्धिको प्राप्त हो २७

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं

मन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ २८ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, विराडार्षी त्रि० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने, यजमानाः, त्वां, अनुयून्, वार्य्याणि, विश्वा, वसु दधिरे, त्वया, सह, द्रविणं, इच्छमानाः, उशिजः, गोमन्तं, व्रजं, विवव्रुः) हे अग्नि देवता ! यजमानः तुम्हारी सेवा में वर्त्तमान हुए, दिनमें वरणीय सम्पूर्ण धनधान्य गोहिरण्यादि ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, तुम्हारे साथ यज्ञफलको तुम्हारी सेवा करने से इच्छा करतेहुए बुद्धिमान ज्ञानकर्मसमुच्चयकारी अर्गों ने रविमण्डलके मध्यमें देवयान मार्गको सेवन किया ॥ २८ ॥

अस्ताव्यग्निर्न्नराथंसुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः

सोमगोपाः। अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त

रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

इसका वत्सप्री ऋ०, विराडा० त्रि० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(नराणां, सुशेवः, वैश्वानरः, सोमगोपाः, अग्निः, ऋषिभिः, अस्तावि, अद्वेषे, द्यावापृथिवी, हुवेम, देवाः, अस्मे, सुवीरम्, रयिम्, धत्त) मनुष्यों को सुन्दर सुख देनेवाला, जठराग्निरूप से सबका हितकारी, सोमरक्षक अग्नि देवता, ऋषियों द्वारा स्तुति कियागया, द्वेषरहित, भूमि और द्युलोक के अधिष्ठात्री देवता को आह्वान करते हैं, हे देवताओं ! हमारे निमित्त वीरयुत सुन्दर ऐश्वर्य को स्थापन करो ॥ २९ ॥

समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।

अस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

इसकी व्याख्या ३ अ० १ क० में होगई है ॥ ३० ॥

उदु त्वा विश्वेदेवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।

स नो भव शिवस्त्वथं सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

इसका तापस ऋ०, विराडनु० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(अग्ने, विश्वे, देवाः, उ, चित्तिभिः, उद्भरन्तु, सः, सुप्रतीकः, विभावसुः, त्वं,नः, शिवः,भव) हे अग्ने ! सम्पूर्ण प्राणरूप

देवता हो उत्तम में प्रवीण बुद्धि की वृत्तियों के द्वारा तुमको ऊँची धारण करें यह ऊर्ध्वरूप सुन्दर मुखवाले दीप्तिरूप धनवाले तुम हमारे कल्याणकारक होओ ॥ ३१ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम्
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥३२॥

इसका तापस ऋ० विराडनु० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-- (अग्ने, शिवेभिः, अर्चिभिः, इत्, ज्योतिष्मान्, त्वं, प्रयाहि, बृहद्भिः, भानुभिः, भासन्, तन्वा, प्रजाः, माहिंसीः) हे अग्ने ! मंगलयुक्त ज्वालाओं करके ही प्रकाशवान् तुम गमन करो बड़ी किरणों से प्रकाशवान शरीर से प्रजा पुत्रादि को किसी प्रकार पीड़ा मतदो ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः
समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदा-
रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

इस मं० की व्याख्या इसी अध्याय के ६ मंत्रमें होगई ।३३।

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते
बृहद्भाः । अभि यः पूरुम्पृतनासु तस्थौ दीदाय
दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० है, आर्षी त्रि० छं० अग्नि देवताहै मंत्रार्थ; (अयं, अग्निः, भारतस्य, प्रशृण्वे, सूर्यः, नः, बृहद्भाः, प्ररोचते यः पृतनासु, पूरुम्, अभितस्थौ, दैव्यः, अतिथिः, नः, शिवः दीदाय) यह अग्नि हवि धारण करनेवाले यजमान के आह्वानको सुनता है। सूर्यकी समान बड़ा दीप्तिमान् होताहुआ अत्यन्त प्रकाशवान होताहै, जो संग्रामों में राक्षसके सन्मुख स्थित होताहै देवसम्बन्धी अतिथि हमारा मंगलरूप अग्नि दीप्तिमान् होताहै ॥ ३४ ॥

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणु-
ध्वथं सुरभा उ लोके तस्मै नमन्ताञ्जनयः
सुपत्नीर्मातेव पुत्रम्बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, आर्षी त्रि० छं० आप देवता है। मंत्रार्थ-हे (देवीः, आपः, भस्म, प्रतिगृभ्णीत, स्योने, सुरभौ, लोके, च, एतत्, कृणुध्वम्, सुपत्नीः, जनयः, तस्मै, नमन्ताम्, एनत्, अप्सु, बिभृत, माता, पुत्रं इव) दीप्यमान! जलो! तुम भस्म को ग्रहण करो, सुखकारक पुण्य धूपादि से सुन्दर गन्धयुक्त स्थान में ही इसको धारण करो, जिनके सुन्दर पति वरुण हैं वह वृक्षादि को उत्पन्न कर अग्नि को प्रकट करनेवाले हैं, उस भस्मरूप अग्नि के निमित्त नवो। हे जलो! इस भस्म को जलों में धारण करो जैसे कि मैया पुत्रको धारण करती है॥ ३५॥

अप्स्वग्ने सधिष्टवसौषधीरनुरुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः॥ ३६॥

इसका विरूप ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने, अप्सु, तव, सधिः, सः, ओषधीः, अनुरुध्यसे, गर्भे, सन्, पुनः, जायसे) हे भस्मीभूत अग्ने! जलों में तुम्हारा स्थान है, वहीं भस्म जल से प्रकट होकर यवादि रूप को प्राप्त होते हो, अरणी के मध्य में होतेहुए फिर प्रकट होते हो॥ ३६॥

गर्भो अस्योषधीनाङ्गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि॥ ३७॥

इसका विरूप ऋ० भुरिगार्ष्यु० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-(अग्ने, ओषधीनाम्, गर्भः, असि, वनस्पतीनाम्, गर्भः विश्वस्य भूतस्य, गर्भः, अपां, गर्भः असि) हे अग्ने! तुम ओषधियों के गर्भ हो, वनस्पतियोंके गर्भ हो, सम्पूर्ण प्राणियोंके गर्भ हो सम्पूर्ण जलोंके गर्भ हो॥ ३७॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने। सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वञ्ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥३८॥

इसका विरूप ऋ० निचृदार्ष्य० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-(अग्ने, त्वं, भस्मना, योनिम्, पृथिवीं, च, अपः, प्रसद्य, मातृभिः संसृज्य, ज्योतिष्मान्, पुनः, आसदः) हे अग्ने! तुम भस्मद्वारा

कारणभूत पृथ्वीको और जलोंको प्राप्त होकर माताका जलोंसे सम्मिलत हो तेजस्वी होकर फिर उखामें स्थित हूजिये ॥ ३८ ॥

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेन्तरस्याᳬ शिवतमः ॥ ३९ ॥

इसका विरूप ऋ० निचृदनु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने, शिवतमः, अपः, च, पृथ्वीम्, सदनं, आसद्य, पुनः अस्यां अन्तः, शेषे, यथा, मातुः उपस्थे) हे अग्ने ! अति कल्याणरूप तुम जल और पृथ्वीके स्थान को प्राप्त होकर फिर इस उखा के मध्यमें शयन करते हो जैसे कि माताकी गोदमें बालक सोता है ३९

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यᳬहसः ॥ ४० ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥

इन (४० । ४१) दोनों की व्याख्या होचुकी है ॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मᳬहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः । पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥

इसका दीर्घतमा ऋषि है, विराडार्षी त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(स्वधावः, यविष्ठ, अग्ने, मे, अस्य, मंहिष्ठस्य, प्रभृतस्य, वचसः, बोधः, त्वः, पीयति, त्वः, अनुगृणाति, वन्दारुः, ते, तन्वम्, वन्दे) हे धनवान् । श्रेष्ठ युवारूप अग्ने, मेरे इस महान् वारम्वार कथन करने से श्रवणपथ को प्राप्तहुए वचन के अभिप्राय को जानो, कोई तुम्हारी निन्दा करै कोई एक पुरुष तुम्हारी स्तुति करै यह मनुष्यों का स्वभाव है, परन्तु स्तुति करनेके स्वभाववाला मैं तुम्हारे शरीर को प्रणाम करता हूं ॥ ४२ ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्द्वेषाᳬसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका सोमाहुति ऋ० है । छं०-१नि-

चृदार्षी गा०, २ याजुष्युष्णिक्, और देवता सबका अग्नि है।
मंत्रार्थ—(वसुपते, वसुदावन, सः, सूरिः, मघवा, बोधि, द्वेषांसि, अस्मत्तः, युयोधि, विश्वकर्मणे, स्वाहा) हे धनपते ! धनके दाता अग्ने ! वह तुम सबके ज्ञाता धनयुक्त हो हमारे अभिप्राय को जानो आप सन्तुष्ट होकर दुर्भागों को हमसे पृथक् करो, जगत् की सृष्टि स्थिति आदि कर्म करनेवाले तुम्हारे निमित्त अग्नि में आहुत यह हवि भलीप्रकार गृहीत हो ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धताम्पुनर्ब्र-
ह्माणो वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वन्तन्वं वर्द्धयस्व
सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द अग्नि देवता है
मंत्रार्थ—हे अग्ने ! (वसुनीथ, आदित्याः, रुद्राः, वसवः, त्वा, पुनः, समिन्धताम्, ब्रह्माणः, यज्ञैः, पुनः, त्वं, घृतेन, तन्वं, वर्धयस्व, यजमानस्य कामाः, सत्याः, सन्तु) धन के निमित्त स्तुति वाले हे देव ! आदित्यगण, रुद्रगण, वसुगण तुमको फिर प्रदीप्त करें, हे धनेश ! ऋत्विग्यजमान यज्ञ करके फिर तुमको प्रदीप्त करें, तुम घृत के द्वारा शरीरको बढ़ाओ तुम्हारे वृद्धिको प्राप्त होने में यजमानके मनोरथ सफल हों ॥ ४४ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातो येत्र स्थ पुराणा ये च
नूतनाः । अदाद्यमो वसानम्पृथिव्या अक्र-
न्निमम्पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० निचृदार्षी त्रि० छं०, लिङ्गोक्त देवता है । मन्त्रार्थ—हे यमभृत्यगण ! (ये, पुराणाः, च, ये, नूतनाः, अत्रस्थ, अतः, अपेत, वीत, च, विसर्पत, यमः, पृथिव्याः, अवसानं, अदात्, पितरः, इमं, लोकं, अस्मै, अक्रन्) जो पुराने और जो नये तुम इस स्थानमें हो, वह तुम यहांसे दूर चलेजाओ अति दूरही संघात त्यागकर अनेक स्थानोंमें चलेजाओ, यमने पृथ्वीका अवकाश इस यजमानके निमित्त दियाहै, पितरोंने इस लोकको

इस यजमानके निमित्त कल्पित किया है ॥ ४५ ॥

संज्ञानमसि कामधरणम्मयि ते कामधरणं भूयात् । अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चितस्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं। सबका सोमाहुति ऋ० है। छं० १ सा० पं० २ या० पं० ३ आसु० उष्णि० और देवता १ उख २ सिकता, ३ परिश्रित हैं। मंत्रार्थ--हे उपास्वरूप ! तुम (संज्ञानम्, असि, कामधरणं, ते, कामधरणं, मयि, भूयात्) पशुओं के सम्यक् ज्ञान के साधन हो, तथा यज्ञद्वारा मनोरथ सम्पादन करनेवाले हो, इस कारण तुम से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारी मनोरथ सम्पादनकी सामर्थ्य मुझ यजमानमें हो। हे सिकता ! तुम (अग्ने, भस्म, असि, अग्नेः, पुरीषम्) अग्निकी भस्म हो, अग्निके पूरण करने वाले हो। हे (शर्कराः, चितः, परिचितः, स्थ, श्रयध्वम्) परिश्रित गण ! तुम भूमिपर डालेहुए सब ओर स्थापित हो, ऊर्ध्व में स्थापित तुम इस गार्हपत्य स्थानको सेवन करो ॥ ४६ ॥

अयꣳसो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतन्दधे जठरे वावशानः। सहस्रियं वाजमत्यन्न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० है, आर्षी त्रि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (सः, अयं, अग्निः, यस्मिन्, वावशानः, इन्द्रः, सुतम्, सहस्रियम, वाजं, अत्यम्, न, सप्तिं, सोमं, जठरे, दधे, जातवेदः, ससवान्, सन्, स्तूयसे) वह यह अग्नि है, जिस अग्निचयन में इच्छा करने वाले इन्द्रने, अभिषव किए सहस्रों के योग्य अन्न की समान भक्षण करते में मद न करनेवाले हर्षकारक तृप्तिकारक सोमको उदरमें धारण किया, हे अग्नि ! तुमभी हवियों को भक्षण करते हुए ऋत्विग् यजमानों से स्तुतिको प्राप्त होतेहो ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र। येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स-

भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, भुरिगार्षी पं० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(आयजत्र, अग्ने, ते, यत्, दिवि, वर्चः, यत्, पृथिव्याम्, ओषधीषु, अप्सु, येन, उरु, अन्तरिक्षं, आततन्थ, सः, त्वेषः, अर्णवः, नृचक्षाः, भानुः) मर्यादासे यजनयोग्य हे अग्निदेव ! तुम्हारी जो द्युलोक में सूर्यरूप ज्योतिहै जो भूमिमें अग्निरूप ओषधियों में भास्कर रूप, जलोंमें प्रभारूप ज्योति है, जिसने विद्युत् रूपसे बड़े अन्तरिक्ष लोकको व्याप्त कियाहै वह विश्व प्रकाशक सब ओर गमनशील मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मका द्रष्टा, सूर्यरूप दीप्ति है ऐसेतुम महा नारायणस्वरूपहो ॥ ४८ ॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२॥ ऊचिषे धिष्ण्या ये या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋषि है, भुरिगार्षी पं० छं०. अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने, दिवः, अर्णम्, अच्छ, जिगासि) हे अग्नि देवता ! द्युलोक सम्बन्धी जलको अभिमुखसे प्राप्त करते हो (ये, धिष्ण्याः, ऊचिषे, देवान्, अच्छ. आ रोचने, सूर्यस्य, परस्तात्, याः, आपः, च, अवस्तात्, याः, उपतिष्ठन्ते) जो बुद्धि इन्द्रियों के प्रेरक प्राण कहाते हैं उन प्राणरूप देवताओं के प्रति, सन्मुख गमन करतेहो, दीप्तिरूप मण्डल में वर्त्तमान सूर्यकेऊपर जो जल हैं और नीचेजो जलहैं उन सबके मध्यमें तुम विराजमान हो आशय यह कि तुमही इन रूपों को धारण करते हो ॥ ४९ ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ५० ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, आर्षी पं० छं० है, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—पुरीष्यासः, प्रावणेभिः, सजोषसः, अद्रुहः, अग्नयः, यज्ञम्, अनमीवाः, महीः, इषः, जुषन्ताम्) पशुओं के हितकारी मनों से प्रीतियुक्त हिंसा न करनेवाले अग्नि इस इष्टकारूप यज्ञ

को क्षुधा तृष्णा निवर्त्तक बहुत अन्नयुक्त को सेवन करो ॥ ५० ॥

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिङ्गोः शश्वत्तमꣳ हव-
मानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने
सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, भुरिगार्षी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, पुरुदंसम्, इडाम्, शश्वत्तमम्, गोः, सनिम्,
हवमानाय, साध, नः, विजावा, तनयः, सूनुः, स्यात्, अग्ने,
सा, ते, सुमतिः, अस्मे, भूतु) हे अग्ने ! बहुत कर्मों के साधनरूप
अन्न को, निरन्तर विद्यमान धेनु सम्बन्धी दान को अर्थात् दूध
दही घृतादि को हवन करनेवाले यजमान के निमित्त सम्पादन
करो अर्थात् दो, हमारे प्रजावान् औरस पुत्र हो, हे अग्ने ! वह
तुम्हारी अन्न गौ पुत्रदान के विषय की सुन्दर बुद्धि हममें हो ॥ ५१ ॥

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तञ्जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥ ५२ ॥

इस मंत्र की व्याख्या अ० ३ क० १४ में होगई ॥ ५२ ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० है स्वरादनुष्टुप् छं० है, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (चित्, असि, तया, देवतया, अङ्गिरस्वत्,
ध्रुवा सीद) स्थापित की हुई हो उस प्रसिद्ध वाक्रूप देवताद्वारा
स्थापित होकर अंगिरा की समान दृढ़तापूर्वक इस स्थानमें स्थित-
होओ हे इष्टके ! (परिचित्, असि, तया, देवतया अङ्गिरस्वत्, ध्रुवा
सीद) सब ओर से भोगों को चयन करनेवाली हो उस प्रसिद्ध
वाक्रूप देवता द्वारा सम्पादित हुई, अङ्गिराकी समान दीर्घ
काल तक निश्चल इस स्थान में स्थित होओ ॥ ५३ ॥

लोकम्पृण छिद्रम्पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इ-
न्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, विराडनु० छं०, अग्नि दे० है । है

इष्टके ! (त्वम, लोकम्, पृण, छिद्रन्, पृण, अयो, ध्रुवा, सीद) तुम गार्हपत्य चयन स्थानमें पूर्व इष्टकाओंसे अनाक्रान्त होकर स्थानको पूर्णकरो और दृढ होकर स्थितहोओ (इन्द्राग्नी, बृहस्पतिः, अस्मिन, योनौ, त्वा,-आसीपदन) इन्द्र देवता अग्नि देवता और वृहस्पति देवताने इस स्थानमें तुमको स्थापनकिया है ५४

ता अस्य सूददोहसः सोमंश्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ५५ ॥

इसका प्रियमेधा ऋ०, विराडनु० छं०, आप दे० है । मंत्रार्थ (दिवः, पृश्नयः, सूददोहसः, ताः, देवानां, जन्मन्, त्रिषु, आरोचने, अस्य, विशः, सोमं, आश्रीणन्ति) द्युलोक सम्बन्धी अनेक प्रकार के जल और अन्नसे संयुक्त वे प्रसिद्ध जल देवताओं के जन्मवाले सम्वत्सरमें तीन सवनों के मध्यमें इस यज्ञ सम्बन्धी सोमको सम्यक् प्रकार से परिपक्व करते हैं ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसङ्गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिम्पतिम् ॥५६॥

इसका सुतजेतृ मधुच्छन्द ऋ०, नि० नु० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ-(विश्वाः, गिरः, समुद्रव्यचसम्, रथीनाम, रथीतमम्, वाजिनाम्, पतिं, सत्पतिं, इन्द्रम्, अवीवृधन) सम्पूर्ण ऋक् यजुः सामरूप स्तुति, समुद्रवत् व्यापक सब रथियों के मध्य में अत्यंत रथी अन्नों के पति निजधर्म में रहनेवालों के पालक इन्द्र को वर्धित करती हैं ॥ ५६ ॥

समितꣳ संकल्पेथाꣳ सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभिसंवसानौ ॥ ५७ ॥

इसका मधुच्छन्द ऋ०, भुरिगुष्णिक् छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(सम्प्रियौ, रोचिष्णू, सुमनस्यमानौ, इषं, ऊर्जम्, अभिसंवसानौ, समितम्, सङ्कल्पेथाम) समान प्रीतिवाले कान्तिमान् परस्पर श्रेष्ठ चित्तवाले हे उखा । और चितिके अग्निदेवताओ अन्न घृतादि रसको भोग करते हुए अर्थात् हमारे दियेहुए अन्न

और रस को स्वीकार करते हुए एक मन होकर मिलो एक संकल्प होओ ॥ ५७ ॥

सं वाम्मनां॑सि सं व्रता समु चित्तान्याक॑रम् । अग्ने॑ पुरीष्याधिपा भ॑व त्वन्न इषमूर्जं यज॑मानाय धेहि ॥ ५८ ॥

इसका मधुच्छन्द ऋ० भुरिगुपरिष्टा बृहती छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-हे दोनों अग्नियों ! (वाम्, मनांसि, समाकरम्, व्रता, सम्, चित्तानि, सम्, उ, पुरीष्य, अग्ने, त्वं, नः अधिपाः, भव, इषम्, ऊर्जम्, यजमानाय, धेहि) तुम्हारे मन सब प्रकार संगत करता हूं, व्रत संगत करता हूं, मनोगत संस्कारों को संगत करता हूं, और हे पशुसम्बन्धी गृहस्थकार्यसाधक अग्निदेव ! तुम हमारे अधिपति हो अन्न बल यजमानके निमित्त प्रदानकरो ५८

अग्ने॒ त्वं पुरी॑ष्यो रयिमान्पुष्टिमाँ२ऽअ॑सि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनि॑मिहास॑दः ॥ ५९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगुष्णिक् छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने, त्वं, पुरीष्यः, रयिमान्, पुष्टिमान्, असि, सर्वाः दिशः, शिवाः, कृत्वा, इह, स्वं, योनिम्, आसदः) हे अग्नि देवता तुम पशुसम्बन्धी पशुहितकारक धनवान् पुष्टियुक्त हो, तुम्हारे प्रसाद से हम पुष्टि और ऐश्वर्यलाभ करें, सब दिशायें कल्याण कारक करके यहां अपने स्थानमें स्थितहो ॥ ५९ ॥

भवं॑तन्नः सम॑नसौ सचे॑तसा वरे॒पसौ॑ । मा य॒ज्ञꣳ हिꣳसिष्ट मा य॒ज्ञप॑तिञ्जातवेदसौ शिवौ भ॑वतम॒द्य नः ॥ ६० ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्षी पं० छं० अग्नि देवता है । इस मंत्रकी व्याख्या ५ अध्यायके तीसरे मंत्रमें होचुकी है ॥ ६० ॥

मा॒तेव॑ पु॒त्रम्पृ॑थि॒वी पु॑री॒ष्यम॒ग्निꣳ स्वे योना॑वभारु॒खा । तां विश्वै॑र्दे॒वैर्ऋ॒तुभिः॑ संविदा॒नः प्र॒जाप॑तिर्वि॒श्वक॑र्मा विमु॑ञ्चतु ॥ ६१ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्षी त्रि० छं० उखा देवता है मंत्रार्थ (पृथिवी, उखा, पुरीष्यम्, अग्निं, स्वे, योनौ, अभाः, माता, पुत्रं, इव, विश्वैः देवैः, ऋतुभिः, संविदानः, विश्वकर्मा, प्रजापतिः ताम्, विमुञ्चतु) भूमिरूप मृत्तिकानिर्मित उखा पशुओंके हित-कारी अग्निको अपने गर्भस्थानमें धारण करतीहुई. मैया पुत्रको जैसे धारण करती है, सम्पूर्ण देवताओं और ऋतुओं द्वारा एक मतको प्राप्तहुए, अहो ! उखाने महत् कर्म किया इसप्रकार संवाद करते हुए सृष्टि के निर्माता प्रजापति उस उखाको शिक्य पाश से विमुक्त करो ॥ ६१ ॥

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० नि० त्रि० निर्ऋति देवता है, मन्त्रार्थ हे निर्ऋते ! [अलक्ष्मी] (असुन्वन्तम्, अयजमानम्, इच्छ, स्तेनस्य, तस्करस्य, इत्याम्, अन्विहि, अस्मत्, अन्यं, इच्छ, सा, ते, इत्या, देवि, तुभ्यम्, नमः, अस्तु) सोमयाग न करने वाले हवि आदि से किसीप्रकार वैदिक कर्म न करनेवाले पुरुषों की संगति की इच्छाकर चोरकी प्रकट चोरकी गतिको प्राप्त हो हमसे अन्य पुरुषकी इच्छाकर वही दुष्टोंशिक्षा तेरी गति है । हे देवी ! तेरे निमित्त नमस्कार हो ॥ ६२ ॥

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोहयैनम् ॥ ६३ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ०, भुरि० पं० छं० निर्ऋति देवता है। मन्त्रार्थ-(तिग्मतेजः, निर्ऋते, ते, सु, नमः, अयस्मयम्, एतम्, बंधनम्, आविचृत, यमेन, यम्या, सम्विदाना, एनम्, उत्तमे, नाके, अधिरोहय) हे तीक्ष्ण तेजवाले ! घोर क्रूररूप निर्ऋते, तुम्हारे निमित्त निरन्तर नमस्कार है, लोहपाशकी समान दृढ़,

इस जन्म मरणरूप अज्ञानको छेदन करो, और अग्नि पृथ्वीके साथ एक मतको प्राप्त होकर, इस यजमानको उत्कृष्ट स्वर्गलोक में स्थापन करो ॥ ६३ ॥

यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामव सर्ज्जनाय। यान्त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिन्त्वाहम्परिवेद विश्वतः ॥ ६४ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्षी त्रि० छं० निर्ऋति देवता है। मंत्रार्थ-(घोरे, एषां, बन्धानाम्, अवसर्जनाय, यस्याः, ते, आसन्, जुहोमि, जनः, यां, त्वा, भूमिः, इति, प्रमन्दते, अहं, त्वा, विश्वतः, निर्ऋतिम्, परिवेद) हे विषमशील क्रूररूपा, निर्ऋति देवी इन यजमानों के स्वर्गप्राप्ति के प्रतिबन्धक पापों को नाशके अर्थ उस तुम्हारे मुखमें आहुति की समान इष्टका को धारण करता हूं, मनुष्यमात्र जिस तुझको भूमि है, इसप्रकार शास्त्राभिज्ञ होने से स्तुति करते हैं, मैं तो शास्त्रज्ञानसे तुझको सबप्रकार निर्ऋति देवी ही जानता हूं ॥ ६४ ॥

यन्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशङ्ग्रीवास्वविचृत्यम्। तन्ते विष्याम्यायुषो न मद्ध्यादथैतम्पितुमद्धि प्रसूतः। नमो भूत्यै येदञ्चकार ॥६५॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका मधुच्छन्दा ऋ० छं० १ निचृ० पं० २ एकप० वि० और देवता १ यजमान २ भूति है। मन्त्रार्थ हे यजमान! (निर्ऋतिः देवी, ते, ग्रीवासु, यम्, अविचृत्यम्, पाशं, आबबन्ध, तं, ते, आयुषः, मध्यात्, न, विष्यामि) निर्ऋति देवी ने तुम्हारी ग्रीवामें जो दृढ़ छेदनके अयोग्य पाशको बाँधा था उस को तुम्हारी अग्निके मध्य इसी समय दूर करता हूं (अथ प्रसूतः एतम्, पितुम्, अद्धि) पाशविमोचन के अनन्तर निर्ऋति की अनुज्ञा को प्राप्तहो, इस रक्षा करनेवाले अन्नको हे यजमान! भक्षण करो (या, इदं, चकार, भूत्यै, नमः) जिस देवीके प्रसाद से यह समस्त क्रिया सम्पन्न हुई उस ऐश्वर्यरूप देवी के निमित्त

नमस्कार है ॥ ६५ ॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः। देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

इसका विश्वावसु ऋ०, वि० त्रि० छं०, अग्निदेवता है। मंत्रार्थ-(निवेशनः, वसूनां, संगमनः, सत्यधर्मा:, शचीभिः, विश्वा, रूपा, अभिचष्टे, सवितादेवः, इव, पथीनां, समरे, तस्थौ, इन्द्रोन) स्वगृहमें यजमानका स्थापक धनोंका प्रापक अवश्य होने वाले फल से युक्त अग्निहोत्रादि लक्षण से युक्त अग्नि अपने अपने कर्मोंसे संयुक्त सम्पूर्ण आहवनीय अतिप्रणीता आग्नीध्र धिष्ण्यादिरूपों को प्रकाश करता है सविता देवताकी समान प्रकाशक होकर शत्रुओं के साथ युद्धमें स्थित हुआ जिसप्रकार इन्द्र युद्ध में स्थित होता है ॥ ६६ ॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

इसका सोमपुत्र बुध ऋ०, गायत्री छं०, सीर देवता है। मंत्रार्थ (धीराः, कवयः, देवेषु, सुम्नया, सीराः, युञ्जन्ति, युगा, पृथक् वितन्वते) बुद्धिमान् अग्नि विद्या में कुशल कृषिकर्म के मर्म को जाननेवाले विद्वान् देवलोक में सुख प्राप्त करने को हलों का बैलों से योग करते हैं, युगोंको भिन्न २ विस्तार करते हैं ॥ ६७ ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

इस का सोमपुत्र बुध ऋषि, विराडार्षी त्रि० छं०, सीर दे० है। मन्त्रार्थ-हे कर्षकगणों! (सीरा, युनक्त, युगा, वितनुध्वम् कृते, इह, योनौ, गिरा, च, बीजम्, वपत, श्रुष्टिः, सभरा, असत्, पक्वम् इत् सृण्यः नः नेदीयः इयात्) हलोंको जोड़ो हलके जुए शम्या और योक्त्र आदि से विस्तार करो कर्षणसे संस्कार

करने पर इस स्थान में "या ओषधीः पूर्वा० १९ कं०" यह मंत्रपाठ करके और चमस द्वारा संस्कृतव्रीहि आदि बीजको बोओ अन्न समूह व्रीहि आदि फलादि सहित वर्तमान होकर पुष्ट हो, पकेहुए धान्यको अल्पकाल में ही दरांती से काटकर हमारे अति-समीप घरमें प्राप्तकरो ॥ ६८ ॥

शुनᳪ सुफाला विकृषन्तु भूमिᳪ शुनं कीनाशा
अभियन्तु वाहैः शुनासीरा हविषा तोशमाना
सुपिप्पला ओषधी कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० त्रिष्टुप् छन्द सीता देवता है मंत्रार्थ-(सुफालाः, भूमिं, शुनम्, विकृषन्तु, कीनाशाः, वाहैः, शुनम्, अभियन्तु, शुनासीरा, हविषा, तोषमानाः, अस्मे, ओषधीः, सुपिप्पलाः, कर्त्तन) हे सुन्दर फलवाले हलों ! तुम पृथ्वी को सुख पूर्वक जोतो, हलवाले मनुष्य वृषभादिके संग सुखपूर्वक गमन करें हे वायु आदित्य दोनों देवताओं । जलसे भूमिको सींचते हुए हमारी ओषधियों को सुन्दर फलवाली कर्त्तन करो ॥ ६९ ॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥ ७० ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० आर्षी त्रि० छं० सीता देवता है । मंत्रार्थ-(विश्वैः, देवैः, मरुद्भिः, अनुमता, सीता, मधुना घृतेन, समज्यताम्, सीते, पयसा, पिन्वानाः, पयसा, अस्मान्, अभ्याववृत्स्व) सम्पूर्ण देवतागण मरुत्‌गणों से अंगीकार कीहुई हल की फाल मधुर घृत अर्थात् अमृतमय जलसे सिंचित हो, 'परोक्ष से कहकर प्रत्यक्ष कहते हैं' । हे फाल ! ऊर्जस्वती अन्नवान् तुम पय दही घृतादि से दिशाओं को पूर्ण करतीहुई दुग्धादि से हम को सबप्रकार अनुकूल हो और क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण ओषधी अमृत जलसे परिपुष्ट होकर सतेज हो इसकारण तुम अमृत जल संग्रह पूर्वक हमारी ओर अनुकूल हो ॥ ७० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवꣳ सोमपित्सरु। तदु-द्वपति गामविं प्रफर्व्यञ्च पीवरीं प्रस्थावद्र-थवाहनम् ॥ ७१ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ०, विराट् पं० छं० सीता देवता है। मंत्रार्थ-(तत्, पवीरवत्, सुशेवं, सोमपित्सरुः, लाङ्गलं, प्रफर्व्यम् अविं, पीवरीम्, गां, च, प्रस्थावत्, रथवाहनम्, उद्वपति) यह पूर्वोक्त फाल संयुक्त सुखकारक यजमानके निमित्त भूमिका खोदने वाला हल अति वेगवान् छाग स्थूल पुष्ट अंगवाली गौ और गमन में समर्थ रथवाहक अश्वादिको प्राप्त कराता है ॥ ७१ ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च। इन्द्रा-याश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ०, विराडनु० छं० सीता देवता है। मंत्रार्थ-(कामदुघे, मित्राय, वरुणाय, इन्द्राय, अश्विभ्यां, पूष्णे, प्रजाभ्यः, च, ओषधीभ्यः, कामम् धुक्ष्व) हे मनोरथ पूरक सीते! मित्र वरुण इन्द्र दोनों अश्विनीकुमार पूषा प्रजाओं के भोगार्थ और ओषधियों के निमित्त अपेक्षित भोगको सम्पादन करो ७२

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० है, भुरिगा० गा० छं० वृषभ दे० है। मंत्रार्थ-(देवयानाः, अघ्न्या विमुच्यध्वम्, अस्य, तमसः, पारं, अगन्म, ज्योतिः, आपाम) हे देवताओं के निमित्त कर्म करने वाले मारने के अयोग्य गोबलीवर्द आदि! जगत्की स्थिति के हेतु कृषिको सम्पादन करो युगसे पृथक् हो तुम्हारी कृपासे हम इस क्षुधापिपासा से उत्पन्न हुए दुःखके पारको प्राप्त हुए परमात्मारूप को प्राप्तहुए ॥ ७३ ॥

सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः। स-जोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० मात्राधनुष्टुप् छं० लिङ्गोक्त दे० है। मंत्रार्थ (अग्नेः, अयशोभिः, सजूः, उषा, अरुणीभिः, सजूः, अश्विनौ दंसोभिः, सजोषसौ, सूरः, एतशेन, सजूः, वैश्वानरः, इडया, घृतेन, सजूः, स्वाहा) संवत्सर अग्नों का दाता अवयव मास अर्धमासके सहित प्रीतियुक्त, प्रातःकालके अधिष्ठात्री देवता उषा अरुण वर्ण वाली गौओंसे प्रीतियुक्त, अश्विनी कुमार चिकित्सादि कर्मों से प्रीतियुक्त, सूर्य घोड़े से प्रीतियुक्त, वैश्वानर अग्नि पृथ्वीसे घृतसे प्रीतियुक्त हैं इन देवताओंके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ७४ ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा ।
मनैनु बभ्रूणामहश्ठं शतन्धामानि सप्त च ॥७५॥

इसका भिषगृषि, अनुष्टु छं० ओषधि देवता है। मंत्रार्थ (पुरा याः पूर्वाः, ओषधीः, देवेभ्यः, त्रियुगम्, जाताः, बभ्रूणाम्, शतं, च, सप्तधामानि, धामानि अहं, मनैनु) सृष्टिकी आदि में जो पहले ओषधी ऋतुओंके द्वारा वसन्त वर्षा और शरद् ऋतु में उत्पन्न हुई हैं, जगत् की उत्पत्ति पालन में समर्थ और पाकसे पीली हुई ओषधियोंके विशेषकर सौ सौ और मात्राभ्यतः व्रीहि गोधूमादि सात नाम मैं जानताहूं ॥ ७५ ॥

शतम्वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥७६॥

इसका भिषगृषि है, अनुष्टुप छं० ओषधय दे० है। मंत्रार्थ अम्ब आवः, धामानि, शत, उत, वः, रुहः, सहस्रं, शतक्रत्वो, यूयम्, मे, इमं, अगदं, कृत) हे माता की समान ओषधियो ! सब प्रकार के तुम्हारे नाम सैकड़ों हैं और तुम्हारे अंकुर असंख्यात हैं, तुम्हारे सत्वसे सब जगत् के कार्य होतेहैं, इस कारण हे अनन्त-कर्मसाधक ओषधियो ! तुम मेरे इस यजमानको क्षुत्पिपासादि षडूर्मिरोगों से रहित करो अर्थात् यजमान किसी प्रकार के रोग से पीड़ित नहो ॥ ७६ ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वाँ
इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ७७ ॥

इसका भिषगृषि निचृ दनु० छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ (ओषधीः, पुष्पवतीः, प्रसूवरीः, अश्वाः, इव, सजित्वरीः, वीरुधः, पारयिष्णवः प्रतिमोदध्वम्) हे ओषधीगण ! पुष्पोंसे युक्त फल उत्पन्न करने वाली, घोड़ों की समान वेगसे गमन वाली अनेक प्रकारकी व्याधि निवारण करने वाली, फलपाकान्त के सिवाय बहुत काल तक कर्मपरायण प्रसन्न होओ अश्वकी समान वेगसे शीघ्र पुष्पवान फलवान होओ ॥ ७७ ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे । सने-
यमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥

इसका भिषग् ऋ० निचृ० छ०, ओषधय दे० है । मंत्रार्थ (मातरः, देवीः, ओषधीः, वः, इति, तत्, उपब्रुवे, पुरुष, तव, अश्वम्, गाम्, वासः, आत्मानम्, सनेयम्) हे जगत्की निर्माण करनेवाली, हे दिव्यगुणोंसे युक्त हे सम्पूर्ण ओषधी तुमसे इस आगे कही विधिके द्वारा वह जो हम प्रार्थना करते हैं हे यज्ञपुरुष! आपके प्रसाद से घोड़ गौ वस्त्र रोगरहित शरीर को मांगू यह पुरुषसे जो मेरी प्रार्थना है उसे ओषधी माने ॥ ७८ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गो-
भाज इत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

इसका भिषग् ऋ० अनुष्टुप् छं०, ओषधय दे० है । मंत्रार्थ हे ओषधियो ! (वः, अश्वत्थ, निषदनम्, वः, पर्णे, वसतिः, कृता, किल, गोभाजः, इत् असथ, यत्, पुरुषं, सनवथ) तुम्हारा पीपलकाष्ठनिमित्त उपभृत और जुहपात्रमें स्थान है, तुमने पलाश पनसे बनी हुई जुहू में स्थान किया है, पात्रमें हवि स्थापन करते हैं, होमके निमित्त हवि जुहू में रखते हैं, हे हविर्भूत ओषधियो ! निश्चय करके तुम आदित्य की भजनेवाली ही हो, कारण कि अग्निमें दीहुई आहुति आदित्यको प्राप्त होतीहै । इस कारण तुम

यजमानको अन्नादि से पुष्टकरो ॥ ७९ ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव। विप्रः

स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

इसका भिषग् ऋ० है, अनुष्टुप् छं० ओषधि दे० है। मंत्रार्थ (ओषधीः,यत्र,समग्मत,इव,राजानः,समितौ, सः,रक्षोहा, अमीवचातनः, विप्रः, भिषग्, उच्यते) हे ओषधियो! तुम जिस ओषधी करने वाले वैद्यके पास जाती हो, जैसे राजा संग्राम में शत्रुजयको, जातेहैं, वह तुम्हारे आश्रितवैद्य पुरोडाशप्रदानादि से राक्षसरूप रोगोंका नाशक होताहै। औषधी देकर रोगका नाश करनेवाला ब्राह्मण वैद्य कहाताहै ॥ ८० ॥

अश्वावतीᳬ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।

आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ८१॥

इसका भिषग् ऋ०,अनुष्टुप् छं०, वैद्य देवता है॥मंत्रार्थ-(अस्मै, अरिष्टतातये,अश्वावतीम्, सोमावतीम्,ऊर्जयन्तीं उदोजसम्,सर्वाः ओषधीः, आ, अवित्सि) इस यजमानको अरिष्ट नाश के निमित्त अश्वादि पशुगण के उपयोगी सोमयाग को उपयोगी बल प्राण की सम्पादन करनेवाली तेजःसम्पादक सम्पूर्ण ओषधियों का सब प्रकार से जानता हूं ॥ ८१ ॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।

धनᳬ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥

इसका भिषग् ऋ०, विराडनु० छं०, ओषधय देवता है। मंत्रार्थ-(पूरुष,तव,आत्मानं, धनम्, सनिष्यन्तीनाम्, ओषधीनाम् शुष्माः, उदीरते, इव, गावः गोष्ठात्) हे यज्ञपुरुष! तुम्हारे शरीर के प्रति धनरूप हवि देने की इच्छा करनेवाली ओषधियों की सामर्थ्य प्रकट होती है, जैसे गौ गोठ से निर्गत होतीं हैं ॥८२॥

इष्कृतिर्नाम वो माता थो यूयᳬ स्थ निष्कृतीः।

सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

इसका भिषग् ऋ०, निचृ० छं०, ओषधय दे० है। मंत्रार्थ-

हे ओषधियों! (निष्कृतिः, नाम, वः, माता, अथो, यूयम, निष्कृतीःस्थ, सीराः, पतत्रिणीः, स्थन, आमयति, निष्कृथ) निष्कृति नामवाली तुम्हारी माता है और तुम भी व्याधि की दूर करनेवाली हो और धान्न के सहित वर्त्तमान गमनयुक्त प्रसरण शील हो, इसकारण मनुष्यों में स्थित रोगका विनाश करो ॥ ८३ ॥

अतिविश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किञ्च तन्वो रपः ॥८४ ॥

इसका भिषग् ऋ०, विराडनु० छं०, ओषधय देवता है। मंत्रार्थ (परिष्ठाः, विश्वाः, ओषधीः, अत्यक्रमुः, इव, स्तेनः व्रजम्, तन्वः, यत्, किञ्च, रपः, प्राचुच्यवुः) सब ओर से रोग को दबाकर बैठनेवाली रोगनाशक सम्पूर्ण ओषधियां जब भक्षित होकर देह को व्याप्त करती हैं, जैसे दस्यु गोष्ठको व्याप्त करता है, उससमय शरीर में जो कुछ भी शिरकी व्यथा गुल्म अतिसारादिरूप पाप का फल है उस सबको नाश करती हैं ॥ ८४ ॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे। आत्मा
यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥

इसका भिषगृषि, अनुष्टु० छं०, ओषधि दे० है। मंत्रार्थ—(यत्, अहम् इमाः ओषधीः, वाजयन्, हस्ते, आदधे, यक्ष्मस्य, आत्मा, पुरा नश्यति यथा, जीवगृभः) जिस समय इन ओषधियोंका पूजन करताहुआ हाथ में धारण करता हूं, उससमय यक्ष्मा रोग का स्वरूप भक्षण से पहले ही नाशको प्राप्त होता है जैसे वध के निमित्त लेजाया हुआ प्राणी वध से पहले ही अपने को [illegible] मानता है ॥ ८५ ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः। ततो यक्ष्मं
विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

इसका भिषग् ऋ०, निचृद० छं० ओषधि दे० है। मंत्रार्थ—(ओषधीः, यस्य, अङ्गं, अङ्गं, परुःपरुः, प्रसर्पथ, यक्ष्मं, विबाधध्वे, इव, मध्यमशीः, उग्रः,) हे ओषधियों तुम जिसके अंग

अंग में ग्रन्थी ग्रन्थी में फैलती हो और यक्ष्मा रोग को वाधा देती हो जिसप्रकार देह के मध्यमें मर्म भागको पीड़ा देनेवाला उग्र रुद्र युगान्तमें त्रिशूल के मध्यभाग से जगतको पीड़ा देता है ८६

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना। साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

इसका भिषग् ऋ०, वि० नु० छं०, यक्ष्मा दे० है । मंत्रार्थ—(यक्ष्म, किकिदीविना, चाषेण, साकं, प्रपत, वातस्य, ध्राज्या, साकं, निहाकया, साकं, नश्य) हे व्याधियों तुम कफसे रुके कंठसे उठे शब्दके द्वारा क्रीडा करने वाले श्लेष्म रोग और पित्त रोगके साथ गमन करो वात रोगके साथ नष्टहोओ सर्वांग वेदना से जो रोगीका हाहाकार है उस दुःखके सहित नष्टहोओ । ८७

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥८८॥

इसका भिषग् ऋ० विराडनुष्टुप छं० ओषधय दे० है मंत्रार्थ हे ओषधियो (वः, अन्या, अन्याम्, अवतु, अन्या अन्यस्याः, उपावत, ताः, सर्वाः, संविदानाः, मे, इदं, वचः, प्रावत) तुम्हारे मध्यमें कोई एक ओषधी दूसरी की रक्षाकरे रक्षित हुई वोही दूसरी की रक्षा करने को समीपआवे अर्थात् योगज पदार्थों से तुम्हारी शक्ति अधिकहो, तुम सब परस्पर एकमति होकर मेरे इस प्रार्थना रूप वचन की रक्षाकरो ॥ ८८ ॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ ८९ ॥

इसका भिषग् ऋ०, विराडनु० छं० ओषधि दे० है। मंत्रार्थ (याः, फलिनीः, याः अफलाः, अपुष्पाः, च, याः, पुष्पिणीः, ताः, बृहस्पतिप्रसूताः, नः, अꣳहसः मुञ्चन्तु) जो ओषधी फल वाली हैं जो ओषधी फल रहित हैं जो फूल रहित हैं और जो ओषधी फूल वाली हैं वे सब ओषधी प्रजापालक परमात्माकी प्रेरणा से हमको पापसे छुड़ावें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो
यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥९०॥

इसका बन्धु ऋ०, भुरिगुष्णिक् छं० ओषधी देवताहै । मंत्रार्थ ओषधियें (शपथ्यात्, किल्बिषात्, अथो, वरुण्यात्, उत, यमस्य, पड्वीशात्, अथो, सर्वस्मात्, एव, मा, मुञ्चन्तु,) शपथके कारण होने वाले पापसे जल क्रीडादिजन्य जलरोगसे,यम सम्बन्धी बन्ध के कारणरूप पापसे सब प्रकार के पापसे देवापराध के कारण होने वाले पापसे मुझको छुडाओ ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीव-
मश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥

इसका बन्धु ऋ०, अनुष्टु० छं०, ओषधि दे० है । मंत्रार्थ (दिवः, परि, अवपतन्तीः, ओषधयः, अवदन्, यम्, जीवम्, अश्नवामहै, सः पूरुषः न रिष्यति) द्युलोक से भूमिपर प्राप्त होतीहुई ओषधियों ने कहा, जिस प्राणी को हम व्याप्त करती हैं वह पुरुष नहीं नष्ट होता ॥ ९१ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥९२॥

इसका बन्धु ऋ०, विराडार्ष्य० छं०, ओषध दे० है । मंत्रार्थ (याः, सोमराज्ञीः, बह्वीः, शतविचक्षणाः, ओषधीः, तासाम्, त्वं, उत्तमा, असि, कामाय, अरं, हृदे शम्) जो सोमपत्नी हैं, अनन्त असंख्यात शुभगुणों से युक्त ओषधी हैं, उन के मध्य में हे ओषधी ! तुम उत्तम हो, इच्छित के निमित्त समर्थ तुम हृदय के निमित्त सुखकारिणी हूजिये ॥ ९२ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९३ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराडा० छं०, ओषधय दे० है ॥ मंत्रार्थ (याः, सोमराज्ञीः, ओषधयः, पृथिवीम्, अनु, विष्ठिताः, बृहस्पतिप्रसूताः, अस्यै, वीर्यम्, सन्दत्त) जो सोमपत्नी ओषधियें पृथिवी

पर नाना प्रकार से स्थित हैं बृहस्पति द्वारा प्रेरणाकी हुई वे औपधी इस हमारी लाई हुई औपधी के निमित्त पराक्रमको दें अर्थात् वीर्यसम्पन्न करें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः। सर्वाः
संगत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥

इसका वन्धु ऋ० विराडनु० छं० ओपधि देवता हैं। मंत्रार्थ--(या, उप, च, याः, दूरं, परागताः, च, इदं, शृण्वन्ति, वीरुधः, सर्वाः, सङ्गत्य, अस्यै, वीर्यम्, सन्दत्त) जो औपधी समीप स्थित हैं, और जो ओपधी हमसे दूर स्थित हैं और इस हमारे वचनको सुनती हैं, वे तरुजात सम्पूर्ण ओषधी मिलकर हमारी ग्रहण की हुई इस ओपधी में वलको धारण करें ॥ ९४ ॥

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपाचतुंष्पादस्माकᳪं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

इसका वन्धु ऋ० विराडनु० छं०, ओपधि देवता है मंत्रार्थ--हे ओपधियो! रोगकी चिकित्सा के निमित्त तुम्हारी मूलकी आवश्यकता है इस निमित्त (यः, खनिता, मा, रिषत्, यस्मै, वः, अहं, खनामि, च, अस्माकम्, द्विपात्, चतुष्पात्, सर्वं, अनातुरम्) जो कोई तुमको खनन करता है, वह खनन करने के अपराध से हानिको न प्राप्त हो, जिस रोगी की चिकित्सा के निमित्त तुमको मैं खनन करता हूं वह भी हानि को प्राप्त न हो, हमारे सम्बन्धी स्त्री पुत्रादि द्विपाये और चौपाये सबही रोगरहित हों ॥ ९५ ॥

ओर्षधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा । यस्मै
कृणोति ब्राह्मणस्तᳪराजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

इसका वन्धु ऋ० निचृ० छं०, ओपधी देवता है । मंत्रार्थ--(राज्ञा, सोमेन, सह, ओपधयः, समवदन्त, ब्राह्मणः, यस्मै, कृणोति, राजन्, तम्, पारयामसि) अपने स्वामी सोमके सहित ओपधियें कहतीहुई, ब्राह्मण जिस रोगी के निमित्त हमारे मूल फल पत्रसे चिकित्सा करता है हे स्वामिन सोम! उस

मनुष्यको हम रोगरहित करती हैं ॥ ९६ ॥

नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि अथो
शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

इसका बन्धु ऋ०, अनुष्टुप् छं०, ओषधी देवता है । मंत्रार्थ- हे ओषधी ! (बलासस्य, अर्शसः, उपचिताम्, नाशयित्री, असि अथो, शतस्य, यक्ष्माणाम्, पाकारोः, नाशनी, असि) क्षय ववासीर मेदरोग और अनेकों श्वयथु "सूजन" श्लीपद आदि रोगों की नाश करनेवाली हो, और शतादि सैकड़ों रोगों की तथा मुखपाकादि रोगों की नाश करनेवाली हो ॥ ९७ ॥

त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

इसका बन्धु ऋ० निचृदनुष्टुप्छं० ओषधय देवता है मंत्रार्थ-- (ओषधे, गन्धर्वाः, त्वाम्, अखनन्, इन्द्रः, त्वां, बृहस्पतिः, त्वां सोमः, राजा, विद्वान्, त्वां, यक्ष्मात्, अमुच्यत) हे ओषधि ! गन्धर्वों ने तुमको खोदा इन्द्रने तुमको खोदा बृहस्पति ने तुमको खोदा सोम राजा ने तुम्हारी सामर्थ्य जानकर तुमको सेवनकर यक्ष्मारोगसे निष्कृति लाभ की तुम्हारे गुणज्ञाता तुमको पाकर अनेकों रोगों से मुक्त हुए ॥ ९८ ॥

सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व
सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥

इसका बन्धु ऋषि है, विराडनु० छं०, ओषधि दे० है । मंत्रार्थ (ओषधे, सहमाना, असि, मे, अरातीः, सहस्व, पृतनायतः, सहस्व, सर्वं, पाप्मानम्, सहस्व) हे ओषधि ! तुम शत्रुओं की तिरस्कार करने वाली हो मेरे अदानशील शत्रुकी सेनाको तिरस्कार करो, संग्राम चाहने वाले शत्रुओंको जीतो सब अशुभको तिरस्कार करो ९९

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ॥ १०० ॥

इसका बन्धु ऋ०, विराट् बृह० छं०, ओषधी दे० है। मंत्रार्थ (ओषधे, ते, खनिता, दीर्घायुः, यस्मै, अहं, त्वाम्, खनामि, च, अथो, त्वं, दीर्घायुः, भूत्वा, शतवल्शा, विरोहतात्) हे ओषधी ! तुम्हारा करने वाला दीर्घायु हो, जिस रोगी के निमित्त मैं तुमको खनन खनन करूं वह भी दीर्घायु हो और तुम भी दीर्घायु होकर सैकड़ों अंकुरवाली होकर वृद्धिको प्राप्त होओ ॥ १०० ॥

त्वमु॑त्त॒मास्यो॑षधे॒ तव॑ वृ॒क्षा उप॑स्तयः। उपा॑स्ति-
रस्तु सो॒ऽस्माकं॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति ॥ १०१ ॥

सबका बन्धु ऋ०, निचृ० छं०, ओषधि देवता है। मंत्रार्थ- (ओषधे, त्वं, उत्तमा, असि, वृक्षाः, तव, उपस्तयः, यः, अस्मान् अभिदासति, सः, अस्माकं, उपस्तिः, अस्तु) हे ओषधी ! तुम श्रेष्ठहो, तुम्हारे निकटके शाल, ताल तमालादि वृक्ष तुम्हारे समीप में स्थित होकर उपद्रव निवारण कर छायादि द्वारा उपकार करते हैं, जो हमसे चिरकालतक द्वेष कररहा है वह हमारे अनुगतहो १०१

मा मा॑ हिꣳसीज्जनि॒ता यः पृ॑थि॒व्या यो वा॒
दिवं॑ स॒त्यध॑र्मा॒ व्यान॑ट्। यश्चा॒पश्च॒न्द्राः प्र॑थ॒मो
ज॒जान॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १०२ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० नि० त्रि० छं० प्रजापति देवता है। मंत्रार्थ-(यः, पृथिव्याः, जनिता, यः, सत्यधर्मा, दिवं व्यानट्, च, यः, प्रथमः, आपश्चन्द्राः, जजान, प्रथमः, मा, मा, हिंसीत्, कस्मै, देवाय, हविषा, विधेम) जो प्रजापति पृथिवी का उत्पन्न करनेवाला है, जो सत्य को धारण करनेवाला द्युलोकको सृजन कर चुका है और जो आदिपुरुष जगत् के आल्हादक और तृप्तिसाधक जलको उत्पन्न करताहुआ जो पहिला शरीर है वह प्रजापति मुझे मत मारो, उस प्रजापतिके निमित्त हवि देते हैं वह हमारी रक्षा करे ॥ १०२ ॥

अ॒भ्याव॑र्त्तस्व पृथिवि य॒ज्ञेन॒ पय॑सा स॒ह व॒पान्ते॑
अ॒ग्निरि॑षि॒तो अ॑रोहत् ॥ १०३ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० नि०दु० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ (पृथिवि, यज्ञेन, पयसा, सह, अभ्यावर्तस्व, इषितः, अग्निः, ते, वपाम्, अरोहत) हे पृथिवि ! यज्ञ और उसके फल वृष्टि के साथ सम्मुख आओ, परितृप्त हो प्रजापति के प्रेरित अग्नि तुम्हारे पृष्ठदेश में आरोहण करे ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्र यत्पूतं । यच्च यज्ञियम् तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ०, भु० गा० छं० अग्नि दे० । मंत्रार्थ (अग्ने, ते, यत्, शुक्रं यत्, चन्द्रम्, यत्, पूतं, च, यत्, यज्ञियम्, तत्, देवेभ्यः, भरामसि) अग्निदेव तुम्हारा जो अंग शुक्लवर्ण दीप्तिमान है, जो अंगज्योति चंद्रमाकी समान आल्हाद करने वाली है, जो ज्योति पवित्र है गृहकार्य के योग्य है और जो यज्ञकार्य के योग्य है उस सब प्रकार श्लाघनीयज्योतिको देवकार्य की सिद्धि के निमित्त सम्पादन करते हैं ॥ १०४ ॥

इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् । आ मा गोषु विशत्वातनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

इस कं० २ मं० हैं सबका हिरण्यगर्भ ऋ० हैं, छं०—१ वि०त्रि०, २या०त्रि० है देवता—१ आशीः, २यजमान है। मंत्रार्थ—(ऋतस्य, योनिं, इषम्, ऊर्जम्, महिषस्य, धारां इतः, अहं, आदम्) सत्य की उत्पत्ति के कारण अन्न उसके उपसेचन दही दूध घृतादिको, महत् इच्छा वाले अग्निकी आहुतिको इस प्रदेश उदीची दिशासे मैं ग्रहण करताहूं (आविशतु, तनूषु, गोषु, आ,) मुझमें प्रवेश करे, मेरे पुत्रादि शरीरों में मेरे धेनु आदि पशुओंमें प्रवेश करे (अनिराम् अमीवाम् सेदिं जहामि) अन्नरहित क्लेशदायक होनेकी व्याधिको त्यागन करताहूं ॥ १०५ ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो । बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं

दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ०, विराट पं० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(विभावसो, बृहद्भानो, कवे, अग्ने, तव, श्रवः, महि, वयः, अर्चयः, भ्राजन्ते, दाशुषे, शवसा, उक्थ्यम्, वाजम्, दधासि) हे कान्तिरूप धनवाले बड़े प्रकाशवान् यजमान के अभिप्राय को जाननेवाले अग्निदेवता! तुम्हारी यज्ञप्रवृत्ति देवताओं को सुनानेवाला बड़ा धूम और दीप्ति प्रकाशित होती हैं, तुम हविर्दाता यजमान के निमित्त बलसहित शस्त्रादि से युक्त यज्ञके योग्य अन्न को देते हो ॥ १०६ ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ १०७ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ० है, वि० पं० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—हे अग्ने! (पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः, भानुना, उदियर्षि, विचरन्, उपावसि, पुत्रः, मातरा, उभे, रोदसी, पृणक्षि) शोधक दीप्तिवाले निर्मल कान्तिवाले पूर्ण शक्तिवाले तुम अपनी दीप्ति से उत्कृष्टता को प्राप्त हो तथा सब ओर से विचरतेहुए देवता मनुष्यों सहित जगत् की रक्षा करते हो, जैसे पुत्र वृद्धहुए माता पिता की रक्षा करता है, इसीप्रकार तुम माता पितारूप दोनों द्यावा पृथिवी का धूमपुंज द्वारा अर्थात् हवि से द्युलोक का जल से भूमि का पालन करते हो ॥ १०७ ॥

ऊर्जोनपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः। त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

इसका पा० ऋ०, सतो बृ० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(ऊर्जोनपात, जातवेदः, धीतिभिः, हितः, सुशस्तिभिः, मन्दस्व, भूरिवर्पसः, चित्रोतयः, वामजाताः, त्वे, इषः सन्दधुः) हे जलोंके पोते! [जलसे वृक्ष और वृक्षों के मथनसे अग्नि होनेके कारण जलों

का पोता कहा] हे महावान् ! यज्ञकर्मों के निमित्त स्थापन किए तुम श्रेष्ठ स्तुतियों से हृष्टपुष्टहो, अनेक रूपवाले बहुत प्रकार की रक्षा वाले तुम से तर्पित श्रेष्ठजाति कुलमें उत्पन्नहुए यजमानों ने तुममें अपने हविरूप अन्नको होमा ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य स॑दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ०, सतो वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ. (अमर्त्य, अग्ने, जन्तुभिः, इरज्यन्, रायः, अस्मे, प्रथयस्व, सं, दर्शतस्य, वपुषः, विराजसि सानसिम्, क्रतुम, पृणक्षि) हे मरण धर्मरहित अग्नि देवता ! हवि देनेवाले प्राणियों द्वारा प्रदीप्त होते हुए तुम, अनेक प्रकार के धनोंको हमारे निकट विस्तार करो, वह तुम दर्शनीय चिरयौवन रूप शरीरके मध्यमें विशेष प्रदीप्त होते हो चिरन्तन संकल्पको पूर्ण करते हो ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥

इसका पाव० ऋ० है, सतोवृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ— (अध्वरस्य, इष्कर्तारं, प्रचेतसम्, क्षयन्तम्, वामस्य, महः, राधसः, रातिम्, सुभगाम्, महीम्, इषम्, सानसिम्, रयिम्, दधासि) यज्ञ के रचनेवाले श्रेष्ठ चित्तवाले हे अग्ने! यज्ञस्थान में निवास करने वाले यजमान के निमित्त श्रेष्ठ बड़े धनके दान को और श्रेष्ठ ऐश्वर्य युक्त बड़े अन्नको चिरन्तन धन को धारण करते हो ॥ ११० ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

इसका पा० ऋ०, उ० ज्यो० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ— हे अग्ने ! (मानुषाः जनाः युगा, गिरा, त्वा, ऋतावानं, महिषं,

विश्वदर्शतम्, शुरूकर्णम्, सप्रथस्तमम्, दैव्यम्, अग्निं, सुम्नाय, पुरः, दधिरे) बुद्धिमान् मनुष्यों ने पौर्णमास अमावस्या आदि पर्वों में वेदवाणी द्वारा तुम सत्यरूप महान संसार के दर्शनीय कर्णों से प्रार्थना सुननेवाले अति कीर्तिमान देवताओं के हितकारी अग्नि को यज्ञ के निमित्त पूर्वभाग में स्थापन किया ॥ १११ ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

इसका गो० ऋ०, नि० गा० छं० सोम देवता है । मंत्रार्थ—(सोम, विश्वतः, वृष्ण्यम्, ते, समेतु, आप्यायस्व, वाजस्य, सङ्गथे, आभव) हे सोम ! सब ओर से सब प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाला तेज तुमको प्राप्त हो, अपने वीर्य से सब प्रकार परिवर्द्धित हो यज्ञादि सत्कार्य के उपयोगी अन्न की प्राप्ति के निमित्त हमारे निकट आओ ॥ ११२ ॥

सन्ते पयांसि समुयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानोऽअमृताय सोम
दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

इसका गो० ऋ० गु० पं० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ-(सोम, पयांसि, ते, अभिमातिषाहः, संयन्तु, वाजाः, सम्, वृष्ण्यानि, सम्, आप्यायमानः, उ, अमृताय) हे सोम ! पीनेयोग्यरस तुम से पापनाशक को प्राप्तहों अन्न संगतिको प्राप्तहों वीर्य तुमको प्राप्तहों दुग्ध अन्न और वीर्य से वृद्धिको प्राप्तहोते हुए तुम ही अमरण धर्म के निमित्त हो और (दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) द्युलोक में श्रेष्ठ आहुति परिणामवाले अन्नों को धारण करो।

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः ।
भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

इसका गो० ऋ० प्र० त्रि० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ--(मदिन्तम, सोम, सप्रथस्तमः, विश्वेभिः, अꣳशुभिः, आप्यायस्व, वृधे, सखा, आभव) अतिशय तृप्त अन्तःकरणवाले हे

सोम अत्यन्त विख्यातकीर्ति वाले तुम सम्पूर्ण सूक्ष्मांशोंके द्वारा वृद्धिको पाओ, और हमारी वृद्धिके निमित्त सहायक हूजिये ११४

आ ते॑ वृत्सो मनो॑ यमत्पर॒माच्चि॑त्स॒धस्था॑त्।
अग्ने॒ त्वां का॑मया गि॒रा ॥ ११५ ॥

इसका वत्सार ऋ० है, नि० गा० छं० है अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने, ते, वत्सः, त्वां, कामया, गिरा, परमात्, सधस्थात्, चित्, मनः, आयमत्) हे अग्ने ! तुम्हारा वत्सस्वरूप यजमान तुमको स्तुति करने की इच्छावाली वेदवाणी के द्वारा उत्कृष्ट द्युलोकसे भी तुम्हारे मनको हटाता है ॥ ११५ ॥

तुभ्यं॒ ता अ॑ङ्गिरस्तम॒ विश्वाः॑ सुक्षि॒तयः॒ पृथ॑क्।
अग्ने॒ कामा॑य येमिरे ॥ ११६ ॥

इसका विरूप ऋ०, गाय० छं० अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अङ्गिरस्तम, अग्ने, पृथक्, विश्वाः, ताः, सुक्षितयः, कामाय, तुभ्यं, येमिरे) हे अति हविर्भक्षक अग्नि देवता ! अनेक प्रकार की सम्पूर्ण वह प्रसिद्ध स्वर्गादि सुन्दर स्थान की देनेवाली स्तुतियें, अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तुम्हारे निमित्त कीगई हैं ॥ ११६ ॥

अ॒ग्निः प्रि॒येषु॒ धाम॑सु॒ कामो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य ।
स॒म्राडेको॒ वि रा॑जति ॥ ११७ ॥

इसका प्रजापति ऋ० गायत्री छन्द अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(भूतस्य, भव्यस्य, कामः, सम्राट्, अग्निः, प्रियेषु, धामसु, एकः, विराजति) उत्पन्न उत्पद्यमान यजमानों की कामनाओंको पूर्ण करनेवाले सम्यक् प्रकार से विराजमान अग्निदेवता अपने प्रिय स्थानों में असहायभूत प्रधान रूपसे विराजमान होते हैं ॥ ११७ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सानुवाद द्वादश अध्याय समाप्त ।

—०—

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

जिसमें उखा धारण, गार्हपत्यचयन, क्षेत्रकर्षण और औषधि वपन प्रधान हैं । ऐसे बारहवें अध्यायमें उखाधारणादि के मंत्र कहे । अब तेरहवें अध्यायमें पुष्करपर्ण आदि के उपधानके मंत्र कहे जावेंगे ॥

मयि गृह्णाम्यग्ने अग्निᳯरायस्पोषाय सुप्रजा-
स्त्वाय सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

इसका वत्सार ऋ०, ककुप्छन्द अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— मैं यजमान (अग्ने, रायः, पोषाय, सुप्रजास्त्वाय, सुवीर्याय, अग्निं मयि, गृह्णामि, देवता, माम्, सचन्ताम्) प्रथम धनकी पुष्टि के निमित्त श्रेष्ठ पुत्रादिकी प्राप्तिके निमित्त उत्तम सामर्थ्यके निमित्त अग्निको अपने आत्मा में धारण करता हूं, देवता भी मुझको सेवन करें ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्ने: समुद्रमभितः पिन्व
मानम् वर्धमानो महाँ॥ आ च पुष्करे दिवो
मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

इस मं० की व्याख्या ११ अध्यायके २९ मंत्रमें होगई है ॥२॥

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो
वेन आवः । सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सत-
श्च योनिमसतश्च विवः ॥ ३ ॥

इसका वत्सा० ऋ० आ० त्रि० छं० आदित्य देवताहै मंत्रार्थ— (पुरस्तात्, प्रथमं, जज्ञानं, ब्रह्म, सीमतः, सुरुचः, विआवः सः, वेनः, उपमाः, च, अस्य, विष्ठाः, बुध्न्याः, सतः, च, असतः, योनिं विवः) पूर्व दिशामें सबसे प्रथम प्रकटहुए आदित्यरूप ब्रह्मने भूगोलके मध्यमें आरंभ करके सुन्दररुचिवाले इन लोकोंको अपने प्रकाश से फैलाया और वह कामनीय मेधावी सूर्य अवकाशयुक्त और इस जगतकी वासस्थान अन्तरिक्षमें होनेवाली दिशाओं को

तथा विद्यमान मूर्त घट पटादि और अमूर्त वायु आदि के उत्पत्ति स्थान ब्रह्माण्डको प्रकाशित करताहै ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० आर्षी त्रि० छं० प्रजापति देवता है। मंत्रार्थ-(हिरण्यगर्भः, भूतस्य, अग्रे, समवर्त्तत, जातः, एकः पतिः आसीत्, सः, पृथिवीम्, द्याम्, उत, इमाम्, दाधार, कस्मै, देवाय हविषा विधेम) हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ प्राणिमात्रकी उत्पत्तिके प्रथम शरीरधारी हुआ, और यह उत्पन्न अर्थात् प्रकट होतेही एकही इस उत्पन्न होनेवाले सब जगत्का ईश्वर हुआ, वही अन्तरिक्ष द्युलोक और इसभूमि अर्थात् त्रिलोकीको निर्माण कर धारण करताहै, उस प्रजापतिके निमित्त हविद्वारा विधान करतेहैं ॥ ४ ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनुद्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्तहोत्राः ॥ ५ ॥

इसका देवश्रवा ऋ०, वि० त्रि० छं०, आदित्या दे० है मंत्रार्थ यः, पूर्वः, द्रप्सः, पृथिवीं, अनुचस्कन्द, च, द्याम्, अनु, च इमम् योनिम्, अनु, समानं, योनिं, सञ्चरन्तम्, द्रप्सम्, सप्तहोत्राः, अनुजुहोमि) जो प्रथम मुख्य सबकी आदि है जिसकी आदि नहीं जो कि द्रप्स नामसे प्रसिद्ध आदित्यरूपका कारण अन्तरिक्षको मनुष्यादि के धारणके निमित्त सींचताहै, और द्युलोकको सींचता है, और इस भूलोकको आहुतिके परिणामरूप रससे सींचताहै, सम्पूर्ण के तुल्य त्रिलोकीमें विचरण करतेहुए आदित्य को सब दिशाओं में स्थापन करता हूं ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

इसका देवश्रवा ऋ० मु० मा० त्रि० छं० सर्प देवता है मंत्रार्थ--(ये, च, पृथिवीं, अनु, सर्पेभ्यः, नमः, अस्तु, ये, अन्तरिक्षे, ये, दिवि, तेभ्यः, सर्पेभ्यः, नमः) जो भी पृथ्वीके अनुगत लोक नक्षत्र हैं, उन लोक नक्षत्रोंके निमित्त नमस्कार हो, जो लोक अन्तरिक्ष में वर्तमान हैं, जो सम्पूर्ण लोक द्युलोकके आश्रित हैं, उन सर्पों के निमित्त नमस्कार है ॥ ६ ॥

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ२ ॥ रनु
येवावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

इसका देवश्रवा ऋ० अनुष्टु० छं० सर्प देवता है। मंत्रार्थ—(यातुधानानां, याः, इषवः, वा, ये, अवटेषु, शेरते, तेभ्यः, सर्पेभ्यः नमः) राक्षसगणोंके जो सर्प बाणरूपसे वर्तते हैं, या जो सर्प, चन्दन वृक्षादि वनस्पतियोंके आश्रित हैं, या जो बिलोंमें शयन करतेहैं उन सब सर्पों के निमित्त नमस्कार है ॥ ७ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु येषा-
मप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

इसका देवश्रवा ऋ०, निचृ० छं०. सर्प देवता है। मंत्रार्थ—(ये, वामी, दिवः, रोचने, वा, ये, सूर्यस्य, रश्मिषु, येषाम्, अप्सु, सदः, कृतम्, तेभ्यः, सर्पेभ्यः, नमः) जो सम्पूर्ण लोकसर्प द्युलोक के दीप्ति स्थानमें है, जो हमको नहीं दीखते अथवा जो लोक सूर्यकी किरणों में निवास करते हैं, जिन सर्प लोकों का जलों में स्थान कियाहै, उन सब सर्पोंके निमित्त नमस्कार है ॥ ८ ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामं-
वाँ२ ॥ इभेन तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि
विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

इसका वामदेव ऋ० मु० पं० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--हे अग्ने ! तुम (अस्ता, असि, याहि, इव, आमवान, राजा, इभेन, पृथिवीं, प्रसितिं, न, पाजः, कृणुष्व, तृष्वीम्, प्रसितिं अनु द्रूणानः, तपिष्ठैः, रक्षसः, विध्य) शत्रुओंके हटानेवाले हो, शत्रुओं

के ऊपर जाओ, जैसे सहायवान् नृप हाथीद्वारा शत्रुओंपर गमन करताहै, ऐसे तुम गमन करो, विशाल पक्षिग्रहणके निमित्त फैलायेहुए जालकी समान बलको विस्तार करो, वेगवान् जालद्वारा सम्यक्शत्रुओंको मारनेवाले तपानेवाले राक्षसोंको ताड़नकरो ॥

तवं भ्रमासं आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः । तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सं- न्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥

इसका वामदेव ऋ०, भु० पं० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-हे (अग्ने, तव, आशुया, भ्रमासः, पतन्ति, धृषताः, शोशुचानः, तपूंषि, पतङ्गान्, अनुस्पृश, जुह्वा, असन्दितः, विष्वक्, उल्काः, विसृज) अग्निदेवता ! तुम्हारी जो शीघ्रगामी ज्वालाएं पवन से इधर उधर चलायमान होती हैं, उस प्रगल्भ ज्वालासमूह से प्रकाशमान तुम तपानेवाले राक्षसों और पतंगों ज्वालासमूह से दग्ध करो, स्रुक से हूयमान तुम अखण्डित होकर सर्वत्र तिरछी ऊँची नीची ज्वालाओं को राक्षसों के नाश करने को छोड़ो पतंग की समान राक्षस तुम में प्रविष्ट हो नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः । यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

इसका वामदेव ऋ०, निचृ० त्रि० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने, नः, दूरे, यः, अघशंसः, यः, अन्ति, तूर्णितमः, अदब्धः, प्रतिस्पशः, विसृज, अस्याः, विशः, पायुः, भव, ते, किः, मा, आदधर्षीत) हे अग्ने ! हमारा दूर देश में जो शत्रु है जो निकट में वर्तमान शत्रु है, बड़े वेगवान् अनुपहिंसित तुम उसकी ओर बन्धन को प्रेरण करो, इस हमारी प्रजा के रक्षक हूजिये, तुमको कोई भी शत्रु मत धर्षणा करो ॥ ११ ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातंनुष्वन्यमित्राँ ओषतात्ति- ग्महेते। यो नो अरातिᳬ समिधानचक्रे नीचातं

धेक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

इसका वामदेव ऋ०, भु० गा० पं० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने, उत्तिष्ठ, प्रत्यातनुष्व, तिग्महेते, अमित्रान्, न्योषतात्, समिधान, नः, यः, अरातिं, चक्रे, तम्, नीचा, धक्षि, न, शुष्कम्, अतसम्) हे अग्निदेवता! तुम जागृत होवो ज्वाला विस्तार करो, हे उत्साहरूप आयुधवाले शत्रुओं को अत्यन्त भस्मीभूत करो, हे दीप्तिमान्! हमारे जो शत्रु दानका प्रतिषेध करता है उसको निकृष्ट करके भस्म करो जिसप्रकार सूखे अतस (अलसीके) वृक्ष को भस्म करते हो इसप्रकार शत्रु को नष्ट करो ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि॥१३॥

इस कं०में २ मंत्र हैं, सबका वामदेव ऋ० है, छं०—१ भु० पं० २ आ० त्रि०, देवता सबका अग्नि है। मंत्रार्थ—(अग्ने, ऊर्ध्वः, भव, अस्मत्, अधि, शत्रून्, प्रतिविध्य, दैव्यानि, आवि, कृणुष्व, यातुजूनाम्, स्थिरा, अवतनुहि, जामिम्, अजामिम्, शत्रून्, प्रमृणीहि) हे अग्निदेव! उद्योगी उद्यत हो हमारे ऊपर वर्त्तमान शत्रुओं का ताड़न करो, देवसम्बन्धी कर्मों को प्रकट करो, राक्षसों के स्थिर धनुषों को ज्यारहित करो, ताडित अताडित शत्रुओं को विनाश करो। हे स्रुक-(अग्नेः, तेजसा, त्वा, सादयामि) अग्नि के तेज से तुझको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाᳩ रेताᳩसि जिन्वति इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

इस कं०में २ मंत्र हैं, सबका वामदेव ऋ०, छं०—१ निचृ०गा०, आ० त्रि० और देवता सबका अग्नि है। इसकी ३। १२ में व्याख्या कीगई है ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे

शिवाभिः दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने
चक्रुषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ०, निचृदार्षी त्रि० छं- अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ-(अग्ने, हव्यवाहम्, जिह्वाम्, चक्रुषे, यज्ञस्य, च, रजसः, नेता, भुवः, यत्र, शिवाभिः, नियुद्भिः, सचसे, दिवि, स्वर्षाम्, मूर्द्धानम्, दधिषे) हे अग्निदेव ! तुम जब हवि धारण करनेवाली जिह्वारूप ज्वाला को प्रगट करते हो तब द्रव्यदेवता त्यागात्मा रूप यज्ञ के और यज्ञ परिणामरूप जल के प्रवर्तक और प्रापक होते हो, यहां मंगलरूप अश्वों के सहित तुम सम्बन्ध को प्राप्त होते हो और द्युलोक में स्वर्ग के देनेवाले आदित्य को धारण करते हो ॥ १५ ॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्म्मणा मा त्वा
समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं
दृᳪह ॥ १६ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ०,उद्धर्व०वृ० छं०, स्वयमातृणा दे० है ।
मंत्रार्थ-हे स्वयमातृणे ! तुम (धरुणा, विश्वकर्मणा, आस्तृता, ध्रुवा, असि, समुद्रः, त्वा, मा, उद्वधीत्, सुपर्णः, मा, अव्यथमाना, पृथिवीं, दृᳪह) भूमिरूपसे विश्व की धारण करनेवाली प्रजापति द्वारा विस्तार कीहुई दृढ हो, समुद्र अर्थात् रुक्म तुमको मत नष्ट करो, अचल होकर तुम भूमा॥ दृढ करने में समर्थ हो इसकारण पृथ्वी को दृढ करो ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ।
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७॥

इसका त्रिशिरा ऋषि है,अनुष्टु०छं०, स्वयमातृणादि दे० है ।
मंत्रार्थ-हे स्वयमातृणे ! (प्रजापतिः त्वा,व्यचस्वतीम्,प्रथस्वतीम् अपां, पृष्ठे, समुद्रस्य, एमन्, सादयतु, प्रथस्व, पृथिवी, असि) प्रजापतिने तुझ अवकाशवान् विस्तार युक्त को जलोंके ऊपर और समुद्रके स्थानमें स्थापन किया और तुम प्रजापतिसे सादित

होकर विस्तारको प्राप्त हो जिस कारण कि भूमिसे प्रकट होनेसे तुम पृथ्वीरूप हो ॥ १७ ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥ १८ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ० है. प्रस्तार पंक्ति छं० स्वयमातृण्णा दे० है मंत्रार्थ–हे स्वयमातृण्णे तुम (भूः भूमिः, असि, विश्वधाया, अदितिः, असि विश्वस्य, भुवनस्य, धर्त्री, असि, पृथिवीं, यच्छ, पृथिवीं, दृंह, पृथिवीं, मा, हिंसीः) सुखों की भावना करनेवाली भूमि नामसे प्रसिद्ध हो, विश्वपुष्ट करनेवाली देवमाता हो सम्पूर्ण संसारकी धारणा करने वाली हो पृथ्वीको कृपा दृष्टिसे अवलोकन करो भूभागको दृढकरो पृथिवीको मत कष्टदो ॥ १८ ॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥ १९ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ० भुरिग० ज० छन्द, स्वयमातृण्णा दे० है । मंत्रार्थ-हे स्वयमातृण्णे (विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय व्यानाय, उदानाय, प्रतिष्ठायै, चरित्राय, अग्निः, मह्या, स्वस्त्या, शन्तमेन, छर्दिषा, त्वा, अभिपातु, तया, देवतया, ध्रुवा, आङ्गिरस्वत्, सीद) सम्पूर्ण प्राण अपान व्यान उदान नामक शरीर वायुकी उन्नतिकी कामना के निमित्त तथा प्रतिष्ठाकीर्ति लाभके निमित्त शास्त्रीय आचरण के निमित्त अग्निदेवता बड़ी कल्याण योगक्षेम की सम्पत्ति और अत्यन्त सुखकारी गृहके द्वारा तुमको रक्षाकरें उस परम देवताके अनुग्रह से दृढहुई आङ्गिरा की समान स्थिरहो ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥

इसका अग्नि ऋ०, अनुष्टुप् छं०, दूर्वेष्टका देव० है । मंत्रार्थ

(दूर्वे, काण्डात्, काण्डात्, परुषः, परुषः, परि, प्ररोहन्ती, एव, सहस्रेण, च, शतेन, नः, आ, प्रतनु) हे दूर्वा ! इष्टके ! तुम प्रत्येक काण्ड से और प्रत्येक पर्व से सब ओर से अंकुरित होती हो और निश्चय ही सहस्र और सैकड़ों अर्थात् असंख्य ऐश्वर्य पुत्र-पौत्रादि से अंकुरवत् हमको सबप्रकार वृद्धि को प्राप्त करो ॥ २० ॥

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि। तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

इसका अग्नि ऋ०, निचृदनुष्टुप् छन्द, दूर्वेष्टिका देवता है। मंत्रार्थ-(देवी, इष्टके, या, शतेन, प्रतनोषि, सहस्रेण, विरोहसि, वयं, ते, हविषा, विधेम) हे दीप्यमान ! हे इष्टके ! जो तुम सैकड़ों काण्ड से विस्तार को प्राप्त होती हो, सहस्र अंकुरों से अनेकप्रकार से अंकुरित होती हो, हम तुमको हवि विधान करते हैं ॥ २१ ॥

यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः। ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ०, भुरिगनु०, छ० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (अग्ने, याः, ते, रुचः, सूर्ये, रश्मिभिः, दिवं, आतन्वन्ति, अद्य, ताभिः, सर्वाभिः, नः, रुचे, नः, जनाय, कृधि) हे अग्ने ! जो तेरी दीप्ति सूर्यमण्डल में वर्त्तमान किरणों द्वारा द्युलोक को प्रकाश करती हैं, इससमय उन सम्पूर्ण कान्तियों से आज हमारी शोभा के निमित्त करो तथा हमारे पुत्र पौत्रादि को जगत्प्रसिद्ध करो ॥ २२ ॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः। इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ०, अनुष्टुप् छं०, बृहस्पत्यादय देवता हैं। मंत्रार्थ-(इन्द्राग्नी, बृहस्पते, देवाः, वः, याः, रुचः, सूर्ये, याः, रुचः, गोषु अश्वेषु, ताभिः, सर्वाभिः, नः, रुचम्, धत्त) हे इन्द्राग्नी हे बृहस्पते ! हे देवगण ! तुम्हारी जो दीप्ति सूर्य मंडल में वर्त्तमान हैं जो दीप्तियें धेनुओं में जो अश्वों में स्थित हैं, उन सम्पूर्ण दीप्तियों

से देदीप्यमान तुम हमारे निमित्त कान्ति नीरोगताको प्रतिपादन कीजिये ॥ २३ ॥

विराड् ज्योतिरधारयत्स्वराड् ज्योतिरधारयत् प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥ २४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका इन्द्राग्नी ऋ०, छं-१ प्रा० गा, २ भु० प्रा०, देवता-१ रेतः सिचौ २ विश्वज्योति है। मंत्रार्थ-(विराड्, ज्योतिः, अधारयत्, स्वराड्, ज्योतिः, अधारयत्) विशेष शोभायमान विराट्रूप इस लोक ने अग्निरूप ज्योति को धारण किया, स्वयं प्रकाशमान द्युलोक ने अग्निरूप ज्योति को धारण किया। हे इष्टके ! (प्रजापतिः, विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय, व्यानाय, ज्योतिष्मतीम्, त्वा, पृथिव्याः, पृष्ठे, सादयतु, विश्वम्, ज्योतिः, यच्छ, अग्निः, ते, अधिपतिः, तया, देवतया, ध्रुवा, अङ्गिरस्वत्, सीद) प्रजा के पालक सम्पूर्ण प्राण अपान व्यान की सम्पत्ति के निमित्त ज्योतिर्युक्त तुमको पृथ्वी के ऊपर स्थापित करें; सम्पूर्ण ज्योति को निग्रह करो, अग्नि तुम्हारा अधिपति है, उस प्रसिद्ध देवता के सहित दृढ होकर अङ्गिरा की समान स्थित हो ॥ २४ ॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका इन्द्राग्नी ऋ०, छं०-१ भु०ग०,

२ मु० मा० ह०, सबका ऋतु देवता है। मंत्रार्थ—(मधुः, च, माधवः, च, वासन्तिकौ, ऋतू) चैत्रमास और वैशाखमास यह दोनों ही वसन्त सम्बन्धी ऋतु हैं, अथवा हे (ऋतू, अग्ने, अन्तः, श्लेषः, असि) ऋतुरूप दोनों इष्टकाओ ! तुम चीयमान अग्नि के अन्तर में स्थिर होकर श्लेष अर्थात् दृढ़ता के निमित्त लगायेहुए हो (मम, ज्यैष्ठ्याय, द्यावापृथिवी, कल्पेताम्, आपः, ओषधयः, कल्पन्ताम्, सव्रताः, पृथक्, अग्नयः कल्पन्ताम्) मुझ यजमान की उत्कर्षता के निमित्त यह द्युलोक और भूलोक अपने योग्य उपकार को कल्पना करें, जल और ओषधी हमारा प्राधान्य सम्पादन करें, समान व्रत अनेक नाम की अग्नि स्वयमातृणा आदि इष्टका उत्कृष्टता सम्पादन करें (इमे, द्यावापृथिवी, अन्तरा, समनसः, ये, अग्नयः, वासन्तिकौ, ऋतू, अभिकल्पमानाः, अभिसंविशन्तु, देवाः, इन्द्रम् इव,) यह द्यावापृथिवी के मध्य में वर्तमान एक मनवाली जो अग्नियें हैं अर्थात् औरों से चयन कीहुई वसन्त सम्बन्धी ऋतु को सम्पादन करते इस कर्म का आश्रय करो, जैसे देवता इन्द्र को परिचर्य्या कर सम्पादन करते हैं इसीप्रकार इष्ट का प्राप्त हो, हे इष्टके ! (तया, देवतया, अङ्गिरस्वत्, ध्रुवे, सीदतम्) उस प्रसिद्ध देवता द्वारा अङ्गिरा की समान स्थिर होकर स्थित हो ॥ २५ ॥

अषा॑ढासि॒ सह॑माना॒ सह॒स्वारा॑तीः॒ सह॑स्व पृत॒-
नाय॒तः । स॒हस्र॑वीर्यासि॒ सा मा॑ जिन्व ॥ २६ ॥

इसका सविता ऋ०, निचृ० छं०, इष्टका देवता है। मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (सहमाना, अषाढा, असि, अरातीः, सहस्व, पृतनायतः, सहस्व, सहस्रवीर्या, असि, मा, जिन्व) स्वभाव से शत्रुओं को वश करनेवाली तथा शत्रुओं को न सहनेवाली हो शत्रुओं को तिरस्कार करो, संग्राम की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को तिरस्कार करो, तुम अनन्त बलवाली हो, मुझपर प्रसन्न हो २

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

इसका गोतम ऋ०, निचृ० गा० छं०, विश्वेदेवा देवता है। मंत्रार्थ—(ऋतायते, वाताः, मधु, क्षरन्ति, सिन्धवः, मधु, नः, ओषधीः, माध्वीः, सन्तु) यज्ञ की इच्छा करनेवाले यजमान के निमित्त वायु पुष्परस को वहन करती हैं, स्यन्दमान नदियें मधु समान जल को क्षरण करती हैं, हमको सम्पूर्ण ओषधी मधुर रस से युक्त हों ॥ २७ ॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

इसका गोतम ऋ०, गायत्री छं०, विश्वेदेवा दे० है। मंत्रार्थ—(नः, पिता, द्यौः, मधु, अस्तु, पार्थिवम्, रजः, मधुमत्, नक्तं, उत, उषसः, मधु) हमको पितावत् पालन करनेवाला द्युलोक अमृत मय हो, मातारूप पृथ्वी सम्बन्धी रज अमृतमय हो, रात्रि और दिन अमृतमय हो अर्थात् सब से हमको मंगल हो ॥ २८ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ ॥ अस्तु सूर्य्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

इसका गोतम ऋ०, निचृ० गा० छं०, विश्वेदेवा देवता है। मंत्रार्थ—(वनस्पतिः, नः, मधुमान्, सूर्यः, मधुमान्, अस्तु, गावः, नः, माध्वीः, भवन्तु) सम्पूर्ण वनस्पति हमको मधुररस से युक्त हों, सूर्य हमको मधुर रसयुक्त हों, गौ हमको मधुर रसयुक्त हों ॥ २९ ॥

अपां गर्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभितापसीन्माऽग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

इसका गोतम ऋ०, स्वराट् पं० छं०, कूर्म देवता है। मंत्रार्थ—कूर्म से प्रजापति वा आदित्य का ग्रहण है, हे कूर्म ! तुम (अपाम्, गर्भम्, सीद, त्वा, सूर्यः, मा, अभितापसीत्, वैश्वानरः,

अग्निः, मा, अच्छिन्नपत्राः, प्रजाः, अनुवीक्षस्व, दिव्या, वृष्टिः, त्वा, अनुसचताम्) जलों के गंभीर स्थान आदित्यमण्डल में स्थित हो, तुमको सूर्य वहां स्थित होने से मत सन्तप्त करो, संपूर्ण मनुष्यों के हितकारी अग्नि तुमको मत सन्तापित करो, अखंडित अवयववाली इष्टका तुमको निरन्तर देखो और दिव्य वर्षा तुमको सेवन करो ॥ ३० ॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत्स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

इसका गौतम ऋ०, त्रिष्टुप् छं०, कूर्म देवता है । मंत्रार्थ— (अपां, पतिः, इष्टकानाम्, वृषभः, त्रीन्, स्वर्गान्, समुद्रान्, समसृपत्, पुरीषं, वसानः, तत्र, गच्छ, यत्र, सुकृतस्य, लोके, पूर्वे, परेताः) जलों के स्वामी इष्टिकाओं की उपधानक्रिया का प्रधान अंग हो तुमने तीन भोग के साधन लोकों को भलीप्रकार प्राप्त किया, पुरीष को आच्छादन करके उस स्थान में गमन करो जहां पुण्यात्माओं के लोक में पुरातन कूर्म अग्नियों से उपहित होकर गये हैं ॥ ३१ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

इसकी व्याख्या ८ अ० ३२ मं० में होगई ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

इसकी व्याख्या ६ अ० ४ मं० में होगई ॥ ३३ ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधिजातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

इसका गो० ऋ०, पु० त्रि० छं०, उखा देवता है । मंत्रार्थ— हे उखे ! (धरुणा, ध्रुवा, असि, जातवेदाः, प्रथमम्, इतः, अधि-

जहे) जगत् की धारणा करनेवाली तुम स्थिर हो, अग्नि पहिले इस उखा से प्रकट हुआ है (एभ्यः, योनिभ्यः, सः, प्रजानन्, गायत्र्या, त्रिष्टुभा, च, अनुष्टुभा, देवेभ्यः, हव्यं, वहतु) फिर इन अपने कारणों से प्रकट होता है वह अग्नि अपने अधिकार को भलीप्रकार जानताहुआ गायत्री त्रिष्टुभ् और अनुष्टुभ् छन्द की सामर्थ्य से देवताओं के निमित्त हवि को लेजाओ ॥ ३४ ॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ
प्रावताम् ॥ ३५ ॥

इसका गो० ऋ०, निचृ० दृ० छं०, उखा दे० है। मंत्रार्थ—उखे! (इषे, राये, सहसे, द्युम्ने, ऊर्जे, अपत्याय, रमस्व, सम्राट्, असि, स्वराट्, असि, त्वा, सारस्वतौ, उत्सौ, प्रावताम्) अन्न धन बल यश दुग्ध दधि घृतादि रस और पुत्र पौत्रादि देने के निमित्त यहां दीर्घकाल पर्यन्त स्थित हो तुम भूमिके भलेप्रकार प्रकाशमान हो, स्वर्ग के स्वयं दीप्तिमान् राजा हो, तुमको सरस्वती सम्बन्धी वाणी मन पालन करें ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

इसका भारद्वाज ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(देव, अग्ने, ये, ते, साधवः, अश्वासः, अरं, मन्यवे, वहन्ति, हि, आयुक्ष्व) हे दीप्यमान अग्नि देवता! जो तुम्हारे चतुरश्रेष्ठ घोड़े शीघ्र तुमको यज्ञ के निमित्त प्राप्त करते हैं उनको ही रथ में जोतो ॥ ३६ ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ ॥ अश्वाँ२ ॥ अग्ने रथीरिव
निहोता पूर्व्यः सदः ॥ ३७ ॥

इसका विरूप ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(अग्ने, देवहूतमान्, अश्वान्, हि, रथी, इव, आयुक्ष्व, पूर्व्यः, होता, निषदः) हे अग्ने! देवताओं के अतिशय बुलानेवाले

होनेवाले (अद्रिबुध्नम्, अश्वं, मा, हिंसीः) खुर से पर्वत को खोदनेवाले इस घोड़े को मत मारो ॥ ४२ ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः सपर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥

इसका विरूप ऋ०, नि० त्रि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(अजस्रं, इन्दुम्, अरुषम्, पूर्वचित्तिम्, नमोभिः, भुरण्युम्, अग्निं, ईडे, सः, पर्वभिः, ऋतुशः, कल्पमानः, अदितिं, विराजम्, गां, मा, हिंसीः) क्षयरहित ऐश्वर्य से युक्त रोषरहित पूर्व महर्षियों से चयन के योग्य अन्नों से सबके पोषण करनेवाले अग्नि की स्तुति करता हूं, वह अग्नि अमावास्या आदि पर्व, प्रति ऋतु में कर्मों को सम्पादन करताहुआ, अखण्डित प्रदीन दुग्ध दानादि से विराजमान गौ को न मारै ॥ ४३ ॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाथं रजसः परस्मात्। महीथं साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

इसका विरूप ऋ०, नि० त्रि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(अग्ने, परमे, व्योमन्, त्वष्टुः वरूत्रीम्, वरुणस्य, नाभिं परस्मात् रजसः, जज्ञानम्, महीं, साहस्रीम्, असुरस्य, अविं, मा, हिंसीः) हे अग्ने ! उत्कृष्ट रक्षास्थानमें स्थापित रूपोंकी निर्माण करनेवाली वरुणकी नाभितुल्य रक्षणीय दिव्यरूप लोकसे जायमान बड़ी सहस्र मूल्यके योग्य सहस्रों उपकार साधक प्राणियोंको प्रज्ञा देने वाली अविको मत नष्ट करो ॥ ४४ ॥

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

इसका विरूप ऋ०, त्रिष्टुप् छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(यः, अग्निः, अग्नेः, शोकात् अध्यजायत, उत, दिवः पृथिव्याः,

परि) जो अग्निरूप, अज, प्रजापतिके शोकसे उत्पन्नहुआ और द्युलोकके पृथ्वीके शोकरूप अग्निसे उत्पन्न हुआ (विश्वकर्मा येन प्रजाः, जजान, अग्ने, ते, हेडः, तम्, परिवृणक्तु) प्रजापति ने जिस अज अर्थात् वायुरूपसे प्रजाको उत्पन्न किया है, हे चिति-अग्निदेव ! तुम्हारा कोप उस अजको त्यागै ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-स्याग्नेः । आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षथंसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ४६ ॥

इसका विरूप ऋ०, विराट् ब्राह्मी पं० छं०, अग्नि दे० है । इसकी व्याख्या अ० ७ । ४२ में होगई ॥ ४६ ॥

इमं मा हिंथंसीर्द्विपादं पशुथं सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः । मयुंपशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

इसका विरूप ऋ०, वि० ब्रा० पं० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(अग्ने, मेधाय, चीयमानः, सहस्राक्षः, इमं, द्विपादं, पशुं, मा, हिंथंसीः) हे अग्ने ! यज्ञ के निमित्त चयन कियेहुए सहस्रों नेत्रवाले सुवर्णखण्डरूप सहस्रनेत्र तुम इस पुरुषरूप पशु को मत पीड़ा देना और पीड़ाकी इच्छा हो तो (मेधम्, मयुम्, पशुम्, जुषस्व) पवित्र तुरङ्गवदन किम्पुरुष पशु को सेवन करो (तेन, तन्वः, चिन्वानः, निषीद, ते, शुक्, मयुम्, ऋच्छतु, यं, द्विष्मः, ते, शुक्, तम्, ऋच्छतु) उसके सेवन से ज्वालारूप शरीर पुष्ट करतेहुए तुम यहां स्थित हो, तुम्हारा सन्ताप किम्पुरुष को प्राप्त हो, जिससे हम द्वेष करते हैं तुम्हारा सन्ताप उसको प्राप्त हो ४७

इमं मा हिंथंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु । गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

देवता उसके द्वारा पूर्वजन्म में यज्ञादि कर्म करके देवत्व को प्राप्त हुए तथा यज्ञ के योग्य यजमान स्वर्ग को इसी के द्वारा प्राप्तहुए हैं (आरण्यम्, शरभम्, ते, अनुदिशामि) वनका शरभ नामक सिंहघाती आठ चरण का मृग तुमको देता हूँ (तन्वः, तेन, चिन्वानः, निषीद, ते, शुक्, शरभं, ऋच्छतु, यम्, द्विष्मः, तं, ते, शुक्, ऋच्छतु) शरीर उसके द्वारा पुष्टि को प्राप्त करतेहुए तुम यहां स्थित हो तुम्हारी ज्वाला शरभ के प्रति प्राप्त हो । जिससे हम द्वेष करते हैं उसको तुम्हारी ज्वाला प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ५२ ॥

इसका उशना ऋ०, नि० गा० छं०, अग्निदेवता है । मंत्रार्थ (यविष्ठ, त्वं, गिरः, शृणुधी, दाशुषः, नॄन्, पाहि, उत, आत्मना, तोकम्, रक्ष) हे अतिशयतरुण अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियों को श्रवण करो हवि देनेवाले यजमान के मनुष्यों की रक्षा करो और अपने यजमान के अपत्य की रक्षाकरो ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपान्त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

इस कं० में २० मं० हैं । सबका उशना ऋ० छं० १, २

याजुष्यनु० ३, ५, ९, १३, या० नु०, ४, १०, ११, १२, १४, १५, या० पं०, ६, ७, २०, या, त्रि०, १६, १७, १८, या जु० २१, आसुर्यनु० और सबका इष्टका दे० है । मंत्रार्थ-हे अपस्या नामक इष्टका ! (अपां, पृमन, त्वा, सादयामि) जलों के स्थान में तुमको स्थापन करता हूं । हे अपस्या ! (त्वा, अपां, ओदन् सादयामि) तुझको ओषधियों में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, भस्मन्, सादयामि) तुमको अभ्र में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, ज्योतिषि, सादयामि) तुमको विद्युत् ज्योति में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, अयने सादयामि) तुझको भूमिमें स्थापन करता हूं। हे अपस्या (त्वा, अर्णवे, सदने, सादयामि) तुझको प्राणके स्थान में, स्थापन करता हूं । हे अपास्या (त्वा, समुद्रे, सदने सादयामि) तुझको मनके स्थान में स्थापन करताहूं । हे अपस्या (त्वा, सरिरे, सदने सादयामि)तुझको वाणी के स्थान में स्थापन करता हूं। हे अपास्या (त्वा, अपांक्षये सादयामि) तुझको चक्षु के निवास में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां, सधिषि, सादयामि) तुमको श्रोत्र में स्थापन करताहूं । हे अपस्या (त्वा, अपांसदने सादयामि) तुमको द्युलोक में स्थापनकरता हूं। हे अपस्या (त्वा, अपां सधस्थे सादयामि) तुमको अन्तरिक्ष में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां योनौ सादयामि) तुझको समुद्र में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा अपां पुरीषे, सादयामि) तुझको सिकता में स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, अपां पाथसि सादयामि) तुझको अन्नों में स्थापन करताहूं । हे अपस्या (त्वा, गायत्रेण छन्दसा, सादयामि) तुझको गायत्री छन्दके प्रभावसे सादन करता हूं । हे अपस्या (त्रैष्टुभेन, छन्दसा, त्वा, सादयामि) त्रिष्टुप छन्दके प्रभावसे तुझको स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा, जागतेन छन्दसा सादयामि) तुझको जगती छन्दके प्रभावसे स्थापन करता हूं । हे अपस्या (त्वा अनुष्टुभेन छंदसा

सादयामि) तुझको अनुष्टुप् छन्दके प्रभाव से स्थापन करताहूं. हे अपस्या (त्वा, पांक्तेन छन्दसा सादयामि) तुझको पंक्ति छन्दके प्रभाव से सादन करता हूं ॥ ५३ ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाॐशुरुपाॐशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

इस कं० में १० मं० हैं। सबका उशना ऋ०, छन्द--१ दैवी त्रि०, २ याजु० त्रु० ३, ८, या० त्रि०, ४, ५, ६, या० गा० ९, ७, दै० पं० १० आर्ची गा० है। और सबका प्राणभृदिष्टका दे० है। मन्त्रार्थ--हे इष्टका जो (अयं, पुरः, भवः, प्राणः, तस्य, भौवायनः, प्राणायनः, वसन्तः, वासन्ती, गायत्री, गायत्र्यै गायत्रं गायत्र्याद, उपांशुः, उपांशोः, त्रिवृत्, त्रिवृतः, रथन्तरम्, वसिष्ठः, ऋषिः) यह प्रथम होनेवाला अग्नि है तू इसके रूपवाली है प्राण उस भुव नाम अग्निका सन्तानहै प्राणका पुत्र वसन्त ऋतु है वसन्त की सन्तान गायत्री है गायत्री से गायत्र साम उत्पन्न है गायत्र सामसे उत्पन्न उपांशुग्रह है उपांशुग्रहसे उत्पन्न त्रिवृत्स्तोम त्रिवृत्स्तोम से निर्मित रथन्तरसाम, सर्वजन्तुओं में अधिष्ठित, सर्वाधार वशिष्ठ रूप प्राण ज्ञाता। हे इष्टके (प्रजापति गृहीतया, त्वया, प्रजाभ्यः, प्राणम्, गृह्णामि) प्रजापति के द्वारा ग्रहण कीहुई तुम्हारी सहायता से मैं प्रजाओं के निमित्त नीरोग प्राण-लाभ के निमित्त ग्रहण करता हूं ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्म्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम्। स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाजऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

इस कं० १० मं० हैं। सबका उशना ऋ०। छं० १-२ या० तृ० ३, ५ दै० पं०, ४ दै० तृ० ६, ८; ९ या० गा० ७याजुष्यनु०, १० आ० गा० है, देवता सबका मनोभृदिष्टका है। मंत्रार्थ— यह इष्टका (विश्वकर्मा, अयम्, दक्षिणा) विश्व का निर्माता विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध यह दक्षिण दिशा में आर्यावर्त्त से वहन करती है (मनः, तस्य, वैश्वकर्मणं, मन उस विश्वकर्मा का अपत्य है (ग्रीष्मः मानसः) ग्रीष्मऋतु मनकी अपत्य है (त्रिष्टुप् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारं) त्रिष्टुप्छन्द ग्रीष्म से प्रकट है, त्रिष्टुप्छन्द से स्वार साम प्रकटहुआ (स्वारात् अन्तर्यामः) स्वार सामसे अन्तर्यामि ग्रहहुआ (अन्तर्यामात् पञ्चदशः) अन्तर्याम से पंचदशस्तोम हुआ (पञ्चदशात् बृहत्) पञ्चदशस्तोम से बृहत् साम हुआ (भरद्वाजः ऋषिः) अन्न का धारण करनेवाला मन सचेतन है। हे इष्टके (प्रजापतिगृहीतया त्वया प्रजाभ्यः मनः गृह्णामि) प्रजापति द्वारा सादर ग्रहण कीहुई तुम्हारी सहायता से प्रजाओं का मन ग्रहण करता हूं॥५५॥

अयं पुश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्युचसं वृर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृ ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदुशः सप्तदुशाद्वैरूपं जुमदंग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि पृजाभ्यः॥ ५६॥

इस कं० में १० मंत्र हैं। सबका उशना ऋ०, छं०-१याजुष्यनु०, २ या० तृ० ३, ४, ६ दै० पं० ५, ७, ९, या० गा०, ८ याजुष्यु० १० आ० गा० और देवता सबका चक्षुर्भृदिष्टका है। मंत्रार्थ— (अयं, पश्चात्, विश्वव्यचाः, चक्षुः, तस्य, वैश्वव्यचसम्, वर्षा, चाक्षुष्या, जगती, वार्षी, जगत्यै, ऋक्सामम्, ऋक्सामात्, शुक्रः, शुक्रात्, सप्तदशः, सप्तदशात्, वैरूपं, जमदग्निऋषिः) यह पश्चिमगामी नेत्र उस रवि से उत्पन्न है, ऋतु चक्षु से प्रकट है, जगतीछन्द वर्षाऋतु से प्रकट है, जगतीछन्द से उत्पन्न ऋक्साम

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥



जिसमें चितिकरण का वर्णन है ऐसे त्रयोदश अध्याय में इष्टका सम्भरण के मंत्र कहे हैं, अब चौदहें अध्याय में दूसरी तीसरी और चौथी चिति के मंत्र कहेजायँगे—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया। उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

इसका उशना ऋ०, निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द, अश्विनौ देवता है। मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (ध्रुवक्षितिः, ध्रुवयोनिः, उख्यस्य, प्रथमम्, केतुम्, जुषाणा, ध्रुवा, असि, ध्रुवम्, साधुया, योनिम्, आसीद, देवानां, अध्वर्यू, इह, त्वा, सादयताम्) स्थिर निवास वाली अचल कारणवाली उख्य अग्नि के पहले, प्रथम चितिरूप स्थान को सेवन करतीहुई स्थिर होओ, स्थिर रेतः सिग्वेला नामक श्रेष्ठ स्थानपर बैठो, देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस रेतः सिग्वेला पर तुमको स्थापन करें ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

इसका उशना ऋ०, नि० ब्रा० त्रि० छं०, अश्विनौ देवता हैं। मंत्रार्थ—हे इष्टके ! (कुलायिनी, घृतवती, पुरन्धिः, पृथिव्याः, स्योने, सदने, सीद, रुद्राः, वसवः, त्वा, अभिगृणन्तु, इमाः, ब्रह्म, सौभगाय, पीपिहि, अश्विनौ, अध्वर्यू, इह, त्वा, सादयताम्) पक्षी के घोंसले के आकारवाली, होमरूप घृत से युक्त नीचे स्थित प्रथम चिति इष्टकाओं की धारण करनेवाली तुम पृथ्वी के सुखदायक स्थान में स्थित होओ, ग्यारह रुद्र आठ वसु तुमको स्तुत करें, इन मंत्रों को ऐश्वर्य के निमित्त बढ़ाओ दो यज-

मान का भाग्योदय हो, अश्विनीकुमार अध्वर्यु इस स्थल में तुमको स्थापित करें ॥ २ ॥

> स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानार्थ सुम्ने बृहते रणाय। पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्व । अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

इसका उ० ऋ०, वि० मा०, त्रु० छ०, अश्विनौ देवता हैं। मंत्रार्थ—हे इष्टके! (दक्षपिता, देवानाम्, रणाय, बृहते, सुम्ने, इह, स्वैः, दक्षैः, सीद) बल की रक्षा करनेवाली तुम देवताओं के रमणीय बड़े सुख के निमित्त इस दूसरी चिति में अपने बलों से स्थित होओ, और (आ, सुशेवा, एधि, इव, पिता, सूनवे, स्वावेशा, तन्वा, संविशस्व) सदा सुख की देनेवाली हो जिसप्रकार पिता पुत्र के निमित्त सुखदायक होता है, और सुख प्रवेशवाले शरीर के साथ यहां अवस्थान करो (अध्वर्यू, अश्विना, इह, त्वा, सादयताम्) अध्वर्यू अश्विनीकुमार इस स्थान में तुम को स्थापन करें ॥ ३ ॥

> पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सोनाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

इसका उशना ऋ०, भुरिक् ब्रा० त्रु० छं०, आश्विनौ दे० हैं। मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, पुरीष्यम्, अप्सोनाम, असि, ताम्, त्वा, विश्वेदेवाः, अभिगृणन्तु, स्तोमपृष्ठाः, घृतवती, इह, सीद, प्रजावत् द्रविणा, अस्मे, आयजस्व, अध्वर्यू, अश्विना, इह, त्वा, सादयताम्) हे इष्टके! तुम पहली चितिकी पूरक अप्स कहिये जलके कारणभूत रसरूप हो, उस तुमको सम्पूर्ण देवता सब ओरसे स्तुत करें, त्रिवृत आदि स्तोम रथन्तरादि पृष्ठ जिसमें पढ़ेजाते हैं ऐसी हवन होनेयोग्य घृत से युक्त तुम इस दूसरी चिति में ठहरो

को इस दूसरी चितिमें स्थापन करो । (ऋतुभिः सजूः, विधाभिः सजूः, वसुभिः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः, सजूः, त्वा, वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यू अश्विना, त्वा, इह सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओंके साथके प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान वसुओंके साथ प्रीतिमान् प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिमान् तुमको विश्व के हितकारी अग्निदेवताकी तृप्तिके निमित्त स्थापन करता हूं, अध्वर्यू, अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें, (ऋतुभिः, सजूः, विधाभिः, सजूः, रुद्रैः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः सजूः, त्वा वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यू अश्विना, त्वा, इह, सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओंके साथ प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिवाले रुद्रोंके साथ प्रीतिवाले प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिवाले तुमको विश्वके हितकारी अग्निदेवताके निमित्त स्थापन करता हूं अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें । (ऋतुभिः,सजूः विधाभिः,सजूः,आदित्यैः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः, सजूः, त्वा, वैश्वानराय, अग्नये, अध्वर्यू, अश्विना, त्वा, इह, सादयताम्) ऋतुओं के साथ प्रीतिवाले जलों के साथ प्रीतिवाले आदित्य के साथ प्रीतिवाले प्राण देवताओं से प्रीति वाले तुमको सब विश्व के हितकारी अग्नि देवता की प्रीति के निमित्त स्थापन करता हूं, अध्वर्यू, अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें । (ऋतुभिः, सजूः, विधाभिः, सजूः विश्वैः वैश्वदेवैः, सजूः, वयोनाधैः, देवैः सजूः, त्वा, वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यू, अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओं से सेवित प्राणोंसे सेवित सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित प्राण देवताओं से सेवित तुमको सब जगतके हितकारी अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूं, अध्वर्यू अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें ॥ ७ ॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय । अपः

पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादंव चतुष्पात् पाहि
दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

इस कं०में ४ मं० हैं। सबका विश्वदेवा ऋ०. १, ८, दै० ष्टु० १, ३, ७, ९, दै० पं०, २, ५, दै, त्रि० १० दै० ज०, ४ गा० गा० और देवता ६, ८, आप, १, ३, ७, ९, वायुराप, २,५, वायु, १०, आप, ४ वायु है। मंत्रार्थ-हे इष्टके! तुम (मे प्राणं पाहि, मे अपानं पाहि, मे, व्यानं. पाहि) मेरी नाभिसे ऊपर चलनेवाली प्राणवायुकी रक्षा करो मेरी नाभिसे नीचे चलनेवाली अपान वायुकी रक्षाकरो मेरे शरीरकी सन्धिगत वायुकी रक्षाकरो हे इष्टके! तुम (मे. चक्षुः, उर्व्या. विभाहि, मे श्रोत्रं श्लोकय) मेरे नेत्रोंको विस्तीर्ण दृष्टिसे देखनेमें समर्थ करो. मेरे कर्णेन्द्रिय को बहुत शब्दों के श्रवणमें समर्थ करो। (अपः पिन्व.औषधीः, जिन्व, द्विपाद्, अव, चतुष्पात् पाहि, दिवः, वृष्टिम्, एरय) हे इष्टके! तुम्हारे प्रसादसे यह पृथ्वी वृष्टि के जलसे सिंचितहो, औषधियोंको तृप्त करो द्विपाये प्राणी मनुष्योंकी रक्षा करो, चौपाये पशुओंकी रक्षाकरो, द्युलोकसे वर्षाको सब ओर प्रेरणा करो॥८॥

मूर्द्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं
छन्दो विष्टम्भो वयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा
वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो
वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छंदो।
व्याघ्रो वयो नाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदि
श्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहतीछन्द उक्षा वयः
ककुप्छन्द ऋषभो वयः सतो बृहती छन्दः ॥९॥

इस कं०में १९ मंत्र हैं, सबका विश्वेदेवा ऋ० । छं०-१,३,१०, १७, याजुषी पं०, २, ५, ६, ७, ८, १३, १४, १६, १८, १९, या० बृ०, ९, ११, १५, याजु० त्रु०, ४, १२ या० ज० और सब का लिङ्गोक्त देवता है। मंत्रार्थ-(प्रजापतिः,-छन्दः, वयः, मूर्द्धा) प्रजापति ने गायत्री छन्द होकर वयद्वारा प्रधान (ब्राह्मण) जाति

की रचना की है (क्षत्रं, वयः, मयन्दं, छन्दः) दुःख से रक्षा करनेवाली क्षत्रिय अवस्था प्रजापति हुए, सुख देनेवाले अनिरुक्त छन्द प्रजापति हुए (आधिपतिः, विष्टम्भः, वयः, छन्दः) अधिक पालन करनेवाले जगत् के स्तम्भनकर्त्ता प्रजापति संसाररूप पशु सम्बन्धी अवस्थावाले छन्द हुए (परमेष्ठी, विश्वकर्मा, वयः, छन्दः) परमपद में स्थित होनेवाले सबके स्रष्टा प्रजापति वय द्वारा छन्दहुए अर्थात् प्रजापति ने छन्द के प्रभाव से विविध कर्मचारी 'सेवाप्रवृत्तियुक्त' शूद्रजाति उत्पन्न की (वस्तः, विवलम्, छन्दः, वयः) प्रजापति ने अजा बकरी जाति को एकपद नामक छन्द से उसी अवस्था के अनुसार उत्पन्न किया (विशालं, छन्दः, वृष्णिम्, वयः) द्विपदा गायत्रीरूप छन्द होकर सेचन में समर्थ मेष पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (तन्द्रं, छन्दः, पुरुषं, वयः) पंक्ति छन्द होकर जातेहुए किन्नर की अवस्था को उत्पन्न किया (अनाधृष्टं, छन्दः, व्याघ्रं, वयः) विराट् छन्द होकर जातेहुए व्याघ्र पशु को उस अवस्था से प्रजापति ने उत्पन्न किया (छदिः, छन्दः, सिंहम्, वयः) अति जगती आदि छन्द होकर जातेहुए सिंह को उस अवस्था से उत्पन्न किया (बृहती, छन्दः, पष्ठवाट्, वयः) बृहती छन्द होकर जातेहुए पांच वर्ष के पीठपर भार वहनेवाले पशु को अवस्था द्वारा उत्पन्न किया (ककुप्, छन्दः, उक्षा, वयः) आदि अन्त में आठ अक्षर के दो चरण मध्य मध्य का बारह अक्षर का इसप्रकार के ककुप् छन्द होकर जातेहुए बैल को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (सतोबृहती, छन्दः, ऋषभम्, वयः) बारह अक्षर के त्रिपादवाले सतोबृहती छन्दरूप से गमन करते, भल्लूकादि को उसी अवस्था से उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

अनड्वान्वयः पंक्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगतीछन्द स्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् । छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः । पंचाविर्वयो गायत्रीछन्दस्त्रिवत्सो वयं

उष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड्वयोनुष्टुप्छन्दः ॥ १० ॥

ऋष्यादि (१) ॐ अनड्वानिति विनियोगादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(पंक्तिः, छन्दः, अनड्वान, वयः) पंक्ति छन्द होकर जातेहुए बलीवर्द को उस अवस्था से उत्पन्न किया (जगती छन्दः, धेनुः, वयः) जगती छन्द होकर गमन करतेहुए धेनु को वय से प्राप्त किया (त्रिष्टुप् छन्दः, त्र्यविः, वयः) त्रिष्टुप्छन्द होकर गमन करतेहुए अठारह मासके पशु को वय से उत्पन्न किया (विराट् छन्दः, दित्यवाट्, वयः) विराट् छन्द के रूप से गमन करते धान्य वहन करनेवाले को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (गायत्री छन्दः, पंचाविः, वयः) गायत्री छन्द से गमन करते ढाई वर्ष के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (उष्णिक् छन्दः, त्रिवत्सः, वयः) उष्णिक् छन्द होकर गमन करते तीन वर्ष के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (अनुष्टुप् छन्दः, तुर्य्यवाट्, वयः) अनुष्टुप्छन्द होकर गमन करते चार वर्ष के पशु को उसी अवस्थासे उत्पन्न किया ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳह तं युवम् ।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ०, भुरिगनुष्टुप्छन्द, इन्द्राग्नी तथा स्वयमातृणा देवता है । मंत्रार्थ—(इन्द्राग्नी, युवम्, अव्यथमानाम्, इष्टकाम्, दृꣳहत) हे इन्द्राग्नी दोनों देवताओं! तुम दोनों अचल भङ्गतारहित स्वयमातृणा इष्टका को दृढ करो । हे स्वयमातृणा इष्टके! (पृष्ठेन, द्यावापृथिवी, च, अन्तरिक्षम्, विबाधसे) तुम अपने ऊपर के भाग में पृथ्वी स्वर्ग और अन्तरिक्ष को बाधित करने में समर्थ होओ ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यच-
स्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳह
न्तरिक्षं मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायापा-
नाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय वायु-

पृथिव्याभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया
देवतयाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

इसका विश्वकर्म ऋषि, विकृतिश्छन्द, वायु दे० है। मंत्रार्थ—हे स्वयमातृणे ! (विश्वकर्मा, त्वा, व्यचस्वतीम्, प्रथस्वतीम्, अन्तरिक्षस्य, पृष्ठे, सादयतु) विश्वकर्मा प्रजापति तुम अवकाश युक्त विस्तारवाली को अन्तरिक्ष के ऊपर स्थापन करें। हे इष्टके! तुम (विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय, व्यानाय, उदानाय, प्रतिष्ठायै, चरित्राय, अन्तरिक्षम्, यच्छ, अन्तरिक्षं, दृᳬह, अन्तरिक्षं, मा, हिᳬसीः) सम्पूर्ण प्राणियों के प्राण अपान व्यान उदान की वृत्तिलाभ अर्थात् वायुबल की दृढता के निमित्त, स्वगृह की प्रतिष्ठा और शास्त्र आचरण करने के निमित्त तुम अन्तरिक्ष को गन्धर्वादि अप्सराओं के धारण योग्य करो, अन्तरिक्ष को दृढ करो, अन्तरिक्ष को मत पीड़ा दो (वायुः, त्वा, मह्या, स्वस्त्या, शन्तमेन, छर्दिषा, अभिपातु, तया, देवतया, अङ्गिरस्वत्, ध्रुवा, सीद) वायु देवता तुमको बड़ी योगक्षेम की सम्पत्ति से शुभकारी विशेष तेज से सब ओर से रक्षा करें तुम्हारा जो अधिष्ठात्री देवता है उस देवता से अनुगृहीत हुई अङ्गिरा की समान निश्चल स्थित होओ ॥ १२ ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक्
सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधि
पत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०—१ या० गा०, २, ३, या० त्रु०, ४, याजुष्यु० ५ या० बृ० है और दिग्दे देवता है। मंत्रार्थ—हे दिग्रूपा इष्टके ! तुम (राज्ञी, प्राची, दिक्, असि) राजमान होती पूर्व दिशा गायत्रीरूप हो) विराट्, दक्षिणा दिक्, असि) नानाप्रकार से विराजमान तुम दक्षिण दिशा त्रिष्टुप्रूप हो। (सम्राट्, प्रतीची दिक्, असि) भलीप्रकार विराजमान तुम पश्चिमदिशा जगतीरूप हो। (स्वराट्, उदीची दिक्, असि) स्वयं विराजमान तुम उत्तरादिशा अनुष्टुप्रूप हो (अधि-

पत्नी, बृहती, दिक्, असि) स्वयं अधिक रक्षा करनेवाली तुम पंक्तिरूप हो तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ०, शक्वरीछं० वायु देवता है । मंत्रार्थ-हे इष्टके ! (विश्वकर्मा, ज्योतिष्मती, त्वा, अन्तरिक्षस्य, पृष्ठे, सादयतु, विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय, व्यानाय, विश्वं ज्योतिः, यच्छ, वायुः, ते, अधिपतिः तया, देवतया, अङ्गिरस्वत्, ध्रुवा, सीद) प्रजापति वायुरूप तुमको अन्तरिक्षके ऊपर स्थापन करै, यजमानके सम्पूर्ण प्राण अपान व्यान के निमित्त सम्पूर्ण ज्योति को दो, वायु देवता तेरा स्वामी है उस अधिष्ठात्री देवता के प्रभाव से समष्टि प्राणकी समान इस अग्निचयन कार्य में निश्चल ठहरो १४

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥

इसका विश्वेदेव ऋ०, स्वराडतिकृति छं०, ऋतव देवता है । मंत्रार्थ—(नभः) श्रावण (नभस्यः) भादों शेष की व्याख्या १३ । २५ में होगई ॥ १५ ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे

शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ०, भुरिगुत्कृति छन्द, ऋतु देवता है। मंत्रार्थ—(इषः) आश्विन (ऊर्जः) कार्त्तिक (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के दो अवयव। अ० १३। कं० २५ में शेष की व्याख्या होगई ॥ १६ ॥

आयुर्मे पाहि प्राणम्मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

इस कं० में १० मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं० ३–९, दैवी त्रि०, १, २, ४ से १० तक दै० पं०, सबका लिंगोक्त दे० है। मंत्रार्थ—(मे, आयुः, पाहि, मे, प्राणं, पाहि, मे, अपानं, पाहि, मे, व्यानं, पाहि, मे, चक्षुः, पाहि, मे, श्रोत्रं, पाहि, मे, वाचं, पिन्व, मे, मनः, जिन्व, मे, आत्मानं, पाहि, मे, ज्योतिः, पाहि) हे इष्टके! मेरी आयु की रक्षा करो, मेरे प्राण की रक्षा करो, मेरे अपान वायु की रक्षा करो, मेरे व्यान वायु की रक्षा करो, मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करो, मेरे दोनों कानों की रक्षा करो, मेरी वाणी को कामनाओं से पूर्ण करो, मेरा मन प्रसन्न करो, मेरे शरीर की प्रारब्ध समाप्तिपर्यन्त रक्षा करो, मेरे प्राणरूप तेज की रक्षा करो ॥ १७ ॥

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्त्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

इस कं० में १२ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं० १, १९, १८, २२ दैव्यनुष्टुप् ३, ५, ६, ९, ११, १६, १९, २०,

२३, २४, दै० सू०, ३, ७, ८, १०, १२, १३,, ३१, ३५, ३६, ३७, ३०, ३१, दै० पं०.४, १४, १७,२८, २९.३१.३२, ३६, दै० त्रि० और सब का लिङ्गोक्ता दे०है। मंत्रार्थ-(ममा छन्दः) हे इष्टके ! अन्तरिक्ष, लोक को मनन करते तुमको स्थापन करता हूं। (प्रतिमा, छन्दः) प्रतीतिकारक द्युलोकके छादकरूप हो. प्रतिमा छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं. (अस्रीवयः छन्दः) पतनशील अन्न त्रिलोकीरूप छादक हो, अस्रीवय छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं (पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दः, बृहतीछन्दः, अनुष्टुप्छन्दः, विराट् छन्दः, गायत्री छन्दः त्रिष्टुप्छन्दः, जगतीछन्दः) पंक्ति छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं, उष्णिक् छंदको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं, बृहतीछंदको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं अनुष्टुप्छंद को मनन करते तुमको स्थापन करता हूं, विराट्छंदको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं, गायत्री छंदको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं, त्रिष्टुप्छन्द को मनन करते तुमको स्थापन करता हूं जगती छंदको मनन करते तुमको स्थापन करता हूं तुम इन सब की रूप हो ॥ १८ ॥

पृथिवी छंदोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छंदो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(पृथिवी, छन्दः, अन्तरिक्षं, छन्दः, द्यौः, छंद, समाः छन्दः, नक्षत्राणि छन्दः, वाक् छन्दः मनः छन्दः, कृषिः छंदः, हिरण्यं छंदः, गौः छन्दः, अजाः छंद, अश्वः छंदः) पृथिवी देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं,अन्तरिक्ष देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, द्युदेवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, वर्ष देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन

करता हूं, नक्षत्र देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, वाग्देवता वाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, मनदेवता वाले० कृषि देवतावाले० हिरण्य देवतावाले० गौ देवतावाले० अजा देवतावाले० अश्वदेवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं ॥ १९ ॥

अ॒ग्निर्दे॒वता॒ वातो॑ दे॒वता॒ सूर्यो॑ दे॒वता॑ च॒न्द्रमा॑ दे॒वता॒ वस॑वो दे॒वता॑ रु॒द्रा दे॒वता॑ऽऽदि॒त्या दे॒वता॑ म॒रुतो॑ दे॒वता॒ विश्वे॑दे॒वा दे॒वता॒ बृह॒स्पति॑र्दे॒वतेन्द्रो॑ दे॒वता॒ वरु॑णो दे॒वता॑ ॥ २० ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, भुरिग्ब्राह्मी त्रि० छं० अग्न्यादय दे० है। मंत्रार्थ—(अग्निः, देवता, वातः देवता, सूर्यो देवता, चंद्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्राः देवता, आदित्याः देवता मरुतो देवता विश्वेदेवाः देवता बृहस्पतिः देवता इन्द्रो देवता वरुणः देवता) अग्नि देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं, वायु देवता० करते० सूर्य देवताको मनन करते यह०, चन्द्रमा देवताको मनन करते यह० वसुदेवताओंको मनन करते यह०, रुद्र देवताओंको मनन करते यह० आदित्यदेवताओंको मनन करते० मरुद्देवताओंको मनन करते यह० विश्वेदेवा देवताओं को मनन करते यह० बृहस्पति देवताको मनन करते यह०; इन्द्र देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूं ॥ २० ॥

मू॒र्द्धासि॒ राड् ध्रु॒वासि॑ ध॒रुणा॑ ध॒र्त्र्य॑सि॒ धर॑णी ।
आयु॑षे त्वा॒ वर्च॑से त्वा॒ कृष्यै॑ त्वा॒ क्षेमा॑य त्वा ॥ २१ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, निचृ० नु० छं०, और प्राणदेवता है। मंत्रार्थ—(राट्, मूर्धा, असि, धरुणा, ध्रुवा, असि धर्त्री, धरणी आयुषे, त्वा, वर्चसे, त्वा, कृष्यै, त्वा, क्षेमाय, त्वा) हे वालाखिल्य ! तुम प्रकाशवान् मूर्धाकी समान उत्तम हो, धारण हुई और स्थिर हो, तुम ध्रुवरूपसे इस स्थलको धारण करो, धारण करनेवाली भूमिरूप हो, तुम धरणस्वरूपसे इस स्थलको

धारण करनेमें तत्पर होओ, आयुवृद्धिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूं, कान्तिके निमित्त तुमको स्थापन०, अन्नकी वृद्धिके निमित्त तुमको०कल्याणकी वृद्धिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूं ॥ २१ ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।
इष त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा लोकन्ता ।
इन्द्रम् ॥ २२ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, परोष्णिक् छं०, प्राणदेवता है। मंत्रार्थ हे बालखिल्ये! तुम (यंत्री राट्, यंत्री, यमनी, असि, ध्रुवा, धरित्री, असि) नियमसे युक्त विराजमान हो इस स्थानमें विराजमान हो, स्वयं भी नियमवाली सबको नियम करानेवाली हो स्थिर धरणी भूमिरूप हो, हे बालखिल्ये! (इषे, त्वा, ऊर्जे त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा,) अन्न प्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूं,बलप्राप्तिके निमित्त तुमको धनप्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ धनपुष्टिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूं २२

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पंचदशो व्योमा सप्तदशो धरुणं एकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः गर्भाः पंचविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

इस कं० में १८ मंत्र हैं। ऋ० १ विश्वदेव और सबका विश्वकर्मा है, छं०-१ दै० बृ०, २, ३, ६, १०, ११, १३, १८ दै०त्रि० ४, ५, ७, १४ दै० ज०, ८, १२, १६ दै० पं०, ९, १७ याजुष्य० १५ या० पं०, सबका लिंगोक्त देवता है। मंत्रार्थ—हे इष्टके! (त्रिवृद् आशुः) त्रिवृत् स्तोम तथा त्रिलोकमें व्याप्त वायु देवता

को मनन करते त्रिवृत् आयुरूप तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूं, (पञ्चदशः भान्तः) पन्द्रह दिनमें ह्रास और वृद्धिपाने वाले पंचदश कलाके अधिपति चन्द्रज्योतिको मनन करते तुमको सादन करता हूं (व्योमा सप्तदश) अनेक प्रकार से रक्षा करने वाला प्रजापति सप्तदश स्तोमरूप है, (धरुणः एकविंशः) धारण कर्त्ता प्रतिष्ठारूप, एकविंश स्तोम है (प्रतूर्त्तिः अष्टादश) सम्वत्सर बारह महीने पांचऋतु एक सवत्सर इन अठारह अवयववाला है (तपः, नवदश,) तपरूप नवदश स्तोम है, (अभीवर्त्तः, सविंशः) समावृत्तिरूप सविंशस्तोम है, (वर्चः, द्वाविंशः) विशेष बल देनेवाला द्वाविंशस्तोम है, (सम्भरणः त्रयोविंशः) सम्यक् पुष्टिकारक त्रयोविंशस्तोमहै, (योनिः चतुर्विंशः) प्रजाका उत्पादक, चतुर्विंशस्तोम है (गर्भाः पञ्चविंशः) सामगर्भ, पञ्चविंशस्तोम है (ओजः त्रिणवः) तेजस्वी, त्रिणवस्तोम है (क्रतुः एकत्रिंशः) यज्ञके उपयोगी, एकत्रिंशस्तोम है (प्रतिष्ठा, त्रयस्त्रिंशः) स्थितिकाहेतु, त्रयस्त्रिंशस्तोमहै (ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः) सूर्य का, स्वाराज्य निवासस्थान भुवन देनेवाला, चतुस्त्रिंशस्तोम है (नाकः षट्त्रिंशः) स्वर्गका देनेवाला, षट्त्रिंशस्तोम है, (विवर्त्तः, अष्टाचत्वारिंशः) सामके आवर्तनोंसे युक्त, अष्टचत्वारिंश स्तोमहै (धर्त्रम् चतुष्टोमः) धारक होनेसे, त्रिवृत् पञ्चदश सप्तदश, एकविंश इनचार स्तोमोंका समूहरूप है ॥ २३ ॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्मस्पृतं
त्रिवृत्स्तोमः इन्द्रस्य भागोसि विष्णोराधिपत्यं
क्षत्रꣳ स्पृतं पंचदशस्तोमः नृचक्षसां भागोसि
धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतं सप्तदशस्तोमः ।
मित्रस्य भागोसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टि-
र्वातस्पृत एकविꣳशस्तोमो वसूनां भागः ॥ २४ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं०–१ साम्नी पं०, २ सा० त्रि० ३ साम्नी ज०, ४ आर्ची बृ० और दे० सबका

लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ–हे इष्टके जो तुम (अग्नेः भागः, असि, दीक्षायाः, आधिपत्यम्, त्रिवृत्स्तोमः, ब्रह्म, स्पृतम्) अग्निकी, भागहो जो तुम्हारे ऊपर दीक्षाका आधिपत्य है इस कारण तुमसे त्रिवृत्स्तोमद्वारा, ब्राह्मणजाति, मृत्युसे रक्षित हुई है त्रिवृत्स्तोम को मनन करते तुमको सादन करताहूं (इन्द्रस्य, भागः, असि, विष्णोः आधिपत्यं, पंचदशस्तोमः, क्षत्रं, स्पृतम्) इन्द्रका, भाग हो, तुम्हारे ऊपर, विष्णुका आधिपत्यहै, पंचदशस्तोमसे, क्षत्र जातिकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है, (नृचक्षसाम्, भागः, असि, धातुः, आधिपत्यम्, सप्तदशस्तोमः जनित्रं स्पृतम्) मनुष्योंके शुभाशुभ जाननेवाले देवताओंके, भाग, हो तुम्हारे ऊपर धाताका आधिपत्यहै तुमने, सप्तदशस्तोमद्वारा वैश्यजातिको मृत्युमुखसे रक्षा कियाहै सप्तदशस्तोमको मनन करते तुमको सादन करताहूं (मित्रस्य, भागः, असि, वरुणस्य, आधिपत्यं एकविंशस्तोमः, दिवः, वृष्टिः, वातः, स्पृतः) प्राणोंका भागहो तुम्हारे ऊपर वरुणका आधिपत्य है एकविंशस्तोमकेद्वारा द्युलोक सम्बन्धिनी वर्षा पवन मृत्युमुखसे रक्षित है ॥ २४ ॥

वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं चतुर्विंशस्तोमः। आदित्यानां भागोसि मरुतामाधिपत्यं गर्भास्पृताः पंचविंशस्तोमः। अदित्यै भागोसि पूष्ण आधिपत्यमोजस्पृतं त्रिणवस्तोमो देवस्य सवितुर्भागोसि बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिशस्पृताश्चतुष्टोमः स्तोमो यवानां भागः ॥ २५ ॥

इस कं०में ४ मं० हैं सबका विश्वेदेव ऋ०छं० १, २ सा० ऊ०, ३, आर्च्युष्णिक्, ४, आर्ची पं० है देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ–हे इष्टके तुम (वसूनाम्, भागः, असि, रुद्राणाम् आधिपत्यम्, चतुर्विंशस्तोमः, चतुष्पाद् स्पृतम्) वसुगणका भाग हो तुम्हारे ऊपर रुद्रोंका, आधिपत्यहै, चतुर्विंशस्तोमकेद्वारा तुमने

चौपायोंकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है (आदित्यानां, भागः, असि, मरुतां, आधिपत्यं, पञ्चविंशशस्तोमः, गर्भाः, स्पृतम्) आदित्य गणोंका भाग, हो तुम्हारे ऊपर मरुद्गणोंका आधिपत्यहै, पंचविंशस्तोमकेद्वारा गर्भोंकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है पंचविंशस्तोम देवताको मनन करते तुमको इसस्थानमें सादन करताहूं (अदित्यै भागः, असि, पूष्णः, आधिपत्यं, त्रिणवस्तोमः, ओजः स्पृतम्) अदितिके, भाग हो तुम्हारे ऊपर पूषादेवताका अधिकारहै त्रिणवस्तोमद्वारा मनुष्योंके ओज आठवीं धातुकी रक्षाकी है त्रिणव स्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापना करताहूं (सवितुः, देवस्य, भागः, असि, बृहस्पतेः आधिपत्यम्, चतुष्टोमः, समीचीः दिशः स्पृताः) सबके प्रेरक सविता देवका भागहो तुम्हारे ऊपर बृहस्पति देवताका स्वामित्व है, चतुष्टोम स्तोमकेद्वारा संपूर्ण मनुष्यों के जाने योग्य दिशा मृत्युसे रक्षा कीगई चतुष्टोमस्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापन करताहूं ॥ २५ ॥

यवानाम्भागोस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳशस्तोमं ऋभूणाम्भागोसि विश्वेषान्देवानामाधिपत्यम्भूतꣳ स्पृतन्त्रयस्त्रिꣳशस्तोमः सह ॥ २६ ॥

इस कं० में १ मं० है। सबका विश्वदेवऋषि छं० १ भु० गा० १ स्वराड् गा० और लिङ्गोक्त देवताहै मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (यवानाम्, भागः, असि, अयवानाम्, आधिपत्यं, चत्वारिंशस्तोमः, प्रजाः, स्पृताः) पूर्वपक्षों के भागहो तुम्हारे ऊपर कृष्णपक्षकी तिथियोंका स्वामित्व है तुमने चत्वारिंशस्तोमके द्वारा प्रजाकी मृत्युमुखसे रक्षाकी (ऋभूणां, भागः, असि विश्वेषाम् देवानां, आधिपत्यम्, त्रयस्त्रिंशस्तोमः, भूतं, स्पृतम्) ऋभुनामक देवताओंका भागहो तुम्हारे ऊपर सम्पूर्ण देवताओंका आधिपत्यहै, त्रयस्त्रिंशस्तोमके द्वारा तुमने प्राणीमात्रकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है ॥ २६ ॥

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथक् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका विश्वेदेव ऋ०, छं०—१. भुरिगति ज०, २ भु० ब्रा० वृ० और देवता सबका ऋतु है। मंत्रार्थ—(सहः) मार्गशीर्ष (च) और (सहस्यः) पौष (हैमन्तिकौ, ऋतू) हेमंत ऋतु के अवयव हैं। शेष की व्याख्या अ०१३ कं० १५में होगई २७

एकया स्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०—१ साम्नी त्रि०, २ नि० गा०, ३ सा० ज०, ४ सा० त्रि० है। मंत्रार्थ—(एकया, प्रजाः, अधीयन्त, प्रजापतिः, अधिपतिः, आसीत्) प्रजापति ने एक ही वाणी के साथ आत्मा की स्तुति की उससे सब प्रजा उत्पन्न हुई प्रजापति उनके स्वामी हुए (तिसृभिः, अस्तुवत, ब्रह्म, असृज्यत, ब्रह्मणस्पतिः, अधिपतिः, आसीत्) प्राण उदान व्यानोंसे स्तुतिकी वेदकी रचनाकी वेदकर्त्ता स्वामी हुए (पञ्चभिः, अस्तुवत, भूतानि, असृज्यन्त, भूतानाम्पतिः, अधिपतिः, आसीत्) पांच प्राणों से स्तुति की उससे पञ्चभूत

आसीत्) श्रोत्र २ नासिका २ चक्षु २ जिव्हा १ इन सातों की सहायता से स्तुति की सप्तऋषि प्रकटहुए जगत्कर्त्ता देव उनके स्वामी हुए ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्या-
सीत् । एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्ता-
र्तवा अधिपतय आसँस्त्रयोदशभिरस्तुवत
मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्पञ्च-
दशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासी-
त्सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त
बृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत ॥ २९ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं, सबका विश्वदेव ऋ०, छं०—साम्नी पं०२, ३ सा० ज० ४ आर्च्यु०, ५ आ० बृ०, और सबका सृष्टि लिङ्गा दे० है । मन्त्रार्थ—(नवभिः, अस्तुवत, पितरः, अदितिः, अधिपत्नी, आसीत्) सातशिरके प्राण और दो नीचे अर्थात् नव द्वार शरीरके प्राणोंकी सहायतासे प्रार्थनाकी उससे पितृगण अग्नि-ष्वात्तादि उत्पन्न हुए अखण्डित प्रजापति शक्ति उनकी स्वामिनी हुई कारण कि पितर अपनी अखण्ड शक्तिसे ही सर्वत्र श्राद्ध करनेवालोंको प्राप्त होते हैं (एकादशभिः, अस्तुवत ऋतवः, असृज्यन्त, आर्त्तवाः, अधिपतयः, आसन्) दशप्राण ग्यारहवां आत्मा इन ग्यारहसे, स्तुतिकी उससे वसन्तादि ऋतु प्रकट हुई उनके ऋतुपालक देवविशेष स्वामी होते हुए (त्रयोदशभिः, अस्तुवत, मासाः, असृज्यन्त, संवत्सरः, अधिपतिः, आसीत्) दश प्राण दोपाद [प्रतिष्ठा] एक आत्मा अभ्यन्तरीय संस्थान से स्तुति की, उनसे चैत्रादि अधिक मास सहित रचनाकी दो अयन मास का अभिमानी वर्ष उनका पालक हुआ (पञ्चदशभिः, अस्तुवत क्षत्रम्, असृज्यत, इन्द्रः, अधिपतिः, आसीत्) दश हाथकी अंगुली दो हाथ दो भुजा एक नाभिका ऊर्ध्वभाग इनके द्वारा स्तुतिकी क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया, उनका इन्द्र स्वामी हुआ

(सप्तदशभिः, अस्तुवत, ग्राम्याः, पशवः, असृज्यन्त बृहस्पतिः, अधिपतिः, आसीत्) दश पैरकी अंगुलि दो ऊरु दो जानु दो पाद और नाभिका अधोभाग इनके देवताओं सहित स्तुतिकी उनसे ग्रामके गौ आदि पशुओं की रचना की बृहस्पति देवता उनके स्वामी हुए ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् । एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् । त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आसन् ॥३०॥

इस कं० में ९ मं० हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-१ नि० दा० बृ०, २ भु० सा० ज०, ३ नि० सा० ज०, ४ सा० ज०, ५ भा० ज० और सबका सृष्टिका देवता है। मन्त्रार्थ—(नवदशभिः, अस्तुवत, शूद्रार्यौ, असृज्येताम्, अहोरात्रे, अधिपत्नी, आस्ताम्) दश हाथ की अंगुलि ऊपर नीचे के छिद्ररूप नौ मार्गों से स्तुति की उससे शूद्र और वैश्य जाति उत्पन्न कीं, उनके दिनरात स्वामी हुए (एकविंशत्या, अस्तुवत, एकशफाः, पशवः, असृज्यन्त, वरुणः, अधिपतिः, आसीत) बीस हाथ पैरकी अंगुली दो चरण एक आत्मा उनसे स्तुति की, एक खुरवाले पशु उत्पन्न किये, वरुण उनका स्वामी हुआ (त्रयोविंशत्या, अस्तुवत, क्षुद्राः, पशवः, असृज्यन्त, पूषा, अधिपतिः, आसीत) बीस हाथ पैर की अंगुलि दो चरण एक आत्मा इनके साथ स्तुतिकी इससे क्षुद्र पशु अजाआदि उत्पन्न किये पूषा देवता उनका स्वामी हुआ (पञ्चविंशत्या, अस्तुवत, आरण्याः, पशवः, असृज्यन्त, वायुः, अधिपतिः, आसीत) बीस हाथ पैर की अंगुलि दो हाथ दो चरण एक आत्मा के साथ

स्तुति की उससे वन के कृष्णमृगादिक पशु उत्पन्न किये वायु देवता उनका स्वामीहुआ (सप्तविंश्शत्या, अस्तुवत, द्यावापृथिवी, व्येताम्, वसवः, रुद्राः, आदित्याः, अनुव्यायन्, ते, एव, अधिपतयः, आसन्) बीस हाथ पैर की अंगुली दो भुजा दो ऊरू दो प्रतिष्ठा एक आत्मा इन के साथ स्तुति की स्वर्गलोक भूलोक अन्तरिक्षलोक प्रकटहुए वसुगण रुद्रगण आदित्यगण इन के अनुगत होने से क्रम से ये ही इनके स्वामीहुए ॥ ३० ॥

नवविंश्शत्यास्तुवत वनस्पतयोसृज्यन्त सोमो अधिपतिरासीत् । एकत्रिंश्शतास्तुवत । प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन् । त्रयस्त्रिंश्शतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका विश्वदेव ऋ०. छं० १ नि० सा० ज० २,३ नि० आ० यृ० सबका सृष्टीष्टिका दे० । मंत्रार्थ (नवविंश्शत्या, अस्तुवत, वनस्पतयः, असृज्यन्त, सोमः, अधिपतिः आसीत्) बीस हाथ पैर की अङ्गुली नवप्राणके छिद्रोंके साथ स्तुतिकी इससे वनस्पति अश्वत्थ वट आदिकी रचनाकी उनका सोम स्वामी हुआ (एकत्रिंश्शता, अस्तुवत, प्रजाः, असृज्यन्त, यवाः, च, अयवाः, च, अधिपतयः, आसन्) २० हाथ पैरकी अंगुली १० इन्द्री एक आत्माके साथ स्तुतिकी उन से अन्यान्य सम्पूर्ण प्रजाकी रचनाकी पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष ही उनके स्वामी हुए, (त्रयस्त्रिंश्शता, अस्तुवत भूतानि अशाम्यन् परमेष्ठी, प्रजापतिः, अधिपतिः, आसीत्) बीस अंगुली दश इंद्रिय दो पाद और आत्माके सहित स्तुतिकी उससे उत्पन्न समस्त प्राणियोंने शांतिलाभ की अर्थात् सुखीहुए, सत्यलोकमें स्थित होने वाले प्रजापालक ईश्वर उनके स्वामी हुए ॥ ३१ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिता का सानुवाद चौदहवां अध्याय समाप्त ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः ॥



जिसमें चिति प्रधानहै ऐसे चौदहवें अध्याय में दूसरी तीसरी चौथी चितिके मन्त्र कहे । अब पन्द्रहवें अध्यायमें पांचवीं चिति के मन्त्र कहे जायँगे ।

॥ हरिः ॐ ॥ अग्ने जातान् प्रणुदानः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः । अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडँस्तवं स्याम शर्मंस्त्रिवरूथ उद्भौ ॥ १ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, त्रिष्टुप् छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (जातवेदः, अग्ने, नः, जातान्, सपत्नान्, प्र, णुद, अजातान्, प्रतिनुद, सुमनाः, अहेडन्, नः, अधिब्रूहि) हे सबके जानने वाले अग्नि देव हमारे पूर्व उत्पन्न शत्रुओंको सब प्रकारसे अधिकतासे नष्टकरो, अनुत्पन्न शत्रुओंको विनष्ट करो अच्छे अन्तःकरणसे क्रोधरहित होकर हमको वर प्रदान करो—हे अग्ने (तव शर्मन्, उद्भौ, त्रिवरूथे स्याम) आपके सम्बन्धी सुखके आश्रय मनुष्य पशु धन धान्य आदिके प्रभवस्थान, सदोमण्डप हविर्धान्य आग्नीध्र प्रदेश इन तीन स्थानोंमें, सदा यज्ञ करें ॥ १ ॥

सहसा जातान् प्रणुदानः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयथ्ंस्याम प्रणुदानः सपत्नान् ॥ २ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि, त्रि०छन्द, अग्नि देवताहै । मंत्रार्थ (जातवेदः, सहसा, जातान् नः सपत्नान्, प्र, णुद, अजातान्, प्रतिनुदस्व, सुमनस्यमानः, नः, अधिब्रूहि, वयम्, आ, स्याम) हे जातप्रज्ञान अग्ने ! बलसे उत्पन्नहुए हमारे शत्रुओंका सबओरसे नाशकरो भविष्यत्में होनेवालोंकी उत्पत्तिको रोको सदन्तःकरण से क्रोधरहित हो हमको शत्रुओंसे बली कहो, तुम्हारे प्रसादसे हम सबप्रकार अधिक हों, (नः, सपत्नान्, प्रणुद) हमारे शत्रुओंका नाश करो ॥ २ ॥

षोडशीस्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंशः स्तोमो वर्चो द्रविणम्। अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तान् त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ३

इसका परमेष्ठी ऋ०, छं० १–आ० त्रि०, २ आसुर्यनु०, ३ निचृ० त्रि० और देवता सबका इष्टिका है। मंत्रार्थ–हे इष्टके! (षोडशीस्तोमः, ओजः द्रविणं) पंचदशकला और पक्षका स्वामी आदित्यरूप षोडशस्तुतिरूप स्तोमके प्रभावसे तुमको स्थापन करता हूं, इस स्थलमें तेज और धनकी प्राप्ति हो. हे इष्टके! (चत्वारिंशः, वर्चः द्रविणम्) चौवालीस आवृत्तियुक्त चतुश्चत्वारिंशस्तोमरूप वज्र कान्तिरूप धन पावै (अप्सः, नाम, अग्नेः, पुरीषम्, असि, तान्, त्वा, विश्वे, देवाः, अभिगृणन्तु, स्तोमपृष्ठा, घृतवती, इह, सीद, अस्मे, प्रजावत्, द्रविणं, आयजस्व) रक्षक नाम से युक्त, पंचदश कलावाले चन्द्ररूप अग्निके पूर्ण करनेवाले हो उस तुमको सम्पूर्ण देवता स्तुति करें, सम्पूर्ण स्तोमपृष्ठ मंत्रोंके प्रभावसे होमहुए घृतसे संयुक्त होती तुम इस चौथी चितिके ऊपर ठहरो। हमको इसके फलरूपसे पुत्रयुक्त धनदो ॥ ३ ॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरंछन्दः ककुप्छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दो अंकुपं छन्दोक्षरपंक्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दो विष्टारपंक्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

इस कं० में ४० मं० हैं। सबका परमेष्ठी ऋ० है। छं०—१, ३, ५, ६, ७, ८, ११, १३, १९, २०, २१, २२, २३, २७, २८, २९, ३१, ३५, ३७, ३९, दैवी वृ० २, ४, ९, १०, १२, १४, २५, २६, ३०, ३२, ३४, ३५, ३६, ४०, दै० पं० १६, १८, ३४, ३८, दै० त्रि०, १५, १७, दै० ज० है और सबका

इष्टका दे० है। मंत्रार्थ—हे इष्टके (एवश्छन्दः, वरिवश्छन्दः, शम्भूश्छन्दः, परिभूश्छन्दः, आच्छन्दः, मनश्छन्दः, व्यचश्छन्दः, सिन्धुश्छन्दः, समुद्रश्छन्दः, सरिरंछन्दः, ककुप्छन्दः, त्रिककुप्छन्दः काव्यंछन्दः, अङ्कुपंछन्दः, अक्षरपंक्तिश्छन्दः, पदपंक्तिश्छन्दः, विष्टारपंक्तिश्छन्दः, क्षुरोभ्रजश्छन्दः) जिसमें सब प्राणी चलते हैं ऐसे भूलोकको मनन करतेतुमको स्थापन करताहूं प्रभामण्डलसे व्याप्त अन्तरिक्षलोक, सुखदायक द्युलोकको मनन करते सबओर से व्याप्त होकर वर्तमानदिशाको मनन करते०, अपने रसस शरीरको आच्छादन करनेवाले अन्नको० प्रजापतिरूप मनको० सब जगतको व्याप्त करने वाले आदित्यको० नाडियों द्वारा शरीर को व्याप्त करनेवाले प्राणवायुको० समुद्रके समान् गम्भीर विकल्पयुक्त मन को० मुखसे निकलने वाली वाणीको० शरीरको दीप्तकर धारण करने वाले प्राणको० पिये हुए जलको तीन प्रकार का करने वाले उदानको० त्रयी विद्या अर्थात् वेदत्रयको० कुटिलगति चलने वाले जलको० नाशरहित स्वर्गलोक को०, जिसमें चरण रखेजाते हैं उस भूलोकको०, जहां सकल वस्तु विस्तारितहैं उस दिशा पाताल को०, तीव्रतासे आकाश को लिखने प्रकाशनेवाले विद्युत्पुञ्ज या आदित्यको मनन करते हुए स्थापन करताहूँ ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छंदो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सध्ठस्तुप्छन्दोऽनुष्टुप्छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रञ्छन्दो अंकाङ्कञ्छन्दः ॥ ५ ॥

ऋष्यादि—पूर्ववत् मंत्रार्थ-(आच्छच्छन्दः, प्रच्छच्छन्दः, संयच्छन्दः वियच्छन्दः, बृहच्छन्दः, रथन्तरं छन्दः, निकायश्छन्दः, विविधश्छन्दः गिरश्छन्दः, भ्रजश्छन्दः, संस्तुप्छन्दः, अनुष्टुप्छन्दः, एवश्छन्दः,

परिवश्छन्दः, वयश्छन्दः, वयस्कृच्छन्दः, विष्पर्द्धाश्छन्दः, विशालंछन्दः, छदिश्छन्दः, दूरोहणं छन्दः, तन्द्रंछन्दः, अङ्काङ्कंछन्दः) शरीरका आच्छादक अन्नहै उसको मनन करते०, शरीर गच्छादक जलके व्यापारकी निवर्त्तक रात्रिको० विशेष व्यापार पवर्त्तक दिन को० जहां रथादि द्वारा गमन करते हैं उस भूलोकको०, अत्यन्त शब्दकारक वायुको०, जहां भूत प्रेत रूपसे विविधप्रकार के पाप भोगे जातेहैं उस अन्तरिक्षको०, भक्षणयोग्य अन्नको०, प्रकाशवान् अग्निको०, वैखरी वाणीको० मध्यमा वाणीको० पृथ्वी लोकको० प्रभामण्डलको० बाल्यादि अवस्था के हेतु अन्नको० बाल्यादिकारक जाठराग्निको० विविध ऐश्वर्य की प्राप्तिवाले स्वर्गको०, स्पर्धामूलक अहंतत्वको०, जहां मनुष्य अनेक प्रकारसे शोभित होतेहैं उस भूतलको०, सूर्यकी किरणोंसे आच्छादित होने वाले अन्तरिक्षको० ज्ञानको० अज्ञानको०, आस्तिकताके निदर्शन अथवा गर्त पाषाणादि युक्त जलको मनन करते तुमको स्थापन करताहूं ॥ ५ ॥

रश्मिना सत्याय सत्यञ्जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मञ्जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयान्हाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीञ्जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसूंञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व तन्तुना रायः ॥ ६ ॥

इस कं में २९ मं० हैं सबका परमेष्ठी ऋ० छं० १, २, ६, ९, १७, या० पं० ३, ८, १८, २६, २९, या० बृ० ४, ५, १०, या० ज० ७, २०, याजुष्यु०, ११ सा० उ०, १३, १४, १५, १६, या० त्रि०१९, २१, २२, २३, २४, २५, २७, २८, याजुष्य०, सबका इष्टका देवताहै। मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (रश्मिना, सत्याय, सत्यं, जिन्व) अन्नके प्रभावसे सत्यके निमित्त सत्य वाणीको प्रीति करो।

(मेतिना, धर्मणा, धर्म, जिन्व) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभाव से, धर्म के निमित्त धर्मको प्रीतिकरो, (अन्वित्या, दिवा, दिवं जिन्व) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभावसे, दिव्य लोकके निमित्त द्युलोकको प्रीतिकरो, (सन्धिना, अन्तरिक्षेण, अन्तरिक्षं, जिन्व) बलादिके आधार अन्नके प्रभावसे अन्तरिक्षके निमित्त अन्तरिक्ष को प्रीतिकरो, प्रतिधिना, पृथिव्या, पृथिवीम् जिन्व) प्रत्येक इन्द्रियके आधार अन्नके प्रभावसे, अन्तरिक्ष के निमित्त पृथिवी को प्रीतिकरो (विष्टम्भेन, वृष्ट्या, वृष्टिम्, जिन्व) देहादिके स्तम्भ करने वाले अन्नके प्रभावसे वृष्टिके निमित्त वर्षाको प्रीतिकरो (प्रवया, अन्हा, अहः, जिन्व) देहमें गमनागमनकारी अन्नके प्रभाव से दिनके निमित्त दिनको प्रीतिकरो (अनुया, रात्र्या, रात्रीं, जिन्व) देहान्तर्गत ७२ नाडियों में गमनागमनकारी अन्नके प्रभाव से रात्रिके निमित्त रात्रिको प्रीतिकरो, (उशिजा, वसुभ्यः, वसून, जिन्व) समस्त प्राणियों के आकांक्षणीय अन्नके प्रभावसे, वसुओंके निमित्त वसुगणको प्रीतिकरो (प्रकेतेन, आदित्येभ्यः, आदित्यान, जिन्व) सुखानुभवके कारण अन्नके प्रभावसे आदित्यों के निमित्त आदित्योंको प्रीतिकरो ॥ ६ ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतञ्जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

ऋष्यादि ६ मंत्र में कहदिये। मंत्रार्थ–(तन्तुना, रायस्पोषेण, रायस्पोषम् जिन्व) शरीरके वर्द्धक-अन्नके प्रभावसे धनकी पुष्टिके निमित्त धनकी पुष्टिको प्रीतिकरो (सꣳसर्पेण, श्रुताय, श्रुतं, जिन्व) प्रति इन्द्रियमें फैलनेवाले अन्नके प्रभावसे शास्त्रके निमित्त शास्त्रको प्रीतिकरो (एडेन ओषधीभिः, ओषधीः, जिन्व) प्रसिद्ध अन्नके प्रभावसे ओषधियों के निमित्त ओषधियोंको प्रीतिकरो (उत्तमेन, तनूभिः, तनूः, जिन्व) पृथ्वीके उत्कृष्ट पदार्थ अन्नके प्रभावसे

तनुओंके निमित्त शरीरोंको प्रीतिकरो (वयोधसा, अधीतेन अधीतम्, जिन्व) शरीरके उपचयकारी अन्नके प्रभावसे अध्ययन के निमित्त अध्ययनको प्रीतिकरो (अभिजिता, तेजसा, तेजः, जिन्व) बलकारी अन्नके प्रभावसे तेजके निमित्त तेजको प्रीतिकरो॥ ७॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा त्रिवृदसि॥८॥

ऋष्यादि ६ठे मंत्र में कहदिये । मंत्रार्थ—हे इष्टके (प्रतिपत्, असि, प्रतिपदे, त्वा) जिससे जीवनका अस्तित्व प्राप्त होताहै ऐसे अन्नरूप हो, अन्नप्राप्ति के निमित्त तुमको उपधान करताहूं तुम—(अनुपत्, असि, अनुपदे, त्वा) इन्द्रियोंको स्वस्वकार्य में समर्थ करनेवाले अन्नरूप हो अन्नके निमित्त तुमको उपधान करताहूं तुम (सम्पत्, असि, सम्पदे, त्वा) सम्पत्तिप्रतिपादक अन्नरूप हो अन्नसम्पत्तिके निमित्त तुमको सादन करताहूं (तेजः, असि, तेजसे, त्वा) शरीरमें तेजोदायक अन्नरूप हो तेजके निमित्त तुमको सादन करताहूं ॥ ८॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाक्रमोस्याक्रमाय त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

ऋष्यादि ६ ठे मंत्रमें लिखचुके । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (त्रिवृत्, असि, त्रिवृते, त्वा) कृषि वृष्टि और बीजसे उत्पन्न अन्नरूप हो, अन्नके निमित्त तुमको सादन करता हूं—तुम (प्रवृत असि, प्रवृते, त्वा) सब प्राणियोंको कार्यमें प्रवृत्तिकारी अन्न रूप हो, कार्यप्रवृत्ति के निमित्त तुमको सादन करता हूं (विवृत् असि, विवृते त्वा) प्रत्येक इन्द्रियको उस २ कार्यमें प्रवर्त्तक अन्नरूप हो प्रवृत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूं (सवृत्, असि, सवृते, त्वा) जीवनके सहचारी अन्नरूप हो अन्नके निमित्त

तुमको सादन करता हूं। तुम (आक्रमः, असि, आक्रमाय, त्वा) क्षुधाका तिरस्कार करनेवाले अन्नरूप हो, अन्नप्राप्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूं (संक्रमः, असि, संक्रमाय, त्वा) संतानोत्पत्तिका बीज अन्नरूप हो, संतानप्राप्तिके निमित्त तुमको उपहित करता हूं. तुम (उत्क्रमः, असि, उत्क्रमाय, त्वा) अन्मका निदानभूत अन्नरूप हो, उत्क्रमके निमित्त तुमको सादन करता हूं, (उत्क्रान्तिः असि, उत्क्रान्त्यै त्वा) उत्कृष्ट गमनवाले अन्न रूप हो उत्क्रान्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूं ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयो-
ऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत्त्वा स्तोमः पृथि-
व्याᳬ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथ-
न्तरᳬ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु
विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना
नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१०॥

इस कं० में २ मंत्र हैं सबका परमेष्ठी ऋ०, १ वि० ब्रा०त्रि० छं०, २ ब्रा० बृ० छं०, लिङ्गोक्त देवता है। मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (राज्ञी, प्राची, दिक्, असि, वसवः, देवा से, अधिपतयः, अग्निः, हेतीनाम्, प्रतिधर्त्ता, त्रिवृत्स्तोमः, त्वा पृथिव्यां, श्रयतु, आज्यं, उक्थं, अव्यथायै, स्तभ्नातु, रथन्तरं, साम, अन्तरिक्षे, प्रतिष्ठित्यै, प्रथमजाः, ऋषयः, देवेषु, दिवः, मात्रया, वरिम्णा, त्वा, प्रथन्तु, विधर्त्ता, च, अयम्, अधिपतिः, च, त्वा, ते, सर्वे, संविदानाः, नाकस्य, पृष्ठे, स्वर्गेलोके, यजमानं, च, सादयन्तु) राजमान पूर्वदिशारूप हो आठवसु देवता तुम्हारे पालक हैं, अग्नि देवता तुम्हारी सम्पूर्ण बाधाओंका निवारक है, त्रिवृत्स्तोम तुम को पृथ्वीमें स्थापन करो, आज्यनामक शस्त्र व्यथाहीनता अर्थात् दृढताके निमित्त तुमको दृढ करै. रथन्तर साम अन्तरिक्षलोकमें प्रतिष्ठाके निमित्त तुमको दृढ करै प्रथमोत्पन्न प्राण देवता आका-

की परिमाणता उरुतासिस्तारसे तेरा विस्तार करे इष्टका निष्पादन करनेवाला और यह इष्टकापालक भी तुमको विस्तारित करें, इसप्रकार ये सम्पूर्ण वसुआदि देवता एकमतिसे स्थित हुए सुख स्वरूप लोकके ऊपर स्वर्गलोकमें यजमानको अवश्यही प्राप्तकरें ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पंचदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳪ श्रयतु प्र उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रि० छं०, लिङ्गोक्त देवता है (प्रथमजा इत्यस्य प्रा० बृ० छन्दः) मंत्रार्थ–हे इष्टके! तुम (विराड्, दक्षिणा, दिक्, असि, रुद्राः, देवाः, ते, अधिपतयः इन्द्र, हेतीनाम्, प्रतिधर्त्ता, पंचदशः, स्तोमः, त्वा, पृथिव्याम्, श्रयतु, प्रउगं, उक्थम् अव्यथायै, स्तभ्नातु, बृहत्साम, अन्तरिक्षे, प्रतिष्ठित्यै०) विशेष विराजमान दक्षिण दिशा हो रुद्र देवता तुम्हारे पालक हैं, इन्द्र देवता व्याधियोंका निवर्त्तक है, पंचदश स्तोम तुमको पृथिवीमें स्थापितकरे प्रउगनामक उक्थ दृढ़ताके निमित्त तुमको स्तंभित करे, बृहत्साम अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठाका कारण हो, शेष पूर्वकी समान है ॥ ११ ॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳪ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके-

यजमानं च सादयन्तु ॥ १२॥

इसका परमेष्ठी ऋषि, पूर्वस्य नि० बा० ज०छं०,वा प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्रा० बृ० छं०, लिङ्गोक्त दे० है । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (सम्राट्, प्रतीची, दिक्, असि, आदित्याः, देवाः, ते अधिपतयः, वरुणः, हेतीनाम्, प्रतिधर्त्ता, सप्तदशः, स्तोमः, त्वा, पृथिव्यां, श्रयतु, मरुत्वतीयम्,उक्थं, अव्यथायै, स्तभ्नातु, वैरूपं, साम, प्रतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) विशेष दीप्तिमान् पश्चिम दिशा हो आदित्य देवता तुम्हारे पालक हैं, वरुण दुःखों का निवर्त्तक है,सप्तदश स्तोम तुमको पृथ्वीमें दृढ करो मरुत्वतीय शस्त्र दृढताके निमित्त तुमको स्थापन करे वैरूप साम प्रतिष्ठाके निमित्त अन्तरिक्षमें तुमको दृढकरे शेष पूर्ववत् ॥ १२ ॥

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वस्य भुरिग्ब्रा० त्रि० छं०, लिङ्गोक्त देवता है (प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्रा० बृ० छं०) मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (स्वराट्, उदीची, दिक्, असि, मरुतः, देवाः, ते, अधिपतयः, सोमः, हेतीनां, प्रतिधर्त्ता, एकविंशः, स्तोमः त्वा, पृथिव्याम्, श्रयतु, निष्केवल्यम्, उक्थम, अव्यथायै, स्तभ्नातु, वैराजꣳसाम, प्रतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) स्वयं विराजमान होनेवाली उत्तर दिशा हो, मरुत देवता तुम्हारे पालकहैं, सोम व्याधियोंका निवारकहै,एकविंशस्तोम तुमको पृथ्वीमें स्थापन करो,निष्केवल्य नाम शस्त्र दृढताके निमित्त तुमको स्थापन करो, वैराजसाम प्रतिष्ठा

के निमित्त तुमको अन्तरिक्षमें दृढकरो । शेष पूर्ववत् ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वास्यधिपत्न्यासि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याᳪ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताᳪ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वस्य प्रा०. ज० छं० लिङ्गोक्त दे० । यस्त्वेरयुत्तरस्य ब्राह्मी त्रि० छं० । मंत्रार्थ हे इष्टके! तुम (अधिपत्नी, बृहती, दिक्, असि, विश्वे, देवाः, ते, अधिपतयः, बृहस्पतिः हेतीनाम्, प्रतिधर्त्ता, त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ, स्तोमौ, त्वा, पृथिव्यां, श्रयताम्, वैश्वदेवाग्निमारुते, उक्थे, अव्यथायै, स्तभ्नीताम्, शाक्वररैवते, सामनी, प्रतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) अधिक पालन करनेवाली बड़ी ऊर्ध्व दिशा हो, सम्पूर्ण देवता तुम्हारे पालक हैं, बृहस्पति देवता विघ्नदुःखोंका निवाकरहै, त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोम तुमको पृथ्वी में स्थापितकरें वैश्वदेव अग्निमारुत उक्थ दृढताके निमित्त तुमको स्थापित करें शाक्वररैवत दोनोसाम प्रतिष्ठाके निमित्त अन्तरिक्षमें तुमको स्थापित करें । शेष पूर्ववत् ॥ १४ ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० कृतिश्छं०. लिङ्गोक्त दे० है। मंत्रार्थ-(अयं

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१७॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराट्कृतिश्छं०, लिङ्गोक्त दे० है। मंत्रार्थ (अयं, पश्चात्, विश्वव्यचाः, तस्य, रथप्रोत., च, असमरथः, सेनानीग्रामण्यौ, प्रम्लोचन्ती, च, अनुम्लोचन्ती, अप्सरसौ, च, व्याघ्राः, हेतिः, सर्पाः, प्रहेतिः) यह पश्चिम दिशामें स्थापित इष्टका रूप सब विश्वका प्रकाशक आदित्य है, उसका रथयुद्धमें धैर्यवान् शूर और अनुपम रथी सेनापति और ग्रामपालक वर्षाऋतु है, अपने वेशविन्यासादि द्वारा सर्वसाधारणका मन हरने में समर्थ और एकवार मुग्ध होकर क्लेश पानेवाले व्यक्तिको फिर मोह करने वाली दोनों अप्सराहैं और व्याघ्रजीव शस्त्रहै, सर्प शक्षिस्य शस्त्रहै, शेष पूर्ववत् ॥ १७॥

अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानी ग्रामण्यौ विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १८॥

इसका परमे० ऋ०, भु० ग० धृ० छं०, लिङ्गोक्त दे० है। मंत्रार्थ-(अयं, उत्तरात्, संयद्वसुः, तस्य, तार्क्ष्यः, च, अरिष्टनेमिः, सेनानीग्रामण्यौ, च, विश्वाची, च, घृताची, अप्सरसौ, च, आपः, हेतिः, वातः, प्रहेतिः) यह उत्तर दिशामें स्थापित इष्टका धनसे प्राप्त होनेवाला यज्ञ है, उसका अन्तरिक्षमें तीक्ष्ण पक्षरूपी आयुधोंका विस्तार करनेवाला और अरिष्टनाशक अप्रतिहत आयुधवाला सेनानी और ग्रामपालक शरद् ऋतु है संसार में विदित और घृतकी भोजन करनेवाली दोअप्सराहैं, जल शस्त्रहै,

और पवन तीक्ष्ण शस्त्र है, शेष पूर्ववत् ॥ १८ ॥

अयमुपर्य्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसावयस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० कृ० छं०, लिं० दे० है। मंत्रार्थ (अयं, उपरि, अर्वाग्वसुः, तस्य, सेनजित्, च, सुषेणः, सेनानीग्रामण्यौ, च, उर्वशी, च, पूर्वचित्तिः, अप्सरसौ, च, अवस्फूर्जन्, हेतिः, विद्युत्, प्रहेतिः) यह मध्यदिशा में वर्तमान इष्टरूपपर्जन्य है, उसके सेना जीतनेवाले और सुन्दर सैन्यवाले सेनापति और ग्रामपालक हेमन्तऋतु हैं और विस्तीर्ण काम को वश में करने वाली और अधिकरूप होने से पुरुषों का मन हरने करनेवाली पूर्वचित्ति नाम दो अप्सरा हैं और भयका हेतु वज्रका शब्द शस्त्र है, बिजली तीक्ष्ण शस्त्र है, इनको नमस्कार है, इत्यादि पूर्ववत् १९

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ २० ॥

मंत्रार्थ-इसकी व्याख्या ३ अ० ११ कं० में होगई ॥ २० ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि०गा० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ (अयं, अग्निः, सहस्रिणः, शतिनः, वाजस्य, पतिः, कविः, रयीणाम्, मूर्द्धा) यह अग्नि सहस्र संख्यावाले शत संख्यावाले अन्नका स्वामी क्रान्तदर्शी और सब धनोंमें प्रधान धनवाला है २१

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

मंत्रार्थ-इसकी व्याख्या ११ अ० ३२ कं० होगई ॥ २२ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे

शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वा-
मग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि०त्रि० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-
इसकी व्याख्या १३ अ० १५ कण्डिका में होगई ॥ २३ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं० है अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (जनानां, समिधा, अग्निः, अबोधि, इव, आयतीम्, धेनुम्, उपासम्, प्रति, मानवाः, नाकम्, अच्छ, प्रसिस्रते, इव, वयाः यह्वा, प्रोज्जिहानाः,) ज्ञान श्रद्धा द्विजतर्पण, सत्यादिसे सम्पन्न अग्निहोत्रियोंकी समिधासे अग्नि प्रज्वलित होते हैं, दीप्तिमान उसकी किरणें स्वर्गके चारोंओर से फैलती हैं, जिसप्रकार पक्षी बड़े पक्षोंसे वृक्षोंकी शाखाओंसे आकाशको उड़ते हैं ॥ २४ ॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे । गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ २५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ उद्गाता कहते हैं-हम (कवये, मेध्याय, वृषभाय, वृष्णे, वन्दारु वचः, अवोचाम, गविष्ठिरः, नमसा, स्तोमं, अग्नौ, अश्रेत्, इव, दिवि, रुक्मं, उरुव्यञ्चम्,) क्रान्तदर्शी यज्ञके योग्य श्रेष्ठ कामना पूर्ण करनेमें समर्थ अग्निके निमित्त स्तुतिवन्दना करनेवाले वचनको कथन करते हैं । वाणीमें स्थिर होताहुआ पुरुष अन्नसे युक्त स्तुति को आहवनीय अग्निमें अर्पण करता है, जिसप्रकार स्वर्गमें रोचमान आदित्यको सन्ध्यावन्दन सूर्योपस्थानादिमें प्रयुक्त कीहुई बड़ी स्तुति अर्पित होती है ॥ २५ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु

चित्रं त्रिभ्रं त्रिशो चिंशो ॥ २६ ॥

इसकी व्याख्या ३ अ० १५ कं० में होगई ॥ २६ ॥

जनस्य गोपा अंजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि०द्रा०ज० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (जनस्य, गोपाः, जागृविः, सुदक्षः, घृतप्रतीकः, शुचिः, अग्निः, नव्यसे, सुविताय, भरतेभ्यः, अजनिष्ट, दिविस्पृशा, बृहता, द्युमत्, विभाति) यजमानोंका रक्षक कर्म में सावधान अति उत्साहयुक्त घृत को मुख में रखनेवाला पवित्र अग्नि नवीन यज्ञ के निमित्त ऋत्विजोंके द्वारा प्रकटहुआ वह अग्नि स्वर्ग को स्पर्श करनेवाली बड़ी कान्तियों से प्रकाशवान् होता है ॥ २७ ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराडार्षी ज० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अङ्गिरः, अग्ने, अङ्गिरसः, त्वाम्, गुहाहितम्, वने वने, शिश्रियाणं, अन्वविन्दन्, सः, महत्सहः, मथ्यमानः, जायसे, त्वाम्, सहसा, पुत्रं, आहुः) अनेक रूपसे यज्ञमें विचरनेवाले हे अग्नि देव, अङ्गिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने तुमको निगूढ़ देशमें स्थित अनेक वनस्पतियों में निवास करने वालेको ढूँढकर प्राप्तकिया, वह तुम अब बड़े बलसे मथ्यमान होनेके कारण अरणीसे उत्पन्न होते हो, तुमको इसी कारण मुनि, बलका पुत्र ब्रह्मज्योति कहतेहैं ॥ २८ ॥

सखायः संवः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ २९ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि०, ज०, छं०, अग्नि दे० मंत्रार्थ— यजमानने कहा हे ऋत्विजों! (सखायः, वः, क्षितीनां, वर्षिष्ठाय,

ऊर्जः, नव्ये, सहस्वते, अग्नये, सम्यर्च, इयं, च, स्तोमं, सगम्) मित्ररूप तुम मनुष्योंके श्रेष्ठतम जलके पौत्ररूप बड़े बलवाले अग्नि देवताके निमित्त समीचीन नवीन हविरूप अन्नको और स्तोत्रको सम्पादन करो ॥ २९ ॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इड-
स्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥ ३० ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराडनु० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (वृषन्, अग्ने, अर्यः, विश्वानि, सम्, आ, संयुवसे इडस्पदे, समिध्यसे, सः, इत, नः, वसूनि आभर) हे सेचन करनेवाले अग्निदेव ! स्वामी तुम सम्पूर्ण यज्ञफलोंको सबओरसे यजमान को प्राप्त कराते हो, पृथ्वीके स्थान उत्तरवेदीमें कर्मके निमित्त प्रदीप्त होते हो, वह तुम ही हमारे निमित्त धनोंको सबप्रकार लाकर प्रदानकरो ॥॥ ३० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तमहवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचि-
ष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥

इसका परमे० ऋ०, वि० नु० छं०, अग्नि दे०है । मंत्रार्थ- (चित्रश्रवः, पुरुप्रियः, अग्ने, विक्षु, जन्तवः, तं, त्वां, हव्याय, वोढवे, हवन्ते) कीर्ति और ऐश्वर्य्य से अतिविचित्र यजमानों के प्रिय हे अग्ने ! प्रजाओंमें ऋत्विग्यजमान उस तुमको हवि वहन करनेके निमित्त बुलाते हैं ॥ ३१ ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो न पातमाहुवे । प्रिय-
ञ्चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

इसका परमे० ऋ०. वि० वृ० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- हे ऋत्विग्यजमानो ! (वः, एनाः, नमसा, ऊर्जः, न, पातम्, प्रियं, चेतिष्ठम्, अरतिम्, स्वध्वरम् विश्वस्य, दूतं, अमृतं, अग्निम् आहुवे) तुम्हारे इस अन्नद्वारा जलके पोते यजमानकी प्रीतिके कारण अतिशय चैतन्यकर्ता ज्ञानदाता सदा उद्यमी श्रेष्ठ यज्ञवाले सम्पूर्ण के गृहपाकादि कार्य करने से दूतरूप मरणरहित अग्निने

को स्तुति पूर्वक आव्हान करते हैं ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ३३

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० दु० छं० अग्नि० दे० है मंत्रार्थ अमृतं, विश्वस्य, दूतं, अमृतं, विश्वस्य, दूतम्, सः, अरुषा, विश्वभोजसा, योजते, स्वाहुतः, सः, दुद्रवत) मरणधर्मरहित सब के दूतवत् कार्यकर्ता मरणधर्मरहित सम्पूर्ण के दूत जिस अग्नि को हम बुलाते हैं, वह अग्नि क्रोधरहित श्रेष्ठ सब यज्ञके भाग भोगने वाले दो अश्वोंको अपने रथमें योजना करताहै, रथारूढ होकर भलीप्रकारसे आहुतिको प्राप्त हुआ वह अग्नि शीघ्र प्राप्त होताहै ३३

स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशर्मी वसूनां देवꣳराधो जनानाम् ॥ ३४ ॥

इसका परमे० ऋ० बृहती छं०, अग्नि देवताहै। मंत्रार्थ-(सुब्रह्मा, सुशर्मी, यज्ञः स, स्वाहुतः, दुद्रवत्, स्वाहुतः, सः, जनानाम्, देवं, राधः, वसूनाम्, दुद्रवत्) श्रेष्ठ ऋत्विजोंसे युक्त शुभकर्मवाला यज्ञहै उसमें वह अग्नि शुभ प्रकारसे आव्हानकिया हुआ वह जहां यजमानोंका दीप्यमान धनहै वहां वसु रुद्र आदि देवगणोंके तीन सवनके यज्ञमें जाताहै ॥ ३४ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

इसका परमे० ऋ० उष्णिक् छं० अग्नि देवताहै। मंत्रार्थ-(सहसः, यहो, जातवेदः, अग्ने, गोमतः, वाजस्य, ईशानः, अस्मे, महि, श्रवः, धेहि) बलके पुत्र ज्ञानसम्पन्न हे अग्ने धेनुयुक्त अन्न के अधिपति तुम, हमारे निमित्त बड़े धनको दो ॥ ३५ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० दु० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (-पुर्वणीकः, सः, इधानः, वसुः, कविः, गिरा, ईडेन्यः, अग्निः,

उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषंस्तोतृभ्य आभर ॥ ४३ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि०प० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(सुश्चन्द्र, आसनि, सर्पिषः, उभे, दर्वी, श्रीणीषे, उतो, शवसः, पते, उक्थेषु, नः, दुपूर्याः, स्तोतृभ्यः, इषम्, आभर) चन्द्रमाकी समान आल्हाद करनेवाले हे अग्ने ! तुम अपने मुखमें घृतपान करने के निमित्त दोनों दर्वीके आकारवाले हाथोंको ग्रहण करते हो और हे बलके अधिपति ! शस्त्रनाम स्तुतिवाले यज्ञोंमें हमको धनोंसे पूर्ण करो स्तुति करनेवालोंको अन्न दो ॥ ४३ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रंहृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पदपंक्ति छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(अग्ने, अद्य, ते, तम्, क्रतुं, ओहैः, स्तोमैः, आ, ऋध्याम, न, अश्वम्, न हृदिस्पृशम्, भद्रम्) हे अग्ने ! आज तुम्हारे उस यज्ञको तुम्हारे नामरूप कर्मके प्रतिपादन करनेवाले फलप्रापक साम मंत्रोंसे सबप्रकार समृद्ध करते हैं, जैसे अनेक स्तुतियोंसे अश्वमेध के घोड़ोंको ब्राह्मण समृद्ध करते हैं जिसप्रकार अतिप्रिय चिरकाल से मनमें स्थित कल्याणरूपी यज्ञके संकल्पको समृद्ध करते हैं ४४

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, गु०, प०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ-(अग्ने, अध, हि, दक्षस्य, साधोः भद्रस्य, ऋतस्य, बृहतः, क्रतोः, रथी, बभूथ) हे अग्ने ! इसके अनन्तर अवश्य समृद्ध सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान किए कल्याणरूप अमोघ फलवाले बड़े हमारे यज्ञके, सारथी जिसप्रकार रथका निर्वाह करता है तिसप्रकार निर्वाहक हूजिये ॥ ४५ ॥ ॥

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पदपंक्ति छं०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ (अग्ने, नः, एभिः अर्कैः, सुमनाः, विश्वेभिः अनीकैः, नः अर्वाङ्, आ भव, न, स्वर्ज्योतिः) हे अग्ने ! हमारे इन पढ़ेहुए मन्त्रों से प्रसन्नमन होकर अपने सम्पूर्ण मुखों से सबप्रकार हमारे सन्मुख हूजिये, जैसे सूर्य आकाश में उदित होकर सम्पूर्ण जगत्के सन्मुख होता है ॥ ४६ ॥

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य
ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य
विभ्राष्टि मनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥

इसका परमे० ऋ०, अतिछन्द छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (यः, देवः, स्वध्वरः, ऊर्ध्वया, देवाच्या, कृपा, शोचिषा, आजुह्वानस्य, सर्पिषः, घृतस्य, विभ्राष्टिम्, अनुवष्टि, अग्निं, होतारं, दास्वन्तम्, वसुम्, सहसः, सूनुं, जातवेदसं, विप्रं, न, मन्ये) जो दानादि गुणयुक्त शुभयज्ञवाला अग्नि ऊंची, देवताओं के समीप जानेवाली समर्थ ज्वालासे सबओर होमेहुए अङ्ग २ में फैलनेवाले घृतके निरन्तर पानकी इच्छा करता है, उस अग्नि को देवताओंका बुलानेवाला दानशील वासदेनेवाला ब्रह्मज्योति का पुत्र सबप्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न सर्व शास्त्रके ज्ञातवाले ब्राह्मण की समान जानता हूँ ॥ ४७ ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा
वरूथ्यः, वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षिद्युमत्तमꣳ
रयिन्दाः । तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः । सुम्नाय
नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

मंत्रार्थ—इसकी व्याख्या [३ अ० २५, २६] कण्डिका में होगई ॥ ४८ ॥

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निꣳ
स्वराभरन्तः । तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निꣳ

यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम् ॥ ४९ ॥

इसका परमे० ऋ०, आर्षी त्रि०, छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्निं, इन्धानाः, स्वः, आभरन्तः, ऋषयः, येन, तपसा, सत्रम्, आयन्, तस्मिन्, नाके, अग्निं, अहं, निदधे, मनवः, स्तीर्णबर्हिषम्, आहुः) अग्नि को प्रदीप्त करते स्वर्गको स्वीकार करते ऋषि जिस विद्याकी एकाग्रतारूप तपसे यज्ञ करनेको उद्यत हुए उस तपके होनेपर स्वर्गलोकमें प्राप्त करानेवाले अग्निको मैं स्थापन करता हूं, मनन करने में प्रधान विद्वान् जिस अग्निको यज्ञ साधन सहित कहते हैं ॥ ४९ ॥

तम्पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः। नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ ५० ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, भु०, गा०, त्रि०, छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ —(देवाः, तृतीये, दिवः, पृष्ठे, सुकृतस्य, रोचने, लोके, नाकं, अधिगृभ्णानाः, पत्नीभिः, पुत्रैः, वा, भ्रातृभिः, उत, हिरण्यैः तम्, अनुगच्छेम) हे विद्वान् आत्मवनो ! भूमिसे तीसरे द्युलोक के ऊपर शुभकर्म के फलरूप दीप्यमान आदित्यमण्डलमें दुःखहीन स्थानको स्वीकार करते हुए हम स्त्री, पुत्र, भाई और सुवर्णादि द्रव्योंके साथ उस अग्निका सेवन करें इससे हमको तीसरे लोक की प्राप्ति होगी ॥ ५० ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

इसका परमे० ऋ०, स्वराडार्षी त्रि०, छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(अयं, भुरण्युः, सत्पतिः, चेकितानः, पृथिव्याः, पृष्ठे, निहितः, दविद्युतत्, अग्निः, वाचः, मध्यं, आरुहत्, ये, पृतन्यवः अधस्पदम्, कृणुताम्) यह जगत्का कर्ता, सत्पुरुषोंका पालक ज्ञानी पृथिवीके ऊपर स्थापित अत्यन्त प्रकाशवान् अग्नि चयनके

मध्यस्थानमें स्थित हुआ, जो युद्धकी इच्छावाले पापी हैं तिनको चरणोंके अधोभागमें करे ॥ ५१ ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योतता-मप्रयुच्छन् । विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उपप्रयाहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

इसका परमे० ऋ०, निच्यृदार्षी त्रि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अयम्, वीरतमः, वयोधाः, सहस्रियः, अग्निः, अप्रयुच्छन्, द्योतताम्, सरिरस्य, मध्ये, विभ्राजमानः, दिव्या, धामानि, उपप्रयातु) यह बड़ा वीर हविग्रहणकरनेवाला सहस्र इष्टकाओंसे केतुल्य अग्नि देवता कर्मोंमें प्रमाद न करताहुआ प्रज्वलित हो, त्रिलोकीके मध्यमें दीप्यमान दिव्य स्थानोंको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

सम्प्रच्यवध्वमुपसम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्। पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताᳪं सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, भु०गा०प० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ हे ऋषियो! तुम (प्रच्यवध्वम्, उप, सम्प्रयात, अग्ने, देवयानान्, पथः, कृणुध्वम् पुनः, पितरा, युवाना, कृण्वानाः, एतम्, तन्तुं, त्वयि, अतन्वाताᳪंसीत्) इस अग्निके समीप आओ, समीप आकर अनेकप्रकार प्राप्त करो, हे अग्ने, देवयान मार्गको सिद्ध करो, फिर वाणी और मनको तरुण करतेहुए ऋषियोंने इस यज्ञ को तुझमें क्रमपूर्वक विस्तार दिया है॥ ५३ ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳪं सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

सबका परमे० ऋ०, आ० त्रि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने, त्वं, उद्बुध्यस्व, प्रतिजागृहि, इष्टापूर्ते, संसृजेथाम्, अयम्, च, विश्वेदेवाः, यजमानः, च, सधस्थे, अस्मिन्, उत्तरस्मिन्, अधि, सीदत) हे अग्ने तुम सावधान होओ, श्रौतस्मार्त कर्ममें यजमान

से संसर्ग करो तुम्हारे प्रसादसे यह इष्टापूर्त से निष्पाप यजमान भी देवताओं के साथ दिव्यनियोग्य इस सबसे उत्कृष्ट स्वर्गलोक में चिरकाल तक निवास करे ॥ ५४ ॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम्। तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥ ५५ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० अ० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने, येन, सहस्रं, वहसि, येन सर्ववेदसं, तेन, नः, इमम्, यज्ञम्, देवेषु, गन्तवे, स्वः, नय) हे अग्ने जिस सामर्थ्य से सहस्र दक्षिणावाले यज्ञको प्राप्त करातेहो जिस सामर्थ्यसे सर्वस्व दक्षिणावाले यज्ञको प्राप्त कराते हो उस सामर्थ्यसे हमारे इस छोटे यज्ञको देवताओंके प्रति गमन करनेको स्वर्गमें प्राप्त करो यज्ञके स्वर्गमें गमन होनेसे हमारा भी वहां गमन होगा ॥ ५५ ॥

अ॒यन्ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तो अरो॑चथाः। तञ्जा॒नन्न॑ग्न॒ आरो॒हाथा॑ नो वर्द्धया र॒यिम् ॥ ५६ ॥

इसमं० की व्याख्या ३। १४ म० के १२। १२ मं० में होगई ५६

तप॑श्च तप॒स्यश्च शै॑शि॒रावृ॒तू अ॒ग्नेर॑न्तः श्ले॒षो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। ये अ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी इ॒मे शै॑शि॒रावृ॒तू अ॑भि॒कल्प॑माना॒ इन्द्र॑मिव दे॒वा अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ ५७ ॥

इसका परमे० ऋ०, स्वराडुत्कृति छं०, ऋतु दे० है। मंत्रार्थ (तपः) माघमास (तपस्यः) फाल्गुनमास, (शैशिरावृतू) शिशिर ऋतुके अवयवहैं। शेषकी व्याख्या १३। २५ में होगई ५७

प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे ज्योति॑ष्मतीम्। विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ। सूर्य॒स्तेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गि-

हस्वद्ध्रुवासीद ॥ ५८ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, शक्वरी छं०, सूर्य देवताहै । मंत्रार्थ–हे इष्टके (परमेष्ठी, ज्योतिष्मतीम्, त्वा, दिवः, पृष्ठे सादयतु, सूर्यः, ते, अधिपतिः) विश्वकर्मा वायुरूप ज्योतिष्मती तुझको द्युलोक के ऊपर स्थापनकरै सूर्य तुम्हारा स्वामी है ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमथ्ं श्रीणन्ति पृश्नयः जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमथ्ं रथीनां वाजानाथ्ं सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

इन तीन मंत्रों की व्या० [१२ अ० ५४–५५–५६ कं०] में होगई ॥ ५९–६०–६१ ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् । आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, विराट् त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (यदा महः, संवरणात्, व्यस्थात्, प्रोथत्, न, अश्वः, अविष्यन्, यवसे, आत्, शोचिः, वातः, अस्य, अनुवाति, अध, ते, व्रजनं, कृष्णम्, अस्ति स्म) जिस समय बड़े अरणीकाष्ठसे अग्नि प्रकाशित होतीहै, तब शब्द करती है जिसप्रकार घोडा भोजनकी इच्छा करताहुआ घासके निमित्त शब्द करताहै अग्नि के प्रज्वलित शब्दके उपरान्त प्रज्वलित करनेवाला वायु अग्नि की ज्वालाको देखकर वहन करताहै, इसके उपरान्त हे अग्ने ! उस समय तुम्हारा यह गमन कृष्णवर्ण होता ही है ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाथ्ं समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीम्भास्वतीमा या द्याम्भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०. ब्राह्म्युष्णिक्छं, स्वयमातृण्णा दे० है। मंत्रार्थ-हे स्वयमातृण्णे! (अवतः, समुद्रस्य, आयोः, छायायाम्, हृदये, सदने, रश्मिवतीम्, भास्वतीम्, त्वा, सादयामि) जगत्के पालन करनेवाले वर्षासे जगत्को आर्द्र करनेवाले आयु नामसे प्रसिद्ध आदित्यदेवताके आश्रयरूप प्रधान हृदयरूप स्थानमें बहुत किरणोंसे युक्त प्रकाशवान् तुमको स्थापन करताहूं (त्वम्, द्याम्, आभासि, पृथिवीम्, उरु, अन्तरिक्षं, आ) तुम द्युलोकको प्रकाश करती हो, भूलोकको प्रकाश करती हो, विस्तीर्ण अन्तरिक्षको प्रकाशवान् करती हो ॥ ६३ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीम्प्रथस्वतीन्दिवं यच्छ दिवन्दृᳪह दिवम्मा हिᳬसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्याछर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

इसकी व्या० १४ अ० के १२ मं० १५ अ० ५८ मं० में होगई ६४

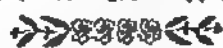
सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ०, दैवी जगती याजुष्यनुष्टु दै०छ० दैवी पं० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-हे अग्ने तुम (सहस्रस्य, प्रमा, असि, सहस्रस्य, प्रतिमा, असि, सहस्रस्य, उन्मानं, असि, साहस्रः, असि, सहस्राय, त्वा) सहस्र इष्टकाओं की प्रमाण हो, तुम सहस्र इष्टकाओंकी प्रतिनिधि हो, तुम सहस्र इष्टकाओंकी तुल्य हो, तुम सहस्र इष्टकाओंके उपयुक्त हो, अनन्त फलप्राप्तिके निमित्त तुमको प्रोक्षण करता हूं ॥ ६५ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका भाषानुवाद

पंचदश अध्याय समाप्त

अथ षोडशोऽध्यायः ।



(रुद्राध्याय)

जिसमें प्रथम चिति प्रधान है ऐसे पंचदश अध्याय में चयनके मंत्र समाप्त करके सोलहवें अध्याय में शतरुद्रिय होम के मन्त्र वर्णन करते हैं—

॥ हरिः ॐ ॥ नर्मस्ते रुद्र मुन्यवंऽउतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, गायत्री छं०, रुद्र देवता है । मन्त्रार्थ— (रुद्र, ते, मन्यवे, नमः, उतो, ते, इषवे, नमः उत, ते, बाहुभ्याम्, नमः) हे दुःखके दूर करनेवाले अथवा ज्ञान के देनेवाले अथवा पापीजनों को उनका कर्मफल देकर रुलानेवाले रुद्रदेव ! आपके क्रोधको नमस्कार है और तुम्हारे बाणोंको नमस्कार है अर्थात् हे रुद्रदेव ! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओंपर पड़ें हमको शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ २ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, आर्षी स्वराडनु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—(गिरिशन्त, रुद्र, या, ते, शिवा, अघोरा, अपापकाशिनी, तनूः, तया, शन्तमया, तन्वा, नः, अभिचाकशीहि) कैलाश पर्वत पर वा वेदवाणी में स्थित होकर प्राणियों के सुख को बढ़ानेवाले वा मेघ में स्थित होकर वर्षा से सुख देनेवाले हे रुद्र ! जो तुम्हारी शान्त मङ्गलरूप, सौम्य, पुण्यफल की देनेवाली परशक्ति है उस परमानन्दरूप शरीराकार शक्ति से हमको देखिये ॥ २ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र ताङ्कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० अ० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (गिरिशन्त, गिरित्र, याम्, इषुम्, अस्तवे, हस्ते, बिभर्षि, ताम्,

शिवाम्, कुरु, पुरुषम्, जगत्, मा, हिंॸसीः) हे वेदवाणी में स्थित होकर जगत् का कल्याण करनेवाले, कैलास वा वेदवाणी में स्थित होकर प्राणियों की रक्षा करनेवाले तुम जिस बाण को शत्रुओं के नाश करने को हाथ में धारण करते हो हे रक्षक उस बाण को कल्याणकारी करो, पुत्रपौत्रादि और जगत् के गवाश्वादि को मत मारो अथवा जीवात्मा और इन्द्रियों के समूह को संसार बन्धन से नष्ट न करो, किन्तु सदुपदेश देकर मोक्ष प्राप्त कराओ ३

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मᳬ सुमना असत् ॥ ४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० अ० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ- (गिरिश, शिवेन, वचसा, त्वा, अच्छ, वदामसि, नः, सर्वं, इत्, जगत्, यथा, अयक्ष्मं, सुमनाः, असत्) हे वेदवचन में शयन करनेवाले परमात्मन् हम मङ्गलकारी वेदरूप स्तुतिवचन से, तुम को प्राप्त होने के निमित्त प्रार्थना करते हैं, हमारे सब ही जंगम मनुष्य पशु आदि वा इंद्रियें जिसप्रकार नीरोग वा संसाररोग से मुक्त शुभ मनवाले हों सो करो॥ ४ ॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽध-
राचीः परासुव ॥ ५ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, भु० गा० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ अधिवक्ता, प्रथमः, दैव्यः, भिषक्, अध्यवोचत्, च, सर्वान्, अहीन्, जम्भयन्, सर्वाः, अधराचीः, यातुधान्यः, च, परासुव) तारकमन्त्रका उपदेश करनेवाले सब देवताओंमें मुख्य पूजनीय देवताओंके हितकारी संसाररोगके नाशक रुद्र हमको सबसे अधिक दें वा महामंत्रका उपदेश दें, और सब सर्पादिकी समान डसनेवाले कामादिका विनाश करतेहुए सम्पूर्ण अधोगमनशील कामकलारूप राक्षसीको भी हमसे दूर करें ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।

ये चैनथं रुद्रा अभितौ दिक्षु श्रिताःसंहस्रशो
वैषाथं हेड ईमहे ॥ ६ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निचृ० पं० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ (च, यः, असौ, ताम्रः, अरुणः, उत, बभ्रुः, सुमङ्गलः, च, ये, सहस्रशः, रुद्राः, एनम्, अभितः,दिक्षु,श्रिताः, एषाम्, हेडः, ईमहे) और जो यह प्रत्यक्षरुद्र सूर्यरूप उदयसमयमें अत्यन्त लालवर्ण अस्तसमय रक्तवर्ण और मध्यान्ह समयमें पिङ्गलवर्ण मंगलरूप कर्मोंका विस्तार करनेवाले हैं और जो सहस्रों रुद्रांशरूप देवता इनके सबओर दिशाओंमें स्थित हैं, इनका क्रोध जोकि हमारे अपराधसे प्रकट हुआ है उसको हम भक्तिद्वारा निवारण करतेहैं।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं
गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥७॥

इसका प्रजापति ऋ०, विराडार्षी पंक्ति छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (यः, असौ, नीलग्रीवः, उत, विलोहितः, अवसर्पति,एनं, गोपाः, अदृश्रन्, उदहार्यः, अदृश्रन, सः, दृष्टः, नः, मृडयाति) जो यह विषधारणसे अस्तसमय नीलग्रीव और विशेष रक्तवर्ण आदित्य रूपसे उदय अस्तकरते निरन्तर गमन करते हैं इनको वेदोक्तसंस्कार हीन गोपालतक देखते हैं, जल लेजानेवाली नारी पर्यन्त भी देखती है वह रुद्र दर्शनपथमें प्राप्त होते ही हमको सुखी करें,अथवा गोप कहिये इन्द्रियगोलकोंकी रक्षक इन्द्रियशक्तियां देखती हैं, और उदहारी कहिये अमृतको प्राप्त करानेवाली प्रज्ञाशक्तियें देखती हैं वह रुद्र दर्शन देतेहुए हमको मोक्षसुख दें॥ ७॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानो हन्तेभ्योऽकरन्नमः॥ ८॥

इसका प्रजापति ऋ०, वि०, पं०, छं०, रुद्र दे० हैं। मंत्रार्थ-(नीलग्रीवाय, सहस्राक्षाय, मीढुषे, नमः,अस्तु, अथो, अस्य, ये सत्वानः, तेभ्यः, अहम्, नमः, अकरम्) नीलकण्ठ सहस्रनेत्रसे सब जगत्को देखनेवाले इन्द्ररूप वा विराट्रूप सेचनमें समर्थ

पर्जन्यरूप वा वरुणरूप रुद्रके निमित्त नमस्कार हो और इस रुद्र देवताके जो अनुचर देवता हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, वि०, पं०, छं० रु० देवता है । मंत्रार्थ (भगवः, धन्वनः, उभयोः, आर्त्न्योः, ज्याम्, त्वम्, प्रमुञ्च, च, याः ते, हस्ते, इषवः, ताः, परावप) हे षडैश्वर्य सम्पन्न भगवन् ! आप धनुषकी दोनों कोटियोंमें स्थित ज्याको दूरकरो उतार लो और जो आपके हाथमें बाण हैं उनको दूर त्यागदो हमारे निमित्त सौम्यमूर्ति होजाओ ॥ ९ ॥

विज्यन्धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ ऽ उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, भु० गा० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (कपर्दिनः, धनुः, विज्यं, उत, बाणवान, विशल्यः, अस्य, याः, इषवः, अनेशन्, अस्य, निषङ्गधिः, आभुः) जटाजूटधारी रुद्रका धनुष ज्यारहित और तरकस भालावाले बाणोंसे रीता हो, इन ईश्वर के जो बाण हैं वे अदर्शनको प्राप्त हों इनका खड्ग रखने का कोश खड्गसे रीता हो, क्योंकि—योगसे जीवन्मुक्त मैं वधके योग्य नहीं हूँ ॥ १० ॥

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, नि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (मीढुष्टम, ते, या, हेतिः, ते, हस्ते, धनुः, बभूव, तया, अयक्ष्मया, त्वम, विश्वतः, अस्मान, परिभुज) हे ज्ञानामृतसे सींचनेवाले तुम्हारे जो ज्ञानरूप आयुध है आपके हाथमें जो प्राणरूप धनुष है, उस संसाररोगरूपी उपद्रव से रहित धनुष से आप सब ओरसे हमको पालन करो अर्थात् हमभक्तों की संसारबन्धनसे रक्षा करो ११

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।

अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥ १२ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-हे रुद्र ते, धन्वनः, हेतिः, विश्वतः, अस्मान्, परिवृणक्तु, अथो, यः, तव इषुधिः, तम्, अस्मत्, आरे, निधेहि) हे रुद्र ! तुम्हारे धनुषसम्बन्धी आयुध सबओरसे हमको त्यागें, और जो तुम्हारा तरकस है उसको हमसे दूर स्थापन करो ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्ट्वध्ठं सहस्राक्ष शतेषुधे ।

निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३॥

इसका प्रजापति ऋ०, नि० छं०, रु० देवता है। मंत्रार्थ—सहस्राक्ष, शतेषुधे, त्वम्, धनुः, अवतत्य, शल्यानाम्, मुखा, निशीर्य, नः, शिवः, सुमनाः, भव) हे विराट्रूप होनेसे सहस्रनेत्र हे सहस्रों तरकसवाले !, तुम धनुषको ज्यारहित करके बाणोंके मुख भाला रहित करके हमारे निमित्त शान्त और शोभनचित्त हूजिये क्योंकि मैं सायुज्यके योग्य हूँ ॥ १३ ॥

नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्या-

मुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्वने ॥ १४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, भु० गा० छं० रु० देवता है। मंत्रार्थ—हे रुद्र (ते, अनातताय, आयुधाय, नमः, ते, उभाभ्याम्, बाहुभ्याम् उत, तव, धृष्णवे, धन्वने, नमः) आपके धनुषपर न चढ़ायेहुए बाणके निमित्त नमस्कार है आपके दोनों बाहुओंके निमित्त और आपके शत्रुओंको मारनेमें प्रगल्भ धनुषके निमित्त प्रणाम है १४

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्ष-

न्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं-

म्मोत मातरम्मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

इसका कुत्स ऋ०, नि० जगती छं०, रु० देवता है। मंत्रार्थ—हे रुद्र (नः, महान्तं, मा, वधीः, उत, नः, अर्भकं, मा, नः, उक्षन्तम्, मा, उत, नः, उक्षितम्, मा, नः, पितरं, मा, उत, नः, मातरं, मा, नः, प्रियाः, तन्वः, मा, रीरिषः) हमारे वृद्ध गुरु पितृ-

पगडीधारणकरनेवाले सभ्यगण नगरोंमें विचरनेवाले,शून्यमस्तक गिरिवनमें फिरनेवाले दोनों प्रकारके दलोंके हृदयमें स्थित परमात्माको नम० है,छल बल कौशलसे दूसरोंकी गृहभूमि आदि हरने वालों के पालकको नम० है, मनुष्यों के डराने को बाण धारण करनेवाले और धनुष साथ लेकर चलनेवाले आपको नम० है, कुत्सुओं के दमनार्थ धनुषपर ज्या चढ़ानेवाले को नम० है और धनुषपर बाण चढानेवाले आपको नम० है और बाण को छोड़ने वाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २२ ॥

नमो॑ विसृजद्भ्यो॒ विध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ स्वप॒द्भ्यो॒ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॒ शया॑नेभ्य आसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, निचृ० ज० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—(विसृजद्भ्यः, नमः, च, विध्यद्भ्यः, वः, नमः, स्वपद्भ्यः, नमः, च, जाग्रद्भ्यः, वः, नमः, शयानेभ्यः, नमः, च, आसीनेभ्यः, वः, नमः, तिष्ठद्भ्यः, नमः, च, धावद्भ्यः, वः, नमः) पापियों के दमनार्थ बाण छोड़नेवाले को नम० और शत्रुओं के लक्ष्य को वेधनेवाले आपको नम० है, सोनेवालों के अन्तर में स्थितको नम० है और जाग्रत् अवस्था के अनुभवी आपको नम० है, सुषुप्ति अवस्थावालों के अन्तर में स्थित आपको नम० है, और बैठेहुओंके अन्तर में स्थित आपको नम० है और वेगयुक्त गतिवालों के अन्तर में स्थित आपको नम० है ॥ २३ ॥

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो ऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ आव्या॒धि-नी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णा-भ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

इसका कुत्स ऋ०, शक्वरी छं०, रु०दे० है । मंत्रार्थ—सभाभ्यः नमः, च सभापतिभ्यः,वः नमः, अश्वेभ्यः,नमः, च, अश्वपतिभ्यः

वः, नमः, आव्याधिनीभ्यः, नमः, च, विविध्यन्तीभ्यः, वः, नमः, उगणाय, नमः, च, तृंहतीभ्यः, वः, नमः) सभारूपको नम० है [सभादिमें रुद्रदृष्टि करनी चाहिये] सभापतिरूप आपको नम० प्रत्येक अश्वोंके अन्तरमें स्थितको नम० अश्वोंके अधिपतिको नम० है देवसेनाओंमें स्थितको नम० है, विशेषकर वेधनेवाली देवसेनाओंमें स्थित आपको नम० है उत्कृष्ट भृत्यसमूहवाली ब्राह्मीआदि माताको नम० है, युद्धमें प्रहार करनेवाले दुर्गादिमें स्थित आपको नम० है ॥ २४ ॥

नमो गुणेभ्यो गुणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भु०, श०, छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(गणेभ्य नमः, च, गणपतिभ्यः, वः, नमः व्रातेभ्यः, नमः, च, व्रातपतिभ्यः, वः, नमः, गृत्सपतिभ्यश्च वः, नमः, विरूपेभ्यः, नमः, च, विश्वरूपेभ्यः, वः, नमः) गणरूप को नम० है और गणोंके अधिपति आपको नम० है, समूहरूपको नम० है और मातोंके अधिपति आपको नम० है बुद्धिमानोंको नम० है और बुद्धिमानों के रक्षक आपको नम० है नग्न मुण्ड जटिलादि विकृतरूपको नम० है और सर्वरूप नानाविधरूप आपको नम० है ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भुरिग० ज० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (सेनाभ्यः, नमः, च, सेनानिभ्यः, वः, नमः, रथिभ्यः, नमः, च, अरथेभ्यः, वः, नमः, क्षत्तृभ्यः, नमः, च, संगृहीतृभ्यश्च, वः, नमः, महद्भ्यः, नमः, च, अर्भकेभ्यः, वः, नमः) सेनारूपको

नम० है, और सेनापतिरूपको नम० है, रथीरूपको नम० है, अरथीको नम० है, रथके अधिष्ठातृके अन्तरमें स्थितको नम० है और सारथियोंके अन्तरमें स्थित आपको नम० है, जाति विद्या ऐश्वर्य्यमें पूज्यको नम० है और प्रमाणादिसे अल्परूप आपको नम० है ॥ २६ ॥

नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॒: कुला॑लेभ्यः क॒र्मारे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ निषा॒देभ्य॑: पुञ्जि॒ष्टेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑: श्व॒निभ्यो॑ मृग॒युभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २७ ॥

इसका कुत्स ऋ०, निचृच्छक्करी छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (तक्षभ्यः, नमः, च, रथकारेभ्यः, वः, नमः, कुलालेभ्यः, नमः, च, कर्मारेभ्यः, वः, नमः, निषादेभ्यः, नमः, च, पुञ्जिष्टेभ्यः, वः, नमः, श्वनिभ्यः, नमः, च, मृगयुभ्यः, वः, नमः,) काष्ठकी शिल्पविद्याके जाननेवालोंमें व्याप्तको नम० है और विमान रथनिर्माणकारी उत्कृष्ट सत्ताके अन्तरमें स्थित आपको नम० है प्रशंसित मृत्तिकाके पात्र बनानेवालोंमें स्थितको नम० है और लोहेके शस्त्र बनानेवालोंमें स्थितको नम० है और गिरिचारी भीलादि में स्थितको नम० है और पक्षिघातक पुल्कसादि में स्थित आपको नम० है कुत्तोंके गलेमें रस्सी बाँधकर धारण करनेवालों के अन्तरकी जाननेवालेको नम० है और मृगोंकी कामनावाले व्याधोंके अन्तर स्थित आपको नम० है ॥ २७ ॥

नम॒: श्वभ्य॑: श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑: श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च ॥ २८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आर्षी ज० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (श्वभ्यः, नमः, च, श्वपतिभ्यः, वः, नमः, च, भवाय, नमः, च, रुद्राय, नमः, च, शर्वाय, नमः, च, पशुपतये, च, नीलग्रीवाय, नमः, च, शितिकण्ठाय) कुक्कुरों के अन्तरमें स्थितको नम० है और कुक्कुरोंके अधिपति किरातोंके

अन्तरमें स्थित व्यापकको नम० है और जिनसे सब जगत् उत्पन्न होताहै उनको नम० है और दुःख दूर करनेवाले देवको नम० है और पापका नाशकरनेवालेको नम० है और प्राणियोंके अधिपति को नम० है और नीलवर्ण ग्रीवावालेको नम० है और नीलकण्ठ वाले को नम० है ॥ २८ ॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्रा-
क्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च
शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥२९॥

इसका कुत्स ऋ०, मु० ज० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(कपर्दिने, च, व्युप्तकेशाय, नमः, च, सहस्राक्षाय, च, शतधन्वने नमः, च, गिरिशयाय, शिपिविष्टाय, नमः, च, मीढुष्टमाय, च, इषुमते, नमः) जटाजूटधारीको भी नम० है, मुण्डितकेशको नम० है और सहस्रलोचन इंद्ररूपको नम० है और बहुत धनुष धारण करनेवालेको नम० है और पर्वतपर शयन करनेवालेको० और सब प्राणियोंके अन्तरमें व्यापक विष्णुरूपको नम० है और मेघ-रूपसे वृष्टिकर्त्ताको और बाणधारीको नम० है ॥ २९ ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च
वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय
च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

इसका कुत्स ऋ०, वि०भि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (ह्रस्वाय, च, नमः, च, वामनाय, च, बृहते, च, वर्षीयसे, नमः च, वृद्धाय, च, सवृधे, नमः, च, आग्र्याय, च, प्रथमाय, नमः) अल्पशरीर को भी नम०है और संकुचित अवयवमें व्याप्त वामनरूपको नम० और बड़ेशरीरवालेको० और अतिवृद्धको नम० है और अधिक अवस्थावालेको० और विद्याविनयादि गुणयुक्त ज्ञानियोंके साथ वर्तनेवाले युवाको नम० है और जगत्में प्रथम प्रकट होनेवाले को० और सबमें प्रथम ब्रह्मरूपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

नमः आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च

शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो
नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराडार्षी पं०छ० रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (आशवे, च, च, अजिराय, नमः, च, शीघ्र्याय, च, शीभ्याय च, नमः, च, ऊर्म्याय, च, अवस्वन्याय, नमः, च, नादेयाय, च, द्वीप्याय, नमः,) जगद्व्यापकको और गतिशील गंगादि तीर्थरूपको नम० है और वेगवाली वस्तुमें विद्यमान और जलप्रवाहमें विद्यमान आत्मश्लाघी को नम० है और जलतरंगमें वर्त्तमान वा पूर्णव्यास आदि पहूर्मिमें वर्त्तमान और स्थिर जलोंमें विद्यमानको नमस्कार है और नदीमें वर्त्तमानको नमस्कार है और द्वीपमें होनेवाले व्यासरूपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय
चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय
च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्व० त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(च, ज्येष्ठाय, च, कनिष्ठाय, नमः, च, पूर्वजाय, च, अपरजाय, नमः, च, मध्यमाय, च, अपगल्भाय, नमः, च, जघन्याय, च, बुध्न्याय, नमः) और ज्येष्ठरूप को और कनिष्ठरूपको नमस्कार है [अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में प्रथम उत्पन्न होने से ज्येष्ठरूप तिसके भीतर भी विद्यमान और उसके पीछे जो कुछ उत्पन्न होरहा है उस सबके हृदयमें भी विद्यमान होने से कनिष्ठरूप है] और जगत् की आदि में हिरण्यगर्भरूप से उत्पन्न और प्रलय काल में कालाग्निरूप से होनेवाले को नमस्कार है और सृष्टि संहार के अनन्तर देवतिर्यगादिरूप से होनेवाले को नम०, और अप्रगल्भ अन्युत्पन्नइन्द्रिय इन्द्रियादिप्रकाशरहित अण्डरूप को नम० और गवादिके पीछे होनेवाले स्वेदज कृमि कीटादि में वर्त्तमान को नम० है और वृक्षादि की मूल में पोषकरूप से वर्त्तमान को नमस्कार है ॥ ३२ ॥

नमस्सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आ० त्रि०छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (सोभ्याय, च, नमः, प्रतिसर्याय, नमः, च, याम्याय, च, क्षेम्याय, नमः, च, श्लोक्याय, च, अवसान्याय, नमः, च, उर्वर्याय, च, खल्याय, नमः) गन्धर्वनगर में होनेवालेको भी नम० है और विवाहादि कार्यमें हाथमें बंधे मंगलसूत्रमें विद्यमानको नम० और पापियों को दुःखदेनेवाले यममें वर्त्तमानको और क्षेममें होनेवालेको नम० और इस संसारमें यशःप्रचार के कारणभूत और वेदोंमें स्थित को नम० है और उपजाऊ भूमिमें उत्पन्नहुए धान्यादिमें भी विद्यमानको नम०है और धान्य निकालनेके स्थानमें होनेवालेको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, स्वराडार्षी त्रि०छं, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (वन्याय, च, नमः, कक्ष्याय, नमः, च, श्रवाय, च, प्रतिश्रवाय, नमः, च, आशुषेणाय, च, आशुरथाय, नमः, च, शूराय, च, अवभेदिने, नमः) वनमें वृक्षादिस्वरूपको भी नम० है, और तृणवल्लीमें होनेवालेको नम० है, और शब्दरूपको नम० है और प्रतिध्वनिमें विद्यमानको नम० है और शीघ्र चलनेवाले रथोंकी श्रेणी में विद्यमानको नम० है और युद्धविशारदोंके हृदयमें विद्यमान को और शत्रुका हृदय वेधनेवाले शस्त्रमें भी विद्यमानको नम०है।

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्म्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ ३५ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराडार्षी त्रि० छं०, रुद्र देवता है ।

मंत्रार्थ--(च, बिल्मिने, नमः, कवचिने, नमः, च, वर्मिणे,नमः, च, वरूथिने, नमः,च, श्रुताय,च, श्रुतसेनाय,च, नमः, दुन्दुभ्याय, च, आहनन्याय, नमः) और शिखाणधारी को नम० है और कवचधारी को नम० और मंत्रमय कवचधारी को नम० है और चौदह भुवनवासी को नमस्कार है और प्रसिद्ध को नम०है और प्रसिद्ध सेनावाले को भी नम० है और रणके बाजे में विद्यमान को और बाजे के दण्डे आदि में विद्यमान को नमस्कार है ॥३५॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे
चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः
स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्व० त्रि० छं०, इन्द्र दे० । मंत्रार्थ (च, धृष्णवे, च, प्रमृशाय, नमः, च, निषङ्गिणे, नमः, च, इषुधिमते, नमः, च, तीक्ष्णेषवे, च, आयुधिने, नमः, च, स्वायुधाय, च, सुधन्वने) और प्रगल्भरूप अपने पक्षकी रक्षा करनेवालेको नम० है और विचारशील पंडितरूपको नम० है और खड्गधारीको नम० है और तरकसधारीको नम० है और तीक्ष्णबाणधारी को और अन्य आयुधधारीको नम० है और शोभन आयुध त्रिशूल धारीको और पिनाकधनुषधारीको नमस्कार है ३६ ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च
नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो
नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

इसका कुत्स ऋ०, नि०, त्रि०, छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ-(च, स्रुत्याय, च, पथ्याय, नमः, च, काट्याय, च, नीप्याय, नमः, च, कुल्याय, च, सरस्याय, नमः, च, नादेयाय, च, वैशन्ताय, नमः) और मुक्तिदाताको और मुक्तिमार्ग में दर्शनदेने वालेको नम० है और दुर्गम मार्गमें दर्शनदेनेवालेको० और संसाररक्ष स्वरूपको नमस्कार है और नरकके मार्गमें स्थितको० और सरोवरोंमें विद्यामानको नम० है और नदीमें जलरूप से

स्थितको नमस्कार है ॥ ३७ ॥

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्रयाय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भु० पं० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(च, कूप्याय, च, अवट्याय, नमः, च, वीध्र्याय, च, आतप्याय, नमः, च, मेघ्याय च, विद्युत्याय, नमः, च, वर्ष्याय, च, अवर्ष्याय, नमः) और कूपमें आत्मारूपसे विराजमानको० और गर्तजल में विराजमानको नमस्कार है और महावकाशमें स्थितको० और धूपमें विद्यमानको नमस्कार है और मेघमें विद्यमानको० और बिजली में विराजमानको नमस्कार है और वर्षाकी धारा में स्थितको० और वृष्टिके प्रतिबन्धमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराडार्षी पं० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (च, वात्याय, च, रेष्म्याय, नमः, च, वास्तव्याय, च, वास्तुपाय, नमः, च, सोमाय, च, रुद्राय, नमः, च, ताम्राय, च, अरुणाय, नमः), और वायुप्रवाहमें विराजमानको० और प्रलयकी पवनमें रहनेवालेको नमस्कार है और वास्तुगृहमें विराजमानको० और गृहभूमिके देवताको नम० है और चन्द्रमामें स्थितको और दुःख नाशकको नम० है और सायंकालके सूर्यमें स्थितको नम० है और प्रभातकालीन सूर्यमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

इसका परमे०वा म० देवा ऋ०, भु० श० छं०, रुद्र दे० है।

मंत्रार्थ-(शङ्गवे, नमः, च, पशुपतये, नमः, च, उग्राय, च, भीमाय, नमः, च, अग्रेवधाय, च, दूरेवधाय, नमः, च, हन्त्रे, नमः, हनीयसे, नमः, हरिकेशेभ्यः, वृक्षेभ्यः, नमः, ताराय, नमः) कल्याणरूप वेदवाणी वालेको नमस्कार है और प्राणियोंके पालकको नम० है और शत्रुओंके मारनेको कठिन आयुध उठाये कठिन अन्तःकरणवाले को० और शत्रुभयोत्पादक भयानक को नम०, है और सन्मुख के शत्रुका वध करनेवालेको० और दूरके शत्रुका वध करनेवाले को नम० है और मारनेवालेके रूपमें स्थित स्थावर पदार्थ के लयकारीको नम० है और अतिशय हन्ता सदाको मृत्युका अभाव करनेवालेको नम० है हरे पत्तेवाले कल्पतरुरूपको नम० संसारके तारनेवालेको नमस्कार है ॥ ४० ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

इसका परमे० प्र० वा० देवा ऋ०, स्व० बृ० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(शम्भवाय, नमः) इस लोकके कल्याणकारी जिन से सुख होताहै अथवा सुखरूप संसाररूप मुक्तिरूपको नम० है (च, मयोभवाय, च, शङ्कराय, नमः) और संसारके सुखदाता पारलौकिक कल्याणको नम० है और लौकिक सुखदेनेवालेको नम० है (च, मयस्कराय च, शिवाय, नमः) और मोक्षसुख देनेवालेको नम० है और कल्याणरूप निष्पापको नम० है (च, शिवतराय) और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा निष्पाप करनेवालेको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

इसका परमे० प्र० दे० ऋ०, निचृ० त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(च, पार्याय, च, अवार्याय, नमः, च, प्रतरणाय, च, उत्तरणाय, नमः, च, तीर्थ्याय, च, कूल्याय, नमः, च, शष्प्याय,

च, फेन्याय, नमः,) और समुद्रके पारमें भी विद्यमानको० और सागरके इस पारमें भी विद्यमानको नम० है जहाजमें विद्यमान को और दोनोंमें भी विद्यमानको नम० है और सागरादिके गर्भ में विद्यमानको० और जलप्रणालीमें प्रकट होनेवालेको नम० है और गंगादिके तटमें उत्पन्न कुश अंकुरादिमें विद्यमानको नम० है और सागरादिके फेनमें होनेवालेको नम० है ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमं इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

इसका परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋ०, जगती छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(च, सिकत्याय, च, प्रवाह्याय, नमः, च, किꣳशिलाय, च, क्षयणाय, नमः, च, कपर्दिने च, पुलस्तये, च, इरिण्याय, च, प्रपथ्याय, नमः) और तीरवर्ती रूपको और प्रवाहरूपको नमस्कार है और नदी आदिके भीतर सूक्ष्मकंकरादिमें विद्यमानको और स्थिरजलमें विद्यमानको नम० है और जटाजूटयुक्त व पूरजलमें विद्यमानको और तृणरहित ऊपरभूमिमें विद्यमानको और बहुत सेवितमार्ग में विद्यमानको नम० है ॥ ४३ ॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥ ४४ ॥

इसका परमे० ऋ०, आर्षी त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(च, व्रज्याय, च, गोष्ठ्याय, नमः, च, तल्प्याय, च, गेह्याय, नमः, च, हृदय्याय, च, निवेष्प्याय, नमः, च, काट्याय, च, गह्वरेष्ठाय) और गोचारणस्थानमें विद्यमान और व्रजमें विद्यमान को नम० है और शय्याशय्यारूपको और घरमें देवतारूपसे विराजमानको नम० है और हृदयमें जीवरूपसे स्थितको और हिम-समूहमें विराजमानको नम० है और दुर्गम मार्गमें विराजमानको और गिरिगुहामें विराजमानको नम० है ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी प्रजापतिर्वा ऋ० निचृदा त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(च, शुष्क्याय, च, हरित्याय, नमः, च, पांसव्याय, च, रजस्याय, नमः, च, लोप्याय, च, उलप्याय, नमः, च, ऊर्व्याय, च, सूर्व्याय, नमः) और सूखे काष्ठादिमें विराजमानको और हरेपत्तआदिमें विराजमानको नम० है और धूलिमें विराजमान को और रजोगुणमें विद्यमानको नम० है और अगम्य देशमें विराजमानको और बल्वजादि तृणमें विराजमानको नम० है और उर्वरभूमिमे विराजमानको नमस्कार है और महाप्रलयकी अग्निमें विराजमानको नम० है ॥ ४५ ॥

नमः पूर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः॥४६॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, स्वराट् प्रकृति छं०, रुद्र दे०। मंत्रार्थ-(च, पर्णाय, च, नमः, च, उद्गुरमाणाय, च, अभिघ्नते, नमः, च, आखिदते, च, प्रखिदते, नमः, इषुकृद्भ्यः, च, धनुष्कृद्भ्यः वः,नमः) और पर्णमें विद्यमानको और पर्णपतित वर्णस्थित देशरूप में विद्यमानको नम० है और निरन्तर उद्यमीको और शत्रुओंके संहारकको नम० है और अभक्तोंको सदा दुःखदाता त्रिविधतापके नाशकको और त्रिविधतापके उत्पन्नकर्त्ताको नम०है बाणके उत्पन्न करनेवालेको और धनुषके रचनेवाले आपको नमस्कार है (देवानां, हृदयेभ्यः, किरिकेभ्यः,वः,नमः, विचिन्वत्केभ्यः,नमः,विक्षिणत्केभ्यः, नमः, आनिर्हतेभ्यः) जो देवताओंके हृदयस्वरूप प्रधान अग्नि वायु सूर्यके हृदयरूप सृष्टयादि द्वारा जगतको सृजन करते

हैं ऐसे आपको नमस्कार है जो देवताओंका हृदयस्वरूप हैं जो वृष्टिआदिसे जगत्का पालन करते हैं जो धर्मात्मा और पापात्माओं को पृथक् करते हैं उन अग्नि वायु सूर्य के हृदयको नमस्कार है, विविध पापोंको दूर करनेवाले अग्नि आदिको नमस्कार है अर्थात् जो देवताओंका हृदयस्वरूप विचिण्वत्क वृष्टिआदिसे जगत्का संहार करते हैं अग्नि वायु सूर्यके हृदयस्वरूप हैं उनको वारंवार नम०है सृष्टिकी आदिमें होनेवाले रुद्रावतारको नमस्कार है ॥ ४६ ॥

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसां प्रजानामेषाम्पशूनाम्माभेर्मा रोङ् मो च नः किञ्चनाममत् ॥ ४७ ॥

इसका परमे० प्रजा० ऋ०, भु० गा० छ० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ-(द्रापे,अन्धसः, पते, दरिद्र, नीललोहित, नः, आसाम्, प्रजानां, एषां, पशूनां, मा, भेः, मा,रोक्,च, किंचन, मा, आममत्) हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले हे सोमके पालक अद्वितीय होनेसे सहायशून्य हे नील और लोहित शुक्लकृष्ण उभयात्मक शिव ! हमारे इन पुत्र पौत्रादिको इन पशुओंको मत भय दो तथा प्रजापशुओंका भंग मत करो और किसीप्रकार भी हमें तथा हमारी प्रजा पशुको मत रुग्ण करो सबप्रकार प्रजापशुमें मंगल करो ४७

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आर्षी ज० छं० रुद्र देवता है। मंत्रार्थ (यथा, द्विपदे, चतुष्पदे, शं, अस्मिन, ग्रामे, विश्वं, पुष्टं, अनातुरम्, असत्, इमाः, मतीः, तवसे कपर्दिने, क्षयद्वीराय, रुद्राय, प्रभरामहे) जिसप्रकार पुत्रादिमें गवादिपशुओंमें सुखकी प्राप्ति हो तथा इस ग्राममें सम्पूर्ण प्राणिसमूह पुष्ट उपद्रवरहित हो उसीप्रकार हम इन अपनी बुद्धियों को महाबली जटिल शूरवीरोंके निवासभूत रुद्रदेवताके निमित्त समर्पण करते हैं ॥ ४८ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ ४९ ॥

इसका परमे० प्रजा० ऋ०, आर्ष्यनु० छं० रुद्र दे० । मंत्रार्थ (हे रुद्र, या, ते, शिवा, विश्वाहा, शिवा, भेषजी, रुतस्य, शिवा, भेषजी तनूः, तया, नः जीवसे, मृड) हे शंकरजी आपका शान्त निरन्तर कल्याणकारी औषधीरूप संसारकी व्याधि निवृत्त करने वाला तथा शरीरव्याधिकी समीचीन औषधीरूप शरीर वा शक्ति है उस शक्तिसे हमको जीवनके लिये सुखी करो ॥ ४९ ॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥

इसका परमे० प्रजा० ऋ०, आ० त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ–(रुद्रस्य, हेतिः, नः, परिवृणक्तु, त्वेषस्य, अघायोः, दुर्मतिः, परि, मीढ्वः, मघवद्भ्यः, स्थिरा, अवतनुष्व, तोकाय, तनयाय, मृड) रुद्रके सम्पूर्ण आयुध हमको परित्याग करें पापियों पर क्रोधित अर्थात् कोपनस्वभाव, दण्डदेनेकी इच्छावाली दुर्मति हम को सबप्रकार त्याग करे हे अभिलषित फलप्रद । हविरूप धनसे युक्त यजमानोंके भय दूरकरनेको दृढ धनुषोंको ज्याहीन करो हमारे पुत्र पौत्रादिको सुख दो ॥ ५० ॥

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।
परमे वृक्ष आयुधन्निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकम्बिभ्रदागहि ॥ ५१ ॥

इसका परमे०प्र० ऋ०, नि० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ–(मीढुष्टम, शिवतम, नः, शिवः, सुमनाः, भव, परमे, वृक्षे, आयुधं, निधाय, कृत्तिं, वसानः, आचर, पिनाकं, बिभ्रत् आगहि) हे अतिशय अभिलषित फलदाता अत्यन्त कल्याणकर्त्ता हमको शान्त सुन्दरमनवाले होओ दूर स्थित वा ऊँचे वृक्षपर अपना त्रिशूल रखकर मृगचर्म धारणकिये आगमन कीजिये पिनाक धनुषको

धारण किये आगमन कीजिये ॥ ५१ ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः।
यास्ते सहस्रंꣳ हेतयोन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

इसका पर० ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ—(विकिरिद्र, विलोहित, भगवः, ते, नमः, अस्तु, ते, याः, सहस्रं, हेतयः, ताः, अस्मत्, अन्यम्, निवपन्तु) हे अनेक उपद्रव नष्ट करनेवाले हे शुद्धस्वरूप भगवन्! आपको नमस्कार हो तुम्हारे जो सहस्रों शस्त्र हैं वह हमको छोड़कर और कहीं उपद्रवियोंपर पड़ें ॥ ५२ ॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

इसका पर० ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ—(भगवः, तव, बाह्वोः, सहस्राणि, सहस्रशः, हेतयः, ईशानः, तासाम्, मुखा, पराचीना, कृधि) हे भगवन्! षडैश्वर्यसम्पन्न! आपके भुजाओं में बहुत प्रकार के सहस्रों खड्गशूलादि आयुध हैं, जगत् के पति आप उन संहारकारी आयुधों के मुखों को हमसे पराङ्मुख करो ५३

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

इसका पर० ऋ०, विराड० छं० रुद्र देव०। मंत्रार्थ—(ये, असंख्याताः सहस्राणि, रुद्राः, भूम्याम्, अधि, तेषाम्, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो असंख्य सहस्रों रुद्र भूमिके ऊपर स्थित हैं उनके धनुष सहस्र योजनदूर फेंकते हैं ॥ ५४ ॥

अस्मिन्महत्यर्णवेन्तरिक्षे भवा अधि।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

इसका पर० ऋ० भुरिगा०, छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ (अस्मिन्, अन्तरिक्षे, महति, अर्णवे, अधिभवाः, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) इस अन्तरिक्षमें और बड़े सागर अर्थात् आकाशगंगानामसे प्रसिद्ध नक्षत्र पुञ्जरूप धाराप्रवाहमें आश्रय

करके जो रुद्र स्थित हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर ज्याराहित करके हम निर्भयहोते हैं ॥ ५५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥

इसका पर० ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (नीलग्रीवाः, शितिकण्ठाः, रुद्राः, दिवं, उपश्रिताः, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) नीलग्रीव श्वेतकण्ठवाले विषभक्षणसे कितनाएक कण्ठ श्वेत और कितना एक नीलहै ऐसे जो रुद्र द्युलोकमें आश्रय कियेहुए हैं उनके सब धनुषोंको सहस्रयोजन दूर ज्याराहित कर हम निर्भय होतेहैं ॥ ५६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५७ ॥

इसका पर० ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (नीलग्रीवाः, शितिकण्ठाः, शर्वाः, अधः, क्षमाचराः तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) नीलीगर्दनवाले श्वेतकण्ठवाले जो शर्वनामक रुद्र नीचे पातालमें वर्तमान हैं उनके सब धनुप सहस्रयोजन दूर ज्याराहित करके हम निर्भय होताहै ॥ ५७ ॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५८ ॥

इसका पर० ऋ०, निचृदा० छं०, रुद्र देव०। मंत्रार्थ (ये, शष्पिञ्जराः, नीलग्रीवाः, विलोहिताः, वृक्षेषु, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो हरितवर्ण नीलग्रीवावाले विशेष रक्तवर्ण वृक्षोंमें वर्तमानहैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर ज्याराहित करकै अभय होतेहैं ॥ ५८ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५९ ॥

इसका पर० ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र दे०। मंत्रार्थ (ये, भूतानां अधिपतयः, विशिखासः, कपर्दिनः, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजन,

अवतन्मसि) जो देवविशेषोंके अधिपति हैं तथा शिखाहीन मुण्डितशिर हैं जो जटाजूटसे युक्त हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर ज्यारहित करके निर्भय होतेहैं ॥ ५९ ॥

ये पथाम्पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः । तेषाᳬं सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६० ॥

इसका पर० ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ-(ये, पथाम्, पथिरक्षयः, ऐलबृदः, आयुर्युधः, तेषाम्, धन्वानि सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो लौकिकवैदिक मार्गोंके अधिपति मार्गों के पालक राज्यशासनकारी जीवनपर्यन्त युद्ध करनेमें रतहैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहितकरके निर्भय होतेहैं ॥६०॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषाᳬं सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

इसका पर० ऋ०,निचृ०छं०,रुद्र दे० । मंत्रार्थ-(सृकाहस्ताः, निषङ्गिणः, तीर्थानि, प्रचरन्ति, तेषां,धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो आयुध विशेष ढालको हाथमें लिये तथा खड्गधारण किये काशी प्रयागादि तीर्थोंमें फिरतेहैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके निर्भय होतेहैं ॥ ६१ ॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषाᳬं सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

इसका पर० ऋ०, विराडार्ष्यनु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ (ये, अन्नेषु, जनान्, विविध्यन्ति, पात्रेषु, पिबतः, तेषाम्, धन्वानि सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो अन्नभोजन करनेमें प्राणियोंको विशेषकरके ताड़न करतेहैं अर्थात् धातुकी विषमता पर रोगोंको उत्पन्न करतेहैं पात्रोंमें जल दूधआदि पीतहुए जनोंको कुत्सित जल आदिसे रोगग्रसित करतेहैं उनके सम्पूर्ण धनुषोंको सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके अभय होतेहैं ॥ ६२ ॥

य एतावन्तश्च भूयाᳬंसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषाᳬं सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

इसका पर० ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ–(च, ये, रुद्राः, एतावन्तः, च, भूयांसः, दिशः, वितस्थिरे, तेषाम्, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि) और जो रुद्र इन दशों दिशाओंमें और इन कहेहुओंसे भी अधिक सपूर्ण दिशाओंमें आश्रित हैं उनके धनुषों को सहस्रयोजनकी दूरीपर उतारीहुई करके समय होतेहैं ॥ ६३ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-
दीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु
ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि
तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० छं०, रुद्र दे०है । मंत्रार्थ–(ये, दिवि, येषाम्, वर्षम्, इषवः, तेभ्यः, रुद्रेभ्यः, नमः, तेभ्यः, दश, प्राचीः, दश दक्षिणाः, दश प्रतीचीः, दशोदीचीः, दशोर्ध्वाः, नमः, ते, नः, अवन्तु, ते, नः, मृडयन्तु, ते, यम्, द्विष्मः, च, यः, नः, द्वेष्टि, तम्, एषाम्, जम्भे, दध्मः) जो रुद्र द्युलोकमें विद्यमान हैं जिन रुद्रों के वृष्टि ही बाण हैं उन रुद्रोंके पूर्व दिशामें दश अंगुली होकर अर्थात् हाथ जोड़कर दक्षिण में दश अंगुली होकर पश्चिममें दश अंगुली होकर उत्तरमें दश अंगुली होकर ऊर्ध्व में दश अंगुली अर्थात् करजोड़ प्रार्थना करताहूं उनको नमस्कारहो, वे रुद्र हमारी रक्षा करें, वे हमको सुखी करें वे रुद्र जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करताहै उसको इन रुद्रोंके दाढ़में स्थापन करते हैं ॥ ६४ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-
दीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु
ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि
तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६५ ॥

इसका पर० ऋ०, धृतिछं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ–(रुद्रेभ्यः,

नमः, अस्तु, ये, अन्तरिक्षे, येषाम्, इषवः, वातः) उन रुद्रोंको नमस्कार हो, जो अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं, जिनके बाण पवन है अर्थात् पवनद्वारा जो सृजन पालन और आँधी आदिसे संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेषम्पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

इसका पर०ऋ० पू० छं० रुद्र दे०है। मंत्रार्थ-(रुद्रेभ्यः, नमः, ये, पृथिव्याम्, येषाम्, इषवः, अन्नम्) उन रुद्रोंको नमस्कारहै जो रुद्र पृथ्वीमें स्थित हैं जिनके बाण अन्नहैं जो अन्नद्वारा ही सृजन पालन और मिथ्याहार विहारसे रोग उत्पन्न कर प्राणियोंका संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेषम्पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिसंहिताका सानुवाद षोडश अध्याय समाप्त

अथ सप्तदशोऽध्यायः।

सोलहवें अध्यायमें शतरुद्रीका होम कहकर अब सत्रहवें अध्याय में चितिपरिषेक आदिके मंत्रोंको कहते हैं।

॥ हरिः ॐ ॥ अश्मन्नूर्जम्पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतम्पयः। तान्न इषमूर्जन्धत्त मरुतः सꣳरराणाः अश्मꣳस्ते क्षुन्मयि त ऊर्ग्यन्द्विष्मस्तन्ते शुगृच्छतु ॥ १ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं, सबका मेधातिथि ऋ०, छन्द १ आ० त्रि०, २ दै० बृ०, ३ या बृ०, और दे० १-मरुत् २-अश्मा, ३-शुक् है। मंत्रार्थ-(मरुतः, सꣳरराणाः, अश्मन्, पर्वते, शिश्रियाणाम्, ऊर्जम्, अद्भ्यः ओषधीभ्यः, वनस्पतिभ्यः, अधि,

सम्भृतम्, पयः, ताम्, इषम्, ऊर्जम्, नः, धत्त) हे मरुद्गण ! प्रसिद्धिदाता तुम पाषाणमें विन्ध्याचल हिमालयादि पर्वतोंमें आश्रित सारभूत वनका हेतु जलोंसे ओषधियोंसे वनस्पति अश्वत्थादि से अधिक सिद्ध तथा गौद्वारा सम्पादित दूध अर्थात् मेघ जनित जलरूप और गौसे उत्पन्न दुग्धरूप प्रसिद्ध अन्न और रस को हमारे निमित्त स्थापन कीजिये अर्थात् हमें दीजिये (अश्मन्, ते, क्षुत्) हे प्रस्तररूप ! सर्वभक्षक अग्ने ! तुमको क्षुधा प्राप्त हो अर्थात् बहुत हवि भोगो (अश्मन्, ते, ऊर्क्, मयि) हे प्रस्तर ! तुम्हारा सारभाग मेरे विषे स्थित हो, हे अग्ने (ते, शुक्, तं, ऋच्छतु यं, द्विष्मः) तुम्हारा क्रोध उस मनुष्यको प्राप्त हो जिस के साथ हम द्वेष करते हैं अर्थात् जो कोई हमारा शत्रु हो तुम्हारा दाह उसको प्राप्त हो ॥ १ ॥

इमा मे॑ अग्न॒ इष्ट॑का धे॒नवः॑ स॒न्त्वेका॑ च॒ दश॑ च॒ दश॑ च श॒तञ्च॑ श॒तञ्च॑ स॒हस्र॑ञ्च स॒हस्र॑ञ्चा॒युत॑ञ्च॒ युत॑ञ्च नि॒युत॑ञ्च नि॒युत॑ञ्च प्र॒युत॒ञ्चार्बु॑दञ्च॒ न्य॒र्बु॑दञ्च समु॒द्रश्च॒ मध्य॑ञ्चा॒न्त॑श्च परा॒र्द्ध॑श्चै॒ता मे॑ अग्न॒ इष्ट॑का धे॒नवः॑ सन्त्व॒मुत्रा॒मुष्मि॑ल्लो॒के ॥ २ ॥

इसका मेधातिथि ऋ०, नि०, त्रि०, छं०, अग्नि दे० । मं० (अग्ने, इमाः, इष्टकाः, मे, धेनवः, सन्तु, एका, च, दश च, शतं, च, शतं, च, सहस्रं च, स. सं च, अयुतं, च, अयुतं, च, नियुतं, च, नियुतं च, प्रयुतं, च, प्रयुतं, च, अर्बुदं, च, न्यर्बुदश्च, समुद्रः, च, मध्यश्च, अन्तः, च, परार्द्धः, अग्ने- एताः, इष्टकाः, अमुत्र, च, अमुष्मिन्, लोके, मे, धेनवः, सन्तु) हे अग्नि देवता यह जो पांच चितिमें स्थापित इष्टका हैं तुम्हारे प्रसादसे इसलोकमें मेरे निमित्त अभिमत फल देनेवाली गोरूप हों उनकी संख्या कहते हैं जो एक ही दशसे गुणा करनेपर दशसंख्या और दशगुणा करने से सौ संख्या और सौको दशगुणा करनेसे ही सहस्र होता है, और सहस्रको दशगुणा करनेसे अयुत संख्या होती है (१००००)

और अयुतको दशगुणा करनेसे लाख १००००० संख्या और नियुतको दशगुणा करनेसे दशलाख १०००००० संख्या होती है और इसको दशगुणा करनेसे करोड़ १००००००० संख्या होती है इसको दशगुणा करनेसे अर्बुद और इसका दशगुणा करनेसे न्यर्बुद (अब्ज) और इसका दशगुणा करनेसे खर्व और खर्व का दशगुणा करनेसे निखर्व इसका दशगुणा करनेसे महापद्म इसका दशगुणा शङ्कु इसका दशगुणा समुद्र और इसका दशगुणा मध्य और इसका दशगुणा करनेपर अन्त और इसका दशगुणा करनेसे परार्द्ध संख्या होती है हे अग्ने ! यह इष्टका दूसरे जन्ममें और दूसरे लोकमें मेरी कामदुघा गौएं हों, अर्थात् इष्टका परार्द्ध संख्या तक एकअस्थायी होती हैं और कामदुघा हैं इसकारण प्रार्थना है कि हमको इसलोक परलोक और परजन्म किसी कालमें भी कामनारूप दुग्धदानसे कातर न करें ॥ २ ॥

ऋतव॑ स्थ ऋता॒वृध॑ ऋतु॒ष्ठा स्थ॑ ऋता॒वृधः॑ ।
घृत॒श्च्युतो॑ मधु॒श्च्युतो॑ वि॒राजो॒ नाम॑ काम॒दुघा॒
अक्षी॑यमाणाः ॥ ३ ॥

इसका मेधा० ऋ० विराडार्षी पं० छं०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ– हे इष्टके! तुम(ऋतवः, ऋतावृधः, स्थ, ऋतावृध०, ऋतुष्ठाः, घृतश्च्युतः, मधुश्च्युतः, विराजः, नाम, कामदुघाः, अक्षीयमाणाः, स्थ) सत्य था यज्ञकी बढ़ानेवाली वसन्तादिरूप हो, यज्ञकी वृद्धि करनेवाली वसन्तादि ऋतुओंमें स्थित हो, तथा घृतको क्षरण करनेवाली मधुकी क्षरण करनेवाली, विराज नामसे प्रसिद्ध कामना पूर्ण करनेवाली, क्षय रहितहो, मुझे सब कामना दो ॥ ३ ॥

स॒मु॒द्रस्य॒ त्वाव॑कया॒ग्ने परि॑व्ययामसि । पा॒व॒को
अ॒स्मभ्य॑ᳪ शि॒वो भ॑व ॥ ४ ॥

इसका मे० ऋ०, मु० गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ– (अग्ने, समुद्रस्य, अवकया, त्वा, परिव्ययामसि, अस्मभ्यम्, पावकः, शिवः, भव) हे अग्ने ! जलके शैवालद्वारा तुमको सब

ओरसे वेष्टन करताहूं हमारे निमित्त शोधक कल्याणकारी होओ ४

हिमस्य॑ त्वा ज॒रायु॑णाग्ने॒ परि॑व्ययामसि ।
पा॒व॒को अ॒स्मभ्य॑ᳪं शि॒वो भ॑व ॥ ५ ॥

इसका मे० ऋ० पु० गा० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने, हिमस्य, जरायुणा, त्वा, परिव्ययामसि, अस्मभ्यम्, पावकः, शिवः, भव) हे अग्निदेव ! हिमके जरायुवत् उत्पत्ति स्थान शैवालसे तुमको सब ओरसे वेष्टन करताहूं, हमारे निमित्त शोधक कल्याणकारी हूजिये ॥ ५ ॥

उप॒ ज्मन्नुप॑ वेत॒सेऽव॑तर न॒दीष्वा । अग्ने॑ पि॒त्त-
म॒पाम॑सि॒ मण्डू॑कि॒ ताभि॒रा ग॑हि॒ सेमं नो॑ य॒ज्ञं
पा॑व॒कव॑र्णᳪं शि॒वं कृ॑धि ॥ ६ ॥

इसका मे० ऋ० आर्षी० त्रि० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(अग्ने, ज्मन, उपावतर, वेतसे, उप, नदीषु आ, अपाम्, पित्तम् असि, मण्डूकि, ताभिः, आगहि, सा, इमम्, अस्माभिः, यज्ञम्, पावकवर्णम्, शिवं, कृधि) हे अग्ने ! पृथ्वीके ऊपर आओ वेतस शाखाको अवलम्बन करो, सब नदियोंमें शिवारको अवलम्बन करो, हे अग्ने तुम जलोंके तेजःस्वरूप हो, हे मण्डूकी ! तुम भी जलोंकी पित्तस्वरूप हो, इसकारण पूर्वोक्त जलोंके साथ आगमन करो, अर्थात् जिनका अग्नि पित्त है जिससे तुम उत्पन्न हो, जो तुम अग्निकी शान्तिके निमित्त इधर उधर लेजाईजाती हो, सो तुम इस हमारे चयन लक्षणवाले यज्ञको अग्नि की समान तेजस्वी फलदायक करो ॥ ६ ॥

अ॒पामि॒दं न्यय॑नᳪं समु॒द्रस्य॒ नि॒वेश॑नम् ।
अ॒न्याँस्ते॑ अ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तयः॑ पाव॒को अ॒स्म-
भ्य॑ᳪं शि॒वो भ॑व ॥ ७ ॥

इसका मेधा ऋ०, आर्षी० अ०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ-(इदम्, अपाम्, न्ययनम्, समुद्रस्य, निवेशनम्, ते, हेतयः अस्मत्, अन्यान्, तपन्तु, अस्मभ्यम्, पावकः, शिवः, भव) यह चितिमे

स्थित अग्निका स्थान जलोंकी प्राप्तिका साधन समुद्रका गृहरूप है हे अग्ने! आपकी ज्वाला हमारे विरोधियोंको ताप दें क्लेश दें हमारे निमित्त शोधक और कल्याणकारक हों ॥ ७ ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

इसका वसुयुर्ऋषि, आ०, गा०, छं०, अग्नि दे० है। मन्त्रार्थ-- (पावक, देव, अग्ने, रोचिषा, मन्द्रया, जिह्वया, देवान्, आवक्षि च, यक्षि) हे शोधक! देव अग्ने तुम ज्वालासमूह आहवनीयरूप और आनन्दस्वरूप होता की वाणीरूपसे स्थित तुम देवताओंको आव्हान करो और यजन करो ॥ ८ ॥

स नः पावक दीदिवोग्ने देवाꣳ इहावह। उप-
यज्ञꣳ हविश्च नः ॥ ९ ॥

इसका मेधा० ऋ०, नि०, गा० छं०, अग्नि दे०। मन्त्रार्थ (पावक, दीदिवः, अग्ने, सः, देवान्, नः, इह, आवह, च, नः हविः, यज्ञम् उप) हे शोधक! दीप्तिमान् अग्निदेव! वह तुम देवताओंको हमारे इस यज्ञमें बुलाओ और हमारी हवि यज्ञके समीप देवताओंको प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच
उषसो न भानुना। तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण
आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ १० ॥

इसका भारद्वाज ऋ० निचृ० ज० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ- (यः, पावकया, चितयन्त्या, कृपा, क्षामन्, रुरुचे, न, उषसः, भानुना, यः, ततृषाणः, अजरः, एतशस्य, यामन्, रणे, तूर्वन्, न, घृणे, नु, आ) जो अग्नि पवित्रकरनेवाला दृढ़ चयन करने वाला सामर्थ्य से पृथ्वीपर शोभाको प्राप्त होताहै, जैसे उषःकाल अपने प्रकाशसे शोभा देताहै, जो पूर्णाहुतिके पानकी इच्छा करने वाला जरारहित अग्नि गमनमें कुशल घोड़ेसे कार्य लेनेवाले युद्ध मे शत्रुओंको मारतेहुएकी समान दीप्तिसे निश्चय ही सबओर

शोभा देताहै, उस अग्निको आकर्पण करतेहैं ॥ १० ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यंᳬ
शिवो भव ॥ ११ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ०, बृ० बृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ–हे अग्ने । (ते, हरसे, शोचिषे, नमः, ते, अर्चिषे, नमः, अस्तु, ते, हेतयः, अस्मत, अन्यान्, तपन्तु, अस्मभ्यं, पावकः, शिवः भव) तुम्हारी सब रसोंको आकर्षण करनेवाली तेजःस्वरूप ज्वालाको नमस्कार है । तुम्हारे पदार्थ प्रकाशक तेजको नमस्कार हो, आप की ज्वाला हमसे दूसरोंको तपाओ, हमको शोधक कल्याणकारकहो

नृषदे वेडप्सुषदे वेड्बर्हिषदे वेड्वनसदे वेट्
स्वर्विदे वेट् ॥ १२ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं, सबका लोपामु० ऋ०, छं०, १ । ५ दै० बृ० २-३-४ दै० पं० और देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ–यह अग्नि (नृपदे वेट्, अप्सुषदे, वेट्, बर्हिषदे, वेट्, वनसदे, वेट् स्वर्विदे, वेट्) मनुष्योंमें जठराग्नि रूपसे स्थित प्राणरूप है उस की प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजातीहै, सो सम्यक रूप से गृहीत हो, जो अग्नि समुद्रादि जलके मध्यमें बड़वाग्नि रूपसे स्थितहै, उसको आहुति देतेहैं, भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि यज्ञीय कुशादिके ऊपर निवास करतेहैं, उनकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि वृक्षसमूह में दावाग्नि रूपसे स्थितहै, उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दी जाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि स्वर्लोकके प्रधान अभिज्ञ सूर्य नामसे प्रसिद्ध है उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देतेहैं, भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १२ ॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳬ संवत्सरीणमुपभागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयंपिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १३ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ०, नि० ज० छं०, प्राण देवता है। मंत्रार्थ-(ये, देवाः, अहुतादः, अस्मिन, यज्ञे, मधुनः, घृतस्य, हविषः, स्वयं, पिबन्तु, यज्ञियानां, देवानां, यज्ञियाः, सम्वत्सरीणम्, भागं उपासते) जो देवता बिना स्वाहाकार किये अन्नको भक्षण करते हैं, वे प्राणरूप देवता इस चयनरूप यज्ञमें मधु, घृत अर्थात् मधु घृत दधिरूप हविका भाग स्वयं ही स्वाहाकारके बिना पान करें जो कि यजन करनेयोग्य देवताओंके मध्यमें यज्ञयोग्य दीप्तिमान् हैं वे सम्वत्सरमें होनेवाले यज्ञके भागका सेवन करते हैं ॥ १३ ॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य। येभ्यो न ऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १४ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ०, आ० ज० छं०, प्राण दे०। मंत्रार्थ (ये, देवाः, देवेषु, अधिदेवत्वम्, आयन, ये, अस्य, पुरः, एतारः, येभ्यः, ऋते, किञ्चन, धाम, न, पवते, ते, न, दिवः, न, पृथिव्याम्, स्नुषु, अधि) प्राणादि देवताओंने इन्द्रादि देवताओंमें जो अधिप्रातुत्व प्राप्त कियाहै अर्थात् देवगणोंमें प्रधान देवत्व पाया है जो प्राण इस जीवके आगे गमन करतेहैं जिन प्राणोंके विना कोईभी शरीर चेष्टा नहीं करसकता वे प्राण न द्युलोकमें न पृथ्वी में हैं किन्तु प्रत्येक इन्द्रियमें वर्तमान हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः। अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ १५ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ०, विरा० पं०, छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(प्राणदाः, अपानदाः, व्यानदाः, वर्चोदाः, वरिवोदाः, अस्माकं, पावकः, शिवः, भव, ते, हेतयः, अस्मत्, अन्यान्, तपन्तु) हे अग्ने! तुम प्राण देनेवाले अपानदेनेवाले सर्व शरीर वर्ती व्यानवायु देनेवाले बलदाता धनके देनेवाले होओ, हमको शोधक कल्याणकारी होओ ज्वालारूप आयुध हमसे दूसरों

ताप देयँ ॥ १५ ॥

अ॒ग्निस्ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॒ यास॒द्विश्व॒न्य॒त्रिण॑म् ।
अ॒ग्निर्नो॑ वनते र॒यिम् ॥ १६ ॥

इसका भर० ऋ०, नि० गा० छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ (अग्निः, तिग्मेन, शोचिषा, विश्वं, अत्रिणं, नियासत्, अग्निः, नः, रायम् वनते) अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सम्पूर्ण यज्ञविघ्नकारी राक्षसादिको दूरकरे अग्नि हमको धनदेय ॥ १६ ॥

य इ॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि॒ जुह्व॒दृषि॒र्होता॒ न्यसी॑-
दत्पि॒ता नः॑ । स आ॒शिषा॒ द्रवि॑णमि॒च्छमा॑नः
प्र॑थम॒च्छदव॑राँ॒२ आवि॑वेश ॥ १७ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्वकर्मा ऋ०, नि० त्रि० छं० विश्वकर्मा दे० है । मंत्रार्थ- यः, ऋषिः, होता, नः, पिता, इमा, विश्वा, भुवनानि, जुह्वत् न्यषीदत्, सः, प्रथमच्छत्, आशिषा, द्रविणम्, इच्छमानः, अवरान्, आविवेश) जो अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ संहाररूप होमका कर्ता हम सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन करनेवाला है जो इन सम्पूर्ण लोकोंका संहारकर्ता हुआ स्वयं स्थित हुआ वह परमेश्वर प्रथम एक अद्वितीय रूपको छादन करता मैं बहुरूप होकर प्रकट होऊँ इस अभिलाषासे जगद्रूप धनकी इच्छा करता हुआ अभिव्यक्त उपाधिवाले मायाके विकारयुक्त जीवोंमें प्रवेश करगया ॥ १७ ॥

किस्वि॑दासीदधि॒ष्ठान॑मा॒रम्भ॑णं कत॒मत्स्वि॑त्क॒-
थासी॑त् । यतो॒ भूमिं॑ ज॒नय॑न् वि॒श्वक॑र्मा॒ वि द्यामौर्णो॑न्महि॒ना वि॒श्वच॑क्षाः ॥ १८ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, भु० पं० छं० विश्वक० देवता है । मंत्रार्थ-(स्वित्, अधिष्ठानम्, किम्, आसीत्, आरम्भणम्, कथा, कतमत्, आसीत्, यतः, विश्वचक्षाः, विश्वकर्मा, भूमिम्, द्याम् जनयन्, महिना, विऔर्णोत्) प्रश्न है कि द्यावाभूमिका निर्माण करनेमें इस परमात्माका रहनेका आश्रय क्या था ? घट

को बनानेमें मृत्तिकाकी समान उपादानकारण रूप अधिष्ठान की सामग्री, क्रिया बतानेवाली वेदवाणी क्या थी ? जिससे अतीत अनागत वर्त्तमानकालको एकसाथ देखनेवाले विश्वकर्त्ता परमात्मा ने इस विस्तृत भूलोक और द्युलोकको सृजन करके अपनी बड़ी सामर्थ्यसे विशेष आच्छन्न कियाहै, आप सर्वदर्शी भावसे सर्वत्र विराजमान हैं ॥ १८ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत
विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १९ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० ऋषि, भु०, त्रि०, छं०, विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ-(विश्वतश्चक्षुः, उत, विश्वतोमुखः, विश्वतोबाहुः उत, विश्वतस्पात्, एकः, देवः, द्यावाभूमी, जनयन्, बाहुभ्याम्, सन्धमति, पतत्रैः, सम्) सबओर नेत्रवाला और सबओर मुखवाला सबओर भुजावाला और सबओर चरणोंसे युक्त एक अद्वितीय परमात्मा द्युलोक और भूलोकको अधिष्ठानशून्य होकर प्रकट करताहुआ अपनी भुजाओंसे संयोगको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

किथंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृ-
थिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु
तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ २० ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० ऋ०, भु० त्रि० छं०, विश्वक० दे० मंत्रार्थ--प्रश्न (स्वित्, वनम्, किम्, आस, उ, सः, वृक्षः, कः, आस, यतः, द्यावापृथिवी, निष्टतक्षुः, मनीषिणः, भुवनानि, धारयन्, यत्, अध्यतिष्ठत्, तत्, मनसा, इत्, उ, पृच्छत) कहो तो वह कारणरूप वन किस प्रकारका था और वह कार्यरूप वृक्ष कौन था जिस वनवृक्षसे विश्वकर्माने स्वर्ग और पृथ्वी अलंकृत की है हे विद्वानो ! मनका निग्रहकरनेवालो सब भुवनोंको धारण करते हुए विश्वकर्माने जो स्थान अधिष्ठित किया उसको मनसे आलोचनाकर उस प्रसिद्धको पूछो ॥ २० ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षासखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ २१ ॥

इसका मु० वि० ऋ०, आर्षी त्रि० छं० विश्व० दे० । मंत्रार्थ (स्वधावः, विश्वकर्मन्, ते, या, परमाणि, या, अवमा, उत, या, मध्यमा, धामानि, इमा, धामानि, सखिभ्यः, आशिक्ष, हविषि, तन्वम्, वृधानः, स्वयम्, यजस्व) स्वधावान् बहुत अन्नसे युक्त सब जगत्के कर्त्ता ईश्वर आपके जो उत्कृष्ट जो निकृष्ट और जो मध्य श्रेणीके स्थान हैं इन ऊपर नीचे और मध्यके लोकोंको भक्त यजमानोंको सवप्रकारसे दीजिये तथा यजमानकी दीहुई हविके उपस्थित होनेमें अपने शरीरको वृद्धिको प्राप्त करते आप ही यजन कीजिये हम यजन करतेहैं यह हम कैसे कहसकतेहैं कौन मनुष्य तुमको यजन करनेको समर्थ है ! इससे मैं कहताहूँ स्वयं यजन करो ॥ २१ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् । मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ २२ ॥

इसका मु० वि० ऋ०, निचृत्रा० त्रि० छं०, विश्वक० देवता है । मंत्रार्थ-(विश्वकर्मन्, हविषा, वावृधानः, पृथिवीम्, उत, द्याम्, स्वयं, यजस्व, अभितः, अन्ये, सपत्नाः, मुह्यन्तु, इह, मघवा अस्माकं, सूरिः, अस्तु) हे परमात्मन् ! मेरे दियेहुए हविरूप अन्नसे प्रसन्नहुए आप मेरे यज्ञमें पृथिवीके आश्रित जीवोंको और द्युलोकके आश्रित जीवोंको मेरे ऊपर अनुग्रह कर स्वयं ही यजन करो, और तुम्हारे प्रसादसे सब ओरसे दूसरे शत्रु वा कामादि मोहको प्राप्त हों, इस यज्ञमें इन्द्र यज्ञद्रष्टा ब्रह्मा हमको आत्म ज्ञानके उपदेशक हों ॥ २२ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्व-

शम्भूरथंसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोर-वृद्धयम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥ २४ ॥

इन दोनोंकी व्याख्या अ० ८ मं० ४५, ४६ में होगई है॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने। यदेदन्ता अदद्दहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २५ ॥

इसका मु० वि० ऋ०, आ० त्रि० छं० वि० क० देवता है। मंत्रार्थ-(यदा, इत, पूर्वे, अन्ताः, अदहहन्त, आत्, इत्, द्यावापृथिवी, अप्रथेताम्, चक्षुषः, पिता, मनसा, धीरः, हि, एने, नम्नमाने, घृतम्, अजनयत्) जिससमय पूर्वमहर्षियोंने द्यावा भूमिके अन्तर्दिशाओंको दृढ़ किया, इसके अनन्तर ही द्यावापृथिवी विस्तार युक्त हुई तब सम्पूर्ण ज्योतिको पालन करनेवाला मनसे धीर होता ही इन नममान द्यावापृथिवी में घृतजलको उत्पन्न करताहुआ २५

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः ॥ २६ ॥

इसका मु० वि० ऋ० आर्षी त्रि० छं० विश्वक० दे०। मंत्रार्थ (यत्र, सप्त, ऋषीन्, परेण, एकम्, आहुः, विश्वकर्मा विमनाः, आत्, विहायाः, धाता, विधाता, उत, परमः, सन्दृक्, तेषाम्, इष्टानि, इषा, सम्मदन्ति) जिस लोकमें सप्त ऋषियोंको विश्वकर्माके साथ एक कहतेहैं जिनका जगन्निर्माता श्रेष्ठमन सम्पूर्ण कर्मका ज्ञाता और आकाशमें व्यापक, धारण पोषण स्थिति करने वाला सबका उत्पादक और सबसे उत्कृष्ट परमात्मा सम्यक् देखने वाला है उस लोकमें उन पुरुषोंके अभिलषित वस्तु आहुतिके रसभूत अन्नके संग आनन्दसे मोदयुक्त होकर पुष्ट होते हैं॥२६॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि

वेद् भुवनानि विश्वा । यो देवानान्नामधा एकं
एव तꣳ सम्प्रश्नम्भुवना यन्त्यन्या ॥ २७ ॥

इसका भु० वि० ऋ० निचृदा० त्रि० छं०. विश्वक० दे०
मंत्रार्थ--(यः, नः, पिता, जनिता यः, विधाता, विश्वा, धामानि,
भुवनानि, वेद, यः, एकः,देवानां,नामधाः, अन्या, भुवना, संप्रश्नं
तं, यन्ति) जो विश्वकर्मा परमेश्वर हमारा पालक उत्पादक है
जो विशेषकर धारण करनेवालाहै सम्पूर्ण स्थान और प्राणियों
को जानताहै जो एक होकर भी देवताओंके अनेक नामोंको धारण
करताहै और भक्तजन प्रश्नोत्तर करतेहुए उन परमात्मामें प्रवेश
करते हैं ॥ २७ ॥

त आयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे
जरितारो नभूना । असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते
ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ २८ ॥

इसका भु० वि० ऋ० निचृदा० त्रि० छं० विश्वकर्मा दे० ।
मंत्रार्थ (ते, जरितारः, पूर्वे, ऋषयः, अस्मै, द्रविणं, समायजन्त,
नभूना, ये, असूर्ते, सूर्ते, रजसि निषत्ते, इमानि भूतानि, सम्, अकृण्वन्)
वे स्तुतिकरनेवाले विश्वकर्माके रचे पूर्वकालीन ऋषि इस भूत
समूहको जलरूप धन सम्यक् प्रकारसे देतेहुए अधिकतासे कामना
को देतेहुए, जो ऋषी सत्रह अवयववाले लिंगशरीरोंसे भलीप्रकार
प्रेरित अन्तरिक्ष लोकमें स्थितहो इन प्राणियोंको रचते हुए २८

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसु-
रैर्यदस्ति । कꣳ स्विद्गर्भम्प्रथमन्दध्र आपो
यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥ २९ ॥

इसका भुव० वि० ऋ०, आर्षी त्रि० छं०, विश्वकर्मा दे० है ।
मंत्रार्थ--(यत्, अस्ति, दिवः, परः, एना, पृथिव्या, परः, देवेभिः,
असुरैः, परः, स्वित्, आपः, प्रथमं, कं, गर्भम्, दध्रे, कंस्वित्,
यत्र, पूर्वे, देवाः, समपश्यन्त) जो ईश्वरका तत्व हृदयकमलमें
विद्यमान है वह द्युलोकसे भी दूर अर्थात् दुर्ज्ञेय है, इस पृथ्वीसे भी

दूर है और जलोंने पहले किसके गर्भको धारण किया यह तो देखो कि उसने प्रथम जलको उत्पन्नकिया जिस समय उसको प्रथम गर्भमें धारण किया वह गर्भ कैसा आश्चर्यरूप है जहां प्रथम के देवता तथा महर्षि जगत्को देखनेहुए ॥ २९ ॥

तमिद्गर्भम्प्रथमन्दध्र आपो यत्र देवास्समगच्छन्त विश्वे। अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ३० ॥

इसका भु० वि० ऋ०, आर्षी त्रि० छं०, विश्वकर्मा देवता है। मंत्रार्थ—(आपः, प्रथमं, तमित्, गर्भं, दध्रे, यत्र, विश्वे, देवाः, समगच्छन्त, अजस्य, नाभौ, एकं, अर्पितम् यस्मिन्, विश्वानि, भुवनानि, अधितस्थुः) जलोंने पहले उसको ही गर्भ में धारणकिया क्योंकि गर्भमें सम्पूर्ण देवता एकत्र होकर वर्तते हैं उस गर्भका आधार क्या है ? जन्मरहित परमेश्वरकी नाभिस्थानीय मध्यमें एक अविभक्त अनन्यभूत किंचित् बीजगर्भरूप स्थापित किया, जिसमें सम्पूर्ण भूतसमूह स्थित हुए, अर्थात् वह सबका आश्रय है उसका कोई आश्रय नहीं है ॥ ३० ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरम्बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

इसका भु० वि० ऋ०, भु० पं० छं०, विश्वकर्मा देवता है। मंत्रार्थ-[उपदेश करतेहैं] (यः, इमा, जजान, युष्माकम्, अन्तरम्, अन्यत्, बभूव, तं, न, विदाथ, नीहारेण, च, जल्प्याः, प्रावृताः, असुतृपः उक्थशासः, चरन्ति) जिस परमात्माने इस सब जगत्को उत्पन्न कियाहै और जो अहंकारादिसे युक्त जीवोंके अन्तरमें, वास्तवमें अहंकारको छोड़नेपर जाननेयोग्य ईश्वरतत्त्व है उसको तुम नहीं जानतेहो कारण कि कुहरसदृश अज्ञानसे और मैं देवता हूँ मनुष्य हूं, यह मेरा गृहक्षेत्र है, इत्यादि असत् बातोंसे आच्छादित हुए किसिप्रकारसे हो प्राणपोषणकी चिन्तामें लगे ईश्वरतत्त्वके न वि-

चारनेवाले परलोकके भोग पानेको सकाम यज्ञोंमें स्तुति करते वे प्राणी विचरते हैं ॥ ३१ ॥

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः । तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥ ३२ ॥

इसका भु०, वि०, ऋ०, ग्रा०उ० छं०, विश्व० दे० । मंत्रार्थः ब्रह्माण्डके मध्यगणोंकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माण्डके बीचमें प्रथम (विश्वकर्मा, देवः, अजनिष्ट, आत्, इत्, द्वितीयः, गन्धर्वः, अभवत्) देवतिर्यगादि जगत्का भेद करनेवाला सत्यलोकवासी, चतुर्मुख देव प्रादुर्भूतहुआ, अर्थात् आदित्यके अनन्तर पुरुषरूपसे प्रकट हुआ अनन्तर दूसरी सृष्टिमें गन्धर्व पृथ्वीको धारण करनेवाला अग्नि अथवा गानविद्यामें चतुर देवयोनि, प्रकट हुआ (तृतीयः, ओषधीनाम्, जनिता, पिता, अपाम्, गर्भम्, पुरुत्रा, व्यदधात्) तीसरा ओषधियोंका उत्पादक पालक पर्जन्यरूप हुआ वह पर्जन्य उत्पन्न होतेही आहुतिके परिणामभूत जलोंके गर्भको बहुत प्रकारसे धारण करताहुआ ॥ ३२ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनो निमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ ३३ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ- (आशुः, शिशानः, वृषभः, न भीमः, घनाघनः, चर्षणीनाम्, क्षोभणः, संक्रन्दनः, अनिमिषः, एकवीरः, इन्द्रः, साकम्, शतꣳसेनाः अजयत्) शीघ्रगामी वज्रतीक्ष्णकारी वर्षनेके स्वभावकी उपमा वाला भयकारी शत्रुओंका अतिशय घातक मनुष्योंके क्षोभका हेतु वारंवार गर्जन करनेवाला, देवता होनेसे पलक न लगानेवाला, अत्यन्त सावधान अद्वितीय वीर इन्द्र एकसाथ ही सौ सौ शत्रु सेनाको जीतताहुआ ॥ ३३ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्य-

यनेन धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं
युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३४ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ०, विराट् त्रा० छं० इन्द्र दे० है मंत्रार्थ-
(युधः, नरः, धृष्णुना, संक्रन्दनेन, युत्कारेण, अनिमिषेण, इषुहस्तेन, जिष्णुना, दुश्च्यवनेन, वृष्णा, इन्द्रेण, तत्, जयत, तत्, सहध्वम्) हे युद्ध करनेवाले मनुष्यों ! प्रगल्भ भयरहित शब्द करनेवाले, बहुत युद्ध करनेवाले एकचित्त हाथमें बाण धारणकिए जयशील अजेय कामनाओंके वर्षानेवाले, इन्द्रके प्रभावसे उस शत्रु सेनाका जय करो और उस सेनाको वशमें करके विनष्ट करो ३४

स इषुहस्तैस्सनिषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा सयुध
इन्द्रो गणेन । सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्र-
धन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छं० इन्द्र देवता है मंत्रार्थ-
(सः, वशी, इषुहस्तैः, निषङ्गिभिः, संस्रष्टा, सः, गणेन, युधः, सः इन्द्रः, संसृष्टजित्, सोमपाः, बाहुशर्धी, उग्रधन्वा, प्रतिहिताभिः, अस्ता) वह जितेन्द्रिय बाण हाथमें लिये धनुषधारियोंसे युद्धके निमित्त संसर्ग करनेवाला वह शत्रुसमूहोंसे युद्ध करनेवाला है वह इन्द्र युद्धके निमित्त इकट्ठे हुए शत्रुओंको जीतनेवाला यजमानोंके यज्ञमें सोमपान करनेवाला बाहुओंके बलसे युक्त उत्कृष्ट धनुषवाला अपने धनुषसे छोड़ेहुए बाणोंसे शत्रुओं पर चलताहै, वह इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥ ३५ ॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्राँ२ अप-
बाधमानः । प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्न-
स्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ३६ ॥

इसका प्रतिरथ ऋ०, आर्षी त्रि० छं० बृह० दे० है । मंत्रार्थ-
(बृहस्पते, रक्षोहा, रथेन, परिदीया, अमित्रान्, अपबाधमानः, सेनाः, प्रभञ्जन्, युधा, प्रमृणः, जयन्, अस्माकं, रथानां, अविता एधि) "वाग्वै, बृहती"- वाणीके पति व्याकरणकर्त्ता होनेसे इन्द्र,

स्माकुᳫ सेना अवतु प्रयुत्सु ॥ ३९ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ०, नि० त्रि० छं० इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(अद्यः, वीरः, शतमन्युः, दुश्च्यवनः, पृतनाषाट्, अयुध्यः, इन्द्रः युत्सु, गोत्राणि, सहसा, अभिगाहमानः, अस्माकम्, सेनाः, प्रावतु) शत्रुओंपर दयारहित, विक्रान्त अनेक प्रकारके क्रोधयुक्त, जिसको कोई च्यावित न करसके अजेय संग्राममें सेनाको सहकर तिरस्कार करनेवाला जिसके संग कोई युद्ध नहीं करसकता, सो इन्द्र युद्धोंमें असुरकुलोंको एकसाथ ही विलोडित करताहुआ, हमारी सेनाकी रक्षा करे ॥ ३९ ॥

इन्द्रं आसान्नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्तीना-म्मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ०, आह्नु० छं० इन्द्रादय दे० है। मंत्रार्थ-(बृहस्पतिः, इन्द्रः, आसाम्, अभिभञ्जतीनाम्, जयन्तीनाम्, देवसेनानाम्, नेता, यज्ञः, सोमः, दक्षिणा, पुरः, एतु, मरुतः अग्रम् यन्तु) बृहस्पति इन्द्र इन शत्रुओंको मर्दन करनेवाली विजयशील देवसेनाओंके शिक्षक हैं, यज्ञपुरुष विष्णु, सोम, दक्षिणा, आगे गमन करें, गणदेवता सेनाके अग्रभागमें गमन करें ॥ ४० ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताᳫ शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानाञ्जयतामुदस्थात् ॥ ४१ ॥

इसका अप्रतिरथ ऋ०, आ० त्रि० छं०, इन्द्रादिदे० है। मंत्रार्थ (महामनसाम्, भुवनच्यवानाम्, जयतां, देवानां, आदित्यानाम्, मरुतां, वृष्णः, इन्द्रस्य, राज्ञः, वरुणस्य, उग्रम्, शर्धः, घोषः, उदस्थात्) महानुभाव, लोकनाशकसामर्थ्यवाले, विजयपानेवाले, देवता, आदित्य, मरुत, कामनाकी वर्षा करनेवाले इन्द्र और राजा वरुणको उग्रसंग्राम जयशब्द प्रकटहुआ ॥ ४१ ॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्त्वनां मामकानां

मनांᳪसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्र-
थानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥

इसका अप० ऋ० प्रा० उ० छ० इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ (मघवन्, आयुधानि, उद्धर्षय) हे इन्द्र अपने शस्त्रोंको भलीप्रकार हर्षितकरो (मामकानां, सत्वानां, मनांसि, उत्) मेरे वीरोंके मनोंको हर्षित करो (वृत्रहन्, वाजिनां, वाजिनानि, उत्) हे वृत्रनाशक ! घोड़ोंकी शीघ्रगतियोंको उत्तम करो (जयतां, रथानां, घोषाः, उद्यन्तु) विजयशील रथोंके जयघोष उच्चारण कियेजायँ ४२

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषं-
वस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्व-
स्माँ२ उ देवा अवता हवेषु ॥ ४३ ॥

इसका अप० ऋ०, त्रि० प्रा० त्रि० छ०, इन्द्रादि दे० हे मन्त्रार्थ ("ध्वजेषु, सम्भृतेषु, इन्द्रः, अस्माकम्, अस्माकम्, याः, इषवः, ताः, जयन्तु) पताकाओंसे पताकाओंके मिलनेपर इन्द्र हमारी रक्षाकरे और हमारे जो बाणहैं वह शत्रुओंको नष्टकरनेमें जयपावें (अस्माकं, वीराः, उत्तरे, भवन्तु) हमारे शूर शत्रुओंके वीरोंसे उत्तम हों (उ, देवाः, आहवेषु, अस्मान्, अवत) और देवता संग्रामोंमें हमारी रक्षा करें ॥ ४३ ॥

अमीषां चित्तम्प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे
परेहि । अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेना-
मित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥

इसका अप० ऋ०, प्रा० उ० छ०, इन्द्रादय देवता है । मन्त्रार्थ--(अप्वे, अमीषाम्, चित्तं, प्रतिलोभयन्ती, अङ्गानि, गृहाण, परेहि, अभिप्रेहि) हे शत्रुओंके प्राणोंको कष्ट देनेवाली व्याधि इन वैरियोंके चित्तको मोहित करतीहुई और वैरियोंके शरीरोंको ग्रहण करतीहुई दूर चलीजा, सब ओरसे शत्रुओंको पकड़कर चल (हृत्सु, शोकैः, निर्दह) उनके हृदयोंको शोकोंसे दग्धकर (अमित्राः, अन्धेन, तमसा, सचन्ताम्) हमारे वैरीगाढ़ अन्धकारसे व्याप्त हों ४४

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥४५॥

इसका अप्र० ऋ०, आ० अ० छ०, इषु देवता है। मंत्रार्थ (ब्रह्मसंशिते, शरव्ये, अवसृष्टा, परापत) वेदमंत्रोंसे तीक्ष्ण किये हुए हे बाणरूप ब्रह्मास्त्र ! हमारे छोड़ेहुए तुम वैरिसेनापर गिरो (अमित्रान्, गच्छ, प्रपद्यस्व) वैरियोंपर पहुँचो और उनके शरीरोंमें प्रवेश करो (अमीषां,कञ्चन, मा, उच्छिषः) इनमेंसे किसीको भी शेष न छोड़ो ॥ ४५ ॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः
सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ ४६ ॥

इसका अप्र० ऋ०, वि० आ० अ० छ०, योधा दे० है। मंत्रार्थ (नरः, प्रेत, जयत) हे हमारे वीरपुरुषों वैरिसेनाके ऊपर शीघ्र-जाओ और जय पाओ (इन्द्र, वः शर्म, यच्छतु) इन्द्र तुमको विषयरूप सुख दें (वः, बाहवः, उग्राः, सन्तु) तुम्हारे भुजदण्ड शस्त्रउठानेमें समर्थ हों (यथा, अनाधृष्याः, असथ) जिसप्रकारकि तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ ॥ ४६ ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा
स्पर्धमाना । तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी
अन्यो अन्यन्नजानन् ॥ ४७॥

इसका अप्र० ऋ०, नि० आ० त्रि० छन्द, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ-(मरुतः, या, असौ, परेषाम्,सेना, ओजसा, स्पर्धमाना, नः, आ-अभ्यैति, ताम्, अपव्रतेन, तमसा, गूहत, यथा अमी, अन्यान्यम्, न, जानन्) हे मरुत् देवताओ ! जो यह वैरियोंकी सेना बलसे ईर्षा करतीहुई हमारे सामनेको आ रहीहै, उसको अकर्मण्यभावके अन्धकारसे ढकदो कि जिसमें वह वैरिसेना के पुरुष एक दूसरे को न पहिचानें और परस्पर शस्त्र चलाकर नष्ट होजावँ ॥ ४७ ॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥

इसका अप० ऋ०, पंक्ति छ०, बृहस्पति अदिति दे० है। मंत्रार्थ (यत्र, बाणाः, विशिखाः, कुमाराः, इव, सम्पतन्ति) जिस युद्धमें वैरी के चलायेहुए बाण फैलीहुई शिखावाले बालकोंकी समान गिरते हैं (तत्र, बृहस्पतिः, अदितिः, इन्द्रः, नः शर्म, यच्छतु) उस युद्धमें बृहस्पति अदिति और इन्द्र हमको विजयसुख दें (विश्वाहा, शर्म, यच्छतु) वह सकल वैरियोंका नाशक कल्याण दें ॥ ४८ ॥

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानुवस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तन्त्वानु देवा मदन्तु ॥ ४९ ॥

इसका अप० ऋ०, त्रि०, छं० सोम वरुण देवता हैं। मंत्रार्थ (ते, मर्माणि, वर्मणा, छादयामि) पुरोहित कहताहै कि-हे यजमान! तेरे मर्मस्थानोंको कवचसे ढकताहूँ (राजा, सोमः, त्वा, अमृतेन, अनुवस्ताम्) ब्राह्मणोंका राजा सोम तुझको मृत्युको हटानेवाले कवचसे आच्छादन करै (वरुणः, ते, उरोः, वरीयः, कृणोतु) वरुण तेरे कवचको बडेसे बड़ा करे (देवाः, जयन्तम्, त्वा, अनुमदन्तु) अन्य देवता विजय पातेहुए तुझको उत्साहित करें ॥ ४९ ॥

उदेनमुत्तरान्नयाग्ने घृतेनाहुत। रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ ५० ॥

इसका अप० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(घृतेन आहुत, अग्ने, एनम्, उत्तराम्, नय) होम करताहुआ कहै कि-हे घृतसे तृप्त अग्ने! इस यजमानको ऐश्वर्य वा मनकी उत्तमता पर पहुँचाओ (रायस्पोषेण, संसृज) धनकी पुष्टिसे युक्त करो (च, प्रजया, बहुम्, कृधि) और पुत्रपौत्र आदि सन्तानसे बहुत कुटुम्ब-वाला करो ॥ ५० ॥

इन्द्रेमम्प्रतरान्नय सजातानामसद्वशी। समेनं

वर्चसा सृज देवानांम्भागदा असत् ॥ ५१ ॥

इसका अग० ऋ०, अनु० छं०, इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ (इन्द्र, इमम्, प्रतराम्, नय) हे इन्द्र ! इस यजमानको बड़े ऐश्वर्य पर पहुंचाओ (सजातानां, वशी, असत्) ज्ञातिवालोंको वशमें करनेवाला हो (एनम्, वर्चसा, संसृज) इसको तेजसे संयुक्त करो (देवानाम्, भागदा, असत्) देवताओंको भाग देनेवाला हो ५१

यस्य कुर्मो गृहे हुविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम्। तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयञ्च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

इसका अग० ऋ०, अनु० छं०, लिङ्गोक्त दे० है। मंत्रार्थ— (अग्ने, यस्य, गृहे, हविः, कुर्मः, तम्, त्वम्, वर्धय) हे अग्निदेव ! जिसके घरमें पुरोडाशका हवि करते हैं, उस यजमानको तुम बढ़ाओ (देवाः, तस्मै, अधिब्रुवन्) देवता उस यजमानको सब से अधिक कहैं (अयं, ब्रह्मणः, पतिः, च) यह यजमान वैदिक कर्मका स्वामीभी हो ॥ ५२ ॥

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः। स नो भव शिवस्त्वᳬ सुप्रतीको विभावसुः ॥५३॥

इसकी व्याख्या १२ वें अध्यायके ३१ वें मंत्रमें होगई ॥५३॥

पञ्च दिशो दैवीर्य्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिन्दुर्मतिम्बाधमानाः। रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥ ५४ ॥

इसका अग० ऋ०, त्रि० छं०, दिक् दे० है। मंत्रार्थ-(दैवीः, पञ्च, देवीः, दिशः, अमतिम्, दुर्मतिम्, अपबाधमानाः, रायस्पोषे यज्ञपतिम्, आभजन्तीः, यज्ञम्, अवन्तु) इन्द्र, यम, वरुण, सोम और ब्रह्मासे सम्बन्ध रखनेवाली, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्य यह पाँच दिशाएं हमारी बुद्धिकी मन्दता और पापबुद्धिको नष्ट करतीहुई और धनकी पुष्टिमें यजमानको भागी करतीहुई, हमारे यज्ञकी रक्षा करैं (यज्ञः, रायः, पोषे, अधि, अस्थात्) हमारा यज्ञ धनकी पुष्टिमें अधिक वृद्धि पावै ॥ ५४ ॥

समिद्धे अग्नावधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीत । तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

इसका अथ० ऋ०, त्रि० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(देवाः, यत्, तप्तम्, घर्मम्, परिगृह्य, यज्ञम्, अयजन्त, ऊर्जा, अयजन्त, ईड्यः, उक्थपत्रः, गृभीतः, मामहानः, अग्नौ, समिद्धे, अधि) ब्रह्मा आदिके स्थानमें वरण किये हुए अध्वर्यु आदि जब प्रज्वलित [१७ वें अध्यायमें वर्णित] प्रवर्ग्यको ग्रहण करके यज्ञपुरुषका पूजन करते हैं और जब हविरूप अन्नसे यजन करते हैं तब स्तुति के योग्य यज्ञ उक्थ शस्त्रवाला यज्ञपात्र होता है, देवताओंका परमपूजक यजमान अग्निके प्रज्वलित होनेपर तेजस्वी होता है ॥ ५५ ॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः । परिगृह्य देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥ ५६ ॥

इसका अथ० ऋ०, बृह० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(देवश्रीः, श्रीमनाः, शतपयाः, दैव्याय, धर्त्रे, जोष्ट्रे) हवि देनेके द्वारा देवताओंकी सेवा करनेवाला, यजमानमें मन रखनेवाला, भक्तोंको धन देनेके निमित्त मन करनेवाला दूध आदि सैंकड़ों प्रकारकी सामग्रीवाला यज्ञ देवताओंके हितकारी वर्षा आदिके द्वारा वा यज्ञके द्वारा जगत्‌का रक्षक हमारी दीहुई प्रीतिपर हविको स्वीकार करनेवाले अग्निक निमित्त होता है (देवाः परिगृह्य, यज्ञम्, आयन्) ऋत्विज् उस अग्निको पाकर यज्ञको प्राप्त करते हैं (देवाः, देवेभ्यः, अध्वर्यन्तः अस्थुः) दीप्तिमान् ऋत्विज् देवताओंके निमित्त यज्ञ करनेकी इच्छासे स्थित होते हैं ५६

वीतᳬ हविः शमितᳬ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति । ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥

इसका अथ० ऋ०, बृह० छ०, हविर्यज्ञ देवता है । मंत्रार्थ-

(तुरीयः, यज्ञः, यत्र, हव्यम्, वीतं, शमिता, यजध्यै, शमितं, हविः, एति, ततः, आशिषः, वाका, नः, जुषन्ताम्) चौथा यज्ञ, जिसमें हवनयोग्य देवताओंके प्रिय और परमशान्तरूप अध्वर्यु के द्वारा हवनकर्म के निमित्त संस्कार किया हुआ हवि प्राप्त होता है, इससेमें यज्ञसे उठेहुए अभीष्ट अर्थके कहनेवाले तीनों वेदोंके वचन हमको फलीभूत हों ॥ ५७ ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुद्-यान् अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ ५८ ॥

इसका अप्र० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (सूर्य-रश्मिः, हरिकेशः, सविता, ज्योतिः, पुरस्तात्, उदयान्) सूर्य जिस की किरण हैं, कनकवर्ण ज्वालारूप केशवाला, प्राणियोंको अपने २ व्यापारमें लगानेवाला ज्योतिरूप अग्नि पूर्व दिशासे प्रकट होताहै (गोपाः, विद्वान्, पूषा, तस्य, प्रसवे, विश्वा, भुवनानि, सम्पश्यन्, अजस्रम्, याति) धर्मरक्षक विद्वान् सूर्य उस प्रत्यग्ज्योति की आज्ञामें रहकर सकल भुवनोंको देखताहुआ निरन्तर चलताहै ५८

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् । स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरञ्च केतुः ॥ ५९ ॥

इसका विश्वावसु ऋ०, त्रि० छ०, आदित्य दे० है । मंत्रार्थ- (एषः, विमानः, दिवः, मध्ये, आस्ते) यह जगतको रचनेकी शक्तिवाला सूर्य स्वर्गके मध्यमें स्थितहै (रोदसी, अन्तरिक्षं, आपप्रिवान्, सः, विश्वाचीः, घृताचीः, अभिचष्टे) पृथिवी स्वर्ग और अन्तरिक्षको सब ओर तेजसे परिपूर्ण करताहुआ वह सूर्य वेदी और स्रुचेको देखताहै (पूर्वं, अपरं, अन्तरा, केतुः, च) इस लोक और अन्य लोकोंमें स्थित मनुष्योंके चित्तको भी जानताहै ५९

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिम्पितु-राविवेश । मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा

विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ६० ॥

इसका अम० ऋ०, त्रि० छ०, आदित्य दे० है। मंत्रार्थ (उक्षा, समुद्रः, अरुणः, सुपर्णः, दिवः, मध्ये, निहितः, पृश्निः, अरुणः, पूर्वस्य, पितुः, योनिं, आविवेश, विचक्रमे) वर्षासे सींचनेवाले, ओससे गीला करनेवाले, आकाशमें व्याप्त, श्रेष्ठ गतिवाले, द्युलोकमें स्थित, विचित्रवर्ण अनेकों प्रकारकी किरणोंसे व्याप्त उदयके समय अरुणवर्ण सूर्यने पूर्वदिशाके विषै स्वर्गस्थान में प्रवेश किया और विचरण किया (रजसः, अन्तौ, पाति) वह ब्रह्माण्डकी सब ओरसे रक्षा करता है ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसङ्गिरः। रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० १२ मं० ५६ में होचुकी ॥ ६१ ॥

देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत्। यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ आ च वक्षत् ॥ ६२ ॥

इसका विधृति ऋ०, अनु० छ०, यज्ञ दे० है। मंत्रार्थ (देवहूः, यज्ञः, आवक्षत् च, यक्षत्,) देवताओंको बुलानेवाला यज्ञ देवताओंको बुलावे और यजन करे (सुम्नहूः, यज्ञः, आवक्षत्) धन पुत्र आदि सकल सुखोंको प्रकट करनेवाला यज्ञ देवताओंको बुलावे (च, देवः, अग्निः, देवान्, आवक्षत्, च) और देवता अग्नि देवताओंको आव्हान करे और यजन करे ॥ ६२ ॥

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत्। अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ अकः ॥ ६३ ॥

इसका विधृति ऋ० अनु० छ०, इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ (इन्द्रः, वाजस्य, प्रसवः, उद्ग्राभेण, मा, उदग्रभीत्) इन्द्र अन्नकी उत्पत्ति और दानके द्वारा मुझको अनुगृहीत करे (अधा, निग्राभेण, मे, सपत्नान्, अधरान्, अकः) और मेरे शत्रुओंको माँगनेकी इच्छा से नीचा करो ॥ ६३ ॥

उद्ग्राभञ्च निग्राभञ्च ब्रह्म देवा अवीवृधन्।

अथां सपत्नांनिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ६४

इसका विधृति ऋ०, अनु० छ०, इन्द्राग्नी दे० है। मंत्रार्थ--(देवाः, उद्ग्राभं, च, निग्राभं, च, ब्रह्म, अवीवृधन्,) देवता हमको बड़ाई और हमारे शत्रुओंको निन्दा और यज्ञसाधक वेदों-को वृद्धि दें (अथ, इन्द्राग्नी, मे, सपत्नान्, विषूचीनान्, व्यस्यताम्) और इन्द्र तथा अग्नि देवता मेरे शत्रुओंको अनेकगतिवाला करके विनष्ट करदें ॥ ६४ ॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ ६५ ॥

इसका विधृ ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ--(उख्यं हस्तेषु बिभ्रतः, अग्निना, नाकं, क्रमध्वम्) हे ऋत्विजो! उखा-पात्रमें संस्कार कीहुई अग्निको हाथोंपर धारण करते चित्य अग्नि के साथ स्वर्गलोकको जाओ (दिवः, पृष्ठम्, स्वः, गत्वा, देवेभिः मिश्राः, आध्वम्) स्वर्गके ऊपर महलोकमें जाकर देवताओंके साथ होकर स्थित होओ ॥ ६५ ॥

प्राचीमनु प्रदिशम्प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अ-ग्निर्भवेह। विश्वा आशा दीद्यानो विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

इसका विधृ० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ--(अग्ने, विद्वान्, प्राचीम्, प्रदिशं अनु प्रेहि) हे उखापात्रमें स्थित अग्ने! अपने अधिकारको जाननेवाले तुम श्रेष्ठ दिशाकी ओरको ध्यान देकर जाओ (इह, अग्नेः, पुरः, भव) यहाँ अग्निके अग्रगामी बनो (विश्वाः, आशाः, दीद्यानः, विभाहि) सकल दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए विशेष प्रदीप्त होओ (नः, द्विपदे, चतुष्पदे, ऊर्जं, धेहि) हमारे पुत्रादि परिवार और गौ आदि पशुओं को अन्न दो ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमा-रुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ६७

इसका विधृ० ऋ०, पिपीलिकामध्या बृहती छं०, अग्नि दे० है, मन्त्रार्थ-(अहं, पृथिव्याः, अन्तरिक्षं, आरुहम्) मैं यजमान पृथ्वीसे ऊँचा होताहुआ अन्तरिक्षपर चढ़ा हूँ (अन्तरिक्षात्, दिवं, आरुहम्) अन्तरिक्षसे ऊपर स्वर्गलोकमें चढ़गया हूँ, (अहं, दिवः, नाकः, पृष्ठात्, स्वः, ज्योतिः, अगाम्) मैं स्वर्गके दुःखरहित स्थानसे ऊपर सूर्यमण्डलको प्राप्त हुआ हूँ ॥ ६७ ॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥ ६८॥

इसका विधृ० ऋ०, अनु० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(ये, सुविद्वांसः, विश्वतोधारम्, यज्ञम्, वितेनिरे, रोदसी, द्याम्, आरोहन्ति, स्वर्यन्तः, नः, अपेक्षन्ते) जो भक्तिज्ञानसे सम्पन्न योगीजन सब जगत्को धारण करनेवाले यज्ञको करते हैं, जरा मृत्यु शोक आदिको रोकनेवाले स्वर्गपर चढ़ते हैं और स्वर्गमें गमन करतेहुए कृतकृत्य होनेसे पुत्र पौत्रादिकी अपेक्षा नहीं करते हैं ॥ ६८ ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत म-
र्त्यानाम् । इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्व-
र्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥

इसका विधृ० ऋ०, त्रि० छं०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ-(अग्ने, देवयतां, प्रथमः, देवानां, उत, मर्त्यानाम्, चक्षुः, प्रेहि (हे अग्ने! तुम देवताओंके चाहनेवाले यजमानोंमें मुख्य हो तथा देवता और मनुष्योंके चक्षुरूप हो इसकारण आओ (इयक्षमाणाः, भृगुभिः, सजोषाः, यजमानाः, स्वस्ति, स्वः, यन्तु) यज्ञ करनेकी इच्छा वाले और महात्मा ब्राह्मणोंके साथ प्रीति करनेवाले यजमान कल्याण पूर्वक स्वर्गलोकको जायँ ॥ ६९ ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬं
समीची । द्यावा क्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति
देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या ११ वें अ० के २ मंत्रमें होगई ॥ ७० ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतन्ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥ ७१ ॥

इसका विघृ० ऋ०, त्रि० पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(सहस्राक्ष, शतमूर्धन, अग्ने, ते, शतं, प्राणाः, सहस्रं, व्यानाः, त्वं, सहस्रस्य, रायः, ईशिषे) हे अनन्तनेत्र और अनन्तमूर्धावाले अग्ने ! आपके सैकड़ों प्राण हैं सहस्रों व्यान हैं, तुम अनन्त धन के स्वामी हो (तस्मै, ते, वाजाय, विधेम, स्वाहा) ऐसे यज्ञस्वरूप आपको हम हवि देतेहैं श्रेष्ठ होम हो ॥ ७१ ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशऽउद्दृꣳह ॥ ७२ ॥

इसका विघृ० ऋ०, पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(सुपर्णः गरुत्मान्, असि) हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ परोंवाले पक्षीरूप हो (पृथिव्याः, पृष्ठे, सीद) पृथ्वीके ऊपर स्थित होओ (भासा, अन्तरिक्षं, आपृण) कान्तिसे अन्तरिक्षको पूर्ण करो (ज्योतिषा, दिवं, उत्तभान) अपनी ज्योतिसे द्युलोकको ऊँचा ठहराओ (तेजसा, दिशः, उद्दृꣳह)अपने तेजसे दिशाओंको दृढ़ वा दीप्त करो७२

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ७३ ॥

इसका विघृ० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(अग्ने, आजुह्वानः, सुप्रतीकः, पुरस्तात्, स्वं, साधुया, योनिं, आसीद) हे अग्ने ! आवाहन कियेहुए तुम प्रसन्नमुख होकर पूर्व दिशामें अपने श्रेष्ठ स्थानपर स्थित हूजिये (विश्वेदेवाः, यजमानः च, अस्मिन्, उत्तरस्मिन्, सधस्थे, अधिसीदत) हे विश्वेदेवाओ तुम और यजमान इस परमश्रेष्ठ अग्निके साथ उत्तम स्थानरूप यज्ञ

शालामें स्थित होओ ॥ ७३ ॥

ताᳬ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬ सहस्रधाराम्पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥

इसका कण्व ऋ०, त्रि० छ०, सविता दे० है। मंत्रार्थ--(वरेण्यस्य, सवितुः, तां, चित्रां, विश्वजन्यां, सुमतिं, अहं, आवृणे) प्रार्थनायोग्य प्रेरक ईश्वरकी, उस अनेकप्रकारके फल देनेमें समर्थ सर्वहितकारिणी श्रेष्ठ बुद्धिको मैं स्वीकार करताहूँ (कण्वः, अस्य, यां, प्रपीनां, सहस्रधारा, पयसां, महीं, गां, अदुहत्) ज्ञानीने इस प्रेरक परमात्माकी जिस अतिपुष्ट अनन्तधारावाली अमृतद्वारा सर्व सिद्धि देनेवाली बुद्धिको दुहा ॥ ७४ ॥

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे । यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तम्प्र त्वे हवीᳬषि जुहुरे समिद्धे ॥ ७५ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि०छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(अग्ने, परमे, जन्मन, ते, विधेम) हे अग्ने ! परमोत्तम जन्मवाले स्वर्गमें तुम्हारे निमित्त हवि देतेहैं (अवरे, सधस्थे, स्तोमैः, विधेम) उससे नीचे अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे स्थितको स्तोत्र पढ़कर हवि देते हैं (यस्मात्, योनेः, उदारिथ, तं, यजे) क्योंकि तुम इष्टका चितिरूप स्थानमें प्रकट हुए हो उन आपको मैं पूजताहूं (समिद्धे, त्वे, हवींषि, जुहुरे) और इसी कारण भलीप्रकार प्रज्वलित तुम्हारे विषैं ऋत्विज हवियोंको होमते हैं ॥ ७५ ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वᳬ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, वि० अ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(यविष्ठ, अग्ने, अजस्रया, सूर्म्या, प्रेद्धः, नः, पुरः, दीदिहि) हे अतितरुण अग्निदेव ! अखण्ड लाटोंवाली ज्वालासे अत्यन्त प्रकाशवान् तुम, हमारे आगे प्रदीप्त होओ (शश्वन्तः, वाजाः, त्वाम्

उपयन्ति) निरन्तर होनेवाले अन्नरूप हवि तुमको अर्पित होते हैं ७६

अग्ने तमुद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भुद्रᳪ हृद्दिस्पृशम् । ऋध्यामा तु ओहैः ॥ ७७ ॥

इसकी व्याख्या १५ वें अध्यायके ४४ मंत्रमें होगई ॥ ७७ ॥

चित्तिञ्जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यᳪ हविः ॥ ७८ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, अतिजगती छं०, विश्वकर्मा दे० है मंत्रार्थ-(मनसा, घृतेन, चित्तिं, जुहोमि) मन लगाकर घृतके द्वारा इस चितिमें स्थित अग्निको आहुति देकर प्रसन्न करता हूँ (यथा, इह, वीतहोत्राः, ऋतावृधः, देवाः, आगमन) जिसप्रकार इस यज्ञ में आहुतिकी अभिलाषावाले सत्य वा यज्ञके वृद्धिकर्त्ता देवता प्रकट हों (विश्वाहा, भूमनः, विश्वस्य, पत्ये, विश्वकर्मणे, अदाभ्यम्, हविः, जुहोमि) सकल दिनोंमें महान् जगत्के जगदुत्पादकके निमित्त स्वादयुक्त हवि देता हूँ ॥ ७८ ॥

सुप्त ते अग्ने सुमिधः सुप्त जिह्वाः सुप्त ऋषयः सुप्त धाम प्रियाणि । सुप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सुप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥

इसका सप्तर्षि ऋ०, त्रि०, छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-(अग्ने सप्त, समिधः) हे अग्ने ! आपकी शमी आदि सात समिधा हैं (सप्त, जिह्वाः) सात ज्वालारूप जिह्वा हैं (सप्त, ऋषयः) सात ऋषि हैं (सप्त, प्रियाणि, धाम) सात गायत्री आदि छन्द रूप प्रियधाम हैं (सप्त, होत्राः, त्वा, सप्तधा, यजन्ति) सात होता तुमको अग्निष्टोम आदि सात प्रकारके यज्ञोंसे पूजते हैं (सप्त, योनीः, घृतेन, आपृणस्व, स्वाहा) तुम सात चितियोंको घृतसे पूर्ण करो, श्रेष्ठ होम हो ॥ ७९ ॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सुत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च शुक्रश्च ऋतुपाश्चात्यᳪहाः ॥ ८० ॥

इसका सप्तर्षि ऋ०, उष्णिक् छं०, मरुत् देवता । मंत्रार्थ—(शुक्रज्योतिः, च, चित्रज्योतिः, च, सत्यज्योतिः, च, ज्योतिष्मान् च, शुक्रः, च, ऋतपाः, च, अत्यंहाः) शुद्ध तेजस्वी, विविध ज्योतिवाले, सत्यप्रकाशमय, ज्योतिवाले दीप्तिमान् सत्य वा यज्ञ की रक्षा करनेवाले और पापोंसे रहित मरुद्गण हमारे यज्ञमें आवैं

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मि-
तश्च सम्मितश्च सभराः ॥ ८१ ॥

इसका सप्तर्षि ऋ०, गाय० छं०, मरुत् दे० है । मन्त्रार्थ—(ईदृङ्, च, अन्यादृङ्, च, सदृङ्, प्रतिसदृङ्, च मितः, च, संमितः च, सभराः) इस पुरोडाशको ग्रहण करनेवाले और दूसरे पुरोडाश को देखनेवाले, समानदृष्टि और प्रत्येकको समान देखनेवाले और मानको प्राप्त और सम्यक् एकीभावसे मानको प्राप्त और समान भावको धारण करनेवाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥८१॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्त्ता च वि-
धर्त्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि ऊपरके मंत्रके समान हैं। मंत्रार्थ-(ऋतः, च, सत्यः, च, ध्रुवः, च, धरुणः, च, धर्त्ता, च, विधर्त्ता, च, विधारयः) सत्यस्वरूप, सत्वस्तुमें प्रकट और स्थिर तथा धारणकर्ता, धर्ता और विशेष धारणकरनेवाले और विविधप्रकारसे धारण करने-वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८२ ॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च ।
अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥

इसका सप्त० ऋ०, उष्णि० छ०, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ (ऋतजित्, च, सत्यजित्, च, सेनजित्, च, सुषेणः, च, अन्तिमित्रः, च, दूरेमित्रः, च, गणः) यज्ञको जीतनेवाले और सत्यको जीतने-वाले एवं शत्रुसेनाको जीतनेवाले और श्रेष्ठ सेनावाले मित्रोंके समीप रहनेवाले और शत्रुओंसे दूर रहनेवाले और सबको गिनने-वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८३ ॥

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊषुणः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन। मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन्॥ ८४॥

इसका सप्त० ऋ०, जगती छं०, मरु० दे० है। मंत्रार्थ—(ईदृक्षासः, उ, एतादृक्षासः, उ, सदृक्षासः उ, प्रतिसदृक्षासः, न, मितासः, उ, सम्मितासः, उ, सभरसः, मरुतः, अद्य, नः, अस्मिन् यज्ञे, एतन) इस लक्षणको देखनेवाले और इसप्रकारके देखनेवाले और भली प्रकार देखनेवाले और समान देखनेवाले और प्रत्येक को देखनेवाले और प्रमाणयुक्त और इकठेहोकर प्रमाण करनेवाले आदरपानेवाले मरुत् देवता आज हमारे इस यज्ञमें आवें॥ ८४॥

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च। क्रीडी च शाकी चोज्जेषी॥ ८५॥

इसका सप्तऋ०, स्वराड्गा० छं०, मरु० दे० है। मंत्रार्थ (स्वतवान्, च, प्रघासी, च, सान्तपनः, च, गृहमेधी च, क्रीडी, च, शाकी, च, उज्जेषी) स्वाधीनबलयुक्त औरपुरोडाश भक्षण करनेवाले और शत्रुओंको ताप देनेवाले और गृहधर्मसे युक्त और सदा क्रीडा करनेवाले और समर्थ और सदा जयशील मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवें॥ ८५॥

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा॥

यह निगुप्त नामक मंत्र अध्याय ३९ का ७ वां मंत्र है, प्रसङ्गवश इसकी व्याख्याभी यहाँ कीजातीहै। मंत्रार्थ—(उग्रः, च, *भीमः, च, ध्वान्तः, च, धुनिः, च, सासह्वान्, च, अभियुग्वा,* स्वाहा) उत्कृष्ट और भयंकर और शत्रुओंको अन्धाकरनेवाले और शत्रुओंको कँपानेवाले और शत्रुओंको हरानेवाले और भक्तोंको सुख देनेवाले और शत्रुओंको हटानेवाले इन मरुत्गणोंको आहुति दीजातीहै श्रेष्ठ होम हो॥

इन्द्रन्दैवीर्विशो मरुतोनुवर्त्मानोभवन्यथेन्द्र-

न्दैवीर्विशो मरुतोनुवर्त्मानोभवन् । एवमिमं यजमानन्दैवींश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

इसका सप्त० ऋ० शक्वरी छ०, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ (दैवीः, मरुतः, विशः, इन्द्रम्, अनुवर्त्मानः, अभवन्) देवसम्बन्धी मरुद्रूप प्रजा इन्द्रकी अनुगामिनी हुई (यथा, दैवीः, मरुतः, विशः, इन्द्रं, अनुवर्त्मानः, अभवन्, एवं, दैवीः, च, मानुषीः, च, विशः, इमं, यजमानं, अनुवर्त्मानः, भवन्तु) जिसप्रकार देवसम्बन्धी मरुद्रूप प्रजा इन्द्र की अनुगामिनीहुई इसीप्रकार देवलोक और मनुष्यलोककी प्रजा इस यजमानकी अनुगामिनी हो ॥ ८६ ॥

इमᳪ स्तनमूर्जस्वन्तन्धयापाम्प्रपीनमग्ने सरिरस्य मद्ध्ये । उत्सञ्जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियᳪ सदनमाविशस्व ॥ ८७ ॥

इसका सप्त० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने, सरिरस्य, मध्ये, इमं, ऊर्जस्वन्तं, अपां, प्रपीनं, स्तनम्, धय) हे अग्ने ! भूलोकके मध्यमें वर्तमान तुम, इस श्रेष्ठरसवाले घृतधाराओंसे पूर्ण कुकुरूप स्तनको पियो (अर्वन्, मधुमन्तं, उत्सं जुषस्व) हे सब ओर गमन करनेवाले अग्ने ! मधुरस्वादवाले घृतसे युक्त स्रुकरूप कूपको सेवन करो (समुद्रियं, सदनं, आविशस्व) चयनयागवाले घरमें प्रवेश करो ॥ ८७ ॥

घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम । अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(घृतम् मिमिक्षे) मैं घृतको अग्निके मुखमें सींचना चाहता हूँ (घृतं, अस्य, योनिः) घृत इस अग्निका उत्पत्तिस्थान है (घृते, श्रितः) घृतमें आश्रित है (घृतं, उ, अस्य, धाम) घृत ही इसको तेज करनेवाला है (अनुष्वधं, आवह, मादयस्व) हे अध्वर्यु ! हविका

संस्कार करनेके अनन्तर अग्निका आवाहन करो सुम्रकरो (वृषभ, स्वाहाकृतं, हविः, वह्नि) और कहो कि-हे कामनाओंको पूर्ण करनेवाले! स्वाहा कहकर होमा हुआ हवि देवताओंको प्राप्त कराओ॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ उदारदुपाᳬशुना सममृतत्वमानट्। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥ ८९॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(मधुमान्, ऊर्मिः, समुद्रात्, उदारत्) मधुररसवाली तरंग घृतरूप समुद्रसे उठी (अंशुना, सम्, अमृतत्वम् उपानट्) फिर प्राणभूत अग्निके साथ मिलकर अमृतत्वको प्राप्तहुई (यत्, घृतस्य, गुह्यं, नाम, देवानां, जिह्वा) जो उस घृतका गुप्तनाम श्रुतिमें पढाहै, वह देवताओंकी जिह्वा है (अमृतस्य, नाभिः, अस्ति) अमृतकी नाभि है अर्थात् जो घी खाताहै वह दीर्घायु होताहै॥ ८९॥

वयन्नाम प्रब्रवामाघृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः। उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानञ्चतुःशृङ्गोवमीद्गौर एतत्॥ ९०॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(वयम् अस्मिन्, यज्ञे, घृतस्य, नाम, प्रब्रवाम) हम इस यज्ञमें घृतका नाम लेकर स्तुति करतेहैं, क्योंकि-घृत देवताओंको प्याराहै (नमोभिः, धारयामः) अन्नोंके द्वारा यज्ञको धारण करतेहैं (ब्रह्मा, शस्यमानं, उपशृणवत्) ब्रह्मा नामधारी ऋत्विक् स्तुति कियेजाते हुए घृतके नामको सुने (चतुःशृङ्गः, गौरः, एतत्, अवमीत्) चार होता वाला गौरवर्ण यह घृत आहुतिके परिणामसे यज्ञफल को प्रकट करताहै॥ ९०॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ आविवेश॥ ९१॥

इसका वामदेव ऋ०, विराट् आर्षी त्रि० छ०, यज्ञपुरुष देवता।

काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(घृतस्य, यह्वाः, धाराः, पतयन्ति) घृतकी बड़ी २ धाराएं सुवेसे गिरतीहैं (सिन्धोः, शूघनासः, वातप्रमियः, प्राध्वने, इव) जैसे कि-नदकी शीघ्रगमनवाली पवनसे चलायमान तरङ्गें विषमस्थानमें पड़तीहैं (काष्ठाः, भिन्दन् ऊर्मिभिः, पिन्वमानः, अरुषः, वाजी, न) जैसे कि-संग्रामकीदिशाओंको विदीर्ण करताहुआ संग्रामभेदनके श्रमसे निकलेहुए पसीनोंसे पृथ्वीको सींचताहुआ क्रोधरहित उत्तम घोड़ा गमनकरताहै ।९५॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाःकल्याण्यः स्मयमाना सो अग्निम् । घृतस्य धाराःसमिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ९६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(घृतस्य,धाराः,समनाः कल्याण्यः, स्मयमानाः, योषाः, इव, अग्निं, अभिप्रवन्त) घृतकी धाराएं, समान मनवाली रूपयौवनसम्पन्न मुसकुराती हुई स्त्रियोंकी समान अग्निके प्रति गमन करतीहैं (ताः,समिधः, नसन्त) वह धाराएं अग्निको दीप्तकरनेवाली अग्निको व्याप्तकरतीहैं (जातवेदाः, जुषाणः, हर्यति) प्रज्ञावाला अग्नि प्रसन्न होकर उन धाराओं की इच्छा करताहै ॥ ९६ ॥

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभितत्पवन्ते ॥ ९७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(यत्र, सोमः, सूयते, यत्र, यज्ञः) जहां सोमका अभिषव होताहै, जहां सौत्रामणि आदि यज्ञ होता है (तत्, उ, घृतस्य, धाराः, अभिचाकशीमि) तहां ही घृतकी धाराएं जातीहुई देखताहूँ (इव, अञ्जि, अञ्जानाः, कन्याः, वहतुं, एतवै, पवन्ते) जैसे कि सुन्दर रूपवती वा ऋतुधर्मको प्रकट करतीहुई कन्याएं पतिके समीप प्राप्त होनेको गमन करतीहैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिङ्गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रवि-

णानि धत्त । इमं युज्ञन्नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

इसका वाम०, त्रि० छ०, देवा दे० है । मंत्रार्थ-(सुष्टुतिं, गव्यं, भाजि, अभ्यर्षत) हे देवताओ ! श्रेष्ठ स्तुतिवाले घृतयुक्त यज्ञमें आगमन करो (घृतस्य, धाराः, मधुमत्, पवन्ते) जहां घृतकी धाराएं मधुरस्वादवाली गिरतीहैं (नः, इमं, यज्ञं, देवता, नयत) हमारे इस यज्ञको देवलोकमें पहुँचाओ (अस्मासु भद्राः, द्रविणानि, धत्त) हमारे यहां कल्याण और अनेकों प्रकारके धनोंको स्थापन करो ॥ ९८ ॥

धामन्ते विश्वम्भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्युन्तरायुषि । अपामनीके समिथे य आभृतुस्तमश्याम मधुमन्तन्त ऊर्मिम् ॥ ९९ ॥

इसका वाम० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(समुद्रे, हृदि, अन्तरायुषि, विश्वम्, भुवनम्, ते, धामन्, अधिश्रितम्) हे अग्ने ! जो समुद्र में हृदयमें तथा आयुमें अर्थात् ब्रह्माके जीवनपर्यन्त जितने प्राणिसमूह हैं वह सब तुम्हारी विभूति का आश्रय करके स्थित हैं (यः, ऊर्मिः, समिथे, अपां, अनीके, आभृतः, तं, मधुमन्तं, ते, ऊर्मिम्, अश्याम) जो घृतकी तरंग असुरोंसे युद्ध करके जलोंके भीतरसे लाईगई आपकी कृपासे उस रसयुक्त तुम्हारी तरंगको भक्षण करूँ अर्थात् हमको देवभाव प्राप्त हो ९९

इति यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका भाषानुवाद सहित सप्तदश अध्याय समाप्त.

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

सत्रहवें अध्यायमें चिति आरोहण आदि के मंत्र कहे अब अठारहवें अध्यायमें वसोर्धारादि मंत्र कहे जायँगे । यहाँ से २९ कण्डिकापर्यन्त के मंत्रोंको पढ़ताहुआ बड़े स्रुवे में घृत लेकर निरन्तर धारापातसे छोड़ताहुआ हवन करे, इसी को वसोर्धारा कहतेहैं

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च

मेधीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

इसका देवा० ऋ०, शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ(यज्ञेन, मे, वाजः, कल्पन्ताम्, च, मे, प्रसवः, च, मे, प्रयतिः, च, मे, प्रसितिः, च) इस यज्ञके फलसे देवता मेरे निमित्त अन्नको सिद्ध करें अर्थात् दें और मुझको देने और भोजन करानेकी आज्ञाभी दें मुझको शुद्धि भी मुझको अन्नकी उत्कण्ठा भी दें (च, मे, धीतिः, च, मे, क्रतुः, च, मे, स्वरः, च, मे, श्लोकः) मेरे निमित्त ध्यान विचार और मुझको श्रेष्ठ संकल्प वा यज्ञ भी और मुझको सुन्दरशब्द और स्तुति भी दें (च मे, श्रवः, च, मे, श्रुतिः, च, मे, ज्योतिः, च, मे, स्वः) मुझको वेदमंत्रोंके श्रवणकी सामर्थ्य और मुझे ब्राह्मणभागके सुननेकी शक्ति और मुझे प्रकाश तथा मेरे निमित्त स्वर्ग भी दें अर्थात् मुझको यज्ञके फलसे यह सब पदार्थ प्राप्त हों ॥ १ ॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तञ्च मे आधीतञ्च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रञ्च मे दक्षश्च मे बलञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

इसका देवा० ऋ०, नि० अतिज० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च, मे, प्राणः) और मेरे निमित्त प्राणवायु (च, मे, अपानः) और मेरे निमित्त अधोवायु (च, मे, व्यानः) और निमित्त सब शरीरमें विचरनेवालावायु (च, मे, असुः) और मुझको मस्तिष्क वाला वायु (च, मे, चित्तम्) और मुझको मानस संकल्प (च, मे, आधीतम्) और मुझको बाहरी ज्ञान (च, मे, वाक्) और मुझको वाणीकी सामर्थ्य (च, मे, मनः) और मुझको मन (च, मे, चक्षुः) और मुझको दृष्टि (च, मे, श्रोत्रं) और मुझको सुननेकी शक्ति (च, मे, दक्षः) और मेरे निमित्त ज्ञानकी

स्फूर्ति (च, मे, बलम्) और मुझको बल (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञफलसे प्राप्त हो ॥ २ ॥

ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म्म च मे वर्म्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूᳩषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

इसका देवा ऋ०, प्रु० शक्व० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, ओजः, च, मे, सहः) मुझे बलकी कारण शरीरकी आठवीं धातु ओज और देहबल (च, मे, आत्मा, च, मे, तनूः) मुझे आत्मज्ञान और सुन्दर शरीर (च, मे, शर्म, च, मे, वर्म) मुझे सुख और कवच (च, मे, अङ्गानि, च, मे, अस्थीनि) मुझे पुष्ट अङ्ग और अस्थियोंकी दृढ़ता (च, मे, परूंषि, च, मे, शरीराणि) मुझे अंगुलियोंके पोरुओंकी दृढ़ता और देहकी नीरोगता (च, मे, आयुः, च, मे, जरा, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे सुखमय आयु और वृद्धावस्थापर्यन्त आयु यज्ञके फलसे देवता दें ३

ज्यैष्ठ्यञ्च म आधिपत्यञ्च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धञ्च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अत्यष्टि छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, ज्यैष्ठ्यं, च, मे, आधिपत्यम्) मुझे बड़ाई और प्रभुता (च, मे, मन्युः, च, मे, भामः) मुझे दोषोपर कोप और अनुचित अपराध पर कोप (च, मे, अमः, च, मे, अम्भः) मेरे अर्थ गंभीरता और श्रेष्ठ जल (च, मे, जेमा, च, मे, महिमा) मेरे निमित्त जीतनेकी शक्ति और प्रतिष्ठा (च, मे, वरिमा, च, मे, प्रथिमा) मुझे सन्तानादिकी अधिकता तथा स्थान आदिका विस्तार (च, मे, वर्षिमा, च, मे, द्राघिमा) मुझे दीर्घजीवी-

पना और वंशपरंपराकी प्राप्ति (च, मे, वृद्धं, च, मे, वृद्धिः यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मेरे निमित्त अधिक अन्नादि तथा विद्यादि गुणोंकी उन्नति यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ ४ ॥

सत्यञ्च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च मे विश्वञ्च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

इसका देवा ऋ०, वि० शक्करी छ०, अग्नि दे०, हैं।मंत्रार्थ-(च, मे, सत्यं, च, मे श्रद्धा) मेरे अर्थ यथार्थ भाषण तथा परलोकपर विश्वास (च, मे, जगत्, च, मे, धनम्) गौ आदि पशु तथा सुवर्ण आदि धन (च, मे, विश्वं, च, मे, महः) मुझे स्थावर पदार्थ एवं प्रकाश (च, मे, क्रीडा, च, मे, मोदः) मुझे क्रीडा एवं क्रीडाके देखनेका आनन्द (च, मे, जातं, च, मे, जनिष्यमाणं) मुझे पुत्रसे उत्पन्न सन्तान और होनेवाली अपत्य सन्तान (च, मे, सूक्तं, च, मे, सुकृतं, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे शुभदायक ऋचाओंका समूह और पाठ करने से शुभअदृष्ट यज्ञके फलसे प्राप्त हो। ५

ऋतञ्च मेऽमृतञ्च मेऽयक्ष्मञ्च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वञ्च मेऽनमित्रञ्च मेऽभयञ्च मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूषाश्च मे सुदिनञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

इसका देवा ऋ०, भुरिगतिशक० छ०, अग्नि देवता हैं मंत्रार्थ (च, मे, ऋतं, च, अमृतं) मुझे यज्ञादि कर्म तथा उसका स्वर्गादिफल (च, मे, अयक्ष्मं, च, मे, अनामयत्) रोगका नाश तथा साधारण व्याधिका अभाव (च, मे, जीवातुः, च, मे, दीर्घायुत्वम्) आयु बढानेवाली औषध तथा दीर्घायु (च, मे, अनमित्रम्, च, मे, अभयम्) शत्रुओंका अभाव और निर्भयता (च, मे, सुखं, च, मे, शयनम्) मुझे सुख तथा सेज (च, मे सूषाः च, मे, सुदिनं यज्ञेन कल्पन्ताम्) मुझे सन्ध्यावन्दनादियुक्त सुप्रभात और यज्ञ-

ानादियुक्त दिन यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ ६ ॥

यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वञ्च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रञ्च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरञ्च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अतिजग० छ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ–(च, मे, यन्ता, च, मे, धर्त्ता) मुझे गुरु आदि नियन्ता एवं प्रजा पालनकी शक्ति (च, मे, क्षेमः, च, मे, धृतिः) मेरे निमित्त वर्त्तमान धनकी रक्षा तथा आपत्तिमें चित्तकी स्थिरता (च, मे, विश्वं च, मे, महः) सबकी अनुकूलता और पूजा सत्कार (च, मे, संवित्, च, मे, ज्ञात्रं) वेद शास्त्रादिका ज्ञान और विज्ञानकी शक्ति (च, मे, सूः, च, मे, प्रसूः) आज्ञा देनेकी सामर्थ्य एवं पुत्रादि को उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य (च, मे, सीरं, च, मे, लयः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे हल आदिके द्वारा अन्नकी प्राप्ति और खेतीके विघ्नोंका नाश इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ७ ॥

शञ्च मे मयश्च मे प्रियञ्च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणञ्च मे भद्रञ्च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

इसका देवा ऋ०, वि० शक्करी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ–(च, मे, शं, च, मे, मयः) मुझे शारीरिक सुख तथा परलोकका सुख (च, मे, प्रियम्, च, मे, अनुकामः) प्रीति उत्पादक वस्तु तथा सहज यत्न साध्य पदार्थ (च, मे, कामः, च, मे, सौमनसः) विहित विषयभोगका सुख एवं मनको स्वस्थ करनेवाले बान्धव (च, मे, भगः, च, मे, द्रविणम्) सौभाग्य तथा धन (च, मे, भद्रं, च, मे, श्रेयः) इसलोकका कल्याण तथा परलोकका कल्याण (च, मे, वसीयः, च मे, यशः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) निवासयोग्य धनसे पूर्ण घर तथा कीर्त्ति भी इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ८ ॥

ऊर्क् चं मे सूनृता च मे पयंश्च मे रसंश्च मे घृतञ्चं मे मधु च मे सग्धिंश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्चं मे वृष्टिश्च मे जैत्रंञ्च म औद्भिद्यञ्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

इसका देवा ऋ०, शक्वरी छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(च, मे, ऊर्क्, च, मे, सूनृता) मुझे अन्न तथा सच्ची और प्रियवाणी (च, मे, पयः, च, मे, रसः) दूध तथा दूधका सार (च, मे, घृतं च, मे, मधु) घी तथा सहद (च, मे, सग्धिः, च, मे, सपीतिः) बान्धवोंके साथ खान पान (च, मे, कृषिः, च, मे, वृष्टिः) धान्य की सिद्धि एवं अन्न उत्पन्न होनेके अनुकूल वर्षा (च, मे, जैत्रं, च, मे औद्भिद्यम्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) जयकी शक्ति तथा आम्रादि वृक्षोंकी उत्पत्ति भी मुझे यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ९ ॥

र॒यिश्च मे रार्यश्च मे पुष्टञ्च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णञ्च मे पूर्णतरञ्च मे कुयवञ्च मेऽक्षितञ्च मेऽन्नञ्च मे क्षुञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

इसका देवा ऋ०, नि० शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(च, मे, रयिः, च, मे, रायः) मुझको सुवर्ण तथा मौक्तिक आदि मणि (च, मे, पुष्टं, च, मे, पुष्टिः) धनकी पुष्टि तथा शरीरकी पुष्टि (च, मे, विभु, च, मे, प्रभु) व्यापकताकी शक्ति एवं ऐश्वर्य (च, मे, पूर्णं, च, मे, पूर्णतरं) धन पुत्रादिकी अधिकता तथा हाथी घोड़ा आदिकी अधिकता (च, मे, कुयवं, च, मे, अक्षितं) यवोंसे रहित धान्य तथा अक्षय अन्न (च, मे, अन्नं, च, मे, क्षुत् यज्ञेन, कल्पन्ताम्) भात आदि सिद्धान्न तथा भोजन पचानेकी शक्ति भी यज्ञके फलसे देवता दें ॥ १० ॥

वित्तञ्चं मे वेद्यंञ्च मे भूतञ्चं मे भविष्यच्चं मे सुगञ्चं मे सुपथ्यञ्च म ऋद्धञ्च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तञ्चं मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्चं मे सुमतिश्च मे यज्ञेनं

कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

इसका देवा ऋ० भुरिक् शक्वरी छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(च, मे, वित्तं, च, मे, वद्यम्) और मुझको पूर्वप्राप्त धन तथा आगे प्राप्तव्य धन भी (च, मे, भूतं, च, मे भविष्यत्) पूर्वप्राप्त क्षेत्रादि एवं भविष्यत्में प्राप्त होनेवाले क्षेत्रादि भी (च, मे, सुगं, च, मे, सुपथ्यम्) सुलगम्य देश एवं परमपथ्य पदार्थ (च मे, ऋद्धं च, मे, ऋद्धिः) बहुभारी यज्ञका फल तथा यज्ञ आदिकी समृद्धि (च, मे, क्लृप्तं, च, मे, क्लृप्तिः) कार्यसाधक अपरिमित धन तथा कार्यसाधनकी शक्ति (च, मे, मतिः, च, मे, सुमतिः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) पदार्थमात्रका निश्चय तथा दुर्घट कार्यका निश्चय इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ११ ॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० अतिशक्व०छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, व्रीहयः, च, मे, यवा) मुझे चावलों के धान तथा जौ (च, मे, माषाः, च, मे, तिलाः) उड़द तथा तिल (च, मे, मुद्गाः, च, मे, खल्वाः) मूँग तथा चने (च, मे, प्रियङ्गवः, च, मे, अणवः) कंगनी चैना (च, मे श्यामाकाः, च, मे, नीवाराः) समा कोदों तथा वन के मुन्यन्न नीवारादि (च, मे, गोधूमाः, च, मे, मसूराः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) गेहूँ और मसूर इस यज्ञ के फल से देवता दें ॥ १२ ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

इसका देवा ऋ० भुरि० अतिश० छ० अग्नि देवताहै। मंत्रार्थ (च, मे अश्मा, च, मे, मृत्तिका) मुझे सुन्दर पाषाण तथा श्रेष्ठ मृत्तिका (च, मे, गिरयः, च, मे, पर्वताः) गोवर्द्धनादि छोटे पर्वत तथा हिमालयादि पहाड़ (च, मे, सिकताः, च, मे, वनस्पतयः) सुन्दर रेती तथा बिनाफूल आए फलदायक वृक्ष (च मे, हिरण्यं, च, मे अयः) सुवर्ण तथा लोहा (च, मे, श्यामं, च, मे, लोहम्) ताँबा कांसा आदि तथा फौलाद (च, मे, सीसं, च, मे, त्रपु, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) सीसा धातु तथा राँगा इस यज्ञके फल से देवता दें ॥ १३ ॥

अग्निश्च मे आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे भूतञ्च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

इसका देवा ऋ०,नि०अष्टि छ० अग्नि दे० है मंत्रार्थ (च, मे, अग्निः, च, मे, आपः) मुझे पृथिवीके अग्निकी अनुकूलता तथा अन्तरिक्ष जलकी अनुकूलता (च, मे, वीरुधः, च, मे, ओषधयः), झाड़ तृण आदि तथा पकतेही सूखनेवाली औषधे(च मे, कृष्टपच्याः, च, मे, अकृष्टपच्याः) हल चलाकर उत्पन्न होनेवाले तथा बिना हलजोते उत्पन्न होनेवाले अन्न (च, मे, ग्राम्याः, च, मे, पशवः) गौ भैंस आदि ग्राम्यपशु तथा हाथी आदि वनके पशु (च, मे, वित्तं च, मे, वित्तिः) पूर्वलब्धधन तथा होनहार धनकी कामना (च, मे, भूतं, च, मे, भूतिः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) विद्यमान पुत्रादि तथा अपना उपार्जन किया हुआ धन इस यज्ञके फल से हमको देवता दें ॥ १४ ॥

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे

यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

इसका देवा ऋ०, विराडा० तृ० छ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—(च, मे, वसुः, च, मे, वसतिः) मुझे गौ आदि धन तथा निवासस्थान (च, मे, कर्म, च, मे, शक्तिः) अग्नि होत्रादि कर्म तथा उसके अनुष्ठान की शक्ति (च, मे, अर्थः, च, मे, एमः) इच्छित पदार्थ तथा प्राप्तियोग्य पदार्थ (च, मे, इत्या, च, मे, गतिः) इष्ट प्राप्ति का उपाय एवं इष्टप्राप्ति (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके फल से प्राप्त हों ॥ १५ ॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० त्रा० प० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, अग्निः, च, मे, इन्द्रः) मुझे अग्नि और इन्द्र (च, मे, सोमः, च, मे, इन्द्रः) सोम तथा इन्द्र (च, मे, सविता, च, मे, इन्द्रः) सविता और इन्द्र (च, मे, सरस्वती, च, मे, इन्द्रः) सरस्वती तथा इन्द्र (च, मे, पूषा, च, मे, इन्द्रः) पूषा तथा इन्द्र (च, मे, बृहस्पतिः, च, मे, इन्द्रः) बृहस्पति तथा इन्द्र (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ १६ ॥

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

इसका देवा ऋ० वि० शक्व० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, मित्रः, च, मे, इन्द्रः) मुझे मित्र एवं इन्द्र देवता (च, मे, वरुणः, च, मे, इन्द्रः) वरुण तथा इन्द्र (च, मे, धाता, च, मे, इन्द्रः) धाता तथा इन्द्र (च, मे, त्वष्टा, च, मे, इन्द्रः) त्वष्टा तथा इन्द्र

च, मे, मरुतः, च, मे, इन्द्रः) मरुत् तथा इन्द्र (च, मे, विश्वेदेवा च, मे, इन्द्रः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) विश्वेदेवा तथा इन्द्र इस यज्ञके फलसे अनुकूल भावसे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

इसका देवा ऋ०, मु० शक्र० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च, मे, पृथिवी, च, मे, इन्द्रः) सुझे पृथ्वी तथा इन्द्र (च, मे, अन्तरिक्षम्, च, मे, इन्द्रः) अन्तरिक्ष तथा इन्द्र (च, मे, द्यौः, च, मे, इन्द्रः) स्वर्ग तथा इन्द्र (च, मे, समाः, च, मे, इन्द्रः) वर्षका अधिष्ठात्री देवता तथा इन्द्र (च, मे, नक्षत्राणि च, मे, इन्द्रः) नक्षत्र तथा इन्द्र (च, मे, दिशः, च, मे, इन्द्रः, यज्ञेन कल्पन्ताम्) दिशा और इन्द्र यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अत्य० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (च, मे, अंशुः, च, मे, रश्मिः) मुझे अंशु तथा रश्मि नामक ग्रह (च, मे, अदाभ्यः, च, मे, अधिपतिः) अदाभ्य तथा निग्राह्य, ग्रह (च, मे, उपांशुः, च, मे अन्तर्यामः) उपांशु तथा अन्तर्याम ग्रह (च, मे, ऐन्द्रवायवः, च मे, मैत्रावरुणः) ऐन्द्रवायव तथा मैत्रावरुण ग्रह (च, मे, आश्विनः, च, मे, प्रतिप्रस्थानः) आश्विन तथा प्रतिप्रस्थान ग्रह (च, मे, शुक्रः, च, मे, मन्थी, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) शुक्र और मन्थी ग्रह यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों॥

से प्राप्त हों ॥ १९ ॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

इसका देवा ऋ०, स्वराट अतिधृति छ०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(च, मे, आग्रयणः, च,मे, वैश्वदेवः) मुझे आग्रयण और वैश्वदेव (च, मे, ध्रुवः, च, मे, वैश्वानरः) ध्रुव तथा वैश्वानर (च, मे, ऐन्द्राग्नः, च, मे, महावैश्वदेवः) ऐन्द्राग्नि तथा महावैश्वदेव (च, मे, मरुत्वतीयाः, च, मे, निष्केवल्यः) मरुत्वतीय तथा निष्केवल्य (च, मे, सावित्रः, च, मे, सारस्वतः) सावित्र तथा सारस्वत (च, मे, पात्नीवतः, च, मे, हारियोजनः) पात्नीवत एवं हारियोजनग्रह (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ २० ॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

इसका देवा ऋ०, विराटधृति छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थः(च, मे, स्रुचः, च, मे, चमसाः) मेरे अर्थ जुहू तथा चमस (च, मे, वायव्यानि, च मे, द्रोणकलशः) वायव्यपात्र एवं द्रोणकलश (च, मे, ग्रावाणः, च, मे, अधिषवणे) ग्रावा एवं काष्ठफलक (च, मे, पूतभृत, च, मे, आधवनीयः) सोमपात्र पूतभृत तथा आधवनीय (च, मे, वेदिः, च, मे, बर्हिः) वेदी एवं कुशा (च, मे, अवभृथः, च, मे, स्वगाकारः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) अवभृथस्नान तथा शम्युवाक पात्र यज्ञके द्वारा प्राप्त हों ॥ २१ ॥

अग्निश्चं मे घर्म्मश्चं मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे
प्राणश्चं मेऽश्वमेधश्चं मे पृथिवी च मे दितिश्च
मेदितिश्च मे द्यौश्चं मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

इसका देवा ऋ० भुरि० शक्व० छं०, अग्नि देव० है । मंत्रार्थ (च, मे, अग्निः, च, मे, घर्मः) मुझे अग्निष्टोम और प्रवर्ग्य (च, मे, अर्कः, च, मे, सूर्यः) मुझे पुरोडाशका यज्ञ और सूर्य का चरु (च, मे, प्राणः, च, मे मेधः) मुझे प्राण और अश्व मेधयज्ञ (च, मे, पृथिवी, च, मे, दितिः, च, मे, अदितिः) मुझे पृथिवी दिति और अदिति देवता (च, मे, द्यौः, च, मे अङ्गुलयः) मुझे द्युलोक और विराट् पुरुषके अवयव (च, मे, शक्वरयः, च, मे दिशः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे शक्तियें और पूर्वादिशाओंकी अनुकूलता इस यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ २२ ॥

व्रतञ्चं म ऋतवश्च मे तपश्च मे सम्वत्सरश्चं
मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

इसका देवा ऋ०, पंक्ति०, छं०, अग्नि देव० है । मंत्रार्थ-(च, मे, व्रतं, च. मे, ऋतवः) मुझे नियम तथा ऋतुएं (च, मे, तपः, च, मे, सम्वत्सरः, च, मे, अहोरात्रे) मुझे तप, सम्वत्सर तथा दिन रात (च, मे, ऊर्वष्ठीवे, च, मे, बृहद्रथन्तरे, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे जानु तथा बृहद्रथन्तर साम इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ २३ ॥

एका च मे तिस्रश्चं मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे
पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव
च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश
च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च
मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे
नवदश च म एकविंशतिश्च म एकविंशति·

तिस्रश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च म एकत्रिꣳशच्च म एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

इसका देवा ऋ०, पूर्वार्द्धकी संकृति तथा उत्तरार्द्धका विराट् संकृति छंद, अग्नि देवता है। यहाँसे अयुग्मस्तोम होमके मंत्र हैं, जोकि-सब कामनाओंके दाता हैं। मंत्रार्थ-(च, मे, एका, च, मे, तिस्रः) मुझे एक और तीन (च, मे, तिस्रः, च, मे, पंच) मुझे तीन तथा पाँच (च, मे, पंच, च, मे, सप्त) पाँच तथा सात (च, मे, सप्त, च, मे, नव) सात तथा नौ (च, मे, नव, च, मे, एकादश) मुझे नौ और ग्यारह (च, मे, एकादश, च, मे, त्रयोदश) ग्यारह और तेरह (च, मे, त्रयोदश, च, मे, पंचदश) तेरह और पन्द्रह (च, मे, पञ्चदश, च, मे, सप्तदश) पंद्रह और सत्रह (च, मे, सप्तदश, च, मे नवदश) सत्रह तथा उन्नीस (च, मे नवदश, च, म एकविंशतिः) उन्नीस तथा इक्कीस (च, मे, एकविंशतिः, च, मे, त्रयोविंशतिः) इक्कीस तथा तेईस (च मे, त्रयोविंशतिः, च, मे, पञ्चविंशतिः) तेईस तथा पचीस (च, मे पञ्चविंशतिः, च, मे, सप्तविंशतिः) पचीस तथा सत्ताईस (च, मे, सप्तविंशतिः, च, मे, नवविंशतिः) सत्ताईस तथा उनतीस (च, मे, नवविंशतिः, च, मे, एकत्रिंशत्) उनतीस तथा इकतीस (च, मे, एकत्रिंशत्, च, मे, त्रयस्त्रिंशत्, च, मे, त्रयस्त्रिंशत्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे इकतीस, तैंतीस तथा फिर तैंतीस इन संख्याओंसे कहेजानेवाले संसारके सकल उत्तम पदार्थ मुझे इस यज्ञके फलसे देवता प्राप्त करावें ॥ २४ ॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳश-

तिस्रश्च मे चिंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

इसका देवा ऋ०, उत्कृति छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, चतस्रः, च, मे, अष्टौ) मुझे चार तथा आठ (च, मे, अष्टौ, च, मे, द्वादश) आठ तथा बारह (च, मे, द्वादश, च, मे, षोडश) बारह तथा सोलह (च, मे, षोडश, च, मे, विंशतिः) सोलह तथा बीस (च, मे, विंशतिः, च, मे, चतुर्विंशतिः) बीस तथा चौबीस (च, मे, चतुर्विंशतिः, च, मे, अष्टाविंशतिः) चौबीस तथा अट्ठाईस (च, मे, अष्टाविंशतिः, च, मे, द्वात्रिंशत्) अट्ठाईस तथा बत्तीस (च, मे, द्वात्रिंशत्, च, मे, षट्त्रिंशत्) बत्तीस तथा छत्तीस (च, मे, षट्त्रिंशत्, च, मे, चत्वारिंशत्) छत्तीस तथा चालीस (च, मे, चत्वारिंशत्, च, मे, चतुश्चत्वारिंशत्) चालीस तथा चौवालीस (च, मे, चतुश्चत्वारिंशत्, च, मे अष्टचत्वारिंशत्, च, मे, अष्टचत्वारिंशत्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) चौवालीस अड़तालीस तथा फिर अड़तालीस. इन सब संख्याओंसे कहेजानेवाले पदार्थ यज्ञके द्वारा देवगण मुझे दें ॥ २१ ॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

इसका देवा ऋ०, ब्राह्मी बृहती छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, त्र्यविः, च, मे, त्र्यवी) मुझे डेढ वर्षका बछड़ा तथा डेढ वर्षकी बछिया (च, मे, दित्यवाट्, च, मे, दित्यौही) दो

वर्षका बछड़ा तथा दो वर्षकी बछिया (च, मे, पञ्चाविः, च, मे पञ्चावी) ढाई वर्षका वृष तथा ढाई वर्षकी गौ (च, मे, त्रिवत्सः, च, मे, त्रिवत्सा) तीन वर्षका वृष तथा तीन वर्षकी गौ (च, मे, तुर्यवाट, च, मे, तुर्यौही, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) साढ़े तीन वर्ष का वृष तथा साढ़े तीन वर्षकी गौ यज्ञके फलसे देवता दें ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० ब्रा० उ० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (च, मे, पष्ठवाट्, च, मे पष्ठौही) चार वर्षका वृष तथा चार वर्ष की गौ (च, मे, उक्षा, च, मे, वशा) सेचनमें समर्थ वृष तथा वन्ध्या गौ (च, मे, ऋषभः, च, मे, वेहत्) तरुण वृष तथा गर्भघातिनी गौ (च, मे अनड्वान्, च, मे, धेनुः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) बोझा उठानेमें समर्थ वृष तथा नईब्याही हुई गौ यज्ञके फलसे देवता मुझे दें अर्थात् मैं सब प्रकारके बैल तथा गौओंको पालनेवाला होऊँ ॥ २७ ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। इयन्ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानान्त्वाधिपत्याय॥२८॥

इसका देवा ऋ०, आर्चीबृह० छ०, अग्नि दे० है। अब सकल कामनाप्रद नामग्रह होम कहतेहैं। मंत्रार्थ (वाजाय, स्वाहा) अधिक अन्नउत्पादक चैत्रमासके निमित्त श्रेष्ठ होम हो (प्रसवाय, स्वाहा) वैशाखके निमित्त श्रेष्ठ होम हो (अपिजाय, स्वाहा) जलक्रीड़ामें

रतिदायक ज्येष्ठके अर्थ श्रेष्ठ आहुति हो (क्रतवे, स्वाहा) यागरूप आषाढ के निमित्त० (वसवे, स्वाहा) चातुर्मास्यकी यात्रा के निषेधक श्रावणके नि० (अहर्पतये, स्वाहा) तपाकारक भाद्रमासके निमित्त० (मुग्धाय, अन्हे, स्वाहा) तुषारसे मोहकारक आश्विनके नि० (मुग्धाय, वैनंशिनाय, स्वाहा) थोड़ा घटने से विनाशी कार्तिकके निमित्त० (विनंशिने, आन्त्यायनाय, स्वाहा) विनाशरहित अन्तमें स्थित विष्णुरूप मार्गशीर्षके० (अन्त्याय, भौवनाय, स्वाहा) स्वरूपमें होनेवाले लोकोंके पोषक पौषमास के नि० (भुवनस्य, पतये, स्वाहा) सम्पूर्ण प्राणियोंके पालक माघमास के निमित्त० (अधिपतये, स्वाहा) वर्षान्तके कारण अधिक पालक फाल्गुनके नि० (प्रजापतये, स्वाहा) बारहों मासके अधिष्ठाती देवता प्रजापतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है । हे प्रजापते अग्ने ! (इयम्, ते, राट्, यमनः, मित्राय यन्ता, असि) यह यज्ञस्थान तुम्हारा राज्य है अग्निष्टोमादि कर्मोंमें सबके नियन्ता तुम सखारूप इस यजमानके प्रेरक हो (ऊर्जे, त्वा, वृष्ट्यै, त्वा, प्रजानाम्, आधिपत्याय, त्वा) अधिक अन्नके निमित्त, तुमको अभिषिक्त करताहूँ, वर्षाके निमित्त तुमको अभिषिक्त करताहूँ और प्रजाओंपर प्रभुता पानेके निमित्त तुमको अभिषिक्त करताहूँ ॥ १८ ॥

आयुर्य्यज्ञेन॑ कल्पताम्प्राणो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ञ्चक्षु॒र्य्यज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒म्मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒मात्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पताम्ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ञ्ज्योति॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ स्व॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पताम्पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॑ य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम् । स्तोम॑श्च॒ यजु॑श्च॒ ऋक् च॒ साम॑ च बृ॒हच्च॑ रथन्त॒रञ्च॑ । स्व॑र्देवा अगन्मा॒मृता॑ अभूम प्र॒जाप॑तेः प्र॒जा अ॑भूम॒ वेट् स्वाहा॑ ॥ १९ ॥

इसका देवा ऋ०, विराट् विकृति छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ कल्पहोम (यज्ञेन, आयुः, कल्पताम्) यज्ञके फलसे आयु बढ़े (यज्ञेन, प्राणः, कल्पताम्) यज्ञफलसे प्राण बलिष्ठ हो (यज्ञेन, चक्षुः, कल्पताम्) यज्ञसे नेत्रोंकी ज्योति बढ़े (यज्ञेन, श्रोत्रं, कल्पताम्) यज्ञफलसे श्रवणशक्ति उत्तम हो (यज्ञेन वाक् कल्पताम्) यज्ञफलसे वाणी उत्तमहो (यज्ञेन, मनः, कल्पताम्) यज्ञफलसे मन स्वच्छ हो (यज्ञेन आत्मा कल्प०) यज्ञफलसे आत्मा बली हो (यज्ञेन, ब्रह्म, कल्प०) यज्ञफलसे वेद प्रसन्न हो (यज्ञेन, ज्योतिः, कल्प०) यज्ञफलसे परमात्मज्योति प्राप्त हो (यज्ञेन, स्वः, कल्पताम्) यज्ञफलसे स्वर्ग प्राप्त हो (यज्ञेन, पृष्ठं, कल्पतां) यज्ञके प्रभावसे सर्वोपरि सुख प्राप्त हो (यज्ञेन, यज्ञः कल्पताम्) यज्ञके प्रभावसे महायज्ञ करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो (स्तोमः, यजुः, ऋक्, च, साम, च, बृहत्, च, रथन्तरम्, च, देवाः स्वः, अगन्म) बृहत् पञ्चदश आदि स्तोम, यजुर्मंत्र, ऋचा और गीतिमन्त्र और बृहत्साम और रथन्तर सामभी यज्ञके फल से प्रसन्न हों, हम इस यज्ञके फलसे देवभाव पाकर स्वर्गको प्राप्तहुए (अमृताः अभूम) अमरहुए (प्रजापतेः, प्रजाः अभूम) हिरण्यगर्भकी प्यारी सन्तानहुए (वेट्, स्वाहा) इन सब देवताओंको यह आहुति दीगई, भलीप्रकार गृहीत हो यहां तक वसोर्धारा मंत्र हुए ॥ २९ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिन्नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वम्भुवनमाविवेश तस्यान्नो देवः सविता धर्मं साविषत् ॥ ३० ॥

अब वाजपेय सम्बन्धी सात मंत्र कहते हैं, इस मन्त्रकी व्याख्या अध्याय ९ मं० ५ में होगई ॥ ३० ॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु वि-

द्रविणमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ३१ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ०, त्रि० छ०, विश्वेदेवा देवता है। मंत्रार्थ-(अद्य, विश्वे, मरुतः, आगमन्तु) आज इस यज्ञमें संपूर्ण मरुत् देवता आवें (विश्वे, ऊती, विश्वेदेवाः, नः, अवसा, विश्वे, अग्नयः, समिद्धाः, भवन्तु) सम्पूर्ण रुद्र आदित्य आदि गण देवता इस निमित्तसे आवें, सम्पूर्ण देवता हमारे हविको ग्रहण करनेके निमित्त आवें, गार्हपत्य आदि सब अग्नि प्रदीप्त हों (विश्वं, द्राविणं, वाजः, अस्तु) गौ, भूमि, सुवर्ण आदि सम्पूर्ण धन और अन्न हमको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः। वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ०, अनु०, छ० अन्न देवता है। मंत्रार्थ (वाजः, सप्त, प्रदिशः, वा, परावतः, चतस्रः, इह, धनसातौ, वाजः, नः, विश्वैः, देवैः, अवतु) हमारा अन्न सात दिशा अर्थात् भू आदि तीन लोक और पूर्वादि चारदिशा तथा दूर स्थित महः आदि चार लोकोंको पूर्ण करे, इस लोकमें धनविभागका समय आनेपर अन्न हमारी सम्पूर्ण देवताओं सहित रक्षा करे ॥ ३२ ॥

वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति वाजो हि मा सर्ववीरञ्जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥

इसका लुशो० ऋ०, त्रि० छ०, अन्न दे० है। मंत्रार्थ (अद्य, वाजः, नः, दानं, प्रसुवाति) आज अन्नका अधिष्ठात्री देवता हमको दानके निमित्त प्रेरणा करे (वाजः, ऋतुभिः, देवान्, कल्पयाति) अन्न ऋतुओंके साथ देवताओंको यथास्थानपर कल्पना करे (वाजः, हि, मा, सर्ववीरम्, जजान) अन्नही मुझको पुत्र पौत्रादियुक्त करे (वाजपतिः, सर्वाः, आशाः, जयेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको वशीभूत करने में समर्थ होऊँ ३३

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान्
हविषा वर्द्धयाति। वाजो हि मा सर्ववीरञ्चकार
सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

इसका ऋषि० त्रि० छ०, अन्न दे० है। मंत्रार्थ-(वाजः, नः, पुरस्तात्, उत, मध्यतः) अन्न हमारे आगे और मध्यमें स्थित हो। (वाजः, हविषा, देवान्, वर्द्धयाति) अन्न हविसे देवताओंको तृप्त करताहै (वाजः, हि, मा, सर्ववीरं, चकार) अन्नने ही मुझ को पुत्र पौत्रादिसे युक्त किया (वाजपतिः, विश्वाः, आशाः, भवेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको जीतने में समर्थ होऊँ ॥ ३४ ॥

सम्मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सम्मा सृजाम्य
द्भिरोषधीभिः। सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

इसका ऋषि० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (अग्ने पृथिव्याः, पयसा, मा, संसृजामि) हे अग्ने पृथिवीके रससे अपने को संयुक्त करताहूँ (अद्भिः, ओषधीभिः, मा, सम्) जलों और ओषधियोंसे अपनेको संयुक्त करताहूँ (सः, अहं, वाजं, सनेयम्) वह मैं अन्नकी उपासना करताहूं अथवा हे अग्ने! जो मैं ओष-धिजलसे हवनद्वारा तुमको संयुक्त करताहूं वह मैं अन्नका उपा-सक हूं ॥ ३५ ॥

पयः पृथिव्याम्पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे
पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ३६ ॥

इसका ऋषि० ऋ०, विराट् छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (पृथिव्यां, पयः, धाः) हे अग्ने! पृथ्वीपर हमारे देनेके अर्थ रस को धारण करो (ओषधीषु, पयः) ओषधियोंमें रस डालो (दिवि, पयः) द्युलोकमें रसको स्थापन करो (मह्यं, प्रदिशः, पयस्वतीः, सन्तु) आहुति देनेसे मेरे अर्थ दिशा विदिशाएँ रसयुक्त हों॥३६॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्।
पूष्णो हस्ताभ्याꣳ सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः

साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

इसका लुशो० ऋ०, आर्षीपंक्ति छ०, लिंगोक्त दे० है। यजमान के अभिषेकका मंत्र मंत्रार्थ-(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, सरस्वत्यै, वाचः, यन्तुः, यन्त्रेण, अग्नेः साम्राज्येन, त्वा, अभिषिंचामि) सविताकी आज्ञामें वर्त्तमान मैं अश्विनीकुमारकी बाहु और पूषा देवताके हाथोंसे, तथा सरस्वतीकी वाणीसे प्रजापतिके नियमवश अग्निके चक्रवर्त्तीपनेसे हे यजमान तुम्हारा अभिषेक करता हूं ॥ ३७ ॥

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सु-
रसो मुदो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै
स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३८ ॥

इसमें २ मंत्र है। दोनों का लुशो० ऋ०, विराट् उ० छ०, देवता १म का गन्धर्व और २ यका अप्सरस है। होमके मंत्र मंत्रार्थ-(ऋताषाट्, ऋतधामा, गन्धर्वः, अग्निः, सः, नः, इदं ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) सत्यवक्ता अविनाशी धामवाला पृथ्वीका धारक गन्धर्व नामक अग्नि, हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति की रक्षाकरे (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको यह आहुति देतेहैं भलीप्रकार गृहीत हो (मुदः, नाम, ओषधयः, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) प्राणियोंको प्रसन्न करनेवाली मुद नामक औषधियें गन्धर्वनामा अग्नि की अप्सरा अर्थात् भोगने योग्यहैं वह भी हमारी रक्षाकरें उन ओषधियोंको यह आहुति देताहूं, भलीप्रकार गृहीत हो ॥ ३८ ॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीच-
योऽप्सरस आयुवो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पा
तु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

इसमें १ मं० है। ऋ० दोनोंका लुशो०, छ० १ का आर्षी बृहती २य का साम्नी बृ०, देवता १ मका गन्धर्व २य का अप्सरस है। मंत्रार्थ-(संहितः, विश्वसामा, सूर्यः, गन्धर्वः) दिन

रागको मिलानेवाला और जिसकी सब साममंत्र स्तुति करतेहैं ऐसा सूर्यरूप गन्धर्व है (सः, नः, ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजातिकी रक्षाकरै, (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति देतेहैं भलीप्रकार ग्रहण कीजाय (आयुवः, नाम, मरीचयः, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) परस्पर मिलनेके स्वभाववाली आयुव नामक किरणें उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षाकरैं उनको आहुति देतेहैं ॥ ३९ ॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स नं इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

इसमें २ मंत्र हैं । ऋ० दोनोंका लुशो०, छं १० मका प्राजापत्या त्रि० २ यका आर्ची गा०, दे० क्रमसे गन्धर्व और अप्सरस है । मंत्रार्थ-(सुषुम्णः, सूर्यरश्मिः, चन्द्रमाः, गन्धर्वः,) यज्ञ के द्वारा सुख देनेवाली सूर्यकी किरणोंसे किरणोंवाला चन्द्रमा नामक भूमिका धारक होनेसे गन्धर्व है (सः, नः, इदं, ब्रह्म क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रिय जातिकी रक्षा करै (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति दीजाती है (भेकुरयः, नाम, नक्षत्राणि, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) कान्ति करने से भेकुरिनामक नक्षत्र उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करैं उनकी प्रीतिके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४० ॥

इषिरो विश्वव्यंचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम । स नं इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसमें २ मं० हैं । ऋ० दोनोंका लुशो०, छं० क्रमसे आर्ची बृह० आर्षी गा० है, दे० क्रमसे गन्धर्व तथा अप्सरस है । मं० (इषिरः, विश्वव्यचाः, वायुः, गन्धर्वः) शीघ्रगामी सर्वव्याप्त भूमिको धारण करनेसे गन्धर्व नामक वायु है (सः, नः, इदं, ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति

की रक्षा करै (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति दीजाती है (ऊर्जः, नाम,आपः, तस्य, अप्सरसः ताभ्यः, स्वाहा) प्राणियों को जीवन देनेवाले रस नामक जल उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करैं, उनके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४१ ॥

भुज्युः सुपर्णो युज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसं स्तावा नाम । स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । दोनोंका लुशो०, छ० क्रमसे आर्षी गा० साम्नी अनु०, देवता पूर्ववत् है । मंत्रार्थ—(भुज्युः, सुपर्णः, यज्ञः, गन्धर्वः) प्राणियों का पालक स्वर्ग में गमन करनेवाला पृथ्वी को धारण करने से गन्धर्व नामक यज्ञ है (सः, नः इदं, ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति तथा क्षत्रियजाति की रक्षा करै (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति दीजाती है (स्तावा, दक्षिणाः, तस्य, अप्सरसः) यज्ञ और यजमान की स्तुति करनेवाली स्तावा नामक दक्षिणा उस यज्ञ की अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करैं (ताभ्यः, स्वाहा) उनको आहुति देते हैं ॥ ४२ ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

इसमें २ मं० हैं । अ० दोनोंका लुशो०, छन्द क्रम से साम्नी जग० आर्षी गाय० है, देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, विश्वकर्मा, मनः, गन्धर्वः) प्रजापालक सब कुछ करनेवाला मनरूप गन्धर्व है (सः, नः, इदं, ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति की रक्षा करै (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति देते हैं (एष्टयः, नाम, ऋक्सामानि, तस्य, अप्सरसः) अभीष्ट देने से एष्टि नामवाली ऋचा और साम उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करैं, उनको आहुति देते हैं ॥ ४३ ॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य॑ त उपरि॑
गृहा यस्यं वेह । अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि॑
शर्म॑ यच्छ स्वाहा॑ ॥ ४४ ॥

इसका लुशो० ऋ०, प्रस्तारपंक्ति छ०, प्रजापति देवता है। मंत्रार्थ—(भुवनस्य, पते, प्रजापते, यस्य, ते, उपरि, गृहाः, वा, यस्य, इह, सः, नः, अस्मै, ब्रह्मणे, अस्मै, क्षत्राय, महि, शर्म, यच्छ, स्वाहा) हे संसार का पालन करनेवाले प्रजापते ! जिन आपके स्वर्गलोक में घर हैं, अथवा जिन आपके इस लोक में घर हैं ऐसे आप हमारी इस ब्राह्मणजाति और इस क्षत्रियजाति के निमित्त महान् सुख को दीजिये, इस दीहुई आहुति को स्वीकार कीजिये ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसि नभ॑स्वानार्द्रदा॑नुः शम्भूर्म॑योभूर-
भि मा॑ वाहि स्वाहा॑ मारुतोऽसि मरुतां॑गणः
शम्भूर्म॑यो॒भूर॒भि मा॑वाहि स्वाहा॑ऽवस्यूर॑सि
दुव॑स्वाञ्छम्भूर्म॑योभूर॒भि मा॑ वाहि स्वाहा॑ ॥ ४५ ॥

इसमें ३ मं० हैं। ऋ० सबका लुशो०, छ० १ म का नि० गाय० २। ३ य का आर्षी उ०, दे० सबका वायु है। मंत्रार्थ—(समुद्रः, नभस्वान्, आर्द्रदानुः, शम्भूः, मयोभूः, असि) हे वायो तुम अगाधजलसे आर्द्र आकाशचारी वर्षासे पृथ्वीको गीला करनेवाले इसलोक को सुख देनेवाले तथा परलोकका सुख देनेवाले हो (मा, अभि, वाहि) मेरे सन्मुख होकर चलो वा मेरे अनुकूल रहो (मारुतः, मरुतां, गणः, असि) हे वायो ! तुम अन्तरिक्षचारी और शुक्रज्योति आदि मरुद्गण हो (शंभूः, मयोभूः, मा, अभि, वहि, स्वाहा) तुम इसलोक और परलोकों का सुखदेते हो मेरे सन्मुख अपना वहनरूपप्रकाश करो इस आहुति को स्वीकार करो (अवस्यूः, असि) हे वायो जगत्के रक्षकहो (दुवस्वान्, शम्भूः, मयोभूः, मा, अभि, वाहि, स्वाहा) अन्न के उत्पादक इसलोक तथा परलोक का सुख देनेवाले हो मेरे

सन्मुख अपना बहुतरूप प्रकाश करो इस आहुति को स्वीकार करो ॥ ४५ ॥

याहमें ऽअग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ४६

इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २२ में होगई ॥ ४६ ॥

या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचन्नो धत्त बृहस्पते ४७

इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २३ में होगई ॥ ४७ ॥

रुचन्नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचᳫं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ४८ ॥

इसका लु०ो० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । घी की आहुति देय मंत्रार्थ-(नः, ब्राह्मणेषु, रुचं, धेहि) हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों में कान्तिको स्थापन करो (नः, राजसु, रुचं, कृधि) हमारे क्षत्रियोंमें कान्ति करो (विश्येषु, शूद्रेषु, रुचम्) वैश्य और शूद्रों में कान्तिको स्थापन करो (मयि, रुचा, रुचं, धेहि) मुझमें कान्तिके साथ अविच्छिन्न कान्तिको स्थापन करो ॥ ४८ ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोद्ध्युरुशᳫंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ ४९ ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, त्रि०, छ०, वरुण दे० है मंत्रार्थ (वरुण, यजमानः, हविर्भिः, तत्, आशास्ते) हे स्तुति कियेहुए वरुण ! यजमान हवियोंके द्वारा जोकुछ याचना करताहै (तत्, ब्रह्मणा, वन्दमानः, त्वा, यामि) वह वेदके द्वारा स्तुति करताहुआ आपको शरण आकर याचना करताहूँ (उरुशंस, इह, अहेडमानः, बोधि) हे परम आराध्यदेव ! यहां क्रोध न करतेहुए तुम मेरी प्रार्थनाको जानो (नः, आयुः, मा, प्रमोषीः) मेरी आयुको मत नष्ट होनेदो ॥ ४९ ॥

स्वर्ण घर्म्मः स्वाहा स्वुर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वुर्ण सूर्यः स्वाहा ॥ ५० ॥

इसमें ९ मं० हैं । ऋषि सबका शुनःशेप, छन्द १ । ३ । ४ । ५ का दै० त्रि०, २ का दै० पंक्ति, देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ (स्वः, न, घर्मः, स्वाहा) दिन की समान आदित्य देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः, न, अर्कः, स्वाहा) सूर्य की समान अग्नि को आदित्य में स्थापन करता हूं, उसकी प्रीति के निमित्त दीहुई आहुति गृहीत हो (स्वः, न, शुक्रः, स्वाहा) दिन की समान शुक्लवर्ण आदित्य के निमित्त दीहुई आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः, न, ज्योतिः, स्वाहा) स्वर्गदाता अग्नि को अग्नि में स्थापन करता हूं उसकी प्रीति के अर्थ दीहुई आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः, न, सूर्यः, स्वाहा) सम्पूर्ण देवताओं के रूप की समान सूर्य को उत्तम करता हूं अर्थात् भ्रान्ति से अनेकत्व की प्रतीति होती है वास्तव में एक सूर्य ही नानारूप है ॥ ५० ॥

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् । तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

इसका शुनःशेप ऋषि त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (दिव्यं, सुपर्णं, वयसा, बृहन्तं, अग्निं, शवसा, घृतेन, तेन, ब्रध्नस्य विष्टपं, वयं, गमेम) स्वर्गमें वर्त्तमान सुन्दर गतिवाले धुएंसे बढ़ेहुए अग्नि को बल और घृतसे संयुक्त करताहूँ, इससे हम आदित्यके लोक-को जायँ (अधि, स्वः, रुहाणाः, उत्तमं, नाकम्) उसके ऊपर स्वर्गमें जातेहुए उत्तम दुःखरहित लोकमें गमन करें ॥ ५१ ॥

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳसि अपहꣳस्यग्ने । ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

इसका शुनःशेप ऋ०, विराट् ब्रा० अ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, इमौ, पक्षौ, अजरौ, पतत्रिणौ) हे अग्ने! तुम्हारे यह दोनों दाहिने वाएं पर जरारहित उड़नेवाले हैं (याभ्यां, रक्षांसि, अपहंसि) जिनसे तुम राक्षसों को नष्ट करते हो (ताभ्यां, उ, सुकृतां, लोकं, पतेम) उनसे ही हम पुण्यात्माओं के लोक को गमन करें (यत्र, प्रथमजाः, पुराणाः, ऋषयः, जग्मुः) जहाँ प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५२ ॥

इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्त्सधस्थे ध्रुव आनिषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिᳩंसीः ॥ ५३ ॥

इसका शुनः० ऋ०, आर्षीप० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (इन्दुः, दक्षः, श्येनः, ऋतावा, हिरण्यपक्षः, शकुनः, भुरण्युः, महान्, ध्रुवः, सधस्थे, आनिषत्तः, ते, नमः, अस्तु, मा, मा हिंसीः) हे अग्ने! तुम चन्द्रमाकी समान आनन्दके दाता, उत्साहयुक्त आकाशमें बाजकी समान वेगसे गमन करनेवाले, सत्यसम्पन्न सुवर्णमय पक्षवाले पक्षीकी समान फैले पक्षवाले जाठराग्निरूपसे पोषक बड़े प्रभाववाले स्थिर ब्रह्माके स्थानमें स्थित, आपको वारंवार नमस्कार हो, मुझे किसी प्रकारकी पीड़ा न देकर मेरी रक्षा करना ५३

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म्म सप्रथा नमस्पथे ॥ ५४ ॥

इसका शुनः० ऋ०, परोष्णिक् छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (दिवः, मूर्धा, पृथिव्याः, नाभिः, अपां, ओषधीनां, ऊर्क्, विश्वायुः, शर्म, सप्रथाः, असि) हे अग्ने तुम स्वर्गके मस्तकरूप हो, पृथिवीके नाभिरूप हो अर्थात् सब तुमसे ही जीवित रहतेहैं, तुम जल तथा औषधियोंके सार हो, विश्वभरके जीवन हो, सबके शरणदाता तथा सब मार्गोंमें वर्त्तमान हो (पथे, नमः) स्वर्गके मार्गरूप आपको प्रणाम है ॥ ५४ ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिम्भिन्त दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

इसका शुनः० ऋ०, महापंक्ति जगती छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ–(श्रितः, विश्वस्य,मूर्धन, अधितिष्ठसि) हे सूर्यरूप अग्ने तुम सुषुम्नामें व्याप्तहुए सबके शिरमें स्थित हो (ते, हृदयं, समुद्रे) तुम्हारा हृदय समुद्रमें है (आयुः, अप्सु) जीवन जलोंमें है क्योंकि जल से इन्द्र पुष्ट होकर उनसे अग्नि प्रकट होती है (दिवः, पर्जन्यात्, अन्तरिक्षात्, पृथिव्याः, ततः, वृष्ट्या, नः, अव) द्युलोक से, मेघ से, अन्तरिक्ष से, भूमि से जहाँ जल हो तहाँ से लाकर वर्षा के द्वारा हमारी रक्षा करो (उदधिं, भिन्त) मेघ को विदीर्ण करो (अपः, दत्त) जलोंको दो ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः। तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥ ५६ ॥

इसका गालव ऋ०, उष्णिक् छ०, यज्ञ देवता है। मंत्रार्थ—(द्रविण, नः, इष्टस्य, प्रीतस्य, तस्य, इह, आगमेः) हे धन ! हमारे मित्र और प्रेमी इस यजमान के यहां आओ (आशीर्दाः, यज्ञः, भृगुभिः, वसुभिः, इष्टः) इच्छित वस्तु देनेवाला यज्ञ ब्राह्मण और देवताओं के द्वारा पूर्ण कियागया ॥ ५६ ॥

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्त्तु न इष्टꣳहविः। स्वगेदन्देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥

इसका गालव ऋ०, गायत्री छ०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ–(इष्टः, अग्निः, हविः, आहुतः, नः, इष्टं, पिपर्त्तु) यज्ञ के द्वारा पूजित अग्नि हवि के द्वारा तृप्त कियाहुआ हमारे मनोरथ को पूर्ण करे (इदं, नमः, देवेभ्यः, स्वगाः) यह हवि सब देवताओं के निमित्त हो, स्वयं पहुँचनेवाला है ॥ ५७ ॥

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतञ्चक्षुषो वा। तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र

ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५८ ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, जगती छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (तत्, यजु. सुकृतां, लोकं, च, मेत) हे ऋत्विजो ! तुम उस प्रजापतिके कियेहुए कर्मको सम्पादन करके पुण्यात्माओंके लोकको अवश्य प्राप्त होओ (यत् संभृतं, आकूतात्, वा, हृदः, वा, मनसः, वा, चक्षुषः, समभृतोत्) जो कर्म पूर्ण सामग्री से युक्त है, तथा जो प्रजापतिके अभिप्रायवा हृदयसे वा मनसे, अथवा चक्षु आदि इन्द्रियोंसे प्रज्ञाने रचाहै, उसके करनेसे पवित्र लोकको गमन करो (यत्र, प्रथमजाः, पुराणाः, ऋषयः, जग्मुः) जिसलोकमें प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५८ ॥

एतᳪ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिञ्जातवेदाः। अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तᳪ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, त्रि०, छ० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (सधस्थ, जातवेदाः, यं, शेवधिं, आवहात्) हे देवताओंके स्थान भूतस्वर्ग ! सर्वज्ञ अग्निने सुखके खजानेरूप यज्ञकेफलको जिसे सौंपाहै (एतं, ते, परिददामि) इस यजमानको तुम्हारे अर्पण करताहूँ (यज्ञपतिः, वः, अन्वागन्ता) हे देवताओ ! यज्ञ के समाप्त होनेपर यह यजमान तुम्हारे पास आवेगा (अत्र, परमे, व्योमन्, तं, जानीत, स्म) इस उत्तम परम विस्तारवाले स्वर्गमें प्राप्तहुए उस यजमानको तुम जानो अर्थात् स्वर्गमें पहुँचने पर सत्कार करो ॥ ५९ ॥

एतञ्जानाथ परमे व्योमन्देवाः सधस्था विद रूपमस्य। यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ- (परमे, व्योमन्, सधस्थाः, देवाः, एतं, जानाथ) उत्तम स्थान स्वर्ग में रहनेवाले हे देवताओ ! इस यजमान को जानो (अस्य,

रूपं, विद) इसके रूप को जानो (यदा, देवयानैः, पथिभिः, आगच्छात) जब देवयान मार्गों से आगमन करै (इष्टापूर्त्ते, अस्मै, आविः, कृणवाथ) तब श्रौत स्मार्त्त कर्म के फल इस यजमान के निमित्त प्रकाशित करो ॥ ६० ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० १५ कण्डिका ५४ में होगई ॥ ६१ ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

इसकी व्याख्या अ० १५ कण्डिका ५५ में होगई ॥ ६२ ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(नः, प्रस्तरेण, परिधिना, स्रुचा, वेद्या, बर्हिषा, ऋचा, इमं, यज्ञं, गन्तवे, स्वः, नय) हे अग्ने हमारे स्रुक् का आधार दर्भ का मुट्ठा, बाहुमात्र के तीन काठ, जुहू आदि, वेदी, कुशा, ऋचा आदि से सम्पन्न इस यज्ञ को देवताओं में प्राप्त करने के निमित्त स्वर्ग को लेजाओ ॥ ६३ ॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

इसका विश्व० ऋ०, नि० अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-(वैश्वकर्मणः, अग्निः, नः, तत, स्वः, देवेषु, दधत) विश्वकर्मा का अग्नि हमारे उस दानको स्वर्गलोकमें देवताओंमें स्थापन करै (यत, दत्तं, यत, परादानं, यत, पूर्त्तं, च, याः, दक्षिणाः) जो कि -जामाता आदि को दिया है, जो परोपकारके निमित्त दुःखितोंको दियाहै, जो स्मृतिके अनुसार कूपोत्सर्जन आदि कियाहै और जो यज्ञकी दक्षिणा हैं ॥ ६४ ॥

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।
तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

इसका वि० ऋ०, नि० अनु० छ०, अग्निदे० है। मंत्रार्थ-(वैश्वकर्मणः, अग्निः, तत्, स्वः, देवेषु, नः, दधत्) विश्वकर्मासम्बन्धी अग्नि तहां स्वर्गमें देवताओंमें हमको स्थापन करे (यत्र, मधोः, घृतस्य, च, याः, धाराः, अनपेताः) जहां शहद की घृतकी और दूध दही आदि की धाराएं क्षीण न होतीहुई स्थित हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृतम्मऽआसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्म्मो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥

इसका देवश्रवा देववात ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ-(जातवेदाः, अर्कः, त्रिधातुः, रजसः, विमानः, अजस्रः, अग्निः, अजन्मा, अस्मि) सब सृष्टिका स्वामी, अर्चनीय यज्ञ, त्रिदेवस्वरूप, जल का निर्माता अविनाशी अग्नि उत्पत्तिसे ही मैं हूं (मे, चक्षुः, घृतं) मेरी आँखें घृत हैं घृत होमनेवाले को देखता हूं (मे, आस्य, अमृतम्) मेरे मुख में हविरूप अमृत है (घर्मः, नाम, हविः, अस्मि) मेघरूप और नाम से पुरोडाशादिक भी मैं हूं ॥ ६६ ॥

ऋचो नामास्मि यजूᳬषि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये ऽअग्नयः पाञ्चजन्या अस्याम्पृथिव्यामधि तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ ६७ ॥

इसमें २ मंत्र हैं। दोनों का देवश्रवा देववात ऋ०, छन्द क्रम से आर्षी जगती और अनुष्टुप् है, देवता क्रमसे आत्मा और अग्नि है। मंत्रार्थ-(ऋचः, नाम, अस्मि) ऋग्वेद नामवाला हूँ (यजूंषि नाम) यजुर्वेद नामक अग्नि हूँ (सामानि, नाम, अस्मि) सामवेद नामक मैं हूं (अस्यां, पृथिव्यां, अधि, ये, पाञ्चजन्याः,

अग्नयः, तेषां, त्वं, उत्तमः, असि) इस पृथिवी पर जो मनुष्यों के हितकारी अग्नि हैं, हे यज्ञाग्ने तुम उनमें श्रेष्ठ हो (नः, जीवातवे, प्रसुव) हमारे चिरजीवनके निमित्त आज्ञा दो॥ ६७ ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्त्तयामसि ॥ ६८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, नि० गा० छ० इन्द्र देवता है इसका पाठ करै । मंत्रार्थ-(इन्द्र, वार्त्रहत्याय, च, पृतनाषाह्याय, शवसे, त्वा, आवर्त्तयामसि) हे इन्द्र ! वृत्रासुरके मारनेवाले, शत्रुसेना का तिरस्कार करनेमें समर्थ, बलदर्शनके निमित्त तुम्हारा वारंवार आवाहन करते हैं ॥ ६८ ॥

सहदानुम्पुरुहूतक्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक्कुणारुम्। अभि वृत्रं वर्द्धमानम्पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, आर्षी त्रि० छन्द, इन्द्र दे० है । (पुरुहूत, इन्द्र, क्षियन्तं, कुणारुं, सहदानुं, अहस्तं, सम्पिणक्) अनेकोंवार भक्तोंसे आवाहन कियेहुए हे इन्द्र निकट बसनेवाले, दुर्वचन कहनेवाले शत्रुको हाथोंसे रहित करके चूर्ण करो (इन्द्र, वर्धमानं, पियारुं, वृत्रं, अपादं, अभिजघन्थ) हे इन्द्र ! वृद्धि को प्राप्त होते देवताओंको मारनेवाले वृत्रासुर वा पापको गति हीन करके मारो ॥ ६९ ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या अ० ८ मं० ४४ में हो ई ॥ ७० ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः । सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

इसका जय ऋ०, त्रि० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ— (इंद्र, भीमः, कुचरः, गिरिष्ठाः, मृगः, न, परस्याः, परावतः, आजगन्थ)

हे इंद्र ! भयानक दीखनेवाले डरावनी चालवाले पर्वतकी गुफामें सोनेवाले सिंहकी समान अनिदूर स्थानोंसे आओ (सृकं, तिग्मं पवि, संशाय, शत्रून्, विताढ्ढि) शत्रुके शरीरमें प्रवेश करनेवाले तीक्ष्ण धारसेयुक्त वज्रको पैना करके शत्रुओंको विशेषरूपसे ताड़ना करो (मृधः, नुदस्व) संग्रामोंको विशेष प्रेरणा करो वा दूर करो ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥

इसका जय ऋ० गायत्री छ०, वैश्वानर देवता है । मंत्रार्थ—(वैश्वानरः, अग्निः, नः, सुष्टुतीः, उप, नः, ऊतये, परावतः प्रयातु) सब प्राणियोंका हितकारी अग्नि देवता हमारी सुन्दर स्तुतियोंको सुननेके निमित्त और हमारी रक्षा करनेको दूर देशसे आवै ॥ ७२ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निस्स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, त्रि० छ०, वैश्वानर देवता है । मंत्रार्थ (वैश्वानरः, अग्निः, दिवि, पृष्टः) सब प्राणियोंका हितकारी अग्नि देवता द्युलोकमें आदित्यरूपसे पूछागया अर्थात् यह आदित्यरूप क्याहै, इसप्रकार मुमुक्षुओंने प्रश्न करके विचार किया (पृथिव्यां, पृष्टः) अन्तरिक्षमें जलके अभिलाषियोंने बूझाकि जो बिजलीरूपसे प्रकाश करताहै यह कौन है ! (विश्वाः, ओषधीः, आविवेश) जो सकल औषधोंमें प्रवेश करगया (सः, पृष्टः) वह बूझागया कि—जीवनके कारणरूप ताप पाक प्रकाश आदिसे प्रजाओंका उपकार करनेवाला यह कौन है (सहसा, पृष्टः) जो बलपूर्वक अध्वर्युसे मथाहुआ मनुष्योंसे बूझागया कि—यह कौन है जो अरणी काठमें से निकालाजाताहै (सः, दिवा, नक्तम्, नः, रिपः, पातु) वह अग्नि दिन रातभर वा कष्टसे हमारी रक्षा

करे अथवा सर्वत्र अग्नि सूर्य विद्युत्रूप परमात्मा है वह सदा हमारी रक्षा करें ॥ ७३ ॥

अश्याम तङ्कामंमग्ने तवोती अश्याम रयिᳪ रयिवस्सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तो ऽश्याम द्युम्नमजराजरन्ते ॥ ७४ ।

इसका भरद्वाज ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (अग्ने, तव, ऊती, तं, कामं, अश्याम) हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा से हम उस अभिलाषाको प्राप्तहों (रयिवः, सुवीरं, रयिं, अश्याम) हे धनवन् आपकी कृपासे हम सुन्दर पुत्र और श्रेष्ठधनको पावें (वाजयन्तः, वाजं, अभि, अश्याम) अग्निका पूजन करते हुए हम तुम्हारी कृपासे अन्नको सब ओर से पावें (अजर, ते, अजरं, द्युम्न, अश्याम) हे जरारहित ! तुम्हारे जीर्ण न होनेवाले यश को पावें अर्थात् सदा यशस्वी हों ॥ ७४ ॥

वयन्ते अद्य ररिमाहिकाममुत्तानहस्ता नमसो- पसद्य । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ७५ ॥

इसका उत्कील ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मं०-(अग्ने, उत्तानहस्ताः, वयं, नमसा, उपसद्य, अद्य, यजिष्ठेन अस्रेधता, मन्मना, मनसा, कामं हविः, ते, ररिम) हे अग्ने ! दानके निमित्त खुलेहुए हैं हाथ जिनके ऐसे हमने नमस्कारपूर्वक निकट जाकर आज यज्ञ करनेमें तत्पर अनन्यगामि एकाग्र देवताओंकी महिमा और आत्माके स्वरूपको जाननेवाले प्रधान मनसे इच्छित हविको आपके अर्थ दिया (विप्रः, देवान्, यक्षि) हे अग्ने ! वुद्धिमान् तुम देवताओंको तृप्त करो ॥ ७५ ॥

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञम्प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

इसका उत्कील ऋ० अनु० छ०, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ (धामच्छत्, सः, देवः, अग्निः, इन्द्रः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, सचेतसः,

विश्वेदेवाः, नः, यज्ञं, शुभे, मावन्तु) लोकोंकी न्यूनताको पूर्ण करनेवाले, रीतोंको भरनेवाले वा परमधाममें विराजमान, दिव्य गुणधारी, अग्नि, देवराज इन्द्र, चतुर्मुख ब्रह्मा, देवगुरु बृहस्पति तथा परम बुद्धिमान् विश्वेदेवा वा सम्पूर्ण देवता हमारे यज्ञको इष्टस्थान स्वर्गमें स्थापन करें ॥ ७६ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

इस मंत्रकी व्याख्या अ० १३ मं० ५२ में होगई है, जिसका सरल भाव यह है कि–हे नित्यतरुण अग्नि देव तुम हमारी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंको सुनो यजमानके वंश और सम्बन्धियों की बिना याचनाके ही रक्षा करो ॥ ७७ ॥

इतिश्री यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका भाषानुवाद सहित अष्टादश अध्याय समाप्त.

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ।

॥ हरिः ओं ॥ स्वाद्वीन्त्वा स्वादुना तीव्रान्तीव्रेणामृताममृतेन मधुमतीम्मधुमता सृजामि सꣳ सोमेन । सोमोस्यश्विभ्याम्पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

अब तीन अध्यायोंमें सौत्रामणि यज्ञके मंत्र कहेजायँगे, इस यज्ञको धनसमृद्धि, पशुवृद्धि और छिनेहुए राज्यको फिर चाहनेवाले करते हैं, सोमरस बनानेके मंत्र । मंत्रार्थ–(स्वाद्वीं, तीव्रां, अमृतां, मधुमतीं, त्वा, स्वादुना, तीव्रेण, अमृतेन, मधुमता, सोमेन, संसृजामि) हे अन्नरस ! अतिस्वादु तीव्र अमृतकी समान मधुर और गुणकारी मीठे रससे भरेहुए तुझको, स्वादु तीव्र अमृतसमान मधुररस भरे सोमके साथ मिलाताहूँ (सोमः, असि) हे सोममिले अन्नरस तुम सोम हो (अश्विभ्यां, पच्यस्व) दोनों अश्विनीकुमारोंके निमित्त पको (सरस्वत्यै, पच्यस्व) सर-

स्वतीके निमित्त पवित्र होओ (सुत्राम्णे, इन्द्राय, पवस्व) रक्षा करनेवाले इन्द्रके निमित्त पवित्र होओ ॥ १ ॥

परीतो षिञ्चता सुतᳪ सोमो य उत्तमᳪ हविः । दधन्वायो नर्यो अप्स्वन्तरासुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, बृहती छ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ-(यः, सोमः, हविः, या, यः, नर्यः, दधन्) हे ऋत्विजो ! जो सोम श्रेष्ठ हवि है और जो सोम मनुष्योंका हितकारी होताहुआ यजमान को धारण कराताहै (अप्सु, अन्तः, सोमं, अद्रिभिः, आसुषाव) जलोंमें वर्तमान जिस सोमको पत्थरोंसे अध्वर्युने अभिषुत किया है (सुतं, इतः, परिषिञ्चत) उस अभिषुत सोमको इस गौके दूध से सींचो अर्थात् देवताओंको श्रेष्ठ हविमें गौ का दूध मिलाओ २

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यस्सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

इसमें २ मं० हैं । दोनोंका आभूति ऋ०, गायत्री छ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ-(प्रत्यङ्, अतिद्रुतः, सोमः, वायोः, पवित्रेण पूतः) अधोमुख शीघ्रतासे निकला हुआ सोम वायु देवताके पवित्रसे शुद्ध हुआ (इन्द्रस्य, युज्यः, सखा) इन्द्रका योग्य सखा है अर्थात् हे सोम तुम शीघ्र इस पात्रमें प्रवेश करसकते हो वायु देवताके अनुग्रहसे तुम पवित्रकेद्वारा पवित्र होतेहो, इन्द्रके योग्य प्यारे सखा हो (प्राङ्, अतिद्रुतः, सोमः, वायोः, पवित्रेण, पूतः, सोमः, इन्द्रस्य, युज्यः, सखा) पूर्वमुख निकलाहुआ सोम वायुके पवित्रसे पवित्र हुआ जोकि-इन्द्रका योग्य सखाहै अर्थात् हे सोम तुम शीघ्र ही इस पात्रमें से निकलसकते हो, वायुदेवताके अनुग्रह से तुम पवित्र के द्वारा पवित्र होते हो ॥ ३ ॥

पुनाति ते परिस्रुतᳪ सोमᳪ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥

के भोज्य पदार्थों को सम्पादन करो (ये, बर्हिषः, नमः, उक्ति, यजन्ति) जो कुशासनपर बैठेहुए हविरूप अन्न को लेकर मंत्रोच्चारण करतेहुए होमते हैं (उपयामगृहीतः, असि) हे सोम ! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (अश्विभ्याँ, त्वा) अश्विनीकुमारों की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं (एषः, ते, योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (तेजसे, त्वा) तेज के निमित्त तुमको यहां सम्पादन करता हूं (सरस्वत्यै, त्वा) हे पयोग्रह ! तुमको सरस्वती देवता की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूं (वीर्याय, त्वा) हे दूसरे पयोग्रह ! वीरता पाने के निमित्त तुमको यहाँ स्थापन करता हूं (सुत्राम्णे, इन्द्राय, त्वा) हे तृतीय पयोग्रह ! रक्षक इन्द्र देवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं (बलाय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है बल के निमित्त तुमको स्थापन करता हूं ॥ ६ ॥

नाना हि वान्देवहितꣳ सदस्कृतम्मा सꣳसृक्षाथाम्परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

इसका आभूति ऋ०, जगती छ०, सुरासोम दे० है । अभिमंत्रण करे । मंत्रार्थ -(हि, वां, देवहितं, नाना, सदः, कृतं) हे सुरासोम क्योंकि तुम दोनोंके, देवताओंके हितकारी पृथक्स्थान कियेगए हैं (परमे, व्योमन्, मा, संसृक्षाथाम्) इसकारण आकाशकी समान विशाल हवनस्थानमें संयोग मतकरो, क्योंकि आहवनीयमें दूध और दक्षिणाग्निमें सुरा होमीजातीहै अतः अलग रहो (त्वं, शुष्मिणी, सुरा, असि) हे सुरारस तुम बलवान् देवताओंके स्वीकार करने योग्य रसयुक्त हो (एषः, सोमः, स्वां योनिं, प्रविशन्ती, सोमं, मा, हिंसीः) यह सोमशान्तहै इसकारण अपने स्थान दक्षिणाग्निमें प्रवेश करतेहुए सोमको पीड़ा मत दो ७

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनन्तेजः सारस्वतं वीर्यं

मैन्द्रम् बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

इसका आश्रुति ऋ०, वि० आ० प० छ०, सोमदे० है । मंत्रार्थ-(उपयामगृहीतः, असि) उपयामपात्र में गृहीत हो (तेजः, आश्विनम्) तेजःस्वरूप तुमको अश्विनीकुमारकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ (एषः, ते, योनिः) हे प्रथम सुराग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है (मोदाय, त्वा) आनन्दकेनिमित्त तुमको यहां स्थापन करता हूँ (वीर्यं,सारस्वतं) हे द्वितीय सुराग्रह ! वीर्यस्वरूप तुमको सरस्वती देवताकी प्रीति के निमित्त उपयामपात्रमें ग्रहण करताहूँ (आनन्दाय, त्वा,) हे द्वितीय सुराग्रह आनन्दकी प्राप्ति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करताहूँ (बलं, ऐन्द्रम्) हे तृतीयसुराग्रह बलकी प्राप्तिके निमित्त इन्द्रदेवताकी प्रसन्नता के अर्थ उपयामपात्रमें तुमको ग्रहण करताहूँ (महसे, त्वा) हे तृतीयसुराग्रह ! महत्त्वको पानेकी कामना से तुमको यहां स्थापन करता हूं ॥ ८ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलम्मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

इसमें ६ मंत्र हैं । सबका आश्रुति ऋ०, है, छन्द १ । १ का आसुरी जगती, २ । ३ । ४ का आसुरीत्रि०, ६ का प्राजा० अनु० और देवता १ । २ । ३ । ४ । ६ का सुरासोम तथा ५ का सुरा है । मंत्रार्थ-(तेजः, असि, तेजः, मयि, धेहि) हे दूध ! तेजको बढानेवाले हो, मुझमें तेजको धारण करो (वीर्यं, असि, वीर्यं, मयि, धेहि) तुम वीरताहो मुझमें वीरताको स्थापन करो (बलं, असि, बलं, मयि, धेहि) तुमबलहो मुझमें बलको धारणकरो (ओजः, असि, मयि, ओजः धेहि) हे सुरारस ! तुम कान्ति हो मुझमें कान्तिको स्थापन करो (मन्युः,असि,मन्युं मयि,धेहि) तुम

अहंकार हो मुझमें सद्भावके अहंकारको धारण करो (सहः,असि, सहः,मयि, धेहि) तुमबल हो मुझमें बल स्थापन करो ॥ ९ ॥

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं्च रक्षति । श्येनम्पतत्रिणंथ सिंथ्हसेमम्पात्वथ्हंसः ॥ १० ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, अनु०छं० विषूचिका दे० है । नाभिसे ऊपर नीचे इसको पढ़कर अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता यजमानको श्येनविच्छसे पवित्र करै । मंत्रार्थ—(या, विषूचिका, व्याघ्रं, च, वृकं, उभौ, रक्षति) जो सर्वत्र फैलनेवाला उदररोग व्याघ्र और भेड़ियोंके समूहकी रक्षा करता है (श्येनं, पतत्रिणं, सिंहम्) श्येन पक्षी और सिंहकी रक्षा करता है (सा, इमं, अंहसा, पातु) वह इस यजमानकी पापरूप व्याधिसे रक्षा करै अर्थात् सिंह भेड़िये आदिको विषूचिका रोग नहीं होता है, तैसेही हमारे इस यजमानको भी न हो ॥ १० ॥

यदापिपेष मातरम्पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्नेऽअनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृचस्थ सम्मा भद्रेण पृङ्क्त विपृचस्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥ ११ ॥

इसमें ३ मं० हैं । सबका हैमवर्चि ऋ०, १ का बृहती २ । ३ का भि० छन्द है । देवता १ का अग्नि, २ का पयोग्रह, ३ का सुराग्रह है । १ से अध्वर्यु यजमान को अग्नि दिखावे, मंत्रार्थ—(प्रमुदितः, धयन्, अहं, यत्, मातरं, आपिपेष, अग्ने, तत्, एतत्, अनृणः, भवामि) अति प्रसन्नता से स्तन पीतेहुए पुत्ररूप मैंने जो माता को चरणों से ताड़ित किया है अग्ने ! वह मैं यह तुम्हारी साक्षी में तीनों ऋणों से मुक्त होता हूं (मया, पितरौ, अहतौ) मुझ से माता पिता पीड़ित नहीं हुए अर्थात् जो पुत्र प्रत्युपकार नहीं करसकता वही मा बाप का हन्ता है । पयोग्रह को स्पर्श करै (सम्पृच,ः स्थ, मा, भद्रेण, सम्पृङ्क्तम्) हे पयोग्रह संयोजक हो इसकारण मुझको कल्याण से संयुक्त करो । सुरा

ग्रह को स्पर्श करे-(विपृचः, स्थ, मा, पाप्मना, विपृङ्क्त) हे ग्रहो ! तुम वियोजक हो इसकारण मुझको पाप से अलग करो ॥

देवा यज्ञमतन्वत भेषजम्भिषजाश्विना। वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

यहां से २० कण्डिका ब्राह्मणरूप हैं संस्काररहित रसको पीनेसे इन्द्रके बल, वीर्य, प्रधानताको असुरोंने हरलिया तब जो शत्र दिन स्वाजप मद्य को सुरा कहकर पीते हैं; उनके पतित होनेमें तो कुछ भी सन्देह नहीं है अतएव श्रुति कहती है-(देवाः, भेषजं, यज्ञं, अतन्वत) देवताओंने इन्द्रके औषधरूप सौत्रामणि यज्ञको विस्तृत किया (भिषजा, अश्विना, सरस्वती, वाचा, वीर्याणि, दधतः) वैद्य अश्विनीकुमार और भयोरूप सरस्वती वाणीके द्वारा इन्द्रमें सामर्थ्य धारण कीगई ॥ १२ ॥

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि। क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

(शष्पाणि, दीक्षायै, तोक्मानि, प्रायणीयस्य, रूपं, लाजाः, क्रयस्य, सोमस्य, रूपं, मधु, सोमांशवः) नए उत्पन्न हुए व्रीहि इस यज्ञकी दीक्षाके निमित्त आवश्यक होतेहैं; नवीन अङ्कुर जो प्रायणीय इष्टकारूप जानने खीलें मोललिये सोमका रूपहै, शोठी खीलें सोमके खण्ड हैं ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपम्मासरम्महावीरस्य नग्नहुः। रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरा सुता ॥ १४ ॥

(मासरं, आतिथ्यरूपम्) आतिथ्यके निमित्त व्रीहि श्यामाक लाजा आदिमिलाहुआ चूर्णहै (नग्नहुः, महावीरस्य) २६ वस्तुओंका मिलकर बनाहुआ नग्नहु पदार्थ महावीरस्थानी है (तिस्रः, रात्रीः, आसुता, सुरा, उपसदां, रूपम्) तीनरात अभिषवण किया हुआ सुरारस उपसद नामक इष्टिका रूपहै ॥ १४ ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत् परिषिच्यते।

अश्विभ्यान्दुग्धंभेषजमिन्द्रायैन्द्रथ्ठ सरस्वत्या १५

(इन्द्राय, ऐन्द्रं, भेषजं, सरस्वत्या, अश्विभ्यां, दुग्धं, परिस्रुत, परिषिच्यते) इन्द्रके निमित्त इन्द्रसम्बन्धी औषध, सरस्वती और अश्विनीकुमारोंके लिये दुहाहुआ दूध अभिपुत महौषधि रस सुराके संग तीन दिन सींचाजाताहै वह (क्रीतस्य, सोमस्य, रूपम्) क्रयकियेहुए सोमका रूप है अर्थात् सोमके साथ परिषेक करनेसे अश्विनीकुमार, सरस्वती और इन्द्रके निमित्त भिन्न २ प्रकारके दूधकी आवश्यकताहै ॥ १५ ॥

आसन्दी रूपथ्ठ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुरा-धानी । अन्तर उत्तरवेद्या रूपङ्कारोतरो भिषक् ॥ १६ ॥

(आसन्दी, राजासन्द्यै) यजमानके अभिषेक की चौकी सोम की मचिकाका रूप है (सुराधानी, कुम्भी, वेद्यै) सुरा रखनेकी कलशी सोमकी वेदीकारूप है (अन्तरः, उत्तरवेद्याः, रूपम्) दोनो वेदियोंका मध्यभाग उत्तरवेदीका रूप है (कारोतरः, भिषक्) सुरापावनकी चलनी इन्द्रकी औषधि है ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥ १७ ॥

(वेद्या, वेदिः, समाप्यते) वर्त्तमान वेदीके द्वारा सोमकी वेदी भलेप्रकार प्राप्त होतीहै (बर्हिषा, बर्हिः, इन्द्रियम्) वर्त्तमान कुशासे सोम सम्बन्धी कुशा प्राप्त होतीहै तथा बल प्राप्त होताहै (यूपेन, यूपः, आप्यते) वर्त्तमान यूपसे सोम सम्बन्धी यूप प्राप्त होताहै (अग्निना, प्रणीतः, अग्निः) वर्त्तमान अग्निसे प्रणीत नामक अग्नि प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रा-यैन्द्रथ्ठ सदस्कृतम्पत्नीशालङ्गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

(यत्, अश्विना, हविर्धानं) जो अश्विनी कुमार हैं वह हविर्धान है (यत्, सरस्वती, आग्नीध्रम्) जो सरस्वतीहै वह आग्नीध्र

है (इन्द्राय, ऐन्द्रं, सदः, पत्नीशालं, कृतं, गार्हपत्यः) इन्द्रके निमित्त जो इन्द्रकी देवतावाला स्थान पत्नीशाला नामक रक्खा गया वह गार्हपत्य है ॥ १८ ॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रया- जेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

(प्रैषभिः, प्रैषान्, आप्नोति) भेजनेरूप प्रैषनामक यज्ञकर्मों से प्रैषों को पाता है (आप्रीभिः, यज्ञस्य, आप्रीः) प्रयाज याज्यों से यज्ञ की प्रसन्न करनेवाली क्रियारूप प्रयाजों को पाता है (प्रयाजेभिः अनुयाजान्) प्रयाजों से उत्तम यज्ञकर्मरूप प्रयाजों को, अनुयाजों से अनुकूल यज्ञ पदार्थरूप अनुयाजों को पाता है (वषट्कारेभिः, आहुतीः) वषट्कारों से वषट्कारों को और आहुतियों से आहुतियों को पाता है ॥ १९ ॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीᳬष्या । छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

(पशुभिः, पशून्, आप्नोति) पशुओं से पशुओं को पाता है (पुरोडाशैः, हवींषि, आप्नोति) पुरोडाश नामक हवियों से हवियों को प्राप्त होता है (छन्दोभिः, सामधेनीः) छन्दों से छन्दों को, सामधेनियों से सामधेनियों को प्राप्त होता है (याज्याभिः, वषट्कारान्) याज्यों से याज्यों को वषट्कारों से वषट्कारों को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि । सोमस्य रूपᳬ हविष आमिक्षा वाजिनम्मधु ॥ २१ ॥

(धानाः, करम्भः, सक्तवः, परीवापः, पयः, दधि, सोमस्य, रूपम्) भुनेहुए धान्य खीलें, उदमन्थ, सत्तू, हविष पंक्ति, दूध, दही सोम का रूप है (आमिक्षा, मधु, वाजिनं, हविषः) गरम दूध में दही डालनेपर होनेवाला गाढ़ाभागरूप आमिक्षा, शहत और अन्न हविका रूप है अर्थात् सोम की सामग्री है ॥ २१ ॥

धानानाᳬ रूपं कुवलम्परीवापस्य गोधूमाः ।

सक्तूनाᳫं रूपम्बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

(कुवलं, धानानां, रूपं) इस यज्ञ में कोमल वेर के फल पूर्वोक्त धान की खीलोंका रूप हैं (गोधूमाः, परीवापस्य) गेहूं हविष्पंक्ति का रूप हैं (बदरं, सक्तूनां, रूपं) बदरीफल सतुओं का रूप हैं (उपवाकाः, करम्भस्य) जौ करम्भ का रूप हैं ॥२२॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य रूपं वाजिनᳫं सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

(यव, यवाः, पयसः, रूपं) जो यव हैं वह दूध का रूप हैं (कर्कन्धूनि, दध्नः, रूपं) बड़े बदरीफल दही का रूप हैं (वाजिनं, सोमस्य, रूपं) अन्न सोम का रूप है (आमिक्षा, सौम्यस्य) दधि मिला गरम दूध सोम में पकेहुए चरुका रूप है ॥ २३ ॥

आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः।

यजेति धाय्यारूपम्प्रगाथा येयजामहाः ॥ २४ ॥

शास्त्रसम्पत्ति कहते हैं–(आश्रावय, इति, स्तोत्रियाः) सुनाओ यह शब्द स्तोत्र हैं (प्रत्याश्रावः, अनुरूपः) पीछे सुनायाजाता है यह उत्तर तीन ऋचावाले अनुवाक का रूप है (यज, इति, धाय्यारूपं) यजन करो यह शब्द धाय्या का रूप है (येयजामहाः, प्रगाथाः) येयजामहे यह शब्द प्रगाथा का रूप है ॥२४॥

अर्द्धऋचैरुक्थानाᳫं रूपम्पदैराप्नोति निविदः।

प्रणवैः शस्त्राणाᳫं रूपम्पयसा सोम आप्यते ॥२५॥

(अर्धर्चैः, उक्थानां, रूपं, आप्यते) अर्द्ध ऋचाओं से उक्थों का रूप पायाजाता है (पदैः, निविदः, आप्नोति) प्रत्येक पदों से न्यूंखों को पाता है (प्रणवैः, शस्त्राणां रूपं) प्रणवों से शस्त्रों का रूप पायाजाता है (पयसः, सोमः) दूध से सोम प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

अश्विभ्याम्प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रम्माध्यन्दिनम्।

वैश्वदेवᳫं सरस्वत्या तृतीयमाप्तᳫं सवनम् ॥ २६ ॥

सवनसम्पत्तिको कहते हैं–(अश्विभ्यां, प्रातः, सवनं) अश्विनी

कुमारोंके द्वारा प्रातःसवन मिलता है (इन्द्रेण, ऐन्द्रं माध्यन्दिनम्) इन्द्रके द्वारा इन्द्रदेवतावाला माध्यन्दिन सवन प्राप्त होताहै (सरस्वत्या, वैश्वदेवं, तृतीयं, आप्तम्) सरस्वतीके द्वारा विश्वेदेवाका तीसरा सवन प्राप्त हुआ अर्थात् तीनोंकालमें इन देवताओं की आराधना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥

(वायव्यैः, वायव्यानि, आप्नोति) वायव्य सोमपात्रोंके द्वारा वायव्य पात्रोंको पाताहै (सतेन, द्रोणकलशम्) कलशके समान के वेतके पात्रसे द्रोणभरके कलशको पाताहै (कुम्भीभ्यां, अम्भृणौ, सुते) सौ छिद्रवाली झारी और दक्षिणाग्निपरके सुराधानी पात्र से पूतभृत् और आधवनीयको सोमाभिषव होनेपर पाताहै (स्थालीभिः, स्थालीः, आप्नोति) स्थालियों के द्वारा स्थालियों को प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते॥२८॥

(यजुर्भिः, ग्रहाः, आप्यन्ते) यजुर्मन्त्रोंके द्वारा ग्रह प्राप्त होतेहैं (ग्रहैः, स्तोमाः, विष्टुतीः, च) ग्रहोंके द्वारा स्तोम और अनेकों प्रकारकी स्तुति सम्पन्न होतीहैं (छन्दोभिः, उक्थाः, शस्त्राणि) छन्दोंसे उक्थ और कथन करनेयोग्य स्तुतियें सम्पन्न होतीहैं (साम्ना अवभृथः, आप्यते) सामसे अवभृथ प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः शंयुना ।
पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥ २९ ॥

(इडाभिः, भक्षान्, आप्नोति) अन्नोंसे भक्ष्य पदार्थोंको पाता है (सूक्तवाकेन, आशिषः) सूक्तवाक्योंके द्वारा आशीर्वादोंको पाता है (शंयुना, पत्नीसंयाजान्) शंयुहोमसे शंयुको और पत्नीसंयाज से पत्नीसंयाजोंको पाताहै (समिष्टयजुषा, संस्थाम) यजुःसमूह से संस्थाको पाताहै ॥ २९ ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

(व्रतेन, दीक्षां, आप्नोति) दुग्धशेष भक्षणरूप चार रात्रिके व्रत से दीक्षाको पाताहै (दीक्षया, दक्षिणां, आप्नोति) दीक्षासे दक्षिणा को पाताहै (दक्षिणा, श्रद्धां) दक्षिणा से आस्तिक्यबुद्धि को (श्रद्धया, सत्यं, आप्यते) और आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धाके द्वारा सत्यस्वरूप परमात्माको पाताहै ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेत-
त्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

(यत्, देवैः, ब्रह्मणा, कृतम्) जो देवताओंने और ब्रह्मा प्रजापतिने कियाहै (यज्ञस्य, एतावत्, रूपम्) उस यज्ञका इतना ही रूप है (सौत्रामणीसुते, यज्ञे, तत्, एतत्, सर्वं, आप्नोति) सौत्रामणि यज्ञमें सुरासोमका अभिषवण होनेपर वह यह याग संपूर्ण प्राप्त होताहै । अर्थात् जो मद्यपान करतेहैं वह भ्रष्ट होजातेहैं उनका तेज बल बुद्धि नष्ट होजाताहै, जैसे कि—स्वर्गके अधिपति इन्द्रका जातारहा, तब वह सौत्रामणिके द्वारा चिकित्सा से ठीक हुआ, इसकारण पुरुषको चाहिये कि—मद्यपानादि नीचकर्मोंसे बचे यही इस प्रकरणका औपचरूप उपदेश है ॥ ३१ ॥

सुरावन्तम्बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति
महिषा नमोभिः । दधानाः सोमन्दिवि देवता-
सुमदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि सरस्वती इन्द्र दे० हैं। अध्वर्यु होम करै। मंत्रार्थ—(नमोभिः, दिवि, देवतासु, सोमं, दधानाः, महिषाः, बर्हिषदं, सुरावन्तं, सुवीरं, यज्ञं, हिन्वन्ति) नमस्कार वा अन्नों के द्वारा स्वर्ग में स्थित देवताओं में सोम को धारण करतेहुए महान् ऋत्विज् कुशासनपर बैठेहुए देवताओं से युक्त सुरारसवाले और जिसमें श्रेष्ठ ऋत्विज हैं ऐसे सौत्रामणि यज्ञ को प्राप्त कराते हैं; इस यज्ञ में (स्वर्काः, इन्द्रं, यजमानाः,

मंत्रार्थ-(सोम्यासः, पितरः, शतायुषा, पवित्रेण, मा, पुनन्तु) सौम्यमूर्ति पितर पूर्ण आयु देनवाले पवित्रे से मुझको पवित्र करैं (पितामहाः, मा, पुनन्तु) पितामह मुझको पवित्र करैं (प्रपितामहाः, पुनन्तु) प्रपितामह पवित्र करैं (पितामहाः, शतायुषा, पवित्रेण, मा, पुनन्तु) पिता के पिता शतायु देनेवाले पवित्रे से मुझे पवित्र करैं (प्रपितामहाः, पुनन्तु) प्रपितामह मुझको अति पवित्र आनन्दयुक्त सौ वर्ष की आयुसे पवित्र करैं (विश्वं, आयुः, व्यश्नवै) इसप्रकार मैं संपूर्ण आयु को पाऊँ ॥ ३७ ॥

अग्न आयूᳪषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अग्ने, आयूंषि, पवसे) हे अग्ने ! तुम आपही आयु प्राप्तकरानेवाले कर्मोंको करतेहो (नः, इषं, ऊर्जं, आसुव) हमको धान आदि अन्न और दही आदिरस दीजिये (आरे दुच्छुनां, बाधस्व) दूर स्थित दुष्ट कुत्तोंकी समान दुर्जनोंको बाधा दो, जिससे हम उन के आक्रमणसे बचैं ॥ ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३९ ॥

इसका वैखानस ऋ०, अनु० छ०, देवजनधीविश्वभूतजातवेदस दे० है । मंत्रार्थ-(देवजनाः, मा, पुनन्तु) देवानुगामी भक्तजन मुझको पवित्र करैं (मनसा, धियः, पुनन्तु) मनसहित बुद्धि या मनको पवित्र करैं (विश्वाभूतानि, पुनन्तु) सकल प्राणी मुझको पवित्र करैं (जातवेदः, मा, पुनीहि) हे अग्ने ! तुम भी मुझको पवित्र करो ॥ ३९ ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु ॥ ४० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (देव, अग्ने, दीद्यत्, शुक्रेण, पवित्रेण, मा, पुनीहि) हे देव

अग्ने ! दीप्तिमान् तुम शुद्ध पवित्रसे अर्थ व शुद्धउपायोंके द्वारा मुझको पवित्र करो (क्रतुन, अनु, क्रत्वा) हमारे यज्ञको देखकर अपने उत्पन्नादिकर्मोंसे पवित्र करो ॥ ४० ॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने वितंतमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

इसका प्रजापति ऋ० गायत्री छ०, यज्ञाग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, ते, अर्चिषि, अन्तरा, यत्, ब्रह्म, पवित्रं, विततं, तेन, मा, पुनातु) हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाके मध्यमें जो पवित्ररूप शुद्ध ब्रह्म विस्तृत है उसके प्रभावसे मुझको पवित्र करो ॥ ४१ ॥

पवमानस्सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, गाय० छ०, वायु देवता है । मंत्रार्थ—(यः, विचर्षणिः, पवमानः, नः, पोता) जो देव किये न किये को जाननेवाला स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है (सः, अद्य, पवित्रेण, मा, पुनातु) वह आज पवित्रसे मुझे पवित्र करे ॥ ४२ ॥

उभाभ्यान्देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
माम्पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

इसका प्रजापति० ऋ० गाय० छ०, सूर्य दे० है । मंत्रार्थ—(देव, सवितः, उभाभ्यां, पवित्रेण, च, सवेन, मां, विश्वतः, पुनीहि) हे देव सबके प्रेरक ! तुम, दोनोंसे अर्थात् शुद्ध करनेवाले पवित्रके द्वारा और आज्ञाके द्वारा मुझको सब ओरसे पवित्र करो क्योंकि—तुम्हारी आज्ञासे यज्ञसिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्वयस्तन्वो वीतपृष्ठाः । तया मदन्तस्सधमादेषु वयᳬ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

इसका प्रजाप० ऋ०, त्रि० छं०, वैश्वदेवी दे० है । मंत्रार्थ—(देवी, पुनती, वैश्वदेवी, आगात्) नानाप्रकारके अवतारोंसे क्रीडा

करनेवाले महानारायणकी शक्ति, पवित्र करतीहुई, विश्वभरको प्रकाशित करनेवाली परानामक प्राप्त हुई (यस्यां, इमाः, बह्वचः तन्वः, वीतपृष्ठाः)जिसमें दीखतेहुए यह बहुतसे शरीरधारी स्तुति करनेवालेहैं(तया, सधमादेषु महन्तः, वयं, रयीणां, पतयः, स्याम) उसपराशक्तिसे यज्ञस्थानोंमें आनन्द पातेहुए हम धनोंके स्वामीहों

ये सं॒मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यमरा॒ज्ये । तेषां॑

लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥ ४५ ॥

इसका प्रजा० ऋ. अनु० छ०. पितर दे० है । अपसव्य दक्षिण मुख होकर यजमान एकवार लिये घृतको जुहूसे अग्निमें होमै । मंत्रार्थ-(ये, समानाः, समनसः, पितरः, यमराज्ये) जो जाति मर्यादा आदिसे समान सपिण्डपितर यमलोकमें वर्तमान हैं(तेषां लोकः, स्वधा, नमः, यज्ञः, देवेषु, कल्पताम्) उन पितरोंके लोक में स्वधा नामक अन्न दृष्टिगोचर हो अथवा स्वधा अन्न और नमस्कार प्राप्त हो, पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओंको तृप्त करनेमें समर्थ हो ॥ ४५॥

ये सं॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः ।

तेषा॒ᳪश्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳪ समाः॑ ॥

इसका प्रजा०ऋ०,अनु०छ०,श्री दे०है। यजमान उपवीती होकर उत्तरवेदीमें आहुति देय मंत्रार्थ-(ये, जीवेषु,समानाः, समनसः, मामकाः,जीवाः) जो प्राणियोंमें समदर्शी मनस्वी हमारे सपिण्ड पितर हैं (तेषां,श्रीः,अस्मिन्, लोके,शतं,समाः,मयि, कल्पताम्) उनकी लक्ष्मी इस भूलोकमें सौ वर्ष पर्यन्त मुझमें रहै ॥ ४६ ॥

द्वे सृ॒ती ऽअ॑शृणवम्पितॄ॒णाम॒हन्दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् । ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तर॒म्मा॒तर॑ञ्च ॥ ४७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०. त्रि० छ०, देवयान पितृयान मार्ग दे० है दूधका होम करै । मंत्रार्थ-(अहं, मर्त्यानां, देवानां, उत, पितॄणां द्वे, सृती, अशृणवम्) मैंने मरणधर्मा प्राणियोंके देवताओंके और

पितरोंके गमन करनेयोग्य दो मार्गोंको सुनाहै (यत्, पितरं, च, मातरं, अन्तरा, इदं, एजत्, विश्वं, ताभ्यां, समेति) जो द्युलोक और भूलोकके मध्यमें वर्तमान है, यह क्रियावान् जगत् उन दोनों मार्गोंसे प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥

इदᳬं हविः प्रजननम्मे अस्तु दशवीरᳬं सर्वगणᳬं स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजाम्बहुलाम्मे करोत्वन्नम्पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, स्यवसानाष्टि छं०, यजमानाशीः दे० है । दूध पिये । मंत्रार्थ-(इदं, प्रजननं, दशवीरम्) यह प्रजाको उत्पन्न करनेवाला तथा दशप्राण और दश इन्द्रियोंको उन्नति देनेवालाहै (सर्वगणं) सब अङ्गोंको पुष्टिदाता (आत्मसनि) आत्माका प्रसन्न कर्त्ता (प्रजासनि) प्रजाको उन्नतिदाता (पशुसनि) पशुवृद्धिकारी (लोकसनि) लोकमें प्रतिष्ठादायक (अभयसनि) बल० देकर अभयकरनेवाला(हविः, मे, स्वस्तये, अस्तु) यह हवि मुझे कल्याणदायक हो (अग्निः, मे, प्रजां, बहुलां, करोतु) अग्नि देवतामेरी प्रजाको बहुत करे (अस्मासु, अन्नं, पयः, रेतः, धत्त) हमारे विषैअन्न, दूध और वीर्यको धारण करै ॥ ४८ ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

इसका शंख ऋ०, त्रि० छं०, पितर दे० है । पितरोंका उपस्थान करै । मंत्रार्थ-(अवरे, उत, परासः, उत्, मध्यमाः, सोम्यासः, उदीरताम्) इस लोकमें स्थित पितर और परलोकमें स्थित पितर और मध्यलोकमें स्थित सोमभागी पितर क्रमसे ऊपरके लोकको प्राप्त हों (ये, असुं, ईयुः, ते, अवृकाः, ऋतज्ञाः, पितरः, हवेषु, नः, अवन्तु) जो पितर प्राणरूपको प्राप्तहैं वह शत्रुरहित होनेसे निरपेक्ष सत्यके ज्ञाता, स्वाध्यायनिष्ठ पितर आह्वानों में हमारी

रक्षा करें ॥ ४९ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

इसका शंख ऋ० वि० त्रि० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ-(नवग्वा,सोम्यासः, अंगिरसः, अथर्वाणः,भृगवः, नः, पितरः) स्तुति के योग्य वा नवीनगतिवाले, सोमसम्पादक, अङ्गिरावंशी अथर्ववंशी, भृगुवंशी हमारे पितर अर्थात् जो इससमय पितृलोक धाम को प्राप्त हुएहैं (तेषां, यज्ञियानां, सुमतौ, भद्रे, सौमनसे, अपि, वयं, स्याम) उन यज्ञमें पूजनीय पितरोंकी सुन्दर बुद्धिमें तथा कल्याणकारक सुन्दर मनमें भी हम हों अर्थात् इनकी बुद्धि और मन हमारा कल्याण करने में लगे ॥ ५० ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ-(ये, सोम्यासः, वशिष्ठाः, नः, पूर्वे, पितरः, सोमपीथं, अनूहिरे) जिन सोमसम्पादक वशिष्ठवंशी हमारे पूर्व पितरोंने सोमपान के निमित्त देवताओंका आवाहन किया था, वह ही इससमय सोमपानके निमित्त आमंत्रित हुएहैं (उशन्, यमः, तेभिः, उशद्भिः, संरराणः, प्रतिकामं, हवींषि, अत्तु) सोमकी इच्छावाला पितृपति उन सब पितरोंके सहित प्रसन्न होताहुआ हमारी दीहुई हवियोंको यथेष्ट भक्षण करे ॥ ५१ ॥

त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् । तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ५२ ॥

इसका शंख ऋ०, त्रासी उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ (सोम, त्वं, प्रचिकितः)हे सोम ! तुम कान्तियुक्त वा चेतनता-

युक्तहो (त्वं, मनीषा, रजिष्ठं, पन्थां, अनुनेषि) तुम अपनी बुद्धिके द्वारा अतिसरल देवयानमार्गको प्राप्त करातेहो (इन्दो, नः, धीराः, पितरः, तव, प्रणीती, देवेषु, रत्नम्, अभजन्त) हे सोम ! हमारे धैर्यवान् पितरोंने तुम्हारे आश्रयसे देवताओंमें श्रेष्ठ यज्ञ फलको पायाहै ॥ ५२ ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्म्माणि चक्रुः पवमान धीराः । वन्वन्नवातः परिधीँ२रपोर्णुहि वीरेभिरश्वैर्म्मघवा भवा नः ॥ ५३ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी त्रि० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(पवमान, सोम, नः, धीराः, पितरः, त्वया, कर्माणि, चक्रुः) हे शुद्ध करनेवाले सोम ! हमारे धीर पितरों ने तुम्हारे द्वारा यज्ञादि कर्मों को किया, इसकारण प्रार्थना करते हैं कि—(वन्वन्, अवातः, परिधीन, अपोर्णुहि) इस कर्म में लगेहुए वात आदि के उपद्रवों से रहित तुम उपद्रवकारियों को दूर करो (वीरेभिः, अश्वैः, नः, मघवा, आभव), वीर अश्वों के द्वारा हमको सब ओर से धन देनेवाले हूजिये ॥ ५३ ॥

त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आततन्थ । तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ५४ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रा० उ० छं०, पितर दे० है । मंत्रार्थ (सोम, पितृभिः, संविदानः, त्वं, द्यावापृथिवी, अन्वाततन्थ) हे सोम पितरोंके साथ सम्वाद करतेहुए तुमने स्वर्ग और पृथिवी को विस्तारित कियाहै (इन्दो, तस्मै, ते, हविषा, विधेम) हे सोम ! उन तुम्हारे अर्थ हविके द्वारा विधानकरतेहैं (वयं, रयीणां, पतयः, स्याम) हम धनोंके स्वामी हों ॥ ५४ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । त आगतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात ॥ ५५ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् है। बर्हिषद पितरोंका उपस्थान। मंत्रार्थ (बर्हिषदः, पितरः, ते, ऊत्या, अर्वाक्, आगत) हे कुशासनपर विराजमान होनेवाले पितरो! वह तुम रक्षाके निमित्त कल्याण बुद्धिसे समीप आइये (वः, इमा, हव्या, चकृम) तुम्हारे यह हवि हमने संस्कृत किये (आजुषध्वम्) तुम इनको सेवन करो (अथ, शन्तमेन, अवसा, नः, शंयोः, अरपः, दधात) और परमसुखदायक अन्न से तृप्त होकर हमको सुख, अभय और पापका अभाव धारणकरो ५५

आहं पितृन्त्सुविदत्राँ२ अवित्सि नपातञ्च विक्रमणञ्च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः॥ ५६॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी त्रि० छ०, पितर दे० हैं। मंत्रार्थ- (अहं, सुविदत्रान्, पितृन्, आ अवित्सि) मैं कल्याण देनेवाले पितरोंको अभिमुख जानता हूँ (विष्णोः, नपातं, च, विक्रमणं, च, ये, बर्हिषदः, पितरः, स्वधया, सुतस्य, पित्वः, भजन्त, ते, आगमिष्ठाः) व्यापक और अच्युत देवयान मार्गको और अनेक प्रकार के गमनवाले कि-जहांसे लौटकर आना पड़ता है उस पितृयान मार्गको मैं जानता हूं जो कुशासनपर बैठनेवाले पितर स्वधा अन्नके साथ अभिषुत सोमपानको सेवन करते हैं वह यहां आगमन करें॥ ५६॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ ५७॥

इसका शंख ऋ०, भुरिगार्षी पंक्ति छ०, पितर दे० है। मंत्रार्थ (पितरः इह, आगमन्तु) हे पितरो इस यज्ञमें आगमन करो, (प्रियेषु, बर्हिष्येषु, निधिषु, उपहूताः, सोम्यासः, ते, श्रुवन्तु) प्रिय कुशाओंपर स्थित निधिकी समान स्वादिष्ट हवियोंके निमित्त बुलायेहुए जो सोमकेयोग्य पितर हैं, वह हमारे आवाहनको सुनें (ते, अधिब्रुवन्तु, ते, अवन्तु) वह पितामहोंको पुत्रोंसे जो करना

चाहिये सो करें, वह हमारी रक्षा करें ॥ ५७ ॥

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

इसका शंख ऋ०, स्व० साक्षी गाय० छ०, पितर दे० है । अग्निष्वात्त पितरोंका उपस्थान करे । मंत्रार्थ—(सोम्यासः, अग्निष्वात्ताः नः, पितरः, देवयानैः, पथिभिः, आयन्तु) सोमके योग्य अग्नि करके स्वादित हमारे पितर देवयान मार्गोंसे आवें (अस्मिन्, यज्ञे, स्वधया, मदन्तः, अधिब्रुवन्तु, ते, अस्मान्, अवन्तु) इस यज्ञमें स्वधानाम अन्नसे प्रसन्न होतेहुए मानसिक उपदेश दें और हमारी रक्षा करें ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः । अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥ ५९ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० आ० अनु० छ०, पितर दे० है मंत्रार्थ (अग्निष्वात्ताः, पितरः, इह, आगच्छत) हे अग्निष्वात्त पितरो हमारे इस यज्ञमें आओ (सुप्रणीतयः, सदः, सदः, सदत) सुन्दर नीतिवाले तुम प्रत्येक सभास्थानमें विराजो (बर्हिषि, प्रयतानि, हवींषि, अत्त, अथ) कुशाओंपर नियमसे स्थापित हवियोंको सब प्रकार से भक्षण करो (अथ, सर्ववीरं, रयिं, आदधातन) और सकल वीर पुत्रादि तथा धनको सब ओरसे लाकर स्थापनकरो ५९

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

इसका शंख ऋ०, आ० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ—(ये, अग्निष्वात्ताः ये, अनग्निष्वात्ताः, दिवः, मध्ये, स्वधया, मादयन्ते) जिन पितरोंका विधिपूर्वक अग्निदाह-करके और्ध्वदैहिक कर्म हुआ और जिनका अग्निसंदाह नहीं हुआहै और घु-

लोकमें अपने उपार्जित कर्मके भोगसे प्रसन्न रहतेहैं (स्वराट्, तेभ्यः यथावकाशं, प्राण, असुनीतिं, तन्वं, कल्पयाति) स्वर्गपति धर्मराज उन पितरोंको इच्छानुसार इस मनुष्य - सम्बन्धवाले प्राण युक्त शरीरको देताहै, अर्थात् यमकी आज्ञासे उनको स्वकर्मानुसार पवनाश्रित शरीर मिलताहै और वह अपने पुत्रादिके शास्त्रोक्त आवाहनमें जातेहैं, उनकेनिमित्त दियाहुआ अन्न विश्वेदेवाओं के द्वारा सूक्ष्मभावसे प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य आशुः । ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६१ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी त्रि०, छं०, पितरः दे० हैं । मंत्रार्थ—(ऋतुमतः, अग्निष्वात्तान्, हवामहे) ऋतुमान् अग्निष्वात्त नामक पितरोंको हम बुलाते हैं (य, नाराशंसे, सोमपीथं, आशुः) जो पितर चमसपात्र में सोमपान को भोजन करते हैं (ते, विप्रासः, नः सुहवाः, भवन्तु) वह वेदाध्ययनसम्पन्न पितर हमारे सुखसे बुलानेयोग्य हों (वयं, रयीणां, पतयः, स्याम) हम धनों के स्वामी हों ॥ ६१ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे । मा हिꣳसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रि० छं०, पितर देवता है । मंत्रार्थ—(पितरः, विश्वे, जानुः, आआच्य, दक्षिणतः, निषद्य, इमं यज्ञं, अभिगृणीत) हे पितरो ! तुम सब वामजंघाको सबप्रकार झुका कर दक्षिणमुख बैठकर इस यज्ञकी प्रशंसा करो (केनचित्, नः, मा, हिंसिष्ट) जिनकी चंचलतावश किसीप्रकारका अपराध होने से हमारे ऊपर क्रोध मत करो (यत्, पुरुषता, वः, आगः, वयं, कराम) क्योंकि—मनुष्य स्वभाववश तुम्हारा अपराध हमसे भूल से बनजाता है, उसको क्षमा करना ॥ ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिन्धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जन्दधात ॥ ६३ ॥

इसका शंख ऋ०, त्रा० उ० छ०, पितर दे० है। मंत्रार्थ (पितरः, अरुणीनां, उपस्थे, आसीनासः, दाशुषे, मर्त्याय, रयिं, धत्त) हे पितरो! लालऊनके आसनोंपर वा अरुणवर्ण सूर्यकी किरणोंमें स्थित सूर्यलोककी गोदमें बैठेहुए हविदेनेवाले यजमान को धनदो (पुत्रेभ्यः, तस्य, वसुनः, प्रयच्छत) इसके पुत्रोंको इसका धनदो (ते, इह, ऊर्जं, दधात) वह इस यजमानके यज्ञमें आनन्दरस दें ॥ ६३ ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वञ्चिन्मन्यसे रयिम्। तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यन्देवत्राऽऽपनया युजम् ॥ ६४ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी अनु० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (कव्यवाहन, अग्ने, त्वं, चित्, यं, रयिं, मन्यसे) हे पितरोंको अन्न पहुँचानेवाले अग्ने! तुम भी जिस हविरूप धनको उत्तम जानते हो (नः, तं, गीर्भिः, श्रवाय्यं, युजं, देवत्र, आपनय) हमारे उस वषट्कार आदि वाणियोंसे सुननेयोग्य उचित हविको देवताओंके अर्थ सब ओरसे पहुँचाओ ॥ ६४ ॥

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः। प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५ ॥

इसका ऋ० आदि पूर्ववत् है। मंत्रार्थ-(यः, कव्यवाहनः, अग्निः ऋतावृधः, पितॄन्, यक्षत्) जो कव्य पहुँचानेवाला अग्नि सत्य वा यज्ञको बढ़ानेवाले पितरोंका यजन करताहुआ (उ इत्, देवेभ्यः च, पितृभ्यः, हव्यानि, आ, प्रवोचति) वही अग्नि देवताओंके और पितरोंके अर्थ हवियोंको सब ओरसे बतलाताहै ॥ ६५ ॥

त्वमग्न ईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वन्देव प्रयता हवींषि ॥ ६६ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(कव्यवाहन, अग्ने, ईडितः, त्वं, हव्यानि, सुरभीणि, कृत्वी, अवाट्) हे कव्य पहुँचानेवाले अग्निदेव! ऋत्विजोंसे स्तुति किये हुए तुम हवियोंको मनोहर गन्धयुक्त करके पहुँचाते हो (स्वधया पितृभ्यः, प्रादाः) पितृमंत्रोंसे पितरोंको दो (ते, अक्षन्) उन पितरोंने भक्षण किया (देव, त्वं, प्रयता, हवींषि, अद्धि) हे देव! तुम शुद्ध हवियोंको भक्षण करो ॥ ६६ ॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व ॥ ६७ ॥

इसका शंख ऋ०, भा० उ० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ-(ये, पितरः, इह, च, इह, न) जो पितर इस लोकमें हैं जो पितर इस लोकमें नहीं हैं अर्थात् स्वर्गमें हैं, (च, यान्, विद्मः, च, यान्, न, प्रविद्मः) और जिन पितरोंको हम जानते हैं, और जिनको स्मरण न होनेसे नहीं जानते हैं (जातवेदः, ते, यति, त्वम्, उ, वेत्थ) हे अग्ने! वह पितर जितने हैं तुम ही जानते हो (स्वधाभिः, सुकृतं, जुषस्व) पितरोंके यज्ञद्वारा श्रेष्ठ अन्नको सेवन करो ॥ ६७ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥ ६८ ॥

इसका शंख ऋ०, भा० उ० छ०, पितर दे० है। मंत्रार्थ—(अद्य, इदं, नमः, पितृभ्यः, अस्तु) आज यह अन्न पितरोंके निमित्त हो (ये, पूर्वासः, ये, उ, परासः, ईयुः) जो पहिले स्वर्गमें जा चुके हैं जो कृतकृत्य होकर परब्रह्मको प्राप्त हुए हैं (ये, पार्थिवे, रजः, निषत्ता) जो पृथिवीपर होनेवाली अग्निरूप ज्योतिमें स्थित हैं वा स्वर्गमें स्थित हैं (वा, ये, नूनं, सुवृजनासु, विक्षु) अथवा जो पितर अवश्य ही धर्मरूप बलयुक्त प्रजाओं में देह धारण किये वर्त्तमान हैं, उन पितरोंके निमित्त हम अन्न देते हैं। अथवा।

जो (पूर्वासः) यजमानसे पूर्व उत्पन्न ज्येष्ठ भ्रातृपितामहादि (ईयुः) पितृलोकको प्राप्तहुए हों, जो (उपरासः) यजमानका जन्म होनेके उपरान्त उत्पन्न हुए छोटे भ्राता पुत्र आदि पितृलोक को प्राप्तहुए हैं (पार्थिवे, रजसि, आनिषत्ता) रजोगुणकार्यमें हवि स्वीकार करनेको आकर बैठेहैं उनको आहुति देतेहैं ॥ ६८ ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासोऽअग्न ऋतमाशुषाणाः । शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तोऽअरुणीरपव्रन् ॥ ६९ ॥

इसका शंख ऋ०, आ० त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, नः, परासः, प्रत्नासः, ऋतं, आशुषाणाः, पितरः, यथा अधा, शुचि, दीधितिं, इत, अयन) हे अग्ने ! हमारे उत्तम पुरातन यज्ञको पानेवाले पितर जैसे देहयात्राके अनन्तर निर्मलकान्तिवाले सूर्यमण्डलरूप देवयानमार्गको ही प्राप्तहुए (उक्थशासः, क्षामा, भिन्दन्तः, अरुणीः, अपव्रन्) यज्ञोंमें शस्त्रनामक स्तोत्रोंको पढनेवाले और पृथ्वीको वेदीके निमित्त खोदतेहुए अर्थात् सब सामग्री से यज्ञ करतेहुए हमभी सूर्यसम्बन्धी ज्योतिमार्गको पावें ६९

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥

इसका शंख ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (उशन्तः, त्वा, निधीमहि) हे अग्ने ! तुम्हारी इच्छा करतेहुए हम तुमको स्थापन करतेहैं (उशन्तः, समिधीमहि) यज्ञकी इच्छासे तुमको प्रज्वलित करतेहैं (उशन्, उशतः, पितॄन्, हविषे, अत्तवे, आवह) चाहते हुए तुम हवि चाहनेवाले पितरोंको हवि भक्षण करने के निमित्त बुलाओ ॥ ७० ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ ७१ ॥

इसका शंख ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ (इन्द्र, यत, विश्वाः, स्पृधः, अजयः) हे इन्द्र जब तुमने संपूर्ण संग्राम

जीते (अपां, फेनेन, नमुचेः, शिरः, उदवर्तयः) तब जलोंके झाग से नमुचि दैत्यका शिर काटा अर्थात् पापरूप नमुचिको मारकर बल धारण किया ॥ ७१ ॥

सोमो राजामृतᳪं सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ऋतेन सत्यमिन्द्रियᳪं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु ॥ ७२ ॥

इसके अश्वि-सरस्वती-इन्द्र ऋ०, महाबृहती छ०, सोम दे० है। यहांसे पयोग्रहका उपस्थानकरै। मंत्रार्थ-(सुतः, राजा, सोमः, अमृतम्) अभिषुत वनस्पतियोंका राजा सोम अमृतरूप होताहै (ऋजीषेण, मृत्युं, अजहात्) नीरस स्थूल सोमलताके चूर्णसे स्थूलभागको त्यागा अर्थात् स्थूलभागको अलग करनेपर यह रसभाग अमृतरूपहै (ऋतेन, सत्यं) इस सत्यवा यज्ञकेद्वारा सत्यरूप परमात्माको जाना (इन्द्रस्य, इदं, अन्धसः, शुक्रं, इन्द्रियं, विपानं, इन्द्रियं, अमृतं, मधु, पयः) इन्द्रका यह अन्न वा सोम सम्बन्धी शुद्ध वीर्यदायक पान बलकारक अजर अमरता देनेवाला मीठा दूध है ॥ ७२ ॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳪं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु ॥ ७३ ॥

इसका ऋषि छन्द पूर्ववत् और ग्रह देवता है । मंत्रार्थ—(आङ्गिरसः, क्रुङ्, धिया, अद्भ्यः, क्षीरं, अपिबत्) अङ्गों के रस को प्राण ऐसे पीता है, जैसे हंस बुद्धि के द्वारा जलों में से दूध को पीता है (ऋतेन, सत्यं, शेष पूर्ववत्) इस सत्य से सत्य जानाजाता है, शेष पूर्व मंत्र की समान जानना ॥ ७३ ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हᳪंसः शुचिषत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳪं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु ॥ ७४ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(शुचिषत्, हंसः, अद्भ्यः,

छन्दसा, सोमं, व्यपिबत्) निर्मल आकाश में विचरनेवाले आदित्य ने जल मिले सोम को जलोंमें से वेद के द्वारा वा किरणों के द्वारा अलग करके को पिया। शेष पूर्ववत् ॥ ७४ ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसम्ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७५ ॥

इसका ऋषि अश्वि-सरस्वती-इन्द्र, अतिजगती छन्द, ग्रह देवता है। मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, परिस्रुतः, अन्नात्, रसं, सोमम्, पयः, विविच्य, व्यपिबत्) प्रजापति ने परिस्रुत अन्न से रसरूप सोमरूप दूध को गायत्रीलक्षण से विचारकर पिया (क्षत्रं) क्षत्रिय को वश में किया। शेष पूर्ववत् ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिम्प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वञ्जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७६ ॥

इसका अतिशक्वरी छ० है, ऋषि आदि पूर्ववत्। मंत्रार्थ—(इंद्रियं, योनिं, प्रविशत्, रेतः, मूत्रम्, विजहाति) इन्द्रिय योनि में प्रवेश करताहुआ वीर्य को छोड़ता है तथा अन्यत्र मूत्र को त्यागता है, अर्थात् एक ही मार्ग से कार्यवश भिन्न२ वस्तु निकलती हैं, इस वीर्य से गर्भस्थिति होती है (जरायुणा, आवृतः, गर्भः, जन्मना, उल्वं, जहाति) झिल्ली से ढकाहुआ वह गर्भ जन्म लेकर उस झिल्ली को त्याग देता है, तब भूमिपर आता है। शेष पूर्ववत् ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७७ ॥

ऋषि आदि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(प्रजापतिः, रूपे, सत्यानृते,

दृष्ट्वा, व्याकरोत्) प्रजापति ने मूर्तिमान सत् और असत् को देखकर विचारपूर्वक दोनों को पृथक् २ स्थापन किया । (प्रजापतिः, अनृते, अश्रद्धां, अदधात्) उस परमात्मा ने अनृत मिथ्याभाषण में नास्तिकतारूप अश्रद्धा को स्थापन किया (सत्ये, श्रद्धां, अदधात्) सत्य में आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धा को स्थापन किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु ॥ ७८ ॥

इसका महाबृहती छ०, ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(प्रजापतिः, सुतासुते, रूपे, वेदेन, व्यपिबत्) प्रजापति प्रेरित अप्रेरित धर्माधर्मके रूपोंको ज्ञानकेद्वारा अथवा वेदके द्वारा विचारकर पीताहुए अथवा प्रजापतिने सुत असुत दोनों प्रकारके पदार्थोंको अपना भक्ष्य जानकर भक्षण किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमम्प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतम्मधु ॥ ७९ ॥

इसका अतिजगती छ०, ऋ०, दे० पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(प्रजापतिः, परिस्रुतः, रसं, दृष्ट्वा, शुक्रेण, पयः, सोमं, शुक्रं, व्यपिबत्) प्रजापतिने परिस्रुतके रसको देखकर शुद्ध मंत्रसे दुग्ध और सोमको पवित्र करके पिया अथवा प्रजापतिरूप सूर्यमें परिस्रुतका रस दुग्ध और सोम देखकर ही उसको किरणोंसे स्वच्छ करके पिया । शेष पूर्ववत् । इन मंत्रोंमें सोमकी शुद्धि कही सब ही सोम पीतेहैं, क्योंकि—यद्यपि सोम एकलताका नामहै परन्तु अन्न दूध आदि में उसका सार रहताहै, उसको ग्रहण करने की रीति कही ॥ ७९ ॥

सीसेन तन्त्रम्मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । अश्विना यज्ञꣳ सविता सर-

स्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, जगती छं० देवता पूर्ववत् । अत्र एक २ मंत्रसे दो २ आहुति देय । मन्त्रार्थ—(अश्विना, सविता, सरस्वती, वरुणः, मनीषिणः, कवयः, इन्द्रस्य, रूपं, भिषज्यन्, मनसा, यज्ञं, वयन्ति) अश्विनीकुमार नियन्तादेव सरस्वती वरुण बुद्धिमान् बीतेहुएको देखनेवाले इन्द्रके रूपको रोगरहित करतेहुए मनसे विचारकर सौत्रामणि यज्ञको सम्पन्न करते हैं (सीसेन, ऊर्णासूत्रेण, तन्त्रम्) सीसे धातुसे अंगदको और ऊनके सूतसे पटको बुनते हैं ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः संरराणाः । लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माꣳसमभवन्न लाजाः ॥ ८१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(तिस्रः, देवताः, संरराणाः, अस्य, तत्, अमृतं, रूपं, शचीभिः, सन्दधुः) दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती तीनों देवताओंने सम्यक् प्रकार क्रीडा करतेहुए इस इन्द्रके उस मरण धर्मरहित रूपको कर्मके द्वारा सन्धान किया वा एक वाक्य होकर यज्ञका स्वरूप निर्माण किया (अस्य, लोमानि, शष्पैः, न, त्वक्, तोक्मभिः, बहुधा, न, लाजाः, मांसं, सम्भवन्) इस इन्द्रके रोमोंको जमेहुए धानोंसे सम्पन्न किया और त्वचाको जमेहुए यवोंसे अनेक प्रकारसे प्रकट किया तथा खीलें मांसरूप हुई अर्थात् मांसको पुष्ट किया [इस अध्यायमें यहाँसे समाप्तिपर्यन्त नकार चकारका अर्थ देताहै] ॥ ८१ ॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्त्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् । अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवान्त्वचि ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(गवां, त्वचि, दधतः) पृथ्वीकी त्वचा कहिये गट्टीके पकेहुए पात्रमें सोमको स्थापन करतेहुए (रुद्रवर्त्तनी) रुद्रकी समान मार्गवाले (भिषजा, अश्विना) वैद्य अश्विनी

कुमार (सरस्वती) वाग्देवी (अन्तरं, पेशः, वयति) शरीरान्तवर्ती इन्द्रके रूपको परिपूर्ण करतेहैं (मासरैः, अस्थि, न, कारोतरेण, मज्जानम्) शष्पादि चूर्णमयपरूके टपकावसे हड्डियोंको और गलनवससे मज्जाको पूर्ण करते हैं ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः । रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ--(नासत्याभ्यां, सरस्वती, मनसा, पेशलं, वसु, दर्शतं, वपुः, वयति) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वती मन से विचारकर इन्द्रके सुवर्ण और रजतरूप धनको तथा दर्शनीय रूपको उत्पन्न करते हैं (न, परिस्रुता, लोहितं) और परिस्रुत सुरारससे रुधिरको इन्द्रके शरीर रञ्जनके निमित्त पूर्ण किया, अत एव इन्द्रको वेदमें रोहित नामसे कहा है (धीरः, नग्नहुः, रसं, न, तसरं, वेम) बुद्धिको प्रेरणा करनेवाले सर्जकी छालसे रसको पूर्ण किया और तसरका साधन बुननेका दण्ड हुआ ॥ ८३ ॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः । अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वन्तदारात् ॥ ८४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ--(पयसा, शुक्रं, अमृतं, जनित्रं, रेतः, जनयन्त) तीनों देवताओंने निर्मल दूधके भागसे निर्मल अमृतरूप जननशील वीर्यको उत्पन्न किया (आरात्, अमतिं, दुर्मतिं, बाधमानाः, तत्, ऊवध्यं, वातं, सब्वं, सुरया, अपमूत्रात्) समीप में स्थित होकर अज्ञान और दुर्मति को बाधा देतेहुए उस आमाशयमें अन्नको नाड़ीमें प्राप्त अन्न और पक्वाशयमेंके अन्न को सुरारससे कल्पितकर पूयसे मूत्रको कल्पित करते हुए ॥ ८४॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान । यकृत्क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(सुत्रामा, इन्द्रः, हृदयेन) भली प्रकार रक्षक पुरोडाशका अधिष्ठात्री देवता इन्द्र हृदयसे हृदयको प्रकट करताहै (सविता, पुरोडाशेन, सत्यम्, जजान) सविताने पुरोडाशसे इन्द्रके सत्यको उत्पन्न किया (वरुणः, भिषज्यन्, यकृत्, क्लोमानम्) वरुणने चिकित्सा करतेहुए हृदयके बाईं ओर स्थित मांसपिंडरूप तिल्लीको और गलेकी नाड़ी को प्रगट किया (वायव्यैः, मतस्ने, न, पित्तं, मिनाति) सोम सम्बन्धी ऊर्ध्व पात्रोंसे हृदयकी दोनो ओरकी हड्डियों और पित्तको कल्पित किया ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रन्न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरन्न माता ॥ ८६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(मधुः, पिन्वानाः, स्थालीः, आन्त्राणि, सुदुघा, धेनुः, न, पात्राणि, गुदाः) मधुसिक्त सकल स्थाली आँतोंके स्थानमें हुई, भलप्रकार दूध देनेवाली आदित्य इष्टि और पात्र गुदास्थानापन्न हुए (न, श्येनस्य, पत्रं, प्लीहा) श्येनका पंख हृदयका वामभागहुआ (न,माता, आसन्दी, शचीभिः, नाभिः, उदरम्) और माता स्थान आसन्दी "चौकी" कर्मोंके द्वारा नाभि स्थान और उदररूप हुई ॥ ८६ ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्ने योन्यां गर्भो अन्तः । प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(जनिता, कुम्भः, शचीभिः, वनिष्ठः, जनिता) रसका साधन घड़े कर्मों करके स्थूल आँतको उत्पन्न करताहै (यस्मिन्, योन्याम्, अन्तः, अग्रे, गर्भः, शतधारः, उत्सः व्यक्तः, प्लाशिः, न, कुम्भी, पितृभ्यः, स्वधां, दुहे) जिस कुम्भरूप योनिके भीतर प्रथम सोमरूप गर्भ स्थित हुआ कूपतुल्य घट स्पष्ट जननेन्द्रिय हुआ और सुराधानीपात्र ने पितरों के निमित्त स्वधा

अन्नको प्रकट किया ॥ ८७ ॥

मुखꣳ सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्र-
मश्विना सन्त्सरस्वती । चप्यन्न पायुर्भिषगस्य
बालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(सत्, अस्य, मुखं, सतेन, इत्, शिरः) सत् नामक पात्र इस इन्द्रका मुख हुआ, उसही पात्रसे शिरकी चिकित्सा हुई (पवित्रं, जिव्हा) पवित्र जिव्हा सम्पादक हुआ (अश्विना, सरस्वती,आसन) अश्विनीकुमार और सरस्वती मुखमें स्थितहुए (न, चप्यं, पायुः) और चप्य पायु इन्द्रिय हुई (बालः, अस्य, भिषक्) रसको छाननेका वस्त्र इसकी चिकित्सा हुई (वस्तिः, न, हरसा, तरस्वी, शेपः) गुदा तथा वेगसे वीर्यवान् पुरुषकी जननेन्द्रिय हुई ॥ ८८ ॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो ह-
विषा शृतेन । पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि
पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(अश्विभ्यां, ग्रहाभ्यां, अमृतं, चक्षुः) अश्विनीकुमार देवतावाले ग्रहों के द्वारा अविनाशी नेत्र कल्पित हुआ (छागेन, शृतेन, हविषा, तेजः) बकरी के दूध में पकेहुए हवि के द्वारा चक्षु का तेज कल्पित हुआ (गोधूमैः, पक्ष्माणि) गेहुओं से नेत्रों के नीचे के लोम (कुवलैः, उतानि) बेरों से नेत्रों के ऊपर के लोम कल्पित हुए (शुक्रं, न, असितं, पेशः, वसाते) जो श्वेत और कृष्णरूप को अर्थात् नेत्रों में की सफेदी और कालिमा को ढकते हैं ॥ ८९ ॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो
ग्रहाभ्याम् । सरस्वत्युपवाकैर्व्यानन्नस्यानि बर्हि-
र्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(अविः, न, मेषः, नासि, वीर्याय) भेड़ और मेढा नासिकामें बलका कारण हुए (ग्रहाभ्यां, प्राण-

स्य, पन्थाः, अमृतः) सरस्वती सम्बन्धी ग्रहोंकेद्वारा प्राणवायुका मार्ग अविनाशी हुआ (सरस्वती, उपवाकैः, व्यानं, अजान) सरस्वती देवी ने जौ के अंकुरों से व्यानवायु को प्रकट किया (बदरैः, बर्हिः, नस्यानि) बेरों के द्वारा कुशा नासिका के लोम हुई, अर्थात् इनकी उपयोगी क्रियाओं से बल प्रकट कियागया, जिससे इन्द्र तेजस्वी हुआ ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳩ श्रोत्रम-मृतङ्ग्रहाभ्याम् । यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धुर्जज्ञे मधु सारघम्मुखात् ॥ ९१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । (बलाय, इन्द्रस्य, रूपं, ऋषभः) बलके निमित्त इन्द्रका रूप श्रेष्ठ किया (कर्णाभ्यां, ग्रहाभ्यां, श्रोत्रं) श्रोत्रसम्बन्धी ग्रहोंके द्वारा त्रिकालके शब्दको सम्पन्न करनेवाली श्रोत्र इन्द्रिय सम्पादित हुई (यवाः, न, बर्हिः, भ्रुवि, केसराणि) जौ और कुशा भौंके बालोंको सम्पन्न करनेवाले हुए (मुखात्, कर्कन्धु, सारघं, मधु, जज्ञे) मुखसे बेरकी समान मधुमक्षिका सम्बन्धी शहदकी समान लारश्लेष्मा आदि प्रकट हुआ ॥९१॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम । केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिᳩहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(आत्मन्, उपस्थे, न, लोम, वृकस्य) अपने शरीरमें उपस्थ और अधोभागके रोम वृकलोम से कल्पितहुए (न, मुखे, श्मश्रूणि, व्याघ्रलोम) और मुखपर जो दाढ़ीमूछोंके बाल हैं वह व्याघ्रलोमसे कल्पित हुए (न, शीर्षन्, यशसे, केशाः, श्रियै) और शिरमें यशके निमित्त जो बाल हैं शोभाके निमित्त हैं (शिखा, त्विषिः) शिखा कान्ति है (इन्द्रियाणि सिंहस्य, लोम) जो इन्द्रियें हैं सो सब सिंहके रोम हैं ॥

अङ्गान्यात्मन्भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समं-धात्सरस्वती । इन्द्रस्य रूपᳩ शतमानमायुश्च-

न्द्रेण ज्योतिरमृतन्दधानाः ॥ ९३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ–(इन्द्रस्य, रूपं, शतमानं, आयुः, चन्द्रेण, ज्योतिः, अमृतं, दधानाः) इन्द्रके रूपको और सैकड़ों पुरुषोंसे पूजनीय वा सौवर्ष वा पूर्ण आयुको प्रसन्नतादायक चन्द्र सम्बधी ज्योतिके द्वारा अविनाशी सम्पादन करतेहुए (भिषजा, अश्विना, आत्मन्, अङ्गानि) चिकित्सक अश्विनी कुमारोंने शरीरमें अङ्गोंको संयुक्त किया (सरस्वती, तत्, अस्मार्म, अङ्गैः, समधात्) और सरस्वतीने उस शरीरको अवयवों द्वारा सन्धान किया अर्थात् अश्विनीकुमार और सरस्वतीने पूर्वोक्त विधिसे अङ्गों के द्वारा इस यज्ञशरीरको सम्पादन किया इसके द्वारा इन्द्र [यजमान] को सुखमय जीवन और अमृतत्व प्राप्त होताहै ॥ ९३ ॥

सरस्वती योन्याङ्गर्भमन्तरश्विभ्याम्पत्नी सुकृतम्बिभर्त्ति । अपाᳬ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳬ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ (सरस्वती, अश्विभ्यां, पत्नी, गर्भ, सुकृतं, योन्यां, अन्तः, बिभर्ति) सरस्वती देवी अश्विनीकुमारके पत्नीत्वको स्वीकार करतीहुई इन्द्ररूप गर्भको सम्यक्प्रकारसे योनि के भीतर धारण करतीहै (न, अप्सु, राजा, वरुणः, अपां, रसेन, साम्ना, श्रियै, इन्द्रं, जनयन) और जलोंका देवता राजा वरुण जलोंके सारभूत रसके द्वारा सामके प्रभावसे जगत्की शोभारूप वा ऐश्वर्यके निमित्त इन्द्रको जनककी समान पोषण करताहै अथवा पत्नी सरस्वती इसको धारण करतीहै, अश्विनीकुमारोंके द्वारा वरुण इस इन्द्रका पोषण करतेहैं [यहां इन्द्रपदसे ऐश्वर्यवान् यज्ञका वर्णन है, वाणीही सरस्वतीहै, जिस वेदवाणीमें यह यज्ञ स्थापित होताहै द्युलोक और भूमिके अधिष्ठात्री देवता इसको स्थापन करते हैं अथवा अहोरात्र स्थापकहैं ॥ ९४ ॥

तेजः पशूनाᳬ हविरिन्द्रियावत्परिस्रुता पयसा सारघम्मधु । अश्विभ्यान्दुग्धम्भिषजा सरस्वत्या

सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥ ९६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ—भिषजा, अश्विभ्यां सरस्वत्या, इन्द्रियावत्, पशूनां, सारघं, मधु, हविः, परिसुता, पयसा, तेजः, दुग्धम्) चिकित्सा करनेवाले अश्विनीकुमार और सरस्वतीने वीर्यवान् पशुसम्बन्धी दुग्ध घृत और मधुमक्षिकाओंके बनाए शहदरूप हविको लेकर परिस्रुत किये दूधसे इन्द्रके निमित्त तेज को दुहा (सुतासुताभ्यां, अमृतः, इन्द्रः, सोमः) सुत असुत दुग्ध से अमृतरूप ऐश्वर्यदायक सोमको निकाला, इसप्रकार अश्विनी कुमार और सरस्वती आदि ने अनेकों द्रव्योंसे रस लेकर इन्द्रका उपकार किया ॥ ९६ ॥

इतिश्री यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका भाषाभाष्य सहित एकोनविंश अध्याय समाप्त।

अथ विंशोऽध्यायः।

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि। मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः ॥ १ ॥

इसमें १ मं० है। दोनोंका प्रजापति ऋ०, १ का द्विपदा विराड् गा० २का मा०गा०छ०, १का आसन्दी २का कृष्णाजिन दे०है। इसको पढ़ताहुआ चौकीके दो पाये दक्षिणवेदी पर और दो उत्तरवेदी पर रक्खे। मंत्रार्थ-(क्षत्रस्य, योनिः, असि) हे आसन्दी! तुम क्षत्रिय जातिकी राजपदवी की उत्पत्तिस्थान हो (क्षत्रस्य, नाभिः, असि) तुम क्षत्रिय जातिकी नाभि अर्थात् एकताके बन्धनकी निदान हो। फिर चौकी पर मृगचर्म बिछावे (त्वा, मा, हिंसीः) हे कृष्णाजिन आसन्दी तुमको पीड़ा न देय (मा, मा, हिंसीः) तुम मुझको पीड़ा मत दो ॥ १ ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः। मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥ २ ॥

इसमें १ मं० है। तीनोंका प्रजापति देवता आर्ची उष्णिक् छ०

यजमान दे० है । यजमान बैठे । १ मंत्रकी व्याख्या अ० १० मंत्र २७ में होगई, भावार्थ यह है कि-हे यजमान ! तुम इसपर बैठने के फलसे दण्ड पुरस्कारके द्वारा देशके अनिष्टको दूर करनेवाले न्यायपरायण और राजकार्यमें चतुर होकर प्रजाओंपर सम्राट्पद को पानेमें समर्थ हूजिये । फिर यजमान वामचरणके नीचे चाँदी का मण्डलाकार रुक्मभूषण रक्खे (मृत्योः, पाहि) हे रुक्म अकाल मृत्युसे मेरी रक्षा करो । फिर दाहिने चरणके नीचे सुवर्ण का रुक्म रक्खे (विद्योत्, पाहि) हे रुक्म ! बिजलीके उत्पात से मेरी रक्षा करो ॥ २ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ॥ ३ ॥

इसमें ३ मं० हैं । तीनोंका अश्विनौ ऋ०, १ का प्राजापत्या बृ० २।३ का आर्चीगाय० छ०, सबका लि० दे० है। अध्वर्यु यजमानका अभिषेक करावै । मंत्रार्थ-(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, अश्विनोः, भैषज्येन, तेजसे, ब्रह्मवर्चसाय त्वा, अभिषिञ्चामि) हे यजमान ! सविता देवताकी आज्ञा होने पर अश्विनीकुमारकी भुजा और पूषा देवताके हाथोंसे तथा अश्विनीकुमारकी चिकित्साके द्वारा कान्ति और ब्रह्मतेजके निमित्त तुम्हें अभिषेक कराता हूं । सरस्वत्यै भैषज्येन, वीर्याय, अन्नाद्याय अभिषिञ्चामि) सरस्वती करके सम्पादन कीहुई औषधिसे पराक्रम और अन्नभक्षणकी सामर्थ्य के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूं । (इन्द्रस्य, ऐन्द्रियेण, बलाय, श्रियै, यशसे, अभिषिञ्चामि) इन्द्रकी इन्द्रियशक्तिकी सामर्थ्यसे बल समृद्धि और यशकी प्राप्ति के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ ॥ ३ ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लो-

कु सुमंगल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

इसमें २ मंत्रहैं। दोनोंका प्रजा० ऋ०, १ का प्राजा० गा० २ का उष्णिगगर्भा प्राजा० गा० छ०, दे० दोनोंका यजमान है। अध्वर्यु यजमानको स्पर्श करे। मंत्रार्थ-(कः, असि) हे यजमान! तुम कौन प्रजापति हो (कतमः, असि) बहुतोंमें कौनसे हो (कस्मै, त्वा) प्रजापति पदकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करताहूँ (काय, त्वा) प्रजापतिकी प्रीतिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, अर्थात् तुम कौन प्रधान पुरुष हो, तुमने किस देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ कियाहै, क देवताकी प्रसन्नतार्थ कियाहै। फिर यजमान नामस्मरण करै। (सुश्लोक, सुमङ्गल, सत्यराजन्) हे सुन्दर कीर्त्तिवाले, हे श्रेष्ठमङ्गलमय, हे सत्यराज्यके प्रभो आइये ॥ ४ ॥

शिरो॑ मे॒ श्रीर्यशो॒ मुखं॒न्त्विषिः॒ केशा॑श्च॒ श्मश्रू॑णि । राजा॑ मे प्रा॒णो अ॒मृत॑ᳪ स॒म्राट् चक्षु॑र्वि॒राट् श्रोत्र॑म् ॥ ५ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ० इन्द्र शरीरावय दे० है। यहाँसे ९ मंत्र पढ़कर यजमान अपने शरीरको स्पर्शकरे। मंत्रार्थ (शिरः, श्रीः) मेरा शिर ब्रह्मतेजसे शोभायुक्तहो (मुखं, यशः) मुख वेदपाठसे यशःस्वरूप हो (केशाः, च श्मश्रूणि, त्विषिः,) शिरके बाल डाढ़ीमूछैं हृदयमें ब्रह्माग्निके प्रकाशसे कान्तिरूप हों (राजा, मे, प्राणः, अमृतम्) तेजस्वी मेरा प्राण समाधि लाभसे अमृत हो (चक्षुः, सम्राट्) चक्षु इन्द्रिय दिव्य दृष्टि पानेसे सुशोभित हो (श्रोत्रं, विराट्) दूरश्रवणकी शक्तिसे श्रोत्रेन्द्रिय विशेष विराजमान हो ॥ ५ ॥

जि॒ह्वा मे॑ भ॒द्रं वाङ्महो॒ मनो॑ म॒न्युः स्व॒राड् भामः॑ मोदाः॑ प्रमो॒दा अ॒ङ्गुली॒रङ्गा॑नि मि॒त्रम्मे॒ सहः॑॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। मंत्रार्थ-(मे, जिह्वा, भद्रम्) मेरी जीभ कल्याणरूप हो (वाक्, महः) वाणी वैदिक सिद्धान्तको कहनेसे

पूजित हो (मनः, मन्युः) मन अहं अक्षासिम के उच्चारणसे अहं भावयुक्त हो (मामः, स्वराट्) क्रोध अपनी मर्यादामें विराजमान हो (अङ्गुलयः, मोदाः) अङ्गुलियें करन्याससे आनन्दरूप हों, (अङ्गानि, प्रमोदाः) अङ्ग अङ्गन्याससे परमानन्दरूप हों (मे, मित्रं, सहः) मेरे मित्र शत्रुनाशक हों ॥ ६ ॥

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म्मवीर्य्यम् ।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, गाय० छं० देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(मे बाहू, इन्द्रियं, बलम्) मेरी दोनों भुजा इंद्रिय बलिष्ठ हों (हस्तौ, कर्मवीर्यम्) मेरे दोनों हाथ देवार्चनादि करनेमें समर्थ हों (मम, आत्मा, उरः, क्षत्रम्) मेरा अन्तरात्मा हृदय भी संसारसे रक्षा करनेवाला हो ॥ ७ ॥

पृष्ठीर्म्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० अनु० छ०, देवता पूर्ववत् है । मंत्रार्थ (मे, पृष्ठीः, राष्ट्रम्) मेरा पृष्ठदेश सबको धारण करनेवाले राष्ट्रकी समान हो (उदरं, अंसौ, ग्रीवा, ऊरू, अरत्नी, श्रोणी, जानुनी, च, सर्वतः, अङ्गानि, मे, विशः) पेट, कंधे, गरदन, दोनो ऊरू, हाथ, दोनो ओर का कटिभाग दो जंघा और सब अंग मेरे प्रजासमान पोषणीय हों अर्थात् राष्ट्ररूप शरीरमें यह सब अंग निरुपद्रव हों ॥ ८ ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यम्पसः ।
जंघाभ्याम्पद्भ्यान्धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ९

इसका प्रजा० ऋ०, नि० जगती छ०, पूर्ववत् दे० है मंत्रार्थ-(मे, नाभिः, चित्तं) मेरी नाभि भगवान्‌के ध्यानसे ज्ञानमय हो (मे, पायुः, विज्ञानम्) मेरी पायु इन्द्रिय ज्ञानजनित संस्कारका आधार हो (भसत्, अपचितिः) मेरी स्त्री की योनि सन्तानको

उत्पन्न करनेमें समर्थ हों (मे, अपडो, आनन्दनन्दो) मेरे अण्ड-कोश आनन्दसे समृद्ध हों (पसः, भगः, सौभाग्यम्) मेरी जननेन्द्रिय योगैश्वर्य और योगसम्पत्तिसम्पन्न हो (जंघाभ्यां, पद्भ्यां धर्मः, अस्मि) जंघा और चरणोंसे धर्मरूप होऊँ, नहिं-विषयासक्त (विशि, प्रतिष्ठितः, राजा) प्रजाओंमें प्रतिष्ठित राजा हूं ॥ ९ ॥

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन्प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अतिशक्वरी छ०, विश्वेदेवा दे० हैं। चौकीसे नीचे बिछे मृगछालापर उतरे।मंत्रार्थ-(क्षत्रे,प्रति,तिष्ठामि) मैं क्षत्रियजातिमें प्रतिष्ठित होता हूँ (राष्ट्रे, प्रति) राष्ट्रमें प्रतिष्ठित होता हूं (अश्वेषु, प्रति) घोड़ोंमें आधिपत्य पाता हूँ (गोषु, प्रति) गौओंके विषयमें आधिपत्य पाता हूं (अङ्गेषुप्रति) शरीरके अवयवोंमें प्रतिष्ठा पाता हूं (आत्मन्, प्रति) आरोग्यतासे चित्तमें प्रतिष्ठित होता हूं (प्राणेषु,प्रति) प्राणोंमें प्र० को पाता हूं (पुष्टे, प्रति) धनसम्पत्तिमें प्र० को पाता हूं (द्यावापृथिव्योः, प्रतिष्ठामि) स्वर्ग और भूलोककी प्रति० को पाता हूं (यज्ञे, प्रतिष्ठामि) यज्ञके विषयमें प्रतिष्ठित होता हूं ॥ १० ॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिᳬशाः सुराधसः। बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, त्र्यवसानापंक्ति छ०, विश्वेदेवा दे० हैं। ग्रहहोम करे। मंत्रार्थ-(सुराधसः, बृहस्पतिपुरोहिताः, त्रया, एकादश, देवाः, त्रयस्त्रिंशाः, देवाः, सवितुः, देवस्य, सवे, देवैः, मा, अवन्तु) सुन्दर धनवाले बृहस्पति है पुरोहित जिनका ऐसे ब्रह्मा विष्णु शिव तीनों देवता, ग्यारह देवता, तैंतीस देवता अथवा ग्यारके तिगुने तैंतीस देवता सबके प्रेरक देवताकी आज्ञामें वर्त-

मान देवताओंके साथ वा ब्रह्मादिके साथ मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिस्सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्द्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, भक्ताति छ०, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ-(प्रथमाः, द्वितीयैः) पहिले कहेहुए वसु देवता दूसरे रुद्र देवताओंसे मिलकर मेरी रक्षा करें (द्वितीयाः, तृतीयैः) दूसरे तीसरों के साथ (तृतीयाः, सत्येन) तीसरे आदित्य देवता सत्यरूप ब्रह्म के साथ (सत्यं, यज्ञेन) ब्रह्म यज्ञके साथ (यज्ञः, यजुर्भिः) यज्ञ यजुर्वेदके मंत्रोंके साथ (यजूंषि, सामभिः) यजु साममंत्रोंके साथ (सामानि, ऋग्भिः) साम ऋचाओंके साथ (ऋचः, पुरोऽनुवाक्याभिः) ऋचाएं पुरोऽनुवाक्य मंत्रोंके साथ (पुरोनुवाक्याः याज्याभिः) पुरोनुवाक्य याज्य मंत्रोंके साथ (याज्याः, वषट्कारैः) याज्य हविःसमर्पणके मंत्रोंके साथ (वषट्काराः, आहुतिभिः) वषट्कार आहुतियोंके साथ (आहुतयः, मे, कामान्, समर्द्धयन्तु) आहुतियें मेरी कामनाओंको पूर्ण करें (भूः, स्वाहा) भुवनको भलेप्रकार दीहुई आहुति स्वीकृत हो ॥ १२ ॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् म आनतिरागतिः ।
मांसम्म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥ १३ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, लिङ्गोक्त दे० है । यजमान अङ्गस्पर्श करें । मंत्रार्थ-(मम, लोमानि, प्रयतिः) मेरे सम्पूर्ण रोम विशाल हों (मे, त्वक्, आनतिः, आगतिः) मेरी त्वचा ऐसीहो कि—जिसको सब झुककर प्रणाम करें और सब समीप आवें (मे, मांस, उपनतिः) मेरा मांस प्राणियोंको नमस्कार करानेवाला हो (अस्थि, वसु) मेरी हड्डियें धनरूपहों (मे, मज्जा, आनतिः) मेरी मज्जा हड्डीके भीतरका भाग नम्र

को नमन करानेवालाहो, अर्थात् मेरे शरीरमेंकी सातोधातु जगत्
को वशमें करसकैं ॥ १३ ॥

यद्देवा देवहेडनन्देवासश्चकृमा वयम्। अग्नि-
र्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳫंहसः ॥ १४ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। मासरकुंभ को जलमें तैरावै। मंत्रार्थ—(देवाः, देवासः, वयं, यत्, देवहेडनं, आचकृम, तस्मात्, एनसः, विश्वात्, अंहसः, अग्निः, मा, मुञ्चतु) हे प्रकाशवान् देवताओ! हमसे जो देवताओंका अपराध हुआ हो उस पापसे और सकल विघ्नरूप पापोंसे अग्नि देवता मुझे मुक्त करै ॥ १४ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनाᳫंसि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳫंहसः ॥१५॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, वायु दे० है। मंत्रार्थ--(वयं यदि, दिवा, यदि, नक्तं, एनांसि, आचकृम, वायुः, तस्मात्, एनसः विश्वात्, अंहसः, मा, मुञ्चतु) हमने यदि दिनमें और यदि रात में जो पाप कियेहों वायु देवता उस पापसे तथा संपूर्ण पापोंसे मेरी रक्षा करै ॥ १५ ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाᳫंसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳫंहसः ॥ १६ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, सूर्य दे० है। मंत्रार्थ (वयं, यदि, जाग्रत, यदि, स्वप्ने, एनांसि, आचकृम, सूर्यः, तस्मात्, एनसः विश्वात्, अंहसः, मा, मुञ्चतु) हमने यदि जागते में यदि सोतेमें कुछ पाप किये हैं सूर्य देवता उस सब पापसे और सकल पापोंसे मुझको मुक्त करै ॥ १६ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्य्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधिधर्म्मणि
तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० अनु० छ०, लिङ्गोक्त दे० है मंत्रार्थ

(यत्, ग्रामे, यत्, अरण्ये, यत्, सभायां, यत्, इन्द्रिये, यत्, शूद्रे, यत् अर्थे, यत्, एनः, वयं, चकृम) जो ग्राममें, जो वनमें वृक्षच्छेदनरूप, जो सभामें असत्यभाषण आदि, जो सकल इन्द्रियों से परदोषकथन परनारीदर्शनादि वा जो देवताओंमें, जो दासवर्गमें, जो वैश्योंमें जो पाप हमने किया है (यत्, एकस्य, अधिधर्मणि, आचकृम) जो पाप पत्नीसहित यजमानके एककार्य में किया है (तस्य, अवयजनं, असि) उस सब पापको हे देवताओं वा कुम्भके हे अधिष्ठात्री देवता निवारण करनेवाले हो ॥ १७ ॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छं०, लिङ्गोक्त दे० है। वरुणकी प्रार्थना मंत्रार्थ-(वरुण, यत्, आपः, अघ्न्या, इति, शपामहे, वरुण, ततः, नः, मुञ्च) हे वरुण ! जो जल स्वच्छ रखनेयोग्य हैं वा जो सोमलता काटनेयोग्य नहीं है उसको हमने जो आभिमुख आदि किया है, हे वरुण उस पापसे हमको मुक्त करो। कुम्भको जलमें डुबोवे। (निचुम्पुण, अवभृथ, निचेरुः, असि) हे मन्दगति जलाशय ! अवभृथ ! यद्यपि तुम अतिगमनशील हो (निचुम्पुण) तो भी मन्दगति होजाओ (देवैः, देवकृतं, एनः, अवयासि) क्योंकि मैंने ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा जानकर हविके स्वामी देवताओंका जो कुछ अपराध किया है वह इस जलाशयमें दूर किया (मर्त्यैः, मर्त्यकृतं, अव) हमारे सहायक ऋत्विजों करके यज्ञका दर्शन करनेको आयेहुए मनुष्योंकी अवज्ञारूप जो पाप बना वह हमने इस जलमें नष्ट करादिया (देव, पुरुराव्णः, रिषः पाहि) हे यज्ञ ! विरुद्ध फल देनेवाले पापसे मेरी रक्षा करो १८

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सन्त्वा विशन्त्वोषधी-रुतापः । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दु-

द्विर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयन्द्विष्मः ॥ १९ ॥

इसमें ४ मं० हैं । जिनमें १म मंत्र समुद्रेते इत्यादिसे यजमान अवभृथस्थानसे दो चरण चले इसकी व्याख्या अ० ८ मं० २९ में होगई । दूसरे मंत्र सुमित्रिया इत्यादिसे उत्तरमुख होकर जल की अंजुलिलेय । तीसरे दुर्मित्रिया इत्यादिसे जिधर शत्रु रहतेहों उस दिशामें अंजुलिडालदेय, इसकी व्याख्या ६। २२ में होगई १९

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतम्पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छं०, आप दे० है । पत्नी सहित यजमान कर्मसमयमें धारण किये वस्त्रोंको त्यागे । मंत्रार्थ-(आपः मा, एनसः, शुन्धन्तु) जल देवता मुझको पापसे पवित्र करें (इव द्रुपदात्, मुमुचानः) जैसे पुरुष सहजमें ही खड़ाऊँ से अलग हो जातेहैं (इव, स्विन्नः, स्नातः, मलात्) अथवा जैसे किसीको पसीना आरहा हो वह पुरुष स्नान करनेपर मैलसे मुक्त होजाता है (वा, पवित्रेण, पूतं, आज्यम्) अथवा जैसे ऊनी वस्त्रमें छाना हुआ घृत मलसे रहित होजाताहै ॥ २० ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

इसका प्रस्कण्व ऋ०, अनु० छं०, सूर्य दे० है । जलमेंसे निकलै मंत्रार्थ-(तमसः, परि, उत्तमं, स्वः, पश्यन्तः, वयं, देवत्रा, देवं सूर्यं, उत्तमं, ज्योतिः, उदगन्म) अन्धकारमय लोकसे परमश्रेष्ठ स्वर्गलोकको देखतेहुए हम देवलोकमें सर्वदेवताको देखतेहुए श्रेष्ठ महाज्योतिको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥

अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमन्तम्मासꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, पंक्ति छं०, अग्नि दे० है । यजमान आ-

हवनीयका उपस्थान करे। मंत्रार्थ-(अग्ने, अद्य, अपः, अन्वचारिषम्) हे अग्ने ! आज मैंने जलकर्मको पूर्ण किया अर्थात् अवभृथ कर्मसे जलको विलोड़ा है (रसेन, समसृक्ष्महि) जलके रससे संयुक्त हुआ हूँ (पयस्वान्, आगमम्) जलवान् आयाहूँ (तं, मा वर्चसा, च, प्रजया, च, धनेन, संसृज) ऐसे मुझको तेजसे, पुत्र पौत्रादिसे तथा सुवर्णादि धनसे संयुक्त करो ॥ २१ ॥

ए॒धो॑ऽस्येधिषी॒महि॑ स॒मिद॑सि॒ तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि स॒माव॑वर्त्ति पृथि॒वी स॒मु॒षाः सम्॒ सूर्यः॑ । सम्॒ विश्व॑मि॒दं जग॑त् । वै॒श्वा॒न॒रज्यो॑तिर्भूयासं वि॒भून्कामा॒न्व्य॑श्नवै॒ भूः स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

इसमें ४ मं० हैं । सबका प्रजा० ऋ०, १ । २ का माना० छ्द० १ । ४ का प्रा० उष्णिक् छ०, १ । २ का समिध् देवता । ३ । ४ का अग्नि दे०है। आहुतिके निमित्त समिधा चढावे। मंत्रार्थ (एधः, एधिषीमहि) हे समिध तुम प्रकाश करनेवाले हो, तुम्हारे अनुग्रहसे मैं धनादिकी वृद्धिको पाऊँ । यह समिधा आहवनीयमें छोड़नेको उद्यत होय (समित्, असि, तेजः, असि, मयि, तेजः, धेहि) हे समिधा तुम पूर्ण प्रकाश करनेवाली हो तुम तेजःस्वरूप हो, मुझमें तेजको धारण करो । समिधामें घी लगावे-(पृथिवी, समाववर्त्ति) पृथिवी प्रतिक्षण परिवर्त्तनशील है (उषाः, सम्) प्रभातकाल आतेजाते रहतेहैं (सूर्यः, उ, सम्) सूर्य भी वार २ उदित और अस्त होतेहैं (इदं, विश्वम्, जगत्, उ, सम्) यह सब संसारभी आवागमनशील है कुछ भी स्थिर नहीं है । उस समिधाको अग्निमें होमै-(वैश्वानरज्योतिः, भूयासम्) सकल कामनाओंको पानेके निमित्त मैं सकल प्राणियोंके हितकारी परमात्माकी ज्योतिको प्राप्त हूं (विभून्, कामान्, व्यश्नवै) बहुतसे मनोरथोंको पाऊँ (भूः, स्वाहा) सत्स्वरूप ब्रह्मको दीहुई यह आहुति भलेप्रकार गृहीत हो ॥ २२ ॥

अ॒भ्याद॑धामि स॒मिध॒मग्ने॑ व्रतपते॒ त्वयि॑ । व्र॒तं च॑

श्रद्धामेमीन्धे त्वां दीक्षितो अहम् ॥ २४ ॥

इसका अश्वतराश्वी ऋ०, नि० अनु० छं० अग्नि दे० है। अग्न्याधान और व्रतवरणके अनन्तर यजमान आहवनीयाग्निमें तीन समिधा छोड़े। मंत्रार्थ-(व्रतपते, अग्ने, समिधं, त्वयि, अभ्यादधामि) हे कर्मके पालक अग्ने! यह समिधा तुममें स्थापन करता हूँ (दीक्षितः, अहं, व्रतं, च, श्रद्धां उपैमि) यज्ञमें दीक्षितहुआ मैं कर्म और श्रद्धाको प्राप्त होता हूं (त्वा, इन्धे च) और तुमको प्रदीप्तभी करता हूं ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ २५ ॥

इसका अश्वतराश्वी ऋ०, अनु० छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(यत्र, ब्रह्म, च, क्षत्रं, सह, सम्यञ्चौ, चरतः) जहां ब्राह्मण और क्षत्रियजाति भी साथ एकमन होकर विचरतेहैं(यत्र देवाः, अग्निना, सह) जहाँ देवता अग्निके साथ निवास करतेहैं (तं, पुण्यं, लोकं, प्रज्ञेषम्) उस पवित्र स्वर्गलोकको मैं पाऊँ १५

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह। तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ २६ ॥

इसका ऋष्यादि २१ वें मंत्रकी समान है। मंत्रार्थ-(यत्र, इन्द्रः च, वायुः, च, सह, सम्यञ्चौ, चरतः)जहाँ इन्द्र और वायु भी साथ एकमन होकर विचरते हैं (यत्र, सेदिः, न, विद्यते) जहाँ अन्नपानेके निमित्त दुःख नहींहै (तं, पुण्यं, लोकं, प्रज्ञेषम्) उस पवित्र लोकको मैं प्राप्त होऊँ ॥ २६ ॥

अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यताम्परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥ २७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, सुरा दे० है। इस मंत्र से रसको मिलावे। मंत्रार्थ-(ते, अंशुः, अंशुना), हे महौषधिरस! तुम्हारा भाग सोमके भागसे मिले (परुः, परुषा, पृच्यताम्) तुम्हारा पर्व सोमके पर्वसे मिले (तव, गन्धः, अच्युतः,) तुम्हारा

गन्ध अविनाशी हो (रसः, मदाय) रस हर्षप्राप्तिके निमित्त हो (सोमे, अवतु) सोमसे आलिंगन करो ॥ १७ ॥

सिञ्चन्ति परि॑षिञ्चन्त्युत्सि॑ञ्चन्ति पुनन्ति॑ च
सुरा॑यै बभ्र्वै मदे॑ किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥ २८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । पवित्र किये रसको ग्रहण करे । मंत्रार्थ (बभ्र्वै,सुरायै,मदे,किन्त्वः,किन्त्वः,वदति)बलकीधारक कपिलवर्ण महौषधियोंके रसपानसे प्रसन्नतामें स्थित हुआ इन्द्र, तुम किस के तुम किसके हो ऐसा कहताहै (सिञ्चन्ति) इसकारण उसको पात्रमें ऋत्विज सींचतेहैं (परिषिञ्चन्ति)दूधसे सींचतेहैं (उत्सिञ्चन्ति) ग्रहोंसे सींचते हैं (च, पुनन्ति) पावन सुवर्ण आदिसे पवित्र करतेहैं ॥२८॥

धानाव॑न्तं कर॒म्भिण॑मपूपव॑न्तमु॒क्थिन॑म् । इन्द्र॑ प्रातर्जु॑षस्व नः ॥ २९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है । खीलोंका होम करे-(इन्द्रः, प्रातः, नः, धानावन्तं, करम्भिणं, अपूपवन्तं, उक्थिनं, जुषस्व) हे इन्द्र ! प्रातःकाल हमारी खीलों से युक्त दही, सत्तू और मालपुए आदिसे युक्त स्तुतिके साथ पुरोडाश को सेवन करो ॥ २९ ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरु॑तो वृत्रहन्त॑मम् । येन ज्योति॒रज॑नयन्नृता॒वृधो॑ दे॒वन्दे॒वाय॒ जागृ॑वि ॥ ३० ॥

इसका नृमेध पुरुषमेध ऋ०, बृह० छ०, इन्द्र दे० है । ब्रह्मा इस मंत्रसे सामगान करे । मंत्रार्थ—(मरुतः, इन्द्राय, वृत्रहन्तमं बृहत्साम, गायत) हे ऋत्विजों ! इन्द्रके निमित्त अति पापनाशक वा वृत्रासुर नाशक बृहत्सामको गाओ (ऋतावृधः, येन, देवाय, देवं, जागृवि, ज्योतिः, अजनयन्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाले देवता वा ऋत्विजोंने जिस सामगानसे इन्द्रके निमित्त दीप्तिमान जागते हुए अविनाशी तेजको प्राप्त कराया अर्थात् सामगानसे इन्द्रते - जस्वी होताहै ॥ ३० ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमम्पवित्र आनय।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है। दुग्धको अभिमंत्रित करे मंत्रार्थ-(अध्वर्यो, अद्रिभिः, सुतं, सोमं, पवित्रे, आनय) हे अध्वर्यु तुम पत्थरोंसे अभिषुत सोमको पवित्रमेंलाओ (इन्द्राय, पातवे, पुनाहि) इन्द्रके पीनेके लिये पवित्र करो ॥ ३१ ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः।
य ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहम्मयि
गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

इसका कौण्डिन्य ऋ०, पंक्ति छ०, ग्रह दे० है । ग्रहको ग्रहण करे। मंत्रार्थ—(यः, भूतानां, अधिपतिः) जो प्राणियोंका पालन करनेवालाहै (यस्मिन्, लोकाः, अधिश्रिताः) भूआदि लोक जिस परमात्माके आश्रयसे ठहरेहुए हैं (यः, महान्, महतः, ईशे) जो सबसे बड़ा औरबड़ोंका भी नियन्ताहै (अहं, तेन, त्वा, गृह्णामि) हे ग्रह उसी परमात्माकी आज्ञानुसारमें उस परमात्मा के अनुग्रह से तुझको ग्रहण करताहूँ (अहं, त्वा, मयि, गृह्णामि) मैं तुझको परमात्मभावको प्राप्तहुए अपनेमें ग्रहण करताहूँ ३२

उपयामगृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिरश्विभ्यान्त्वा
सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३३ ॥

इसकी व्याख्या अ० १० मं० ३ में होगई ॥ ३३ ॥

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे ।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोसि विलायकः ॥ ३४ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, ग्रह दे० है । हुतशेषको सूँघे वा भक्षण करे । मंत्रार्थ-(मे, प्राणपाः, अपानपाः, चक्षुष्पाः, च, मे, श्रोत्रपाः, मे, वाचः, विश्वभेषजः, च, मनसः, विलायकः असि) हे ग्रह वा हे परमात्मन ! तुम मेरे प्राणोंके रक्षक अपान वायुके रक्षक, नेत्रोंके रक्षक, श्रोत्रोंके रक्षक, मेरी वाणीरूप, सकल

औषधोंमें प्रधान तथा मेरे मनको विषयोंसे हटाकर आत्मस्वरूप में स्थापन करनेवाले हो ॥ ३४ ॥

आश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, उपरिष्टात् बृहती छ०, ग्रह दे० है। मंत्रार्थ-(उपहूतः, आश्विनकृतस्य, सरस्वतिकृतस्य, सुत्राम्णा, इन्द्रेण, कृतस्य, उपहूतस्य, ते, भक्षयामि) हे ग्रह ! आज्ञा पायाहुआ मैं अश्विनी कुमारोंसे संस्कार कियेहुए, सरस्वतीके प्रस्तुत कियेहुए रक्षा करने वाले इन्द्रसे संस्कार किये वा देखेहुए और ऋत्विजोंसे आवाहन कियेहुए तुझको भक्षण करता हूँ ॥ ३५ ॥

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः । त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥

इसका आङ्गिरस ऋ०, त्रि० छ०, इन्द्र दे० है। ग्यारह मंत्रों से ऐन्द्रात्मक आप्रियमिवाजयाज्य करै। मंत्रार्थ-(समिद्धः, उषसां, अनीके, पुरोरुचा, पूर्वकृत्, त्रिभिः, त्रिंशता, देवैः, वावृधानः, वज्रबाहुः, इन्द्रः, वृत्रं, जघान) भलेप्रकारसे दीप्त उषःकालके मुख अर्थात् प्रातःकालके समय आगे चलनेवाले प्रकाशसे सूर्य-रूपसे पूर्वदिशाको प्रकाशित करनेवाले तीन और तीस अर्थात् तैंतीस देवताओंके साथ वृद्धि पानेवाले वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुर वा मेघ को ताड़न किया (दुरः, विववार) मेघोंके स्रोतों वा दैत्यपुरीके द्वारको सूना किया वा खोला ॥ ३६ ॥

नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम । गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

इसका आङ्गिरस ऋ०, त्रि० छ०, तनूनपात् दे० है। मंत्रार्थ-(नराशंसः, शूरः, यज्ञस्य, धाम, प्रतिमिमानः, तनूनपात्, गोभिः वपावान, मधुना, समञ्जन, हिरण्यैः, चन्द्री, प्रचेताः, प्रतियजति)

तु विश्ववेदाः । बाधतान्द्वेषो अभयं कृणोतु सुवी-
र्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

इसका गर्ग ऋ०, भुरिक् पंक्ति छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ-(सुत्रामा, स्ववान्, विश्ववेदाः, इन्द्रः, अवोभिः, सुमृडीकः, भवतु) सुरक्षक, धनवान्, सर्वज्ञ इन्द्र अन्नोंके द्वारा सुखकारी हो (द्वेषः, बाधताम्) हमारे दुर्भाग्यको दूर करै (अभयं, कृणोतु) हमको अभय देय (सुवीर्यस्य, पतयः, स्याम) हम श्रेष्ठ धनके स्वामी हों अथवा सुपुत्रवान् हों ॥ ५१ ॥

तस्य वयथ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे
स्याम । स सुत्रामा स्ववाँ॥ इन्द्रो ऽअस्मे ऽआरा
च्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ५२ ॥

इसका गर्ग ऋ०, पंक्ति छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ-(वयं, तस्य, यज्ञियस्य, सुमतौ, स्याम) हम उस यज्ञका सम्पादन करने वाले इन्द्रकी सुमतिमें प्राप्त हों (भद्रे, सौमनसे, अपि) कल्याण रूप श्रेष्ठ मनमें भी स्थित हों अर्थात् इन्द्र हमारे मनको सुमति और कल्याणसे युक्त करै (सः, सुत्रामा, स्ववान्, इन्द्रः, अस्मे आरात्, चित्, द्वेषः, सनुतः युयोतु) वह सुरक्षक, धनवान् इन्द्र हम से दूर स्थितभी जोकुछ दुर्भाग्य हो उसको अन्तर्हित करके दूर करै ॥ ५२ ॥

आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा
त्वा केचिन्नियमन्विन्न पाशिनोऽतिधन्वेव तान्
इहि ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, बृहती छ० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ-(इन्द्र, मन्द्रैः, मयूररोमभिः, हरिभिः, आयाहि) हे इन्द्र ! गम्भीर हिनहिनाहट और मोरकी समान रोमवाले अपने घोड़ों के द्वारा यहां आइये (केचित्, त्वा, मा, नियमन्) कोईभी आते हुए तुमको बाधा नहीं देसकता (न, पाशिनः, विम्) जैसे पाश धारी व्याधे पक्षीको पकड़ते हैं (तान्, धन्व, इव, अतीहि) वन

को मरुभूमिकी समान लाँघकर आओ ॥ ५३ ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्च-
न्त्यर्कैः स नस्तुतो वीरवद्धातु गोमंद्यूयम्पात
स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५४ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, त्रि० छं०, इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(वसिष्ठासः, एव, इत्, अर्कैः, वृषणं, वज्रबाहुं, इन्द्रं, अभ्यर्चन्ति) परम ब्रह्मविचारपरायण महर्षि इसप्रकार ही मन्त्रोंके द्वारा मनोरथ पूर्ण करनेवाले वज्रधारी इन्द्रकी अर्चना करते हैं (सः, स्तुतः, वीरवत्, गोमत्, नः, धातु) वह स्तुतिको प्राप्तहुआ पुत्रयुक्त गोधन युक्त हममें स्थापन करे (यूयं, स्वस्तिभिः, नः, सदा, पात) हे ऋत्विजो ! तुम अनेकों कल्याणोंके द्वारा निरन्तर हमारी रक्षा करो ॥ ५४ ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥५५॥

इसका विदर्भ ऋ०, अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(इन आप्रिय मंत्रोंका पद-(अश्विना, अग्निः, समिद्धः) हे अश्विनीकुमारो अग्नि प्रदीप्त हुआ (घर्मः, तप्तः) प्रवर्ग्य तप्त हुआ (विराट्, सुतः) विराजमान सोम अभिषुत किया गया। (धेनुः, सरस्वती, इह, शुक्रं, इन्द्रियं, सोमं, दुहे) तृप्त करने वाली धेनुरूपा सरस्वती देवीने इस यज्ञमें शुद्ध इन्द्रियोंके निमित्त बलदायक सोमको दुहा ॥ ५५ ॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा
रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

इसका विदर्भ ऋ०, विराट् अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मंत्रार्थ—(तनूपा, भिषजा, उभा, अश्विना, सरस्वती, मध्वा रजांसि, सुते, पथिभिः, इन्द्राय, इन्द्रियं, वहान्) शरीरके रक्षक वैद्य दोनो अश्विनीकुमार और सरस्वती देवी मधु से लोकोंको पूर्ण करतीहैं सोमका अभिषव होनेपर उसको मार्गोंमें इन्द्रकी

इन्द्रियोंकी वृद्धिके निमित्त ग्रहण करतेहैं ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्।
अधातामश्विना मधु भेषजम्भिषजा सुते ॥ ५७ ॥

इसका विदर्भि ऋ० अनु० छ० अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(सरस्वती, नराशंसेन, इन्द्राय, इन्दुं, नग्नहुं, भिषजा अश्विना, सुते, मधु, भेषजं, अधाताम्) सरस्वतीने यज्ञके साथ इन्द्रके निमित्त सोमनामक महौषधीके कन्दको धारण किया और वैद्य अश्विनीकुमारोंने अभिषुत होनेपर इस मधुर औषधिको धारण किया ॥ ५७ ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्।
इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳरयिन्दधुः ॥ ५८॥

इसका विदर्भि ऋ०, नि० अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है। मंत्रार्थ-(आजुह्वाना,सरस्वती, अश्विनौ, इन्द्राय,इन्द्रियाणि वीर्यम्, सन्दधुः) इन्द्रको बुलातीहुई सरस्वती और अश्विनी कुमारोंने इन्द्रके निमित्त चक्षु आदि इन्द्रियें और सामर्थ्यको स्थापन किया (इडाभिः इषं, ऊर्जं, रयिं, सम्) गौ आदि पशुओंसहित अन्न, दही आदि रस और धनको स्थापन किया ५८

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रम्परिस्रुता।
सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥

इसका विदर्भि ऋ०, अनु० छ० अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (अश्विनौ, परिस्रुता, सुतं, शुक्रं,सोमं नमुचेः, सरस्वती) अश्विनी कुमारोंके द्वारा महौषधोंके रसोंके साथ अभिषुत, पवित्र सोम को नमुचि असुर वा पापसे सरस्वतीने हरण किया (तं, इन्द्राय, पातवे, बर्हिषा, आभरत्) उसको इन्द्रकी रक्षाके निमित्त कुशाओं पर धारण किया ॥ ५९ ॥

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यान्न दुरो दिशः।
इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ—अश्विभ्यां, सारस्वती, न, इन्द्रः, उभे, रोदसी, न, कविष्यः, व्यचस्वतीः, दुरः, न, दिशः कामान्, दुहे) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वतीने और इन्द्रने दोनों द्यावा पृथिवी और छिद्रयुक्त तथा अवकाशयुक्त यज्ञीय द्वार और सब दिशाओंसे कामनाओं को दुहा ॥ ६० ॥

उपासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रᳬं सायमिन्द्रियैः । सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (सरस्वत्या, अश्विना, सञ्जानाने, सुपेशसा, उषासा, नक्तं, दिवा, सायं इन्द्रं इन्द्रियैः, समञ्जाते) सरस्वतीके साथ अश्विनीकुमार एकमत होकर सुन्दर रूपवाले उषःकाल, रात्रि, दिन और सायंकाल के समय इन्द्रको सामर्थ्योंसे संयुक्त करते हैं ॥ ६१ ॥

पातन्नो अश्विना दिवा पाहि नक्तᳬं सरस्वति । दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रᳬ सचा सुते ॥ ६२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(अश्विना, दिवा, नः, पातम्) हे अश्विनीकुमारो दिनमें हमारी रक्षा करो (सरस्वति, नक्तं, पाहि) हे सरस्वती तुम रात्रिमें रक्षा करो (दैव्या, होतारा, भिषजा, सुते, सचा, इन्द्रं, पातम्) हे देवसम्बन्धीहोताओ, वैद्य अश्विनीकुमारो ! सोमके अभिषुत होनेपर इकट्ठे होकर इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥

इसका विद० ऋ० अनु० छ० अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (त्रेधा, सरस्वती, भारती, इडा, तिस्रः, अश्विना, परिस्रुता, तीव्रं, मदं, इन्द्रं, सोमाय, सुषुवुः) तीनप्रकारसे स्थित अर्थात् मध्यस्थानों में सरस्वती द्युलोकमें भारती और पृथिवीपर इडा इन तीनों अश्विनीकुमारके द्वारा महौषधोंके रससंयुक्त अधिक हर्षित करनेवाले सोमका अभिषवण कियागया ॥ ६३ ॥

अश्विना भेषजम्मधु भेषजन्नस्सरस्वती । इन्द्रे
त्वष्टा यशः श्रियᳬ रूपᳬ रूपम्मधुः सुते ॥ ६४ ॥

अन्वयादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(सुते, नः, इन्द्रे, अश्विना, भेषजं, सरस्वती, मधु, भेषजं, त्वष्टा, यशः, श्रियं, रूपंरूपं, मधुः) सोम का अभिषव होनेपर हमारे इन्द्रमें अश्विनीकुमारने महौषधि, सरस्वतीने मधुरूप औषध, त्वष्टा देवताने कीर्ति लक्ष्मी और अनेक प्रकारके रूप स्थापन किये ॥ ६४ ॥

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्याम्मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

अन्वयादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ--(वनस्पतिः, इन्द्रः, शशमानः, ऋतुथा, परिस्रुता, कीलालं, इन्द्रः, अश्विभ्यां, सरस्वती, धेनुः, म .. दुहे) यागदेवता इन्द्र स्तुतिको प्राप्त होताहुआ प्रत्यक ऋतुमें महौषधोंके रसके साथ अन्नके रसको इन्द्रके निमित्त देताहुआ तथा अश्विनीकुमारों सहित सरस्वतीने धेनुरूप होकर इन्द्र के निमित्त मधको दुहा ॥ ६५ ॥

गोभिर्न्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता । सम-
धातᳬ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतम्मधु ॥ ६६ ॥

अन्वयादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ-(अश्विना, सरस्वत्या, गोभिः, परिस्रुता, सुतं, मधु, सोमं, इन्द्रे, समधातं, स्वाहा) हे अश्विनी कुमारो ! तुम सारस्वतीके साथ दूध घृत आदिके द्वारा महौषधोंके रसमें अभिषुत मधुर सोमको इन्द्रके निमित्त स्थापन करो, उसका श्रेष्ठ होम हो ॥ ६६ ॥

अश्विना हविरिन्द्रियन्नमुचेर्द्धिया सरस्वती ।
आशुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

इसका निद० ऋ०, प्र०, अनु० छं०, अश्वि० देवता है । मंत्रार्थ-(आश्विना, सरस्वती, धिया, नमुचेः, आसुरात्, इंद्राय, शुक्रं, हविः, इन्द्रियं, मघं वसु, आजभ्रिरे) अश्विनीकुमार और सारस्वतीने बुद्धिपूर्वक नमुचि नामक दैत्यसे इन्द्रके निमित्त शुद्ध हवि पराक्रमक और पूजनीय धन आहरण किया ॥ ६७ ॥